सचित्र
आचारांग सूत्र

प्रथम श्रुतस्कन्ध

(जैनदर्शन एव आचार का आधारभूत शास्त्र)
[मूलपाठ हिन्दी, अग्रेजी भावानुवाद, विवेचन एव रगीन चित्रो सहित]

★ प्रधान सम्पादक ★
उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य
उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि

★ सम्पादक ★
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

★ अग्रेजी अनुवाद ★
सुरेन्द्र बोथरा

पद्म प्रकाशन
पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज की
दीक्षा जयन्ती के शुभ प्रसग पर प्रकाशित

सचित्र आगम माला का आठवाँ पुष्प

- **सचित्र आचारांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कंध)**
- **प्रधान सम्पादक**
  उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि
- **सम्पादक**
  श्रीचन्द सुराना 'सरस'
- **अंग्रेजी अनुवाद**
  सुरेन्द्र बोथरा
- **चित्रांकन**
  सरदार पुरुषोत्तमसिंह
  सरदार हरविन्दरसिंह

- **प्रकाशक**
  पद्म प्रकाशन
  पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०
- **मुद्रण-व्यवस्था**
  दिवाकर प्रकाशन
  ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  दूरभाष : (०५६२) ३५११६५
- **प्रथम आवृत्ति**
  वि. सं. २०५६ द्वितीय ज्येष्ठ
  ईस्वी सन् १९९९ जुलाई
- **मूल्य**
  पाँच सौ रुपया मात्र

ILLUSTRATED

ACHARANGA SUTRA

BOOK ONE

(The basic canon of Jain Philosophy and Conduct)
[Original Text with Hindi and English Translations,
Elaboration and Colourful Illustrations]

★ EDITOR-IN-CHIEF ★

Up-pravartak Shri Amar Muni

(the disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari
Shri Padmachandra ji Maharaj)

★ EDITOR ★

Srichand Surana 'Saras'

★ ENGLISH TRANSLATION ★

Surendra Bothara

PADMA PRAKASHAN

PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-110 040

Published on the occasion of the anniversary of the pious Diksha ceremony of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj

THE EIGHTH NUMBER OF THE ILLUSTRATED AGAM SERIES

- ILLUSTRATED ACHARANGA SUTRA (Book One)
- *Editor-in-chief*
  Up-pravartak Shri Amar Muni
- *Editor*
  Srichand Surana 'Saras'
- *English Translation*
  Surendra Bothara
- *Illustrations*
  Sardar Purushottam Singh
  Sardar Harvinder Singh
- *Publisher*
  Padma Prakashan
  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040
- *Printing*
  Diwakar Prakashan
  A-7, Awagarh House, M G Road, Agra-282 002
  Phone (0562) 351165
- *First Edition*
  Second Jyeshtha, 2056 V
  July, 1999 A D
- *Price*
  Five Hundred Rupees only
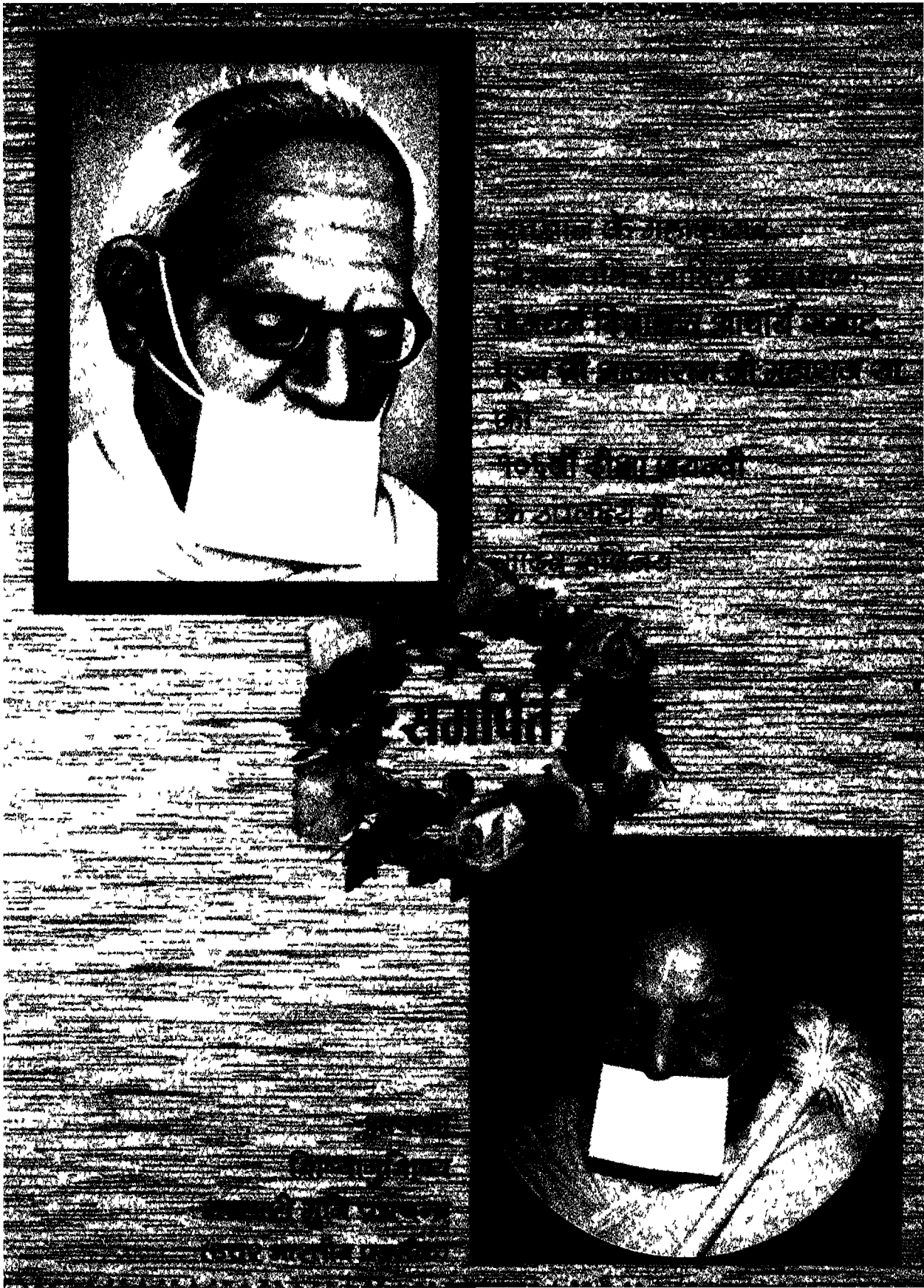
सचित्र आगम साहित्य प्रकाशन में जिनका स्मरणीय सहयोग मिला

बांये से दांये : श्री अजय कुमारी जी म., डॉ. श्री शिवाजी म.,
श्रमणी सूर्या उपप्रवर्तिनी डॉ. श्री सरिता जी म., श्री मंजुला जी म., डॉ. श्री शुभ जी म.

श्री रमेशचन्द्र प्रभुलाल शाह
श्रीमती मालती बहन रमेश भाई शाह
गुजरात विहार, दिल्ली

श्री अनिल कुमार जैन (मुआने वाले)
श्रीमती मंजु जैन
विश्वा अपार्टमेन्ट, दिल्ली

श्री राजन जैन, श्रीमती वन्दना जैन
(टांडा वाले) टैक्सास

श्री सुभाष जैन श्रीमती सुलोचना जैन
हुड्डा कॉलोनी, पानीपत

सचित्र आगम प्रकाशन के उदार सहयोगी

श्री ओ. पी. जैन हरियाणवी
पीतमपुरा, दिल्ली
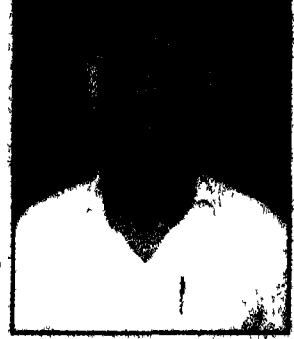
श्री शामलाल जैन
सुपुत्र श्री पन्नालाल जैन
शास्त्री नगर, दिल्ली

श्री पवन कुमार जैन (मुआने वाले) श्रीमती सुदर्शना जैन
पीतमपुरा, दिल्ली

श्री अश्विनी कुमार जैन
झिलमिल कॉलोनी, दिल्ली

श्री केतन रमेश भाई शाह
(गुजरात विहार, दिल्ली)

सचित्र आगम प्रकाशन के उदार सहयोगी

श्री उग्रसैन जैन श्रीमती सुन्दरी देवी जैन
विवेक विहार, दिल्ली
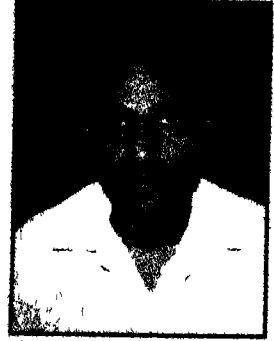
श्री अशोक कुमार जैन
(शामडी वाले)
शक्ति नगर एक्स्टैशन, दिल्ली

श्री जय भगवान जैन श्रीमती विद्यावती जैन
योजना विहार, दिल्ली
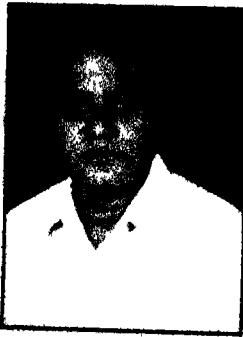
श्री प्रेमप्रकाश जैन,
सुपुत्र श्री हंसराज जी जैन
(स्यालकोटी) मुकर्जी नगर, दिल्ली

श्री रमेशचन्द जैन श्रीमती रमा जैन
(मुआने वाले) पीतम पुरा, दिल्ली

प्रकाशकीय

शास्त्र अध्यात्म पुरुषों की अनुभव वाणी है। इसमें हजारों, लाखों वर्षों की तपस्या, साधना, चिन्तन और आत्म-दर्शन का सार संग्रहीत होता है। इस प्रकार के अध्यात्म शास्त्रों का स्वाध्याय प्रत्येक पाठक के हृदय में ज्ञान का प्रकाश और आत्मानुभूति की संवेदना जगाता है।

आचाराग सूत्र जैनदर्शन का आधारभूत शास्त्र है। यह ग्यारह अंगों में प्रथम अंग है और मोक्ष का द्वार है। भगवान महावीर ने आचार धर्म के दो आधारभूत तत्त्व बताये है—अहिसा और संयम। अहिसा और सयम का आधार है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र। इन आधारभूत तत्त्वों का विस्तार के साथ सहज भाषा-शैली में वर्णन हुआ है इस आगम में।

उत्तर भारतीय प्रवर्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य श्री अमर मुनि जी महाराज ने शास्त्रों के हिन्दी अनुवाद विवेचन के साथ अंग्रेजी भाषान्तर एवं सुन्दर चित्रो सहित प्रकाशन का जो विशाल अद्वितीय कार्य प्रारम्भ किया है वह आज देश-विदेश मे सर्वत्र प्रशंसा योग्य बन रहा है। इन आगमों से हजारों व्यक्ति लाभ उठा रहे है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है।

सचित्र आगम प्रकाशन में अब तक हमने छह आगमों का प्रकाशन किया है। अब सातवाँ आगम, आचाराग सूत्र हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद एवं चित्रों के साथ पाठकों के हाथों में प्रस्तुत है। ज्ञातासूत्र दो भागों में प्रकाशित हुआ है, इस कारण यह सचित्र आगम माला का आठवाँ पुष्प है। इस प्रकाशन में सहयोग देने वाले सभी उदार हृदय गुरुभक्तों का हम हृदय से आभार मानते हैं तथा विद्वान् सम्पादक श्रीचन्द जी सुराना, अंग्रेजी अनुवादक श्री सुरेन्द्र बोथरा तथा मँजे हुए चित्रकार सरदार पुरुषोत्तमसिंह जी तथा सरदार हरविन्दरसिंह जी को भी धन्यवाद देते हैं। सभी के सहयोग से यह सुन्दर संस्करण आपके हाथों में पहुँच रहा है।

विनीत

महेन्द्रकुमार जैन

अध्यक्ष

पद्म प्रकाशन

PUBLISHER'S NOTE

Scriptures are the words of great spiritualists. They are the compilation of the essence of knowledge gathered through austerities, spiritual practices, contemplation and self-realization. The study of such scriptures fills the readers mind with the light of knowledge and spiritual insight

Acharanga Sutra is the basic scripture of Jain philosophy This is the first of the eleven Angas (canon) and the gateway to moksha or liberation Bhagavan Mahavir has spelled out two fundamentals of religious conduct—*ahimsa* and discipline The basis of *ahimsa* and discipline is the trinity of right perception (or faith), right knowledge and right conduct This Agam describes and elaborates these fundamentals in detail and with eloquence

The voluminous and unprecedented project of publication of scriptures with original text, Hindi and English translation with elaborations and beautiful illustrations, launched by Up-pravartak Shri Amar Muni ji M , the able disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj, is being praised everywhere, in India as well as abroad. It is a matter of great joy and satisfaction that thousands of readers are being benefitted by these Agams.

Till date we have published six Agams Now the seventh work of this series, Acharanga Sutra with original text, Hindi and English translation and illustrations is being placed before our readers Jnata Sutra was brought out in two volumes, thus this is the eighth book of the Illustrated Agam Series We express our gratitude and indebtedness to the magnanimous devotees of the guru who have financially contributed in this project. We are thankful to the scholarly editor Srichand ji Surana, English translator Shri Surendra Bothara, and the accomplished artists Sardar Purushottam Singh and Sardar Harvinder Singh This beautiful edition reaches you as an outcome of the co-operation of them all

Mahendra Kumar Jain
PRESIDENT
Padma Prakashan

स्वकथ्य

आचारांग का महत्त्व

वर्तमान में उपलब्ध भगवान महावीर की वाणी का मूल आधार ग्यारह अंगसूत्र है। ग्यारह अंगों में सर्वसे पहला अंग है आचारांग। आचार्य श्री भद्रबाहु ने लिखा है–

"सव्वेसिं आयारो तित्थस्स पवत्तणे पढमयाए।
सेसाइं अगाइ एक्कारस आणुपुव्वीए॥"

–निर्युक्ति, गाथा ८

तीर्थंकर देव तीर्थ प्रवर्तन के समय सर्वप्रथम आचार का उपदेश देते हैं। इसके पश्चात् क्रमश· अन्य अगो का प्रवचन करते है। इसलिए आचाराग पहला अंग है।

समस्त जिन प्रवचन का सार मोक्ष है। मोक्ष के लिए धर्म की आवश्यकता है। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय–मोक्ष साधना की विधि आचाराग मे बताई गई है। आचारांग का आरम्भ आत्मा की जिज्ञासा से होता है। फिर अहिंसा, समता, वैराग्य, अप्रमाद, निस्पृहता, नि·संगता, सहिष्णुता आदि धर्मों का प्रतिपादन है। इस प्रकार मोक्ष-प्राप्ति के सभी अंगों का विशद वर्णन इस सूत्र में विद्यमान है।

प्राचीन समय मे जब तक दशवैकालिकसूत्र की रचना नहीं हुई थी, नवदीक्षित मुनि की उपस्थापना (बडी दीक्षा) तभी की जाती थी जब वह आचारांग का प्रथम अध्ययन पढ़ लेता था तथा आचाराग सूत्र के पिण्डैषणा अध्ययन की वाचना लेने बाद ही मुनि स्वतंत्र रूप में भिक्षाचरी कर सकता था।

अन्तरग परिचय

आचारांग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध, भाषा, रचना-शैली तथा विषय-वस्तु आदि सभी दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में अहिंसा और समता की दृष्टि से व्यापक और सर्व जनोपयोगी विषय है जबकि द्वितीय श्रुतस्कन्ध की विषय-वस्तु साधु के आचार धर्म पर ही केन्द्रित है। भाषा आदि दृष्टियों से भी दोनों में भिन्नता प्रतीत होती है। प्रथम श्रुतस्कन्ध का दूसरा नाम नव ब्रह्मचर्य अध्ययन भी प्रसिद्ध है–'**नव बंभचेरा पण्णत्ता**'–प्राचीनकाल में ब्रह्मचर्य शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता था। आत्मा को भी ब्रह्म कहा जाता है। इस कारण आत्मा में रमण करने का नाम भी ब्रह्मचर्य है। प्रथम श्रुतस्कन्ध की समग्र सामग्री आत्मा पर केन्द्रित है, आत्म-रमण की साधना के विविध रूप ही उसमें व्यक्त हुए हैं इसलिए यह माना जाता है कि जब इसका दो श्रुतस्कन्ध के रूप में विभाजन किया गया तो प्रथम श्रुतस्कन्ध '**नव ब्रह्मचर्य अध्ययन**' के रूप में तथा दूसरा श्रुतस्कन्ध '**आयारचूला**' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययन हैं। वर्तमान में सातवाँ **महापरिण्णा** अध्ययन विच्छेद माना जाता है। अत आठ अध्ययन ही उपलब्ध हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार वीर निर्वाण संवत् के ६२३ वर्ष पश्चात् आचारागधर आचार्यों का विच्छेद हो जाने से आचाराग का सम्पूर्ण विच्छेद हो गया। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार आचारांग का सम्पूर्ण विच्छेद नही हुआ, किन्तु इसके कुछ अंशों का विच्छेद अवश्य ही हो गया। इसके अनेक कारण हैं–श्रुतधर आचार्यों का अभाव, स्मृति की दुर्बलता, दुष्कालो का प्रभाव तथा लिपि करने वालों की असावधानी आदि।

इतिहासकारो का मत है कि आर्य वज्रस्वामी के समय (पहली शताब्दी) तक महापरिण्णा अध्ययन विद्यमान था। वज्रस्वामी ने उससे गगनगामिनी विद्या उद्धृत की थी। उसमें अनेक प्रकार के मत्र व विद्याओं का भी वर्णन था। धीरे-धीरे आचार्यों ने उसका पढ़ना-पढ़ाना निषिद्ध कर दिया। निर्युक्तिकार तथा चूर्णिकार के समय में वह विद्यमान था ऐसा सम्भव है। किन्तु टीकाकार आचार्य शीलाक सूरि (८वीं शताब्दी) के समय मे यह विच्छिन्न था। इससे अनुमान होता है कि इस बीच के काल में ही सातवाँ अध्ययन विच्छिन्न हुआ है।

आचारांग की विषय-वस्तु

आचारांग मुख्य रूप में आचारशास्त्र है। परन्तु यह दशवैकालिक और उत्तराध्ययनसूत्र की शैली का आचारशास्त्र नही है। उनमे मुख्यत· मुनि के आचार-गोचर का प्रतिपादन है जबकि आचारांग मे इस आचार की आधार भूमि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप पर ही विशेष वर्णन है। आचारधर्म के साथ इसमें अध्यात्म और दर्शन की भी महत्त्वपूर्ण सामग्री भरी है।

आचाराग में श्रद्धा पर बहुत बल दिया है, अनेक स्थानों पर **'सड्ढी आणाए मेहावी'** शब्दो का प्रयोग हुआ है, **'आणाए मामग धम्म'**–आज्ञा में ही मेरा धर्म है, जैसे वाक्य भी श्रद्धा की उत्कृष्टता का परिचय देते है। यह श्रद्धा प्रधान आगम होते हुए भी स्वतत्र विवेक–**परिण्णा**, मति, मेधा आदि पर बार-बार बल देते हुए कहा है–**'भगवया परिण्णा पवेइया'**–भगवान ने प्रज्ञा, बुद्धि, विवेक का कथन किया है। अनेक बार **'मइम पास'** शब्दो का पुनरावर्तन यह सूचित करता है कि केवलज्ञानी ने कहा है, इसीलिए ही मत मानो, किन्तु अपनी बुद्धि से, विवेक से विचार करके देखो। **'मइम पास'** शब्द का अर्थ करते हुए आचार्य शीलांक सूरि ने लिखा है– **'न केवलं अहमेव कथयामि त्वमेव पश्य'**–यह बात केवल मैं ही नहीं कह रहा हूँ, किन्तु तुम स्वयं भी देखो। इस प्रकार श्रद्धा और स्वतत्र चिन्तन, श्रद्धा और प्रज्ञा दोनों का ही सुन्दर संगम इस आगम में देखने को मिलता है।

आचारांग की रचना-शैली

प्रथम आचाराग गद्य-बहुल है। पद्य-गाथाएँ भी हैं, परन्तु बहुत कम हैं। डॉ शुब्रिंग ने लिखा है–"लगता है पहले आचारांग पद्य-बहुल ही रहा होगा, क्योंकि अनेक गद्यांश खण्डित पद्य जैसे मिलते हैं। यही कारण है कि छोटे-छोटे सूत्र दीखने में गद्य जैसे लगते हैं, किन्तु उच्चारण में पद्य

जैसी सुगेयता भी उनमें है।"[1] इन पद्यांशों की सुगेयता, लयबद्धता ऋग्वेद के अति प्राचीन सूक्तों जैसी है। सक्षिप्त-सारपूर्ण शब्दों में असीम अर्थ, नये-नये लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग और सुगठित वाक्य रचना देखकर ही विद्वानो ने अनुमान किया है कि आचारांग की रचना, वेद और उपनिषद् की सूक्तात्मक शैली की है, जो सबसे प्राचीन शास्त्र रचना शैली है। यही कारण है कि आचारांग की व्याख्या और उसके सूत्रों का भाव–उद्घाटन काफी कठिन माना जाता है।

प्रथम आचारांग के आठवे अध्ययन के सातवें उद्देशक तक प्राय. सूत्रात्मक गद्य शैली है। बीच-बीच में कुछ पद्य-गाथाएँ हैं। आठवाँ उद्देशक तथा नौवाँ अध्ययन पद्यात्मक है। नौवे अध्ययन मे भगवान महावीर की उग्र परीषहयुक्त साधना का बड़ा ही रोमांचक वर्णन है।

आगमों की रचना मे दो प्रकार की पद्धतियाँ मिलती हैं–

(१) छिन्न-छेद नयिक

(२) अच्छिन्न-छेद नयिक

जो वाक्य, गाथा, पद अपने आप मे पूर्ण होते हैं, जिनका अर्थ करने मे आगे-पीछे के सदर्भों को देखने व मिलाने की जरूरत नही होती, वे छिन्न-छेद नयिक कहलाते हैं। जैसे–दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि सूत्र।

सूत्रो, वाक्यो व पदो की व्याख्या करने के लिए आगे-पीछे के सदर्भ, विषय का वर्णन आदि पर विचार कर, संगति बैठाना पडता है, वह दूसरी अच्छिन्न-छेद नयिक पद्धति है।

आचाराग सूत्र की रचना दूसरी पद्धति लिए हुए है। इसलिए इसके छोटे-छोटे वाक्यों व सूत्रो का अर्थ करते समय आगे-पीछे के सदर्भ, क्रियाएँ, विषय प्रतिपादन का विचार करना जरूरी है। इसकी व्याख्या मे निर्युक्ति, चूर्णि, टीका आदि का अध्ययन करना तथा उनके अर्थो पर विचार करना आवश्यक लगता है अन्यथा आचारांग के अर्थ के सम्बन्ध मे भूल भी हो सकती।

आचाराग सूत्र की व्याख्याएँ

यह माना जाता है कि आचारांग सूत्र के मूल उपदेष्टा स्वयं भगवान महावीर हैं। गणधर सुधर्मा इसके सकलनकर्ता है। इसके अर्थ गम्भीर सूत्रो की व्याख्या करने वाला सबसे प्राचीन ग्रन्थ है आचार्य भद्रबाहुकृत निर्युक्ति। आचार्य भद्रबाहु ५-६वी सदी के बहुश्रुत विद्वान् है। जिन्होने लगभग दस आगमो पर निर्युक्तियाँ लिखी हैं। निर्युक्ति की भाषा प्राकृत तथा रचना पद्यात्मक होती है।

दूसरा व्याख्या ग्रन्थ है **चूर्णि**। चूर्णि गद्य-पद्य मिश्रित तथा सस्कृत-प्राकृत मिश्रित भाषा मे होती है। इसके कर्ता आचार्य जिनदासगणि महत्तर (६-७वीं शती) माने जाते है। ऐसा लगता है

१ आतकदसी अहिय ति णच्चा –सूत्र ५७ | आरम्भजं दुक्खमिण ति णच्चा –सूत्र १०९
आस च छदं च विगिच धीरे –सूत्र ८३ | मायी पमायी पुणरेति गब्भं –सूत्र १०९

चूर्णिकार के सामने आचाराग सूत्र-पाठ की एक से अधिक परम्पराएँ रही थीं। जिनमे कुछ पाठान्तर आ गये है। चूर्णिकार ने शब्दशास्त्री की सूक्ष्म दृष्टि से उन पाठान्तरों पर भी विचार किया है और उनके साथ अर्थ वाचना की लुप्त होती परम्परा का उद्घाटन करने का प्रयास किया है। चूर्णिकार ने एक-एक शब्द के अनेक पाठान्तर देकर उनके विविध अर्थों पर प्रकाश डाला है। जैसे एक पद है–**तम्हाऽतिविज्जे** (सूत्र ११३)। यदि इसका **तम्हा अतिविज्जे**–पाठ मान लिया जाय तो अर्थ होता है, **अतिविद्य**–विशिष्ट विद्वान् और यदि 'तिविज्ज' पाठ मान लिया जाय तो **त्रिविद्य**–तीन विद्याओ का ज्ञाता। चूर्णिकार ने इस प्रकार के पाठो पर पाठान्तर देकर उनके अनेक अर्थों पर विचार किया है। इनसे प्राचीन अर्थ परम्परा की झलक मिलती है।

टीका–आचारांग सूत्र पर टीका (वृत्ति) लिखने वाले आचार्य शीलाक सूरि का समय आठवी शती माना जाता है। शीलाकाचार्य ने श्री सिद्धसेनाचार्य कृत गधहस्ति भाष्य नामक टीका के आधार पर इसका अर्थ विस्तार किया था, परन्तु आज वह टीका उपलब्ध नही है। टीका के अलावा दीपिका, अवचूरि, बालावबोध भी उपलब्ध होते है।

आचाराग सूत्र पर सबसे प्रसिद्ध ओर विस्तृत हिन्दी टीका आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा लिखी गई है। आचार्यसम्राट् ज्ञान के महासमुद्र थे। उन्हे शास्त्रों के पाठ सन्दर्भ सहित कण्ठस्थ थे और उनका अर्थ भी वे अपनी विशद प्रज्ञा से इतना सटीक, तर्क पूर्ण, पूर्वाऽपर का सामजस्य बैठाते हुए करते हैं कि आगम ज्ञान से अनभिज्ञ पाठक-वाचक भी उनकी व्याख्या पढ़कर शास्त्र का रहस्य समझ लेता है और शकाओ का समाधान भी पा लेता है। आचार्यसम्राट् ने अनेक शास्त्रो पर विस्तृत व्याख्याएँ लिखी है। हमने मूल आधार आचार्यश्री कृत व्याख्या का ही रखा है। इसके अलावा श्रमणसंघ के स्व युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी के प्रधान सपादकत्व मे श्रीचन्द सुराना 'सरस' द्वारा सपादित आचाराग सूत्र भी हमारे लिए बहुत उपयोगी बना है। 'तेरापंथ' के विद्वदरत्न आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी ने '**आचाराग भाष्य**' नाम से आचाराग सूत्र पर संस्कृत-हिन्दी मे विस्तृत टीका लिखी है उसमे भी अनुसधानपूर्ण अनेक नये तथ्य व नया चिन्तन उपलब्ध है। इन सभी प्राप्त आगम व्याख्याओ के अनुशीलन के आधार पर यह व्याख्या लिखी गयी है। जिन विद्वानो के विचारो से, उनके चिन्तन से जो उपयोगी व ग्रहणीय लगा है, वह हस-बुद्धि से उनका नामोल्लेख करते हुए मैने यथास्थान साभार ग्रहण किया है। यदि प्रमादवश कही किसी का नामोल्लेख रह गया है तो उसके लिए मैं पुन उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

अनुवाद की शैली–आचारांग स्वय मे विशाल आगम है। फिर सूत्र रूप मे होने से इसकी व्याख्या भी विस्तृत होनी चाहिए और इस कारण इसका विस्तार बहुत हो जाता है। मैने विवेचन मे मध्यम मार्ग अपनाया है।

मैने मूल आगम पाठ का भावानुसारी सरल अर्थ किया है। अनुवाद मे ही पूर्वापर सम्बन्ध जोडने के लिए कोष्ठक मे कुछ वाक्य दिये है तथा कठिन अप्रचलित शब्दो का अर्थ भी

साथ-साथ कर दिया है। पहले इसका पारिभाषिक शब्दकोष देने का विचार था। फिर सोचा विवेचन में ही कठिन शब्दों का अर्थ दे देने से पाठकों को तुरन्त अर्थ समझने में सुविधा रहेगी। इसलिए विवेचन में ही कठिन शब्दों की परिभाषाएँ दे दी हैं। अग्रेजी में भी उन पारिभाषिक शब्दों को इटैलिक में देने से अलग ही दीखते हैं और समझने में सुविधा भी रहेगी।

इस प्रकार मैने यह अनुवाद-विवेचन न अति संक्षिप्त तथा न अति विस्तृत–किन्तु सुबोध व सार ग्राही बनाने का प्रयास किया है।

मेरे सहयोगी विद्वान् श्रीचन्द जी सुराना ने इसके सपादन में तथा श्री सुरेन्द्र जी बोथरा ने अंग्रेजी अनुवाद मे पूर्ण श्रद्धाभाव के साथ सहयोग किया है। इसी प्रकार चित्रकार सरदार जी ने भी भावो को चित्रित करने मे बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। अनेक कठिन विषय चित्रो के कारण बहुत सुबोध व रुचिकर बन गये हैं।

उत्तर भारतीय प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के असीम आशीर्वाद से मैने आगमों का हिन्दी-अग्रेजी अनुवाद सहित सचित्र प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था इस योजना के अन्तर्गत अब तक निम्न सूत्र छप चुके हैं

उत्तराध्ययनसूत्र अन्तकृद्दशासूत्र, कल्पसूत्र, ज्ञातासूत्र भाग १ तथा २, दशवैकालिकसूत्र, नन्दीसूत्र। अब आचाराग सूत्र प्रथम भाग पाठको के हाथों में है। मेरी हार्दिक इच्छा है, आगमों का यह सचित्र प्रकाशन निरन्तर चलता रहे और भगवान श्री महावीर की वाणी पाठकों को आत्म-कल्याण का मार्ग दिखाती रहे। मेरे इस कार्य में जो-जो विद्वान्, उदार हृदय श्रावक, गुणज्ञ गुणानुरागी सज्जन सहयोगी बने है, बन रहे है मैं उन सब के प्रति हृदय से अपना आभार प्रकट करता हूँ। खासकर साध्वीरत्न उपप्रवर्तिनी श्री पवनकुमारी जी महाराज, तपाचार्य श्री मोहनमाला जी महाराज, श्रमणीसूर्या उपप्रवर्तिनी डॉ श्री सरिता जी महाराज, श्री अजयकुमारी जी महाराज के प्रति। जिनकी प्रेरणा से शास्त्र प्रकाशन कार्य मे निरन्तर सहयोग प्राप्त होता रहा है।

गुरुभक्त श्री राजकुमार जी जैन, जैनदर्शन व अंग्रेजी भाषा के विद्वान् हैं। उन्होंने नि स्वार्थ भाव से इनके अग्रेजी प्रूफ पढ़कर संशोधन किया है। उनके सहयोग के प्रति हार्दिक धन्यवाद है तथा श्रुत-सेवा के पवित्र कार्य में तन-मन-धन से सहयोग करने वाले सभी गुरुभक्तों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

–उपप्रवर्तक अमर मुनि

FROM THE EDITOR-IN-CHIEF'S PEN

THE IMPORTANCE OF *ACHARANGA*

The basis of all available teachings of Bhagavan Mahavir available today are the eleven *Anga Sutras* Of these eleven the first *Anga* is *Acharanga* Acharya Shri Bhadrabahu writes—"At the time of founding the *Tirth* (ford), *Tirthankars* first of all preach about conduct (*Achar*) After this they preach other *Angas* in their proper sequence Thus, *Acharanga* is the first *Anga*

The theme of all preaching by a Jina is *moksha* (liberation) For *moksha* is needed *dharma* (the right path) In *Acharanga* is given the means of attaining *moksha,* the procedure of practices aimed at achieving *moksha* *Acharanga* starts with a soul's curiosity Then it proceeds to define various *dharmas* (duties), such as *ahimsa,* equanimity, detachment, alertness, simplicity, unitariness, tolerance, etc Thus, this Sutra contains an elaborate description of all facets of the process of attaining *moksha*

In ancient times when *Dashavaikalika Sutra* was not written, a newly initiated ascetic was given the Validatory initiation (*upsthapana* or *badi-diksha*) only after he had studied the first chapter of *Acharanga* Also, he was allowed to go for alms-seeking independently only after he took lessons of the *Pindaishana* chapter of *Acharanga Sutra*

COMPREHENSIVE INTRODUCTION

Acharanga is in two volumes (shrut-skandh) The first book is of special importance with respect to language, style, subject-matter, (etc) In context of *ahimsa* and equanimity, the first book deals with a subject of wider reach and usefulness for all, whereas the subject-matter of the second book exclusively deals with the code of conduct

of ascetics. Marked differences in language and style of the two can be seen. The first book is also famous as *Nava Brahmacharya Adhyayan* (the study of new *Brahmacharya*) In the ancient times the term *Brahmacharya* was used to convey a much wider meaning Soul is also called *Brahma*. Therefore, to dwell in soul is also called *Brahmacharya* All the contents of the first book are directed at soul It contains various forms of practices of dwelling in the self, therefore it is believed that when *Acharanga* was divided into two books the first one came to be popularly known as *Nava Brahmacharya Adhyayan* and the second as *Achar Chula* (Compendium of Conduct)

The first book contains nine chapters The seventh chapter, Mahaparinna is believed to be extinct, thus only eight chapters are available According to the belief in Digambar tradition, *Acharanga* became completely extinct with the last of the *Acharangadhar* (scholars of *Acharanga*) *acharyas* However, the belief in the Shvetambar tradition is that *Acharanga* was not lost completely, only some portions of it were lost For this there are many reasons including loss of the *acharyas* who had absorbed knowledge of canons, general decline in the capacity to remember, devastating effects of droughts and negligence of scribes

The Jain historians opine that till the time of Vajra Swami (first century Vikram) Mahaparinna chapter was intact Vajra Swami had quoted about the special skill of moving in the sky or levitation from this chapter which contained details about many other such special powers and mantras With passage of time *acharyas* proscribed its reading and teaching There are chances that at the time of writing the first commentaries (*Churni* and *Niryukti*) the chapter was available But it had become extinct at the time of Acharya Shilank Suri, the commentator (*Tika*), during the eighth century V Thus, it became extinct sometime during the intervening period.

THE SUBJECT-MATTER OF *ACHARANGA*

Acharanga is mainly a book of conduct But it is not a scripture in the style of *Dashavaikalik* or *Uttaradhyayan Sutras* These two

mainly deal with the codes of conduct and alms collection of an ascetic, whereas *Acharanga* mainly describes right perception (faith), right knowledge, right conduct and right austerities Besides the codes of conduct this abounds in important discussions about spiritualism and philosophy

Acharanga gives ample stress on faith Phrases like ***'Saddhi anaye mehavi'*** (I have faith in the tenets of the great man or *Jina*) and ***'Anaye maamagam dhammam'*** (his tenets are my religion) indicate the special importance of faith Although it is an *Agam* having faith as its main theme, it still lays adequate stress on independent judgment, awareness, intellect and wisdom etc by quoting—***'Bhagavaya parinna paveiya'*** or *Bhagavan* has talked about awareness, intellect and sagacity Numerous repetitions of the phrase ***'Maimam Pasam'*** strongly conveys that do not accept just because the omniscient has said it, examine with your own wisdom and sagacity before accepting Acharya Shilank Suri explains ***'Maimam pasam'***—it is not that just I say this, you should also see this This way we find a fine amalgamation of faith and independent thinking or faith and intellect in this *Agam*

THE STYLE OF *ACHARANGA*

The first book of *Acharanga* is predominantly prose Although it contains verses as well, but they are very few Dr Shubring says—"It appears that originally *Acharanga* must have been mainly in poetry This is because many prose phrases look like broken verses That appears to be the reason that the short aphorisms although appear to be prose but when read they reveal a poetic rhythm " The rhyme and rhythm of these aphorisms is very similar to those of ancient aphorisms of *Rigveda* Looking at the short and pithy phrases impregnated with a very wide range of meanings, use of new and meaningful words and a compact grammatical structure, scholars have inferred that the style of writing of *Acharanga* is the very same aphoristic style that was employed in writing of *Vedas* and *Upanishads* This style is believed to be the style of most ancient scriptures That is the reason that elaborating and expounding the

true meanıng of the aphorısms of *Acharanga* ıs considered to be a dıfficult task

The style is generally aphoristıc prose up to the seventh lesson of the eıghth chapter of the first book of *Acharanga* At some places in between can be found a few verses The eıghth lesson of the eighth chapter and the whole nınth chapter are in verse The nınth chapter contaıns an electrıfyıng account of the period of spirıtual practıces of Bhagavan Mahavır, filled wıth rıgorous afflıctıons.

In the *Agam* wrıting we find two dıstınct styles—

(1) Chhınna-Chheda nayık

(2) Achhınna-Chheda nayık

The sentence, verse or phrase that ıs complete ın ıtself and does not requıre any precedıng or followıng references from the text to be meanıngful are called Chhınna-Chheda nayık *Dashavaıkalıka, Uttaradhyayan* and many other Sutras are ın thıs style

The sentence, verse or phrase where precedıng and followıng references from the text, understandıng of the subject and descrıptıons and other such factors are to be corroborated before one can comprehend the meanıng are called Achhınna-Chheda nayık

Acharanga Sutra has been wrıtten ın the second style Therefore ıt ıs essentıal to analyze the references, verbs and the topıc dıscussed before the meanıng can be derıved While elaborating thıs ıt ıs necessary to study varıous commentarıes (*Nıryuktı, Churnı, Tıka,* etc) and ponder over the meanıngs In absence of thıs there are chances of mıstakes ın understandıng *Acharanga Sutra*

THE COMMENTARIES OF *ACHARANGA SUTRA*

It ıs belıeved that *Acharanga Sutra* was orıgınally preached by Bhagavan Mahavır hımself Ganadhar Sudharma was ıts compıler. The oldest work elaboratıng the profound meanıngs of the aphorısms ın thıs work ıs the *Nıryuktı* (commentary) by Acharya Bhadrabahu who was a great scholar of 5-6th century V He wrote commentarıes (Nıryuktı) on almost ten *Agams* The language of a *Nıryuktı* ıs *Prakrıt* and the style poetıc

The second type of commentary is *Churni* which is in a mixed style, prose and poetry, and bilingual, Sanskrit and Prakrit It is believed that the author of *Acharanga Churni* was Acharya Jinadas Gani Mahattar (6-7th century V) It appears that the commentator (*Churni*) had more than one tradition of the text of Acharanga Sutra having marked differences. The commentator (*Churni*) has minutely examined and discussed these alternative readings on the basis of linguistics He has also tried to explore the nearly extinct tradition of interpretive discourses or teaching The commentator (*Churni*) has thrown light on numerous meanings of numerous alternative readings of every single word Take for example the phrase—***Tamha-ati vijje*** (aphorism 113) This reading, tamha ativijje, means a great scholar Its alternative reading, ***tamha tivijje,*** means scholar of three subjects or three special skills This way the commentator (*Churni*) has given alternative readings of such passages and discussed their alternative meanings This provides a glimpse of the ancient tradition of interpretations

Tika—The period of the author of the *Tika* or *Vritti* (commentary) on *Acharanga,* Acharya Shilank Suri is believed to be eighth century V Shilankacharya has elaborated the meaning of *Acharanga Sutra* on the basis of another *Tika* titled Gandhahasti Bhashya by Shri Siddhasenacharya which is not available now Besides *Tika* other types of commentaries, such as *Dipika, Avachuri* and *Balavabodh,* are also available

The most famous and elaborate Hindi commentary (*Tika*) on *Acharanga Sutra* has been written by Acharya Samrat Shri Atmaram ji M who was like an ocean of knowledge He could recite the text of all the *Agams* with necessary references from his memory The interpretation done by him with the help of his vast knowledge is so logical, coherent and eloquent that even a reader having no knowledge of *Agams* can understand the deeper meanings and even remove his doubts Acharya Samrat has written detailed commentaries on numerous scriptures I have mainly based this edition on the commentary by Acharya Samrat Besides this, *Acharanga Sutra* edited by Srichand Surana 'Saras' with late

Yuvacharya Shri Madhukar Muni ji of Shraman Sangh as its Editor-in-chief has also been very useful. The scholarly Acharya Shri Mahaprajna of Terpanth has written *Acharanga Bhashya,* a detailed commentary on *Acharanga* in Sanskrit-Hindi. This also contains new information and views based on research I have written this commentary after studying all these available elaborative works on *Agams* I have included whatever I found useful and acceptable from the works of various scholars giving them due credit. If at some place I have missed inadvertently, I hereby express my indebtedness to them

The style of translation—In itself *Acharanga* is a voluminous *Agam* Moreover, as it is in aphoristic style, it becomes imperative to provide a detailed commentary, and this makes the work all the more expansive However I have taken the middle path in this commentary

I have given a free flowing simple translation of the original text. In order to connect the preceding and following phrases, sentences have been added in parenthesis The meanings of difficult and uncommon words have also been given with such words. Initially I had planned to give a glossary of such words, but later I thought that it is easier for the reader to grasp the meaning if the words are explained with the main body of the text Therefore the explanations about difficult words have been included in the elaboration In English rendering such words have been transliterated in italic font This will make it convenient for the reader to find and understand such terms

Thus, instead of a very brief or a very detailed work, I have tried to make this translation-elaboration simple and easy to understand.

The able scholars Srichand ji Surana and Surendra ji Bothara have provided their assistance in editing and English translation respectively with complete devotion. In the same way painter Sardar ji has done a commendable job of illustrating the themes The illustrations have made many difficult topics interesting and easy to understand

I had launched the project of publication of illustrated *Agams* with Hindi and English translations with liberal blessings of my revered Gurudev, Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj Under this plan the following Sutras have been published till date

Uttaradhyayan Sutra, Antakrit-dasha Sutra, Kalpa Sutra, Jnata Sutra parts 1 and 2, *Dashavaikalika Sutra* and *Nandi Sutra* Now Acharanga Sutra book one is in the hands of readers It is my earnest desire that the publication of illustrated *Agams* continues unobstructed and the tenets of Bhagavan Mahavir continue to show the path of beatitude of the self to the readers I express my sincere gratitude to all the scholars, magnanimous shravaks, virtuous and virtue-loving individuals, who have extended their co-operation and will continue to do so in future A special mention of indebtedness for Sadhviratna Up-pravartini Shri Pavan Kumari ji M , Tapacharya Shri Mohan Mala ji M , Shramani Surya Up-pravartini Dr. Shri Sarita ji M and Shri Ajaya Kumari ji M Through there inspiration liberal contributions to this project of publication of scriptures have been pouring in

Gurubhakt Shri Rajkumar ji Jain is a scholar of Jain philosophy and English language He has checked and corrected the English proofs of this work without any selfish motives My sincere thanks to him for this contribution I also convey my thanks to all those devotees who have extended liberal co-operation in any way towards the pious mission of Shrut-seva (service to the tenets of the *Tirthankar*)

Up-pravartak Amar Muni

अनुक्रमणिका

CONTENTS

पंचमगणहर-भयव-सिरिसुहम्मसामि-विरइयं पढमं अंगं

आयारंगसुत्तं

पढमो सुयक्खंधो

पंचमगणधर-भगवत्-सुधर्मास्वामि-ग्रथित प्रथम अंग

आचारांग सूत्र

प्रथम श्रुतस्कन्ध

The First Agam-Anga by the Fifth Ganadhar, Bhagavat Sudharma Swami

ILLUSTRATED ACHARANGA SUTRA

PART ONE
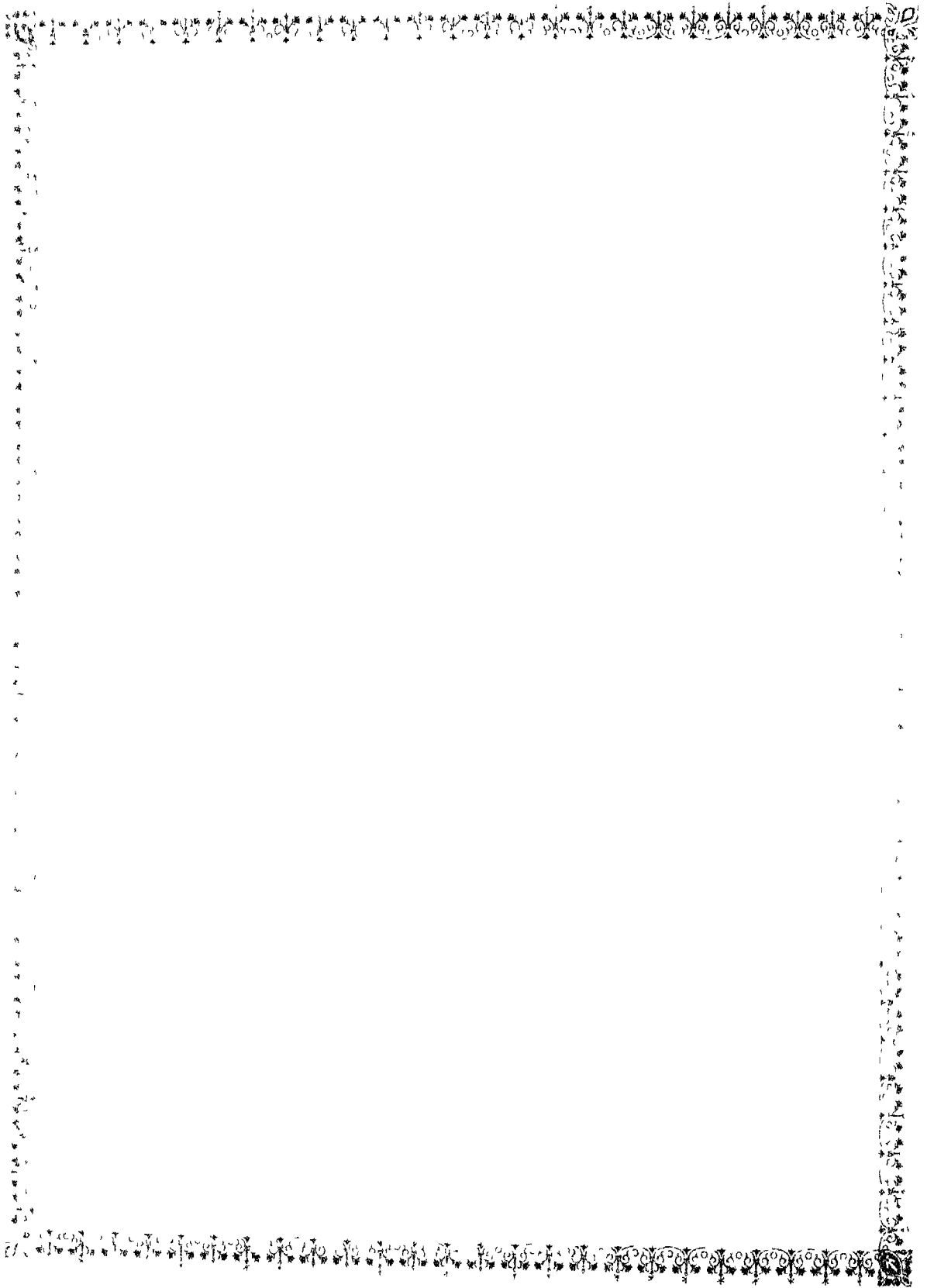
सत्थ परिण्णा : पढमं अज्झयणं
शस्त्र परिज्ञा : प्रथम अध्ययन

आमुख

✦ आचारांग सूत्र का प्रथम अध्ययन 'शस्त्र परिज्ञा' नाम से प्रसिद्ध है।

✦ हिसा के उपकरण या साधन को शस्त्र कहते हैं। जिसके लिए जो विनाशकारी होता है, वह उसके लिए शस्त्र है-"ज जस्स विणासकारणं तं तस्स सत्थं भण्णति।"[1] तलवार आदि हिंसा के बाह्य माधन द्रव्य शस्त्र हैं। राग-द्वेषयुक्त परिणाम भाव शस्त्र हैं।

✦ आचार्यों ने परिज्ञा का अर्थ किया है-विवेक और संयम। तत्त्व का यथार्थ परिज्ञान करना 'ज्ञ-परिज्ञा'-विवेक है तथा हिंसा के साधनों का त्याग करना 'प्रत्याख्यान परिज्ञा'-संयम है।

✦ 'शस्त्र परिज्ञा' का भावार्थ है-हिसा के स्वरूप और साधनो का ज्ञान प्राप्त करके तथा उसके कटु परिणामो को जानकर उनका त्याग करना।

✦ हिसा से निवृत्त होना अहिसा है। अहिसा का आधार है-आत्मा। आत्मा के अस्तित्व का बोध होने पर ही अहिसा मे आस्था दृढ होती है, संयम में पुरुषार्थ किया जाता है और तभी अहिसा का सम्यक् परिपालन किया जा सकता है।

✦ इस अध्ययन मे मुख्य रूप में षड्जीवनिकाय की हिंसा से निवृत्त होने का उपदेश है।

✦ प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में सर्वप्रथम 'आत्म-संज्ञा'-आत्म-बोध की चर्चा की गई है। आत्म-बोध होने पर आत्मा के अस्तित्त्व में विश्वास होता है, तब वह आत्मवादी बनता है। आत्मवादी लोक के अस्तित्त्व में विश्वास करता है इसलिए वह लोकवादी भी है। लोक का आधार कर्म है और कर्म का मूल क्रिया है। अत वह कर्मवादी तथा क्रियावादी भी है। इस प्रकार आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद का सम्यक् ज्ञान होने पर ही अहिंसा का सम्यक् परिपालन किया जा सकता है। अत· इस अध्ययन मे आत्म-अस्तित्त्व की स्थापना के बाद हिंमा-अहिंसा की चर्चा की गई है।

✦ हिसा के हेतु/निमित्त कारणो की चर्चा, षट्काय के जीवों का स्वरूप, उनकी सचेतनता की सिद्धि, हिंसा से होने वाला परिताप, कर्मबन्ध तथा उससे विरत होने का उपदेश आदि विषयों का वर्णन प्रथम अध्ययन के सात उद्देशकों में प्रस्तुत किया गया है।

(*आचारांग निर्युक्ति*, गाथा २५)

---

१ नि चू , उ १ अभिधानराजेन्द्र, भाग ७, पृष्ठ ३३१-'सत्थ' शब्द।

SATTHA PARINNA : PADHAMAM AJJHAYANAM
SHASTRA PARIJNA : FIRST CHAPTER
THE TRUTH ABOUT WEAPONS

INTRODUCTION

- The title of the first chapter of *Acharanga Sutra* is *'Sattha Parinna'* or *'The Truth About Weapons'*
- The means or instruments of violence are called weapons *(shastra)* A thing capable of destroying another is a weapon for that (*Abhidhan Rajendra*, part 7, page 331) A sword and other such material instruments of violence are physical weapons and attitudes and intentions guided by attachment or aversion are mental weapons
- *Vivek* (sagacity or discerning attitude) and *samyam* (discipline or self-control) are the meanings given to the word *parijna* by *acharyas* (preceptors) The true knowledge of fundamentals is *jna-parijna* or *vivek* and to abandon the instruments or means of violence is *pratyakhyan-parijna* or *samyam*
- The meaning of *shastra-prijna* is—to acquire knowledge of the form and instruments of violence, to understand about its bitter fruits and consequently abandon the same
- To be free of violence or *himsa* is *ahimsa* The foundation of the *ahimsa* attitude rests in soul The awareness of existence of soul strengthens faith in *ahimsa* This inspires endeavour at *samyam* (ascetic-discipline) and then only *ahimsa* could be practiced properly
- This chapter mainly contains preaching to refrain from violence of six life forms *(shadjiva nikaya)*
- In the first lesson of the first chapter, first of all, recognition of soul has been discussed Once soul is accepted, the belief in the

existence of soul is born and the person becomes *atmavadi* (believer in soul). A believer in soul also believes in the existence of *lok* (world or the mundane) therefore he is also a *lokvadi* The basis of *lok* (mundane life) is *karma* which in turn is based on action. Therefore he is also a *karmavadi* and *kriyavadi* Thus proper practice of *ahimsa* is possible only on gaining right knowledge of *atmavad, lokvad, karmavad,* and *kriyavad.* Therefore, after establishing the existence of soul, violence and *ahimsa* have been discussed in this chapter

✦ A discussion of topics like inspiring causes of violence, description of six life forms, proof of their being alive or animate, torments caused by violence, bondage of *karmas,* and advise to avoid violence, has been eloquently presented in the seven lessons of the first chapter (*Acharanga Niryukti,* verse 25)

पढमो उद्देसओ	प्रथम उद्देशक	LESSON ONE

जीव का अस्तित्व बोध आत्म-सज्ञान

१. सुयं मे आउस ! तेण भगवया एवमक्खायं–

इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ।

त जहा–पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

अहो वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

अण्णयरीओ वा दिसाओ वा अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि।

एवमेगेसि णो णायं भवइ–अत्थि मे आया उववाइए, नत्थि मे आया उववाइए, के अह आसी ? के वा इओ चुओ पेच्चा भविस्सामि ?

१ मैने सुना है आयुष्मन् (जम्बू स्वामी) ! उन भगवान (महावीर स्वामी) ने ऐसा कहा है–

इस ससार मे कुछ प्राणियो को यह संज्ञा (ज्ञान) नही होती–

जैसे–मै पूर्व दिशा से आया हूॅ,

अथवा दक्षिण दिशा से आया हूॅ,

अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ,

अथवा उत्तर दिशा से आया हूॅ,

अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूॅ,

अथवा अधोदिशा से आया हूॅ,

अथवा किसी अन्य दिशा से या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूॅ।

इसी प्रकार कुछ जीवो को यह भी ज्ञात नहीं होता कि मेरी आत्मा औपपातिक–पुनर्जन्म लेने वाली है अथवा नही? मैं पूर्वजन्म मे कौन था? यहाँ से आयुष्य पूर्ण करके अगले जन्म में कहाँ जाऊँगा?

आगति-ज्ञान
1
3

चित्र परिचय १

Illustration No. 1
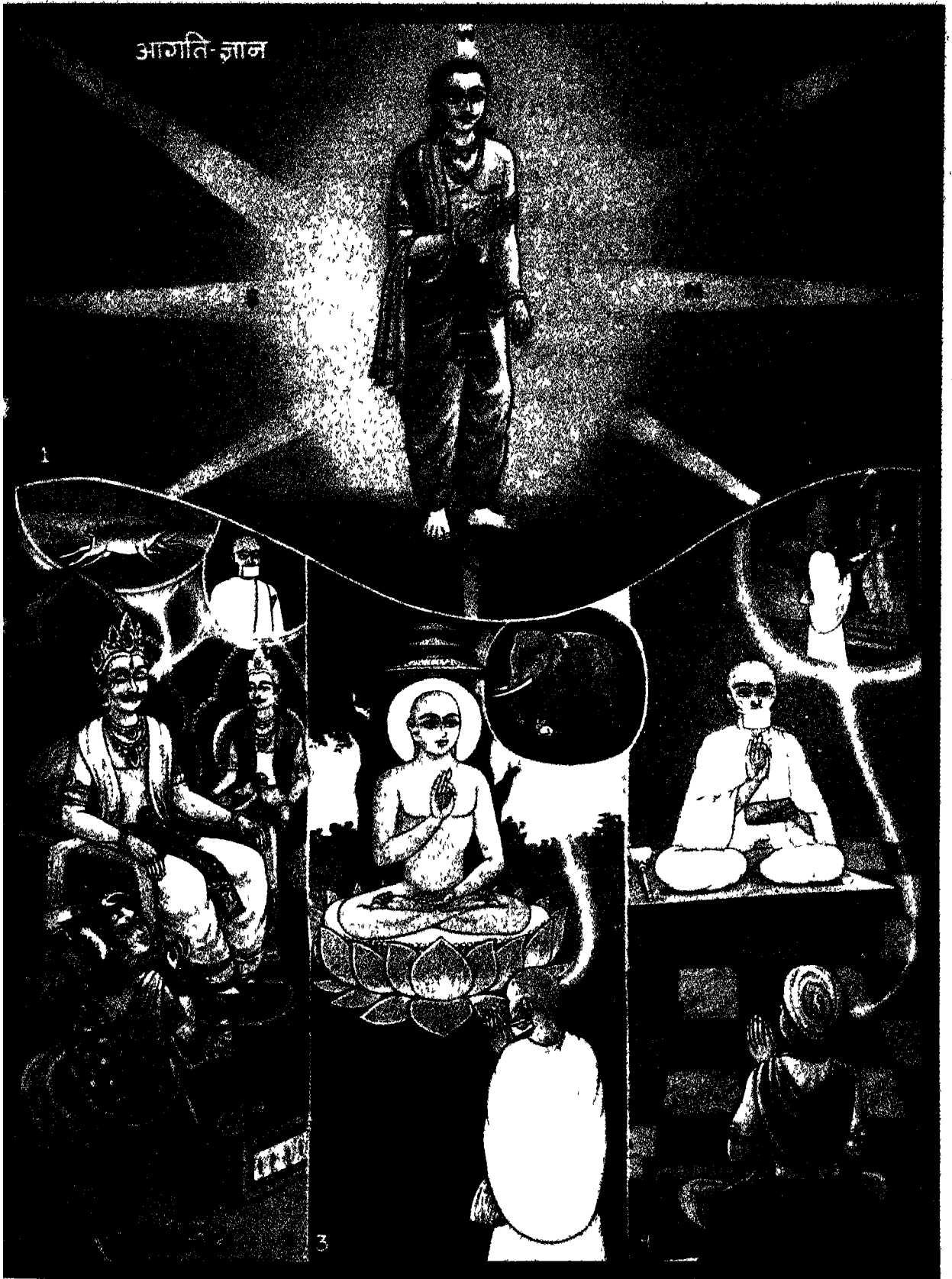
आगति का ज्ञान

१ कुछ मनुष्यों को अपने जन्म के विषय में यह ज्ञात नही होता कि मै पूर्व दिशा मे आया हूँ, या दक्षिण, पश्चिम, उत्तर अथवा ऊर्ध्व दिशा किंवा अधो दिशा मे आया हूँ? मेरी आत्मा कहाँ से आई है, कहाँ आगे जन्म लेगी? उनके मन में इस प्रकार की जिज्ञासा उठती है। -अ १, उ १, सूत्र १

समाधान के तीन साधन

२ इस जिज्ञासा का समाधान तीन प्रकार से मिल जाता है–

(१) स्व-स्मृति से–किसी को अचानक जाति-स्मरण ज्ञान होने पर अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को राजसभा मे नाटक देखते हुए हुआ।

(२) पर-व्याकरण से–किसी को तीर्थंकर आदि विशिष्ट ज्ञानियो के कथन से। जैसे मेघ मुनि को भगवान महावीर की वाणी से हाथी के भव की स्मृति हुई।

(३) अन्य से–किसी को अवधिज्ञानी आदि अन्य मुनियो के मुख से सुनकर। जैसे भृगु पुरोहित के पुत्रों को मुनियो के मुख से सुनकर पूर्वजन्म का ज्ञान हुआ। -अ १ उ १ सूत्र २

THE AWARENESS OF COMING

1 About their birth, some men are not aware of this—whether I have come from the eastern direction, or from the southern, western, northern, the direction above (zenith), or the direction below (nadir)? From where my soul has come and where will it be born in future? They are filled with such curiosity

—1/1/1

THREE MEANS OF SOLUTION

2 The answer to this question can be had three ways—

(1) **By one's own memory**—Some person comes to know about his earlier birth by suddenly acquiring *jati-smaran-jnana,* as Brahmadatt Chakravarti did when he saw a play enacted in his court

(2) **Through omniscients**—Through words of *Tirthankars* or other omniscients, as Megh Muni remembered about his birth as an elephant through Bhagavan Mahavir's discourse

(3) **Through others**—Through words of *Avadhijnanis* or other ascetics, as the sons of Bhrigu Purohit acquired knowledge about their earlier births through discourse of ascetics —1/1/2

AWARENESS OF EXISTENCE : KNOWING THE SELF

1. I have heard, O long-lived one (Jambu Swami) ! Bhagavan (Mahavir Swami) has stated thus—

Some beings in this world are not aware of this—

that whether I have come from the eastern direction,

or I have come from the southern direction,

or I have come from the western direction,

or I have come from the northern direction,

or I have come from the direction above (zenith),

or I have come from the direction below (nadir),

or I have come from some other direction (cardinal points) or intermediate direction (between the cardinal points)

In the same way some beings are also not aware of this—that my soul is *aupapatik* (that which is born and reborn again and again) or not ? Who was I in the earlier birth ? Where will I go (reincarnate) once I have spent my life-span here (died).

विवेचन—सज्ञा का अर्थ है, चेतना। इसके दो प्रकार है–ज्ञान-चेतना और अनुभव-चेतना। अनुभव-चेतना (सवेदन) प्रत्येक प्राणी में रहती है। ज्ञान-चेतना विशेष प्रकार का बोध है जो संज्ञी प्राणियो में होता है। दूसरे शब्दो मे जिन्हे ज्ञान-चेतना होती है उन्हे समनस्क प्राणी कहते हैं। उनमे भी कुछ प्राणियो को यह ज्ञात नहीं होता कि मै पूर्व आदि किस दिशा से यहाँ आकर उत्पन्न हुआ हूँ। अनुभव-चेतना रूप सज्ञा के सोलह तथा ज्ञान-चेतना रूप संज्ञा के पाँच भेद है। यहाँ पर 'ज्ञान-चेतना' का ही प्रसग है।

अनुभव-संज्ञा के सोलह भेद इस प्रकार हैं–(१) आहार, (२) भय, (३) मैथुन, (४) परिग्रह, (५) सुख, (६) दु:ख, (७) मोह, (८) विचिकित्सा, (९) क्रोध, (१०) मान, (११) माया, (१२) लोभ, (१३) शोक, (१४) लोक, (१५) धर्म, एव (१६) ओघ-सज्ञा।

(आचा. शीलाक वृत्ति, पत्रांक ११)

ज्ञान-संज्ञा के पाँच भेद ये हैं–(१) मति, (२) श्रुत, (३) अवधि, (४) मन:पर्यव, एवं (५) केवलज्ञान-सज्ञा। *(आचा निर्युक्ति ३८)*

सञ्ज्ञाओं के विस्तृत विवेचन के लिए देखें—आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत हिन्दी टीका (पृष्ठ १८-२९)

पूर्वजन्म का ज्ञान होने के तीन कारण अगले सूत्र में बताये हैं।

Elaboration—*Sanjna* means awareness or sensitivity It is of two types—mental and physical Every living being is capable of physical awareness Mental awareness (knowledge) is a special awareness unique to sentient beings In other words the beings that are endowed with mental awareness or activity are called sentient beings Even out of the sentient beings some do not know that before being born, from which direction they came The physical awareness or sensitivity has sixteen categories and the mental awareness or knowledge has five categories Here only knowledge has been discussed

According to *Sheelank Vritti of Acharanga* (leaf 11) the sixteen categories of physical awareness *(anubhava sanjna)* are—(1) *Ahar* (eating), (2) *Bhaya* (fear), (3) *Maithun* (sex), (4) *Parigrah* (possession), (5) *Sukh* (pleasure), (6) *Dukh* (sorrow), (7) *Moha* (fondness), (8) *Vichikitsa* (doubt), (9) *Krodh* (anger), (10) *Maan* (ego), (11) *Maya* (illusion), (12) *Lobh* (greed), (13) *Shok* (grief), (14) *Lok* (life, mundane activities), (15) *Dharma* (duty), and (16) *Ogh* (aggregate)

According to *Acharanga Niryukti* (38) the five categories of mental awareness *(jnana sanjna)*—(1) *Mati,* (2) *Shrut,* (3) *Avadhi,* (4) *Manah-paryava,* and (5) *Keval-jnana*

Three means of acquiring knowledge of the earlier births have been specified in the next aphorism

२. से ज्जं पुण जाणेज्जा; १ सहसम्मुइयाए, २ परवागरणेणं, ३ अण्णेसिं अंतिए वा सोच्चा।

तं जहा–पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दक्खिणाओ वा पच्चत्थिमाओ वा उत्तराओ वा उड्ढाओ वा अहो वा अण्णयरीओ वा दिसाओ वा अणुदिसाओ वा आगओ अहमसि।

एवमेगेसिं जं णायं भवति–अत्थि मे आया उववाइए। जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं।

३. से आयावादी लोयावादी कम्मावादी किरियावादी।

२. कोई प्राणी अपनी (१) स्वस्मृति (पूर्वजन्म की स्मृति होने पर स्व-मति) से, (२) अथवा कोई परव्याकरण (तीर्थंकर आदि प्रत्यक्षज्ञानियों के कथन) से, (३) अथवा कोई अन्य विशिष्ट श्रुतज्ञानी के पास सुनकर यह जान लेता है कि मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्व दिशा या अधो दिशा अथवा अन्य किसी दिशा या विदिशा से आया हूँ।

कुछ प्राणियों को यह भी ज्ञात हो जाता है–मेरी आत्मा एक योनि से दूसरी योनि मे जन्म लेने वाली है, जो इन दिशाओं में अनुसंचरण करती है। जो इन सब दिशाओ और विदिशाओ मे गमनागमन करती है, वही मै (आत्मा) हूँ।

३ (जो भवान्तर मे गमनागमन करने वाली आत्मा को जानकर श्रद्धा करता है) वही आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी एव क्रियावादी है।

2. With the help of (1) his own memory, (2) the words of one endowed with direct perception like a *Tirthankar,* or (3) discourse of some scholar of canons some being knows that he came from eastern direction, southern direction, western direction, northern direction, from the direction above (zenith), from the direction below (nadir), or from some other direction (cardinal points) or intermediate direction (between the cardinal points)

Some beings also know that—From one dimension *(gati)* my soul reincarnates into other dimension moving in any or all of these directions. That which moves in all these said directions and intermediate directions is me (soul).

3. He (who thus believes after knowing the transmigrating character of soul) is *atmavadi, lokvadi, karmavadi* and *kriyavadi*

विवेचन—उक्त दो सूत्रो मे प्रत्यक्ष नही दिखाई पडने वाले आत्मतत्त्व को जानने के तीन साधन बताये है—

(१) पूर्वजन्म की स्मृति होने पर—जाति-स्मरण ज्ञान तथा अवधिज्ञान आदि विशिष्ट ज्ञान द्वारा, स्व-मति अथवा स्व-स्मृति से।

जाति-स्मरण ज्ञान होने के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार है—

१ **उवसंतमोहणिज्जं**—मोहकर्म का उपशम होने पर। जैसे—नमि राजर्षि को हुआ। *(उत्तरा ९/१)*

२ **अज्झवसाणसुद्धी**—अध्यवसाय, भावना, लेश्या आदि शुद्ध निर्मल होने पर। जैसे—मृगापुत्र को जातिस्मरण हुआ। *(उत्तरा १९/५-७)*

कुछ मनुष्यों को बाह्य निमित्त मिलने पर जातिस्मरण ज्ञान होता है, कुछ को बिना निमित्त के ही तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के कारण हो जाता है।

जातिस्मरण ज्ञान होने पर अतीत के सज्ञी भवो (समनस्क जन्म) का ही स्मरण होता है। जो अधिक से अधिक नौ भव हो सकते है। असज्ञी भवो का ज्ञान नही होता।

(२) तीर्थंकर, केवली आदि प्रत्यक्षज्ञानी का प्रवचन सुनकर या उनके साथ चर्चा करने पर। जैसे—मेघकुमार को पूर्वजन्म का ज्ञान हुआ। *(ज्ञातासूत्र, अ १)*

(३) तीर्थकरो के वचनानुसार उपदेश करने वाले विशिष्ट ज्ञानी। जैसे—अवधिज्ञानी, मन पर्यव ज्ञानी, चतुर्दश पूर्वधर आदि का उपदेश सुनकर।

उक्त कारणों में से किसी कारण से भी पूर्वजन्म का बोध हो सकता है। जिस कारण उसका ज्ञान निश्चयात्मक हो जाता है कि इन पूर्व आदि दिशाओ मे जो गमनागमन करता है, वह आत्मा 'मैं' ही हूँ। इस प्रकार का ज्ञान होने पर धर्म के प्रति सहज श्रद्धा, सवेग और वैराग्य भावना मे वृद्धि होती है। (देखें चित्र १)

मै कौन था "**के अह आसी ?**" यह पद आत्म-सम्बन्धी जिज्ञासा की जागृति की सूचना देता है और '**सोऽह**'—"वह मै हूँ" यह पद उस जिज्ञासा का समाधान करता है।

आत्मा मे विश्वास होने पर ही मनुष्य आत्मवादी होता है। आत्मा को मानने वाला लोक (ससार) स्थिति को भी स्वीकार करता है, क्योकि आत्मा का भवान्तर-सचरण (पूर्वजन्म एव पुनर्जन्म) लोक मे ही होता है। लोक का अर्थ है—पौद्गलिक जगत्। लोक मे आत्मा का सचरण होने का कारण है कर्म। कर्म के ही कारण आत्मा पुनर्जन्म धारण करता है और दिशाओ, अनुदिशाओ आदि मे सचरण करता है। इसलिए लोक को मानने वाला कर्म को भी मानता है। कर्मबन्ध का कारण है—राग-द्वेषयुक्त क्रिया। शुभाशुभ योगो की प्रवृत्ति। इस प्रकार जाति-स्मृति से आत्मा को सम्यक् ज्ञान हो जाने पर लोक का, कर्म का, क्रिया का भी ज्ञान हो जाता है। अत वह आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी कहा जाता है।

Elaboration—In the preceding two paragraphs three means of knowing the invisible soul have been stated—

(1) By remembering about earlier births through *jati-smaran-jnana* (knowledge of earlier births), *avadhi-jnana* (extrasensory perception of the physical dimension), other such higher knowledge, own inspiration, or automatic triggering of past memories

Some of the main causes of *jati-smaran-jnana* are as follows—

(1) ***Uvasantmohanijjam***—due to suppression of *mohaniya karma* (illusory *karma*) as was the case with Nami Rajarishi

(Uttaradhyayan Sutra)

(2) ***Ajjhavasansuddhi***—due to purification of attitude, feeling, and ***leshya*** (the colour-code indicator of purity of soul) as was the case with Mrigaputra (*Uttaradhyayan Sutra* 19)

Some individuals acquire *jati-smaran-jnana* through outside influence and others in natural course due to *kshayopasham* (the process of extinction-cum-suppression) of *karmas* obstructing that knowledge

On acquisition of *jati-smaran-jnana,* only those births are known that the person took as a sentient being It can be of a maximum number of nine incarnations The births taken as non-sentient beings cannot be known

(2) By listening to a discourse of individuals having *pratyaksh-jnana* (direct-knowledge), viz *Tirthankar, Kevali,* etc or by having a dialogue with them, as was the case with Megh Kumar

(*Jnata Sutra,* Ch 1)

(3) By listening to a discourse, based on the tenets of *Tirthankar,* of an accomplished sage, viz *avadhi-jnani* (who has acquired extrasensory perception of the physical dimension), *manah-paryava-jnani* (who has acquired extrasensory knowledge of thought process and thought-forms of other beings), *chaturdash purvadhar* (scholar of fourteen *purvas* or subtle canons) etc

Any of the above means may trigger the awareness of earlier births This, in turn, reveals with certainty that what transmigrates from and to the said directions is none else but 'I' (the soul that is me) This awareness enhances the spontaneous feelings of faith in *dharma, samveg* (yearning for liberation), and *vairagya bhavana* (detachment from the mundane) (see **Illustration 1**)

The sentence—Who was I ? ***(Ke aham asi ?)***—informs about the awakening of the curiosity about soul And the sentence—That is me ***(So-aham)***—informs about its fulfillment

A man becomes *atmavadi* only when he has belief in soul Once he believes in soul he also accepts the existence of the *lok* or world (the mundane) because the transmigration (*purvajanma* or pre-incarnations and *punarjanma* or reincarnations) of soul takes place only in the world *Lok* means the physical or material world The cause of transmigration of soul in the *lok* is *karma* It is the fruition of *karmas* that causes the reincarnation of soul and directs its transmigration in various directions Therefore he who believes in *lok* also believes in *karma* The cause of bondage of *karmas* is activity *(kriya)* maligned by attachment and aversion or indulgence inspired by meritorious and evil intentions Thus the right awareness of soul with the help of memories of the past births is accompanied by the awareness of *lok, karma* and *kriya* Therefore that person is called *atmavadi, lokvadi, karmavadi,* and *kriyavadi*

आस्रव-सवर-बोध

४ अकरिस्सं चऽहं, कारवेसु चऽहं, करओ यावि समणुण्णे भविस्सामि।

५. एयावति सव्वावति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवति।

४ (वह आत्मवादी मनुष्य यह जानता/मानता है कि)–मैने क्रिया की थी। मै क्रिया करवाता हूँ। मै क्रिया करने वालो का भी अनुमोदन करूँगा।

५. लोक–ससार मे ये सब क्रियाएँ/कर्म-समारभ–(हिसा के हेतु) हैं अतः ये सब जानने एवं त्यागने योग्य है।

AWARENESS OF *ASHRAV* AND *SAMVAR*

4. (That believer in soul knows and believes about activity that) I did it. I cause others to do it. Also I will approve others doing it

5. In the world (being sources of violence) all these *karma-samarambhs* (sinful activities that are causes of inflow of *karmas*) are worth knowing and abandoning.

विवेचन–चतुर्थ सूत्र में जाति-स्मरण ज्ञान-सम्पन्न आत्मा का चिन्तन संक्षेप में बताया गया है। इसकी व्यापकता इस प्रकार है–

'मैने क्रिया की थी', इस पद में अतीतकाल के नौ भेदों का संकलन होता है। जैसे–मैने क्रिया की थी, करवाई थी, करते हुए का अनुमोदन किया था, मन से, वचन से, कर्म से। ३ × ३ = ९।

इसी प्रकार वर्तमान पद–'करवाता हूँ' मे भी करता हूँ, करवाता हूँ, करते हुए का अनुमोदन करता हूँ, तथा भविष्य पद–क्रिया करूँगा, करवाऊँगा, करते हुए का अनुमोदन करूँगा, मन से, वचन से, कर्म से। ये नव-नव भग बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार तीन काल के, क्रिया के २७ भग हो जाते है। ये २७ भग/विकल्प ही कर्म-समारंभ/हिसा के निमित्त हैं, इन्हें सम्यक् प्रकार से जान लेने पर क्रिया का स्वरूप जान लिया जाता है। जो क्रिया का स्वरूप जान लेता है, वह उसका त्याग भी कर सकता है। 'परिजाणियव्वा' शब्द ज्ञानपूर्वक विरति की सूचना देता है।

Elaboration—The fourth aphorism states in brief the thought of the soul that has acquired *jati-smaran-jnana* Its wider scope is as follows—

'I did certain activity', this statement includes nine modes (three methods by three means) of the past, viz I did it, I made others do it, I approved others doing it, by mind, speech and action 3 x 3 = 9

In the same way the statement about the present (I cause others to do it) includes do, cause to do, and approve of doing by mind, speech and action Same is also true for the statement about the future (I will approve others doing it) Thus for the three periods (or tenses) the total modes are 27 These 27 modes or alternatives are the causes of inflow of *karmas* and by knowing these properly one knows the concept of action or activity. Only after knowing this, one can abandon indulgence in it The word ***'parijaniyavva'*** here means renouncing after knowing

६. अपरिण्णायकम्मे खलु अयं पुरिसे, जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ सहेति। अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे य पडिसंवेदेइ।

७. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाई-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेउ।

६ जो पुरुष अपरिज्ञातकर्मा है (क्रिया के स्वरूप से अनभिज्ञ है तथा उसका त्याग नही कर पाता है) वह इन दिशाओ व अनुदिशाओ मे अनुसचरण/परिभ्रमण करता है। (अपने कर्मों के साथ) सब दिशाओ/अनुदिशाओं में जाता है। अनेक प्रकार की जीव-योनियो को प्राप्त होता है। वहाँ विविध प्रकार के स्पर्शों (सुख-दु ख के आघातो) का प्रतिसवेदन–अनुभव करता है।

७ (कर्म-वन्धन के कारणो के विषय मे) भगवान ने परिज्ञा का उपदेश किया है।

(अनेक मनुष्य मुख्य रूप मे इन हेतुओं से हिसा करते है)–

(१) (सभी को जीवन प्रिय है, अत वह) अपने जीवन की रक्षा के लिए (धन सग्रह, औषधि आदि द्रव्यो का सेवन करता है),

(२) प्रशसा व यश के लिए (मल्ल-युद्ध जैसी प्रतियोगिता आदि मे विजय पाने मे प्रयत्नरत होता है),

(३) सम्मान की प्राप्ति के लिए (धन-सत्ता आदि जुटाता है),

(४) पूजा आदि पाने के लिए (युद्ध व अन्य हिसक प्रतिस्पर्धाएँ करता है),

(५) जन्म (सन्तान आदि के जन्म पर अथवा स्वय के जन्म) निमित्त से,

(६) मरण (मृत्यु सम्बन्धी कारणो व प्रसगो पर, जैसे–पिडदान आदि),

(७) मुक्ति की प्रेरणा या लालसा से–(देवी आदि के समक्ष पशु-बलि आदि देता है),

(८) दु ख के प्रतीकार हेतु (रोग, आतक, उपद्रव आदि मिटाने के लिए अनेक प्रकार के हिसक प्रयोग करता है)।

6. A person who is *aparijnat-karma* (who is ignorant of the concept of action and is unable to renounce it) continues to transmigrate in all these directions and intermediate directions. He goes into all these directions (with his *karmas*). He is born into numerous dimensions (as different forms of beings) There he experiences varieties of touch (pleasures and pains).

7. About this Bhagavan has prescribed (preached or propagated) *pariјna* (awareness or knowledge).

(People indulge in violence mainly due to the following reasons)—

(1) (Everyone loves life, therefore he makes use of wealth, medicine and other things) in order to protect his life,

(2) (He makes efforts to win competitions like wrestling) in order to gain praise and fame,

(3) (He accumulates wealth and power) in order to gain status and prestige,

(4) (He participates in war and other such violent contests) in order to gain respect and veneration,

(5) (He indulges in festivities to celebrate the day of his child's or own) birth,

(6) (He indulges in various rites and rituals connected with) death,

(7) (He indulges in religious rituals like animal sacrifice) inspired by the desire of liberation,

(8) (He indulges in various violent experiments to vanquish ailments, terror and torments) in order to be free of sorrows

विवेचन—योनि का अर्थ है—उत्पत्ति स्थान। नौ प्रकार की योनियों का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के योनि पद मे है। जिसका विस्तार आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत टीका, पृ ५९-६0 पर देखा जा सकता है।

चूर्णि मे भोयणाए—पाठान्तर भी है, जिसका भाव है—जन्म-मरण सम्बन्धी भोजन के लिए अथवा आहार की गवेषणा के लिए।

परिवदण की जगह कही-कहीं 'परिबृहण' शब्द भी मिलता है। इसका अर्थ है—जीवन की परिपुष्टि के लिए प्राणी हिसा करता है।

आगमों मे फास—'स्पर्श' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। साधारणत त्वचा-इन्द्रियग्राह्य सुख-दु खात्मक सवेदन या अनुभूति को स्पर्श कहा गया है, किन्तु प्रसगानुसार इससे भिन्न-भिन्न

भावों की सूचना भी दी गई। जैसे–सूत्रकृतांग (१/३/१/१७) में **एते भो कसिणा फासा**–से स्पर्श का अर्थ परीषह किया है। आचाराग मे अनेक अर्थों में इसका प्रयोग हुआ। जैसे–

इन्द्रिय-सुख (सूत्र १६४)

गाढ़ प्रहार आदि से उत्पन्न पीडा (सूत्र १७९, गाथा १५)

उपताप व दु:ख विशेष (सूत्र २०६)

गीता (२/१४, ५/२१) में इन्द्रिय-सुख के अर्थ मे स्पर्श शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

परिज्ञा के दो प्रकार बताये है–(१) **ज्ञ-परिज्ञा**–वस्तु का बोध करना। सावद्य प्रवृत्ति से कर्म-बन्ध होता है यह जानना। इसे विवेक भी कहते हैं।

(२) **प्रत्याख्यान परिज्ञा**–बन्ध के हेतु सावद्य योगो का त्याग करना–"**तत्र ज्ञपरिज्ञया, सावद्यव्यापारेण बन्धो भवतीत्येव भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सावद्ययोगा** ^न्धहेतव प्रत्याख्येया इत्येव रूपा चेति।" *(शीलाकाचार्य कृत टीका)*

Elaboration—*Yoni* means place of birth In the chapter on *yonis* in *Prajnapana Sutra* details about nine types of *yonis* are mentioned Detailed discussion on these can be seen in the commentary by Acharya Shri Atmaram ji, page 59-60

In the alternate text in the *Churni* (commentary) the word *bhoyanae* has also been mentioned This indicates—in order to search for food or to arrange feast on occasions of birth and death

At some places *paribrinhan* is found instead of *parivandan* This means that a being indulges in violence for strengthening his body and extending his life

In *Agams phaas* or *sparsh* (touch) has been used in various meanings Ordinarily *sparsh* means the sensation or experience of pleasure and pain acquired through skin or the sense of touch But in different contexts it has also been used to convey other meanings For example, in *Sutrakritanga* (1/3/1/17) it has been used to convey the meaning of affliction ***(ete bho kasina phaasa).*** In *Acharanga* too it has been used to convey various meanings, such as—

sensual pleasures (*aphorism* 164)

pain due to intense blow (*aphorism* 179, verse 15)

specific pain or sorrow (*aphorism* 206)

हिंसा के 8 हेतु
1
3
4
5
6
7
2

चित्र परिचय २

Illustration No. 2
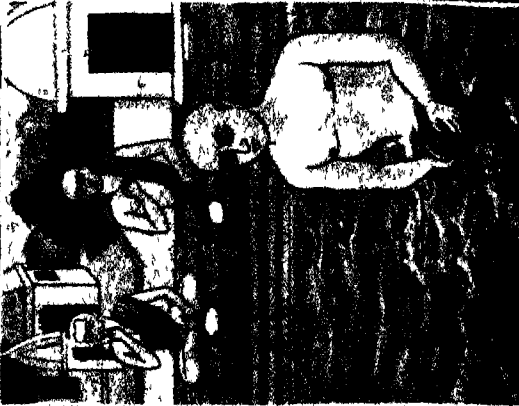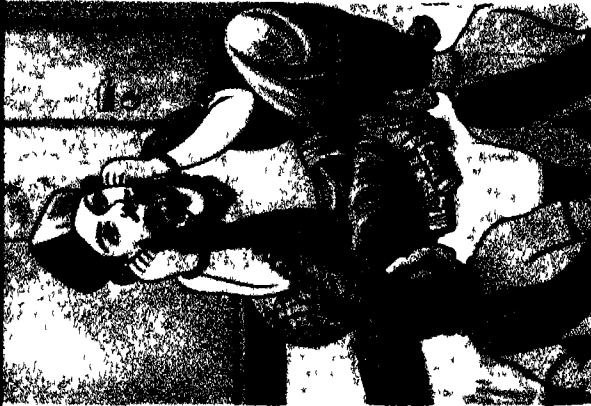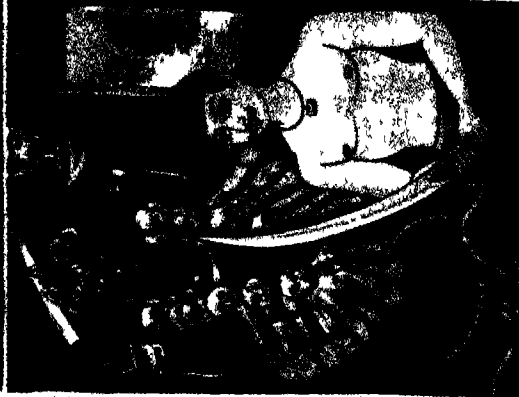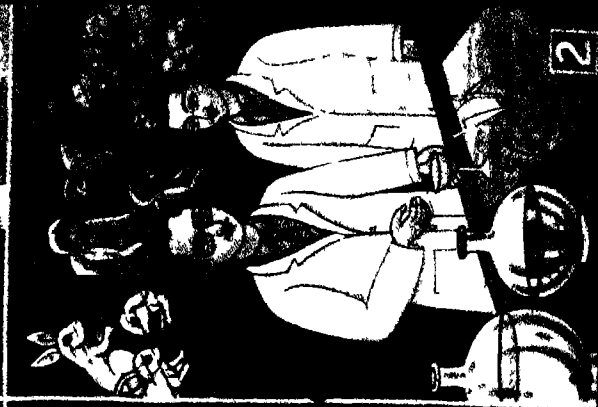
हिंसा के आठ हेतु

इस संसार मे अनेक मनुष्य विविध कारणो से हिंसा करते है जिनमे कुछ मुख्य कारण है-

१ जीवन के लिए–स्वस्थ एव दीर्घ जीवन के लिए अनेक प्रकार की हिंसाजन्य औषधियाँ, चिकित्सा आदि के रूप मे।

२ प्रतिष्ठा के लिए–दिन-रात व्यापार आदि द्वारा धन कमाकर।

३ सन्मान के लिए–यश, कीर्ति, पुरस्कार आदि के कारण, जैसे–पहलवान कुश्ती लडते है तथा खिलाडी विविध प्रकार के खेल आदि का प्रदर्शन करते है।

४ पूजा के लिए–राजा लोग राज्य बढ़ाने लिए युद्ध आदि करते है।

५ जन्म के निमित्त–जन्म-दिन आदि मनाने के लिए बडे-बडे उत्सव, समारोह करते है।

६ मरण-मृत्यु के निमित्त–गगा मे पिण्डदान आदि करते है या मृत्युभोज करना।

७ दु ख-मुक्ति के लिए–विघ्न, भय आदि दु खो के निवारण के लिए देवी आदि की बलि देने के रूप मे।

८ दु ख प्रतिकार के लिए–शारीरिक व्याधियो के निवारण हेतु औषधि आदि के निमित्त विविध प्रयोग-परीक्षण करके चूहे, मेढक, बन्दर आदि जीवो की हिंसा करना। -अ १ उ १ सूत्र ५

EIGHT REASONS FOR VIOLENCE

In this world many people indulge in violence for various reasons of these some important reasons are—

1. **In order to protect his life**—Resorting to various types of treatments and medicines prepared through violence for one's health and long life
2. **In order to gain prestige**—Accumulating wealth by doing business day and night to gain status
3. **In order to gain laurels**—Making efforts to win competitions like wrestling as sports persons do by participating in various competitions to earn praise, fame and prizes
4. **In order to gain respect and veneration**—Participating in war, as kings do for territorial gains
5. **Birth**—Indulging in elaborate festivities to celebrate birthday or other such occasions
6. **Death**—Indulging in various rites and rituals connected with death
7. **In order to get emancipated**—Indulging in religious rituals, like animal sacrifice, to be free of troubles, fear and other miseries
8. **In order to remove miseries**—Indulging in various violent experiments on mice, frogs, monkeys and other beings to find cures for ailments

—1/1/7

In the *Gita sparsh* has been used many a times in the sense of sensual pleasures (2/14, 5/21).

There are two types of *parijna*—(1) ***Jna-parijna***—to get awareness of a thing, to know that indulgence in sinful activity causes bondage of *karmas,* it also means *vivek* or discerning attitude.

(2) ***Pratyakhyan-parijna***—to renounce union with sinful activity and thought, the cause of bondage of *karmas*

८. एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति।

९. जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

८ लोक मे (उक्त हेतुओ से होने वाले) ये सब कर्म-समारभ (२७ प्रकार की हिंसा की क्रियाएँ) जानने योग्य और त्यागने योग्य हैं।

९. लोक मे ये जो कर्म-समारभ (हिसा की क्रियाएँ) है इन्हें जो जान लेता है (और त्याग देता है) वही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

8. In the world all these *karma-samarambh* (27 types of violent activities inspired by above said reasons) are worth knowing about and renouncing

9. In this world only he is a *parijnat-karma* muni (a discerning sage) who knows and renounces these *karma-samarambh.*

—So I say

● END OF LESSON ONE ●

● ●

बीओ उद्देसओ | द्वितीय उद्देशक | LESSON TWO

पृथ्वीकायिक जीवो की हिसा का निषेध

१०. अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्सबोहे अविजाणए।

अस्सि लोए पव्वहिए। तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति।

१० जो (मनुष्य) आर्त है, (विषय-वासना-कषाय आदि से पीडित है) (वह ज्ञान-दर्शन से–) परिजीर्ण अर्थात् वचित–दूर रहता है। ऐसे दुस्सबोध व्यक्ति को (समझाना कठिन होता है) क्योकि वह अज्ञानी है (तत्त्व से अनभिज्ञ है)।

(अज्ञानी मनुष्य) इस लोक मे व्यथा/पीडा का अनुभव करते हैं। तू देख ! पृथक्-पृथक् भावो के वश हुए (काम, भोग व सुख के लिए) आतुर/लालायित बने प्राणी (पृथ्वीकाय आदि) जीवो को परिताप (कष्ट) देते रहते है।

PROSCRIBING THE DESTRUCTION OF EARTH-BODIED BEINGS

10. In this world the tormented one (by desires, lust and passions, etc) remains deprived (of knowledge and perception) He is beyond instructing and remains ignorant (of truth)

(The ignorant) in this world suffer pain See ! These beings, driven by different sentiments and craving (for lust, indulgence and pleasure), keep on torturing (causing pain to) other living beings (including living organisms like earth-bodied beings).

११. सति पाणा पुढो सिआ।

१२. लज्जमाणा पुढो पास।

'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहि पुढवि-कम्म-समारंभेण पुढवि-सत्थ समारभेमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

११ पृथ्वीकायिक प्राणी पृथक्-पृथक् शरीर मे रहते है (अर्थात् वे प्रत्येकशरीरी होते है)।

१२ तू देख ! प्रत्येक आत्म-साधक, लज्जमान है (अर्थात् हिंसा करने मे लज्जा या ग्लानि का अनुभव करता हुआ सयममय जीवन जीता है)।

1
2
3
4
5
6
3

चित्र परिचय ३	Illustration No. 3

पृथ्वीकाय के शस्त्र

'जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि कम्म समारंभेण।'

अनेक मनुष्य विविध प्रकार के साधनों से पृथ्वीकाय की हिंसा करते हैं जो पृथ्वीकाय के शस्त्र कहे गये हैं। जैसे-

१ कुदाली-कुदाली, फावड़ा आदि से जमीन की मिट्टी खोदने से इस काय के जीवों की हिंसा होती है।

२ हल-हल आदि से भूमि जोतने पर।

३ अग्नि-सचित्त पृथ्वी पर अग्नि जलाने से।

४ जल, क्षार आदि-इस प्रकार के विरोधी द्रव्य सचित्त पृथ्वी में मिलाने पर उन जीवों की हिंसा होती है।

५ उच्चार प्रस्रवण-मानव व पशु आदि का मल मूत्र सचित्त पृथ्वी पर गिरने से।

६ स्वकाय-शस्त्र-एक जाति की मिट्टी में दूसरी जाति की मिट्टी मिलने पर।

अ. १, उ. २, गा. १२ (नियुक्ति)

WEAPONS AGAINST EARTH-BODIED BEINGS

Many people indulge in acts of violence against earth-bodied beings through various means. These means are called weapons against earth-bodied beings. For example—

1. **Spade**—When sand is dug with pickaxes or spade these beings are killed.
2. **Plough**—When a field is tilled these beings are killed.
3. **Fire**—When fire is burned on ground having living organisms, these beings are killed.
4. **Water, salts, etc.**—When such foreign material is mixed with sachit sand these beings are killed.
5. **Excretion**—When any type of human or animal excreta falls on the ground these beings are killed.
6. **Similar-bodied weapon**—When one type of sand is mixed with another type, these beings are killed.

—1/2/12 (Niryukti)

(कुछ साधु नामधारी) 'हम गृहत्यागी हैं' ऐसा कथन करते हुए भी वे नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी-सम्बन्धी हिंसा-क्रिया में लगकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करते हैं तथा पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करते हुए (उसके आश्रित) अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

11. Earth-bodied beings live in different bodies (which means that although visible only when in a cluster, they are individually embodied)

12. See ! Every seeker is ashamed (of indulging in violent activities and consequently leads a disciplined life).

(Some impostors) declaring that they are *anagars* (house-less, ascetic), still employing various types of *shastras* (weapons) in earth related violent activities, cause harm to earth-bodied beings While destroying earth-bodied beings they also destroy many other types of beings

विवेचन–जो वस्तु, जिस जीवकाय के लिए घातक होती है, वह उसके लिए शस्त्र है। शस्त्र दो प्रकार के बताये है–**द्रव्य शस्त्र**–जैसे–अग्नि, विष, लवण, स्नेह, क्षार तथा अम्ल। **भाव शस्त्र**–दुष्प्रयुक्त (असंयत) मन, वचन और काय।

"सत्थ-मग्गी-विस लोण सिणेहो खारमंबिल।
दुप्पउत्तो मणो वाया काओ भावो य अविरती॥" (*स्थानांग सूत्र* १०)

निर्युक्तिकार ने (गाथा ९५-९६) मे पृथ्वीकाय के शस्त्र इस प्रकार गिनाये हैं–

(१) कुदाली आदि भूमि खोदने के उपकरण,
(२) हल आदि भूमि विदारण के उपकरण,
(३) मृगशृग,
(४) काठ-लकडी तृण आदि,
(५) अग्निकाय,
(६) उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र),
(७) स्वकाय शस्त्र; जैसे–काली मिट्टी का शस्त्र, पीली मिट्टी आदि,
(८) परकाय शस्त्र, जैसे–जल आदि,
(९) तदुभय शस्त्र; जैसे–मिट्टी मिला जल आदि,
(१०) भाव शस्त्र–सयम। (देखे चित्र ३)

Elaboration—A thing that is harmful for a type of beings is called a *shastra* or weapon against those According to *Sthananga Sutra* there are two types of weapons—*Physical-weapons* like fire, poison, salts, oil, acid and base *Mental-weapons* like evil or indisciplined indulgence of mind, speech and body (*Sthananga Sutra* 10)

The commentator (*Niryukti,* verse 95, 96) has listed the weapons for earth-bodied beings as follows—

(1) Spade and other digging tools,

(2) Plough and other splitting tools,

(3) Deer-horn,

(4) Wood, straw, etc ,

(5) Fire,

(6) Excreta,

(7) Same-bodied weapons, For example black sand is weapon against golden sand,

(8) Other-bodied weapons, For example water is weapon for sand,

(9) Mixed bodied weapons; For example sand mixed with water is weapon for sand.

(10) Mental-weapons (see **Illustration 3**)

हिंसा के हेतु

१३. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाई-मरण-मोयणाए, दुक्खपडिघायहेउ। से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारभावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणइ।

तं से अहियाए, तं से अबोहीए।

१३. (पृथ्वीकाय के समारंभ) में भगवान ने परिज्ञा बताई है।

कोई व्यक्ति इस जीवन के लिए, प्रशंसा-सम्मान और पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दु ख का प्रतीकार करने के लिए, वह स्वयं पृथ्वीकायिक जीवों की हिसा करता है, दूसरों से करवाता है, तथा करने वालों का अनुमोदन करता है।

वह (हिसा) उसके अहित के लिए होती है। वह हिसा उसकी अबोधि का कारण होती है (अर्थात् वह चिरकाल तक ज्ञान-बोधि, दर्शन-बोधि और चारित्र-बोधि से वंचित रहता है)।

REASONS FOR VIOLENCE

13. Bhagavan has revealed the truth about this (violence against earth-bodied beings).

When a person, for the sake of his life; praise, prestige and worship, birth, death and liberation; and removal of sorrows, himself acts sinfully, causes others to act sinfully, or approves of others acting sinfully against earth-bodied beings

That (sinful act) is detrimental to him That is the cause of his ignorance (meaning that he always remains deprived of awareness of right knowledge, perception or faith, and conduct).

१४. से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं वा इहमेगेसिं णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

इच्चत्थ गढिए लोए, जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

१४ वह (संयमी साधक हिसा के दुष्परिणामों को) अच्छी तरह समझता हुआ, आदानीय–सयम-साधना मे तत्पर हो जाता है।

(कुछ मनुष्यो को) भगवान के या अनगार मुनियो के द्वारा (धर्म) सुनकर यह ज्ञात हो जाता है कि "यह जीव-हिंसा ग्रन्थि (कर्मबंध का कारण) है, यह मोह (मूढ़ता) है, यह मृत्यु है और यही नरक है।"

(फिर भी) जो मनुष्य (सुख-सुविधा आदि मे) आसक्त होता है वह नाना प्रकार के शस्त्रो से पृथ्वी-सम्बन्धी हिसा-क्रिया मे संलग्न होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता

है। (ऐसा व्यक्ति) पृथ्वीकायिक जीवो की हिसा करता हुआ, अन्य तदाश्रित नाना प्रकार के दूसरे जीवो की भी हिसा करता है।

14. Properly understanding (the bad consequences of violence), he (a disciplined seeker) indulges in *adaniya* (practicing ascetic-discipline).

By listening to (the sermon of) Bhagavan or *anagars* (ascetics) it becomes known (to some humans) that—"this (violence towards earth-bodied beings) is a *granthi* (a knot or the cause of *karmic* bondage), this is fondness (illusion), this is death; and this is hell as well"

A person who (in spite of this) has cravings (for pleasures and comforts), employing various types of *shastras* (weapons) in earth related violent activities, causes harm to earth-bodied beings (Such person) destroys not only earth-bodied beings but also many other types of dependent beings.

विवेचन–चूर्णि में 'आदानीय' (ग्रहण करने योग्य) का अर्थ सयम तथा 'विनय' किया है।

इस सूत्र मे आये 'ग्रन्थ' आदि शब्द एक विशेष अर्थ रखते है। साधारणत 'ग्रन्थ' शब्द पुस्तक विशेष का सूचक है। शब्दकोष मे ग्रन्थ का अर्थ 'गाँठ' (ग्रन्थि) भी किया गया है। आत्मा को बाँधने वाले कषाय या कर्म को भी ग्रन्थ कहा गया है।

ग्रन्थ के दो भेद है–(१) द्रव्य ग्रन्थ, और (२) भाव ग्रन्थ।

द्रव्य ग्रन्थ दस प्रकार का परिग्रह है–(१) क्षेत्र, (२) वास्तु, (३) धन, (४) धान्य, (५) सचय–तृण काष्ठादि, (६) मित्र-ज्ञाति-सयोग, (७) यान–वाहन, (८) शयनासन, (९) दासी-दास, और (१०) कुप्य (पलँग आदि घर का सामान)।

भाव ग्रन्थ के चौदह भेद है–(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ, (५) प्रेम, (६) द्वेष, (७) मिथ्यात्व, (८) वेद, (९) अरति, (१०) रति, (११) हास्य, (१२) शोक, (१३) भय, और (१४) जुगुप्सा।[1]

'मोह' शब्द राग या विकारी प्रेम के अर्थ मे प्रसिद्ध है। जैन आगमो मे 'मोह' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। राग और द्वेष–दोनों ही मोह है।[2] सदसद् विवेक का नाश[3], हेय-उपादेय

१ बृहत्कल्प, उद्देशक १, गा १०-१४
२ सूत्रकृतांग, श्रु १, अ ४, उ २, गा २२
३ स्थानांग ३/४

बुद्धि का अभाव[१], अज्ञान[२], विपरीत बुद्धि[३], मूढ़ता[४], चित्त की व्याकुलता[५], मिथ्यात्व तथा कषाय, विषय आदि की अभिलाषा[६], यह सब मोह हैं।

सत्य तत्त्व को विपरीत रूप में समझना दर्शन-मोह तथा विषयो की आसक्ति चारित्र मोह है।[७]

'नरक' शब्द पापकर्मियों के यातना-स्थान के अर्थ में ही आगमों में प्रयुक्त हुआ है।[८] सूत्रकृताग टीका में 'नरक' शब्द का अनेक प्रकार से विवेचन किया गया है। अशुभ रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श को भी 'नोकर्म द्रव्यनरक' माना गया है। नरक प्रायोग्य कर्मो के उदय (अपेक्षा से कर्मोपार्जन की क्रिया) को 'भावनरक' बताया है। हिंसा को इसी दृष्टि से नरक कहा गया है कि नरक के योग्य कर्मोपार्जन का वह सबसे प्रबल कारण है, इतना प्रबल कि वह स्वयं नरक ही है। हिंसक की मनोदशा भी नारक के समान क्रूर व अशुभतर होती है।[९]

इस प्रकार हिंसा को कर्मों की गाँठ बाँधने के कारण 'ग्रन्थि', मूढता व व्याकुलता का कारण होने से 'मोह' मृत्यु का निमित्त होने से 'मार' तथा हिसा का फल 'नरक' होने के कारण उसे नरक बताया गया है।

Elaboration—In the *Churni* (commentary) *adaniya* (worth accepting) has been interpreted as *samyam* (ascetic-discipline) and *vinaya* (humbleness or modesty)

Many words, such as *granth,* in this paragraph have been used in special connotations Ordinarily *granth* means book Another meaning of *granth* according to language dictionary is knot Thus the passions or *karma* that cause the bondage of soul are also called *granth*

This *granth* has two categories—(1) physical *granth,* and (2) mental *granth*

In physical *granths* are included ten types of possessions—(1) field, (2) structures, (3) wealth, (4) grains, (5) materials (wood, etc), (6) friends, relatives and acquaintances, (7) carriages and other means of conveyance, (8) furniture, (9) slaves and servants, and (10) household goods

---

१ उत्तराध्ययन ३
२ वही
३ विशेषावश्यक (अभि रा 'मोह' शब्द)
४ ज्ञाता १/८
५ सूत्रकृतांग १, अ ४, उ १, गा ३१
६ अगचा श्री टीका
७ प्रवचनसार ८५
८ (अ) पापकर्मिणां यातनास्थानेषु–सूत्र-वृत्ति २/१
(ख) राजवार्तिक २/५०/२-३
९ सूत्रकृताग १/५/१ नरकविभक्ति अध्ययन

Mental *granths* are of fourteen types—(1) anger, (2) conceit, (3) illusion, (4) greed, (5) love, (6) aversion, (7) falsity, (8) sex, (9) apathy, (10) liking, (11) laughter, (12) grief, (13) fear, and (14) repugnance (*Brihatkalp*, ch 1, verses 10-14)

The popular meaning of the word *moha* is attachment or intense fondness In Jain *Agams* this word has been used to convey numerous meanings Attachment and aversion both are *moha* (*Sutrakritanga* 1/4/2/22) Some other meanings are—loss of discerning attitude (*Sthananga* 3/4), lack of judgment of good and bad (*Uttaradhyayan* 3), ignorance (*Uttaradhyayan* 3), ill will (*Visheshavashyak*), foolishness (*Jnata* 1/8), agitated state of mind (*Sutrakritanga* 1/4/1/31), falsity and passion, craving for indulgence (*Acharanga Tika* by Sheelanka)

To understand wrong or opposite form of truth is called *darshan-moha* (false perception) and craving for indulgence is called *charitra-moha* or mis-conduct (*Pravachanasar* 85)

In *Agams 'narak'* word has been used to convey the meaning of the place or dimension where sinners are tortured (*Sutra Vritti* 2/1 and *Rajavartik* 2/50/2-3) In *Sutrakritanga Tika* (commentary) *'narak'* word has been elaborated in many ways Bad or obnoxious shape, taste, smell and sound are also believed to be *'nokarma dravya-narak'* (the hell physically manifested in subtle activities) Further acquisition of *karmas*, through hell-like suffering caused by precipitation of *karmas* acquired in the past, is called *bhava-narak* (mental hell) Violence *(himsa)* is also called *narak* because it is the most potent cause of acquiring *karmas* leading to hell, in fact so potent that it is the embodiment of *narak* The mental state of a *himsak* (who indulges in acts of violence) is as cruel and evil as that of a hell-being (*Sutrakritanga* 1/5/1)

Thus *himsa* is said to be a *granthi* (knot) because it ties knots of *karmas*, *moha* (illusion) because it is the source of foolishness and craving, *maar* (blow) because it is the instrument of death, and *narak* (hell) because the fruit of *himsa* is hell

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवों में चेतना अव्यक्त होती है। उनमें हलन-चलन आदि क्रियाएँ भी स्पष्ट दिखाई नहीं देतीं, अत यह शंका हो सकती है कि पृथ्वीकायिक जीव न चलता है, न बोलता है, न देखता है, न सुनता है, फिर कैसे पता चले कि वह जीव है? उसे भेदन-छेदन करने से पीडा का अनुभव होता है?

इस शका के समाधान हेतु सूत्रकार ने तीन दृष्टान्त देकर पृथ्वीकायिक जीवों की वेदना का बोध तथा अनुभूति कराने का प्रयत्न किया है।

प्रथम दृष्टान्त मे बताया है—कोई मनुष्य जन्म से अधा, बहरा, गूँगा या पंगु है, केवल मानव आकृति मात्र है। कोई पुरुष उसका तलवार, भाले आदि से भेदन-छेदन करे तो वह उस पीड़ा को न तो वाणी से व्यक्त कर सकता है, न त्रस्त होकर चल सकता है, न अन्य चेष्टा से पीड़ा को प्रकट कर सकता है। तो क्या यह मान लिया जाय कि वह जीव नहीं है, या उसे भेदन-छेदन करने से पीडा नही होती है?

जैसे वह जन्मान्ध व्यक्ति वाणी, चक्षु, गति आदि के अभाव में भी पीडा का अनुभव तो करता है, वैसे ही पृथ्वीकायिक जीव इन्द्रिय-विकल अवस्था में पीडा की अनुभूति करते हैं।

दूसरे दृष्टान्त मे किसी स्वस्थ मनुष्य की उपमा देकर बताया है, जैसे उसके पैर, आदि बत्तीस अवयवो का एक साथ कोई छेदन-भेदन करता है, उस समय वह मनुष्य न भली प्रकार देख सकता है, न सुन सकता है, न बोल सकता है, न चल सकता है, वह उस पीडा को बता नही पाता किन्तु इससे यह तो नही माना जा सकता है कि उसमें चेतना नहीं है या उसे कष्ट नही हो रहा है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव मे व्यक्त चेतना का अभाव होने पर भी उसमें प्राणो का स्पन्दन है, अनुभव चेतना विद्यमान है, अत उसे भी कष्टानुभूति होती है।

तीसरे दृष्टान्त मे मूर्च्छित मनुष्य के साथ तुलना करते हुए बताया है कि जैसे कोई किसी को मूर्च्छित कर देता है अथवा मरणासन्न स्थिति कर देता है तो उसकी चेतना बाहर मे लुप्त दीखती है, किन्तु उसकी अन्तरग चेतना—अनुभूति लुप्त नही होती, उसी प्रकार (स्त्यानगृद्धि निद्रा का सतत उदय रहने से) पृथ्वीकायकि जीवों की चेतना मूर्च्छित व अव्यक्त रहती है किन्तु वे आन्तरिक चेतना से शून्य नही होते।

भगवतीसूत्र (श १९, उ ३५) मे बताया है—जैसे कोई तरुण और बलिष्ठ पुरुष किसी जरा-जीर्ण दुर्बल-वृद्ध पुरुष के सिर पर दोनो हाथों से प्रहार करके उसे आहत करता है, तब वह जैसी अनिष्ट वेदना का अनुभव करता है, उससे भी अनिष्टतर वेदना का अनुभव पृथ्वीकायिक जीवो को आक्रान्त होने पर होता है। (देखें **चित्र ४**)

भगवतीसूत्र में पृथ्वीकायिक जीवो के श्वासोच्छ्वास, वेदना, आहार, संज्ञा, जरा, चय-अपचय आदि बताये हैं। आज के भू-वैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि पृथ्वी, पर्वत, शिलाखड आदि मे हानि, वृद्धि, क्लाति और मृत्यु आदि लक्षण पाये जाते हैं। पृथ्वी की रचना में निरन्तर परिवर्तन मानना उसकी सजीवता का ही लक्षण है।

Elaboration—In the earth-bodied beings the consciousness is not apparent The activities of movement or stirring are also not clearly evident Therefore, this question naturally arises that when an earth-bodied being does not move, utter sound, see or hear, how to accept it as a being ? How to accept that it suffers pain through tearing or piercing ?

In order to remove this doubt, the author has tried to elicit the awareness of pain among the earth-bodied beings by giving three examples

First Example—A person is by birth blind, deaf, dumb and crippled, he has a mere shape of the human body When someone pierces or cuts him with some weapon, such as a sword or a lance, he is unable to express his pain through speech, he can neither move out of fear nor can he express his pain by some other activity Should it be inferred that he is not a being or that he does not suffer due to cutting and piercing ?

As that congenitally blind and crippled person suffers pain in spite of his inabilities like those of speech, sight and movement, likewise the earth-bodied beings suffer pain even in absence of sense organs

Second Example—Taking a normal healthy man as an example it is shown that if all the thirty two listed parts of his body are pierced or cut at the same time, he will not be able to see, hear, speak, move, or in any other way express his suffering This does not mean that he has no consciousness or he does not suffer pain In the same way the earth-bodied beings also pulsate with life in spite of the absence of evident consciousness They have the consciousness to experience, therefore they too experience or suffer pain

Third Example—Here the comparison has been done with an unconscious person When a person is hit and made unconscious or almost nearing death, there is an absence of any visible activity However, his inner awareness or consciousness is not lost In the

स्थावर
1
2
3
4
5
4
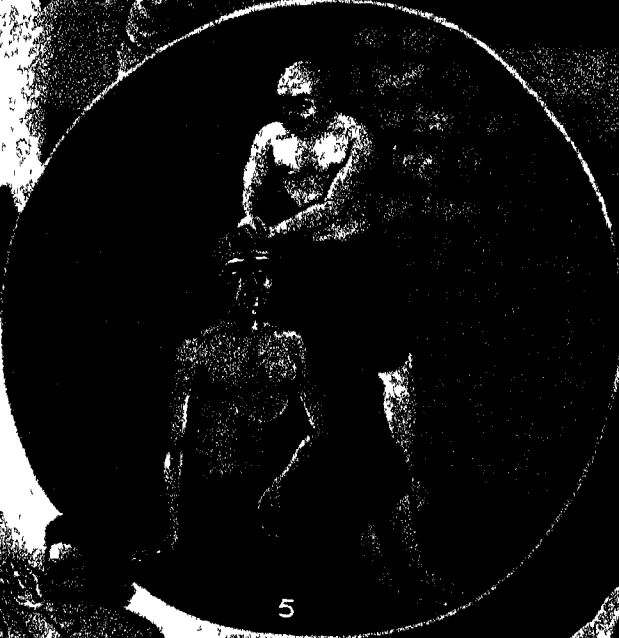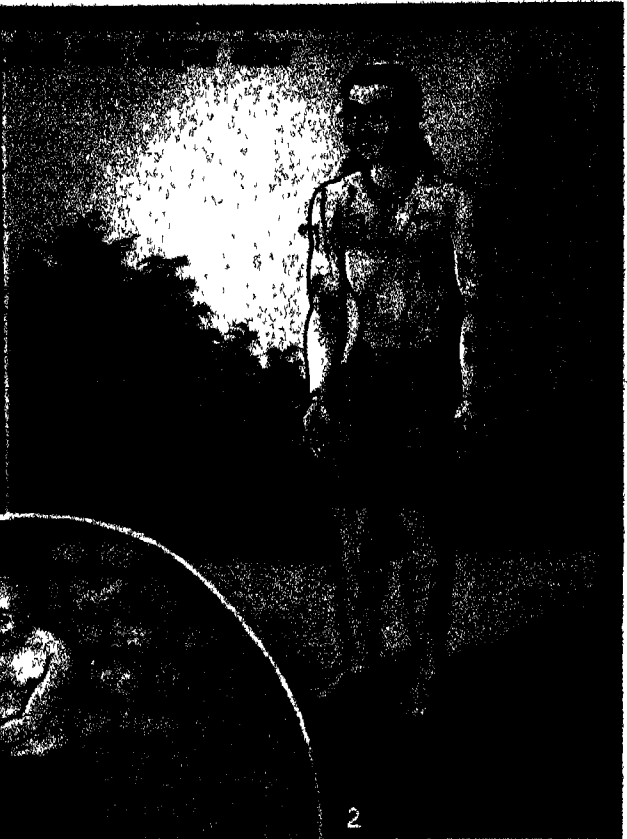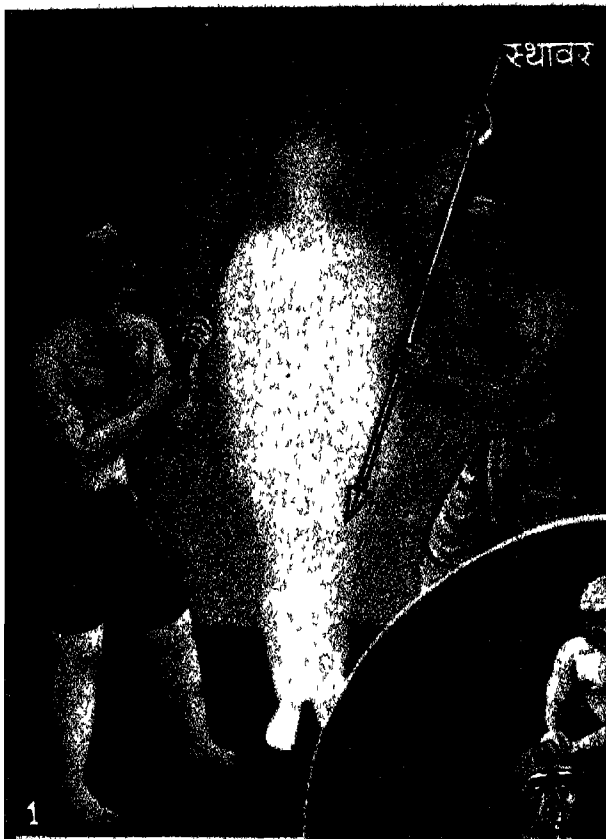
चित्र परिचय ४ | **Illustration No. 4**

स्थावर जीवों मे वेदना की अनुभूति

पृथ्वीकायिक जीव जन्म से ही इन्द्रिय विकल होते है-उन जीवो को शस्त्र से छेदन भेदन करने पर उसी प्रकार की कष्टानुभूति होती है जैसे किसी जन्म से ही अन्ध-बधिर मूक पंगु अवयवहीन और निर्बल मनुष्य को

१ शरीर के विभिन्न स्थानो पर शस्त्र से प्रहार करने पर या लट्ठी आदि से मारने पर

२ शरीर के हाथ पैर, छाती पीठ, जघा आदि विभिन्न अवयवो पर सूइया चुभोने से

३ किसी के मुँह मे कपड़ा ठूँसकर श्वास का निरोध कर देने व बेहोश करने से

४ फिर उस पर घातक शस्त्रो का प्रहार करने पर तथा

५ किसी अत्यन्त दुर्बल वृद्ध पुरुष के सिर किसी पहलवान द्वारा दोनो हाथो से चोट मारने पर उसे जैसी अव्यक्त कष्टानुभूति होती है।

उसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो को भी अव्यक्त वेदना की अनुभूति होती है। वाणी के अभाव मे वे अपनी वेदना बता नही सकते।

[प्रथम चार दृष्टान्त इसी सूत्र मे आये है तथा वृद्ध पुरुष का दृष्टान्त भगवतीसूत्र के शतक १९/३५ के आधार पर है।]

—१/१/४/१५

EXPERIENCE OF PAIN IN IMMOBILE BEINGS

Earth-bodied beings are deprived of sense-organs since their origin They experience pain just like a person who is blind, deaf dumb, crippled disabled and weak by birth experiences pain when -

1 He is struck on various parts of his body with a weapon or a stick,

2 He is pricked with needles on his hands legs, chest, back thigh and other parts of his body

3 He is gagged, strangled or made unconscious,

4 In this condition is hit with fatal weapons also

5 A very weak and old man is hit on his head by a wrestler with his joined palms he suffers extreme agony without being able to express

In the same way the earth-bodied beings also suffer pain without being able to express In absence of the ability to speak they cannot express their pain

[First four examples are from Acharanga Sutra and the fifth one is based on Bhagavati Sutra 19/35]

—1/15

same way (due to the ever present *styanagrıddhı-nıdra* or comatose state) the lıfe-actıvity of the earth-bodıed beıngs ıs ın a state akın to suspended anımatıon or unconscıousness But they are not devoıd of ınner awareness or conscıousness

In *Bhagavatı Sutra* (19/35) ıt is mentıoned—When a young and strong ındıvidual hıts on the head of an old and emacıated person wıth joıned fists and ınjures hım, the old man suffers a torturıng agony The earth-bodıed beıngs suffer even more torturing agony when they are afflıcted (see **Illustration 4**)

In *Bhagavatı Sutra* detaıls about respıratıon, paın, food, senses, aılments, progress and regress of earth-bodıed beıngs have been gıven The modern geologısts also accept that there are apparent sıgns of development, decay, fatıgue and extınctıon ın earth, mountaıns, rocks and other such thıngs The acceptance of contınued changes ın the structure of earth ıs the sıgn of ıts beıng a lıvıng entıty

१६ एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाता भवंति।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरभा परिण्णाता भवंति।

१७. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं पुढविसत्थ समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

१८. जस्सेते पुढवि–कम्म–समारंभा परिण्णाता भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे।

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१६. जो पृथ्वीकायिक जीवों पर शस्त्र का समारभ (उनकी हिसा) करते है, वे इन आरभो (हिसा-सम्बन्धी प्रवृत्तियो के कटु परिणामो व जीवों की वेदना) से अनजान है।

जो पृथ्वीकायिक जीवो पर शस्त्र का समारभ नहीं करते, वे (वास्तव में इन) आरभो के ज्ञाता है (और वे ही इनसे मुक्त होते है।)

१७. अत पृथ्वीकायिक जीवो की अव्यक्त वेदना को जानकर (बुद्धिमान् मनुष्य) न तो स्वय पृथ्वीकाय का समारभ करे, न दूसरो से उसका समारभ करवाए और न समारभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करे।

१८. जिसने पृथ्वीकाय-सम्बन्धी समारंभ को भली प्रकार जान लिया वही परिज्ञातकर्मा (विवेकपूर्वक हिंसा का त्यागी) मुनि होता है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

16. Those who use weapons to commit violence against earth-bodied beings are ignorant about these acts of violence (the bitter fruits of violent attitudes and the sufferings of beings)

Those who do not use weapons to commit violence against earth-bodied beings (in fact) know about these acts of violence (and they alone get free of these)

17. Therefore knowing about the unexpressed sufferings of the earth-bodied beings one (wise man) should not harm earth-bodied beings himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

18. He who has properly understood the violence related to the earth-bodied beings is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitude abandons violence).

—So I say

● END OF LESSON TWO ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

अनगार लक्षण

१९. से बेमि–से जहा वि अणगारे उज्जुकडे णियागपडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए।

१९ मै कहता हूँ–जो अनगार है, वह ऋजुकृत् (सरल आचरण वाला) नियाग-प्रतिपन्न (मोक्षमार्ग मे निष्ठापूर्वक गतिमान) तथा अमाय (कपट आदि से मुक्त) होता है।

THE SIGNS OF AN *ANAGAR*

19. I say—One who is ***anagar*** (homeless, Jain ascetic) is *rijukrit* (upright in conduct), *niyag-pratipanna* (devoted to spiritual practices), and *amaya* (free of deceit)

विवेचन–(१) ऋजुकृत् अर्थात्, जिसका मन, वाणी एव आचरण सरल एक रूप हो।

(२) नियाग-प्रतिपन्न–जिसकी साधना का लक्ष्य भौतिक ऐश्वर्य या यश प्राप्ति आदि न होकर आत्मा को कर्ममल से मुक्त करके मोक्षमार्ग पर चलना हो।

(३) अमाय–माया का अर्थ सगोपन या छुपाना या कपट करना है। साधना-पथ पर बढ़ने वाला मुनि अपनी सम्पूर्ण शक्ति को आध्यात्मिक साधना मे ही लगा देता है। वह कभी अपनी शक्ति को गोपनीय रखकर स्व-पर कल्याण के कार्य से विमुख नही होता।

ऋजुकृत् मे वीर्याचार की शुद्धि, नियाग-प्रतिपन्नता मे ज्ञानाचार एव दर्शनाचार की शुद्धि, तथा अमाय मे तपाचार की सम्पूर्ण शुद्धि परिलक्षित होती है।

Elaboration—(1) ***Rijukrit*** is one who has simplicity and uniformity of thought, speech and conduct

(2) ***Niyag-pratipanna*** is one the goal of whose practices is to free his soul of *karmic* dirt and tread the path of liberation, and not to acquire mundane prosperity and fame

(3) ***Amaya*** is opposite of *maya*, which means to conceal or to deceive A *muni* (ascetic) treading the spiritual path applies all his energy to spiritual practices He never conceals his capacity and does not avoid activities of well-being of self and others

Here *rijukrit* indicates absolute purity of *viryachar* (conduct relating to energy) *Niyag-pratipanna* indicates absolute purity of *jnanachar* (conduct relating to knowledge) and *darshanachar* (conduct relating to perception or faith) And *amaya* indicates absolute purity of *tapachar* (conduct relating to austerities)

२० जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहित्ता विसोत्तियं।

२१ पणया वीरा महावीहिं।

२० वह अणगार जिस श्रद्धा (वैराग्य भावना) के साथ सयम-पथ पर बढा है, उसी श्रद्धा के साथ जीवन पर्यन्त सयम का पालन करता रहे। **विस्रोतसिका** (विपरीत भाव-प्रवाह अर्थात् लक्ष्य के प्रति शका या चित्त की चचलता) को त्याग दे।

२१ वीर पुरुष महापथ के प्रति प्रणत (अर्थात् समर्पित) होते है।

20. That *anagar* should adhere to the code of *samyam* (ascetic-discipline), as long as he lives, with the same faith (intensity of the feeling of detachment) with which he stepped on the path of *samyam* (ascetic-discipline) He should become free of *visrotasika* (contradictions, any doubt about the goal or infirmity of attitude)

21. The brave are devoted to the great and illustrious path

विवेचन–अहिसा व सयम का प्रशस्त पथ महापथ है क्योकि इनकी साधना मे देश, काल, सम्प्रदाय व जाति की कोई सीमा या बधन नही है। वह सबके लिए एक समान है। अतीत काल मे सयम व शान्ति के आराधक सभी साधक इसी पथ पर चले है, वर्तमान मे चलते है और भविष्य मे चलेगे। फिर भी यह कभी सकीर्ण नही होता, अत यह महापथ है। जो पराक्रमी और दृढ़ निश्चयी होते है वे वीर इस पथ के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से चलते है।

Elaboration—The path of *ahimsa* and *samyam* (ascetic-discipline) is the noble path because it is free of any national, periodic, sectarian and ethnic restrictions It is uniform for all All the seekers of discipline and peace trod this path in the past, tread this path in the present and will tread this path in the future. In spite of this, it does not appear crowded, therefore, it is a great and illustrious path The brave with strong resolve move on this path with complete devotion

अप्कायिक जीवो का जीवत्व

२२. लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं।

२३. से बेमि–णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा।

जे लोगं अब्भाइक्खइ से अत्ताणं अब्भाइक्खइ।

जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ से लोगं अब्भाइक्खइ।

२२ प्रत्यक्ष ज्ञानी पुरुषो की आज्ञा–(वाणी) से लोक को (अर्थात् अप्काय के जीवो का स्वरूप) जानकर उन्हे अकुतोभय बना दे (अर्थात् उन्हे किसी भी प्रकार का भय उत्पन्न न करे)।

२३ मै कहता हूँ–मुनि स्वयं लोक (अप्कायिक जीवों के अस्तित्व) को अस्वीकार (निषेध) न करे और न (अपनी) आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करे।

जो अप्काय लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है वह (वास्तव मे अपनी ही) आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करता है।

जो अपनी आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करता है वह लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है।

ATTRIBUTES OF LIFE IN WATER-BODIED BEINGS

22. Comprehending the world (the world and form of water-bodied beings) through the order (the word of the omniscient) free it of fear (refrain from causing fear to them)

23. Thus I say, a *muni* should neither deny the world (the existence of water-bodied beings) nor the (existence of his own) soul He who denies the (existence of) world (water-bodied beings), (in fact) denies (the existence of his own) soul He who denies (the existence of his own) soul denies the (existence of) world (water-bodied beings)

विवेचन–पृथ्वीकाय के कथन के बाद यहाँ प्रसग अनुसार 'लोक' का अर्थ अप्काय किया गया है। टीकाकार ने 'अकुतोभय' के दो अर्थ किये हैं–(१) जिससे किसी जीव को भय न हो, वह संयम, तथा (२) जो कही से भी भय न चाहता हो, वह अप्कायिक आदि जीव।' यहाँ प्रथम अर्थ सयम मुख्य है।

अपने अस्तित्व को तो कोई भी अस्वीकार नहीं करता, किन्तु जो व्यक्ति सूक्ष्म अप्कायिक जीवो की सत्ता को नकारता है, वह वास्तव मे स्वय की सत्ता को भी नकारता है। क्योंकि प्रत्येक

जीव अप्कायिक जीवो में अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है। अत उनके अस्तित्व का अपलाप करने का अर्थ है अपने अस्तित्व का अपलाप करना।

यहाँ पर निषेध के अर्थ मे 'अभ्याख्यान' शब्द आया है, जो कई विशेष अर्थ रखता है। किसी के अस्तित्व को नकारना, सत्य को असत्य और असत्य को सत्य, जीव को अजीव, अजीव को जीव ख्यापित करना अभ्याख्यान–विपरीत कथन है। अर्थात् 'जीव को अजीव' बताना उस पर असत्य अभियोग लगाने के समान है।

Elaboration—Following the sequence, after informing about the earth-bodied beings, *lok* (world) has been interpreted as water-bodied beings According to the commentator the word *akutobhaya* has two meanings—(1) that which does not cause fear to any being, discipline, and (2) that which does not desire fear, beings like water-bodied beings Here stress is on the first meaning

Nobody denies his own existence But one who denies the existence of the minute water-bodied beings, in fact, denies his own existence Because every being in the past has been born as a water-bodied being infinite times Therefore to decry their existence means to decry ones own existence

Here the word *abhyakhyan* has been used in negative sense and in a wider range To deny existence of something, to establish a lie as truth and a truth as false, to show a being as non-being and a non-being as being, are all *abhyakhyan* or misstatement To call a being non-being amounts to false accusation

२४. लज्जमाणा पुढो पास।

'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहि उदय-कम्म-समारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे वऽणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२४. तू देख ! प्रत्येक सयमी पुरुष (अप्काय की) हिसा से विरत रहते है।

(उनको भी देख) जो अपने आप को गृहत्यागी कहते हैं, वे विविध प्रकार के शस्त्रो द्वारा जल-सम्बन्धी आरभ-समारंभ करते हुए जल-काय के जीवो की हिसा करते है। और साथ ही जल-काय मे आश्रित अनेक प्रकार के अन्य जीवो की भी हिसा करते है।

24. See ! All disciplined persons feel ashamed (of violence towards water-bodied beings).

(Also watch those) who pretend to be homeless. They indulge in sinful activities related to water with various types of weapons. Along with, they also destroy water-bodied beings and various other types of beings thriving in water

२५. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइ-मरण-मोयणाए दुक्ख-पडिघायहेउं। से सयमेव उदयसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा उदयसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणइ।

तं से अहियाए त से अबोहीए।

२६. से त संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय।

सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसि णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

इच्चत्थ गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे वऽणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२५ इस विषय मे भगवान ने परिज्ञा (विवेक) का निरूपण किया है।

जो अपने वर्तमान जीवन के लिए; प्रशसा, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म, मरण और मोक्ष के लिए, दु खो का प्रतीकार करने के लिए (इन कारणों से) वह स्वयं अप्काय की हिंसा करता है, दूसरो से भी हिसा करवाता है और हिसा करने वालो का अनुमोदन करता है।

यह हिसा उसके अहित के लिए होती है तथा अबोधि का कारण बनती है।[1]

२६ वह साधक हिसा के कटु परिणामो को समझते हुए संयम-साधना में सावधान हो जाता है।

भगवान से या अनगार मुनियो से सुनकर कुछ मनुष्यों को यह ज्ञात हो जाता है–(जैसे–यह अप्कायिक जीवों की हिसा) कर्मो की ग्रन्थि है, मोह है, मृत्यु का कारण है तथा नरक का हेतु है।

फिर भी मनुष्य इस जीवन की सुख-सुविधा मे आसक्त रहता है। वह तरह-तरह के शस्त्रो से उदक-काय की हिसा-क्रिया मे सलग्न होकर अप्कायिक जीवों की हिसा करता है।

१ आचार्य श्री आत्माराम जी म ने भगवतीसूत्र (१/३) का सन्दर्भ देकर यह बताया है कि पृथ्वीकायिक जीवों के समान ही अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय और वायुकाय के जीवो को भी छेदन-भेदन से कष्टानुभूति होती है।

वह केवल अप्कायिक जीवो की ही नही, किन्तु उसके आश्रित अनेक प्रकार के अन्य जीवो की भी हिंसा करता है।

25. Bhagavan has revealed the truth about thıs

When a person, for the sake of hıs life; praıse, prestıge and worshıp, bırth, death and lıberatıon; and removal of sorrows, (for these reasons) hımself acts sınfully, causes others to act sinfully, or approves of others actıng sınfully agaınst water-bodıed beıngs—

That (sinful act) ıs detrımental to hım That is the cause of hıs ıgnorance

26. Properly understandıng (the bad consequences of violence), he (a dıscıplıned seeker) ındulges ın *adanıya* (practıcıng ascetıc-dıscıplıne).

By lıstenıng to (the sermon of) Bhagavan or *anagars* (ascetıcs) ıt becomes known (to some humans) that—'thıs (violence towards water-bodıed beıngs) ıs a *granthı* (a knot or the cause of *karmıc* bondage), thıs ıs fondness (ıllusıon), thıs ıs (the cause of) death; and this is (the passage to) hell as well

A person who (in spite of thıs) has cravıngs (for pleasures and comforts), employing varıous types of *shastras* (weapons) in water related violent actıvıtıes, causes harm to water-bodıed beıngs. (Such person) destroys not only water-bodıed beıngs but also many other types of beıngs thrivıng ın water

[In some manuscrıpts after aphorısm 25 the text of aphorısm 15 has been repeated ın full Thıs aphorısm ıs also repeated wıth the descrıptıon of fire-bodıed beıngs, plant-bodıed beıngs, mobıle-bodıed beıngs and aır-bodıed beıngs Acharya Shrı Atmaram jı M has gıven thıs text only once Gıvıng the reference of *Bhagavatı Sutra* (1/3) he has stated that lıke earth-bodıed beıngs, water-bodıed, fire-bodıed, plant-bodıed, mobıle-bodıed, and aır-bodıed beıngs also suffer paın when cut or pıerced]

२७. से बेमि–संति पाणा उदयणिस्सिया जीवा अणेगा।

इहं च खलु भो अणगाराणं उदय-जीवा वियाहिया।

सत्थं चेत्थ अणुवीइ पास। पुढो सत्थं पवेइयं।

अदुवा अदिण्णादाणं।

२७ मै कहता हूँ–जल के आश्रित अनेक प्रकार के अन्य जीव भी रहते हैं।

हे मनुष्य ! इस अनगार दर्शन मे जल को 'जीव' माना है।

जलकाय के जो शस्त्र हैं, उन पर चिन्तन करके देख ! भगवान ने जलकाय जीवो के अनेक शम्त्र बताये है।

(जलकाय की हिसा, प्राणातिपात का दोष ही नही) किन्तु अदत्तादान–चोरी का दोष भी है।

27. I say—Numerous types of other beings also thrıve in water

O man ! In thıs *anagar* (ascetıc) phılosophy water itself is consıdered to be a lıvıng thıng.

Ponder over the thıngs that are weapons agaınst water-bodıed beıngs Bhagavan has saıd about many weapons against water-bodıed beıngs

(Vıolence against water-bodied beıngs is not just the sin of termınatıng lıfe) ıt ıs also the sın of takıng what is not gıven (theft)

विवेचन–अप्काय को सजीव–सचेतन मानना जैनदर्शन की मौलिक मान्यता है। भगवान महावीरकालीन अन्य दार्शनिक जल को सजीव नही मानते थे, किन्तु उसमे आश्रित अन्य जीवो की सत्ता स्वीकार करते थे। तैत्तिरीय आरण्यक में 'वर्षा' को जल का गर्भ माना है और जल को 'प्रजनन शक्ति' के रूप में स्वीकार किया है। 'प्रजनन क्षमता' सचेतन में ही होती है, अत सचेतन होने की धारणा का प्रभाव वैदिक चिन्तन पर पड़ा है, ऐसा माना जा सकता है। किन्तु मूलत· अनगार दर्शन को छोडकर अन्य सभी दार्शनिक जल को सचेतन नहीं मानते थे। इसलिए यहाँ दोनों तथ्य स्पष्ट किये गये हैं–(१) जल सचेतन है। (२) जल के आश्रित अनेक प्रकार के छोटे-बड़े जीव रहते हैं।

जल तीन प्रकार का होता है-(१) सचित्त-जीव-सहित। (२) अचित्त-निर्जीव। (३) मिश्र-सजीव-निर्जीव मिश्रित जल। सजीव जल, शस्त्र अर्थात् विरोधी वस्तु के प्रयोग से निर्जीव हो जाता है। जलकाय के शस्त्र इस प्रकार बताये हैं-

"उस्सिचण-गालण-धोवणे य उवगरण मत्तभडे य।
बायर आउक्काए एय तु समासओ सत्तं॥" (निर्युक्ति, गाथा ११३-११४)

उत्सेचन-कुएँ से बाल्टी आदि द्वारा जल निकालना,

गालन-वस्त्र आदि से जल छानना,

धोवन-जल से उपकरण/बर्तन आदि धोना,

स्वकाय शस्त्र-एक स्थान का जल दूसरे स्थान के जल का शस्त्र है; जैसे-नदी का पानी तालाब के पानी का शस्त्र है।

परकाय शस्त्र-मिट्टी, तेल, क्षार, शर्करा, अग्नि आदि,

तदुभय शस्त्र-स्वकाय परकाय का मिश्रण, जैसे-जल से भीगी मिट्टी आदि जलकाय का शस्त्र है।

भाव शस्त्र-असयम।

जलकाय के जीवो की हिसा को 'अदत्तादान' कहने के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण है। उस समय परिव्राजक आदि कुछ सन्यासी जल को सजीव तो नहीं मानते थे, किन्तु (अदत्त जल) का उपयोग नही करते थे। जलाशय आदि के स्वामी की अनुमति लेकर जल का उपयोग करने मे वे दोष नही मानते थे। उनकी इस धारणा को श्रमणो ने भ्रातियुक्त बताते हुए तर्क दिया कि जलाशय का स्वामी क्या जलकाय के जीवो का स्वामी हो सकता है? क्या जल के जीवो ने अपने प्राण-हरण करने या प्राण किसी को सौपने का अधिकार दिया है? नही। अत जल के जीवो का प्राण-हरण करना हिसा तो है ही, साथ मे उनके प्राणो की चोरी भी है।

Elaboration—Acceptance of water as a living entity or a life-form is an original Jain concept Bhagavan Mahavir's other contemporary philosophers did not accept water as a life-form, they only accepted the existence of other beings thriving in water In *Taittiriya Aranyak* rain (*varsha*) has been described as womb of water and water has been accepted as having procreative power Only a living entity is endowed with capacity to procreate, therefore it may be inferred that the concept of water having life has influenced Vedic school of thought also But besides the *Anagar* (Jain) philosophy all other schools of

चित्र परिचय ५	Illustration No. 5
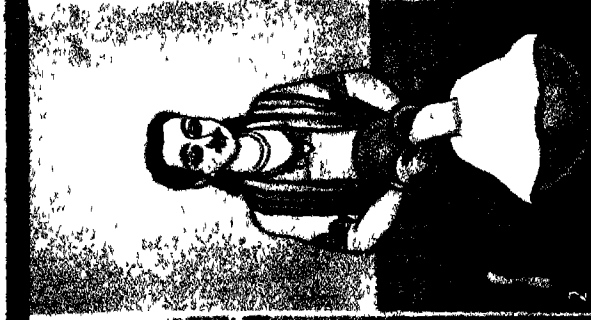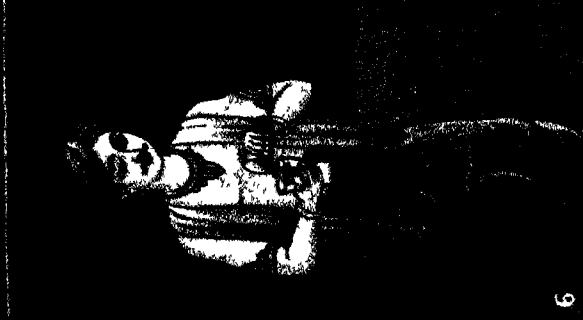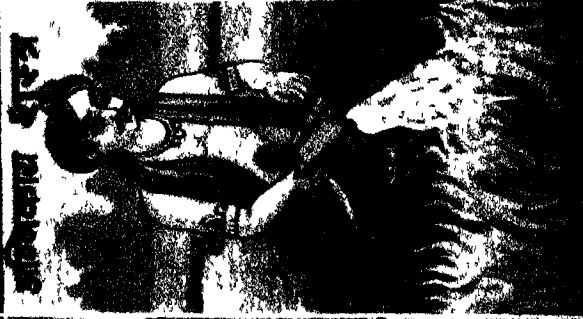
जल व अग्निकाय के शस्त्र

जलकाय के जीवों का जिन कारणों से घात होता है, वे उसके शस्त्र हैं। जैसे

१ उत्सेचन—कुएँ से बाल्टी आदि से भरकर जल निकालने पर।

२ गालन—वस्त्र आदि से जल छानने पर।

३ धावन—जल से वस्त्र आदि धोने पर।

४ स्वकाय शस्त्र—एक प्रकार का जल दूसरे प्रकार के जल में मिलाने पर जैसे-नदी का जल सरोवर में मिलाने पर।

५ परकाय शस्त्र—पानी में राख, सोडा, साबुन आदि क्षार द्रव्य मिलाने पर,

६ तदुभय शस्त्र—स्वच्छ जल में गंदा जल मिलाने पर।

इन कारणों से जल जीवों की हिंसा होती है। — १/३/२७

इसी प्रकार अग्निकाय के शस्त्र होते हैं जैसे

(१) जलती हुई आग में बालू मिट्टी आदि डालने पर।

(२) पानी डालने से।

(३) परकाय शस्त्र—विविध प्रकार की गैस आदि से आग बुझाने पर।

(४) अग्नि में गीली वनस्पति, गीला घास आदि डालने से। — १/४/३५

WEAPONS AGAINST WATER AND FIRE-BODIED BEINGS

The causes that destroy water-bodied beings are called weapons against these. For example

1. Utsechan—To draw water from a well with the help of a rope and a bucket

2. Galan—To filter water with a filtering media like cloth

3. Dhovan—To wash utensils and other things with water

4. Svakaya weapon—Water from one source acts as a weapon for water from other source e.g., river water is a weapon for pond water and vice versa

5. Par-kaya weapon—Mixing ash, soda, detergent and other base chemicals in water

6. Tadubhaya weapon—Mixing soiled water in clean water

These are the causes that destroy water-bodied beings —*1/3/27*

Same is true for weapons against fire bodied beings. For example—

(1) Throwing sand or other such things in fire

(2) Splashing water on fire

(3) Par-kaya weapons—extinguishing fire with gas and other such things

(4) Throwing wet vegetables or grass in fire —*1/4/35*

28. (Some say) "We are permitted the use of *sachitt* water." (This is what the *Ajivaks* and *Shaivaites* say). (Some say) "We are permitted the use of water for drinking as well as bathing or cosmetic purpose" (This is the opinion of Buddhist *Shramans*) (Thus quoting their respective scriptures) they harm water-bodied beings with numerous types of weapons

29. Quoting their scriptures they (the mendicants who indulge in harming water-bodied beings) cannot condone or renounce the sin of violence

30. He who uses weapons on water-bodied beings is not free of these sins (the blemish of harming and killing living beings)

He who does not use weapons on water-bodied beings is free of these sins

31. Therefore knowing about this (the unexpressed sufferings of the water-bodied beings) one (wise man) should not harm water-bodied beings himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

32. He who has properly understood the violence related to the water-bodied beings is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitude abandons violence)

—So I say

● **END OF LESSON THREE** ●

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

अग्निकाय की सजीवता

३३. से बेमि–णेव सय लोग अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताण अब्भाइक्खेज्जा।

जे लोग अब्भाइक्खइ से अत्ताण अब्भाइक्खइ।

जे अत्ताण अब्भाइक्खइ से लोग अब्भाइक्खइ॥

जे दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे से असत्थस्स खेयण्णे।

जे असत्थस्स खेयण्णे से दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे॥

३३ मै कहता हूँ–वह (सयमी) कभी भी स्वय लोक–(अग्निकाय) की सजीवता (अस्तित्व) का निषेध न करे। न अपनी आत्मा का निषेध करे।

(क्योकि) जो लोक (अग्निकाय) की सजीवता का अस्वीकार करता है, वह अपने आप का अस्वीकार करता है। जो अपने आप का अस्वीकार करता है वह लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है।

जो दीर्घलोक के शस्त्र (अग्निकाय) को जानता है वह अशस्त्र (सयम) को भी जानता है। जो सयम को जानता है वह अग्निकाय को भी जानता है।

ATTRIBUTES OF LIFE IN FIRE-BODIED BEINGS

33. I say—He (disciplined ascetic) should neither deny the world (the existence of fire-bodied beings) nor the (existence of his own) soul

(Because) he who denies the (existence of) world (fire-bodied beings), (in fact) denies (the existence of his own) soul He who denies (the existence of his own) soul denies the (existence of) world (fire-bodied beings)

He who knows about that (fire-bodied beings) which causes harm to the larger world also knows about that (ascetic-discipline) which does not cause harm He who knows about ascetic discipline also knows about fire-bodied beings

विवेचन—यहाँ 'लोक' शब्द अग्निकाय का बोधक है। तत्कालीन धर्म-परम्पराओ मे जल को, तथा अग्नि को देवता मानकर पूजा तो जाता था, किन्तु उनकी हिसा के सम्बन्ध में कोई विचार नही किया गया था। जल से शुद्धि और पचाग्नि तप आदि से सिद्धि मानकर इनका प्रयोग/उपयोग किया जाता था। भगवान महावीर ने अहिंसा की दृष्टि से इन दोनों को सजीव मानकर उनकी हिसा का निषेध किया है।[1]

आचार्य शीलाक का कथन है—अग्नि में प्रकाश व उष्णता का गुण है तथा अग्नि वायु के बिना जीवित नहीं रह सकती। स्नेह, काष्ट आदि का आहार लेकर बढ़ती है, आहार के अभाव मे घटती है—यह सब उसकी सजीवता के स्पष्ट लक्षण है।

अग्निकाय को 'दीर्घलोक शस्त्र' कहा है। दीर्घलोक का अर्थ है—वनस्पति। इसे दीर्घलोक कहने के तीन कारण हैं—(१) पाँच स्थावर जीवो मे चार की अवगाहना अगुल का असख्यातवाँ भाग बताई गयी है जबकि वनस्पति की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से भी अधिक है।[2] (२) वनस्पति का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है तथा उसकी (३) कायस्थिति (उसी काय मे बार-बार जन्म-मरण करना) भी दीर्घ है। इसलिए वनस्पति को आगमो मे 'दीर्घलोक' कहा है। अग्नि उसका शस्त्र है।

दीर्घलोक शस्त्र का एक अर्थ यह भी है कि अग्नि सबसे तीक्ष्ण और प्रचड शस्त्र है। उत्तराध्ययन मे कहा है—नत्थि जोइ समे सत्थे तम्हा जोइ न दीवए। (३५/१२) अग्नि के समान अन्य कोई तीक्ष्ण शस्त्र नही है। बडे-बडे विशाल बीहड वनो को वह कुछ क्षणो मे ही भस्मसात् कर देती है। अग्नि वडवानल के रूप मे समुद्र मे भी छिपी रहती है।

अशस्त्र शब्द 'सयम' के अर्थ मे प्रयुक्त है। असयम को भाव शस्त्र बताया है। अत उसका विरोधी सयम—अ-शस्त्र अर्थात् जीव मात्र का रक्षक है। इस कथन का भाव है—जो हिसा को जानता है, वही अहिंसा को जानता है, जो अहिंसा को जानता है वही हिसा को भी जानता है।

Elaboration—Here the word *lok* ındicates fire-bodıed beıngs In the relıgıous tradıtıons of those days water and fire were worshıpped as gods but no thought was gıven to acts of vıolence agaınst them Consıderıng water to be the means of purıficatıon and penance usıng five types of fire that of super-natural attainments, these two were ın popular use Bhagavan Mahavır, from hıs *ahımsa* vıewpoınt, accepted them as lıvıng thıngs and proscrıbed vıolence agaınst them

१ न विणा वाउयाएणं अगणिकाए उज्जलति—भगवती, श १६, उ १, सूत्र ५ (अंगसुत्ताणि)

२ प्रज्ञापना अवगाहना पद। विस्तृत विवेचन के लिए देखें। आचारांग हिन्दी टीका (आ आत्माराम जी म)· पृ १२४-१२५

Acharya Sheelank says—Fire has the attributes like light and heat and it cannot survive in absence of air It grows by consuming foods like oil and wood and fritters away when deprived of such food All this is clear evidence of its being a living thing

(*Bhagavati Sutra* 16/1/5)

Fire-bodied beings have been called *deerghalok-shastra* *Deerghalok* means plant life or plants There are three reasons for calling it *deerghalok* (large-world)—(1) of the five stationary life forms *(sthavar)* the dimensions of four is said to be uncountable fraction of the width of a human finger, whereas the maximum dimension of plant life form is more than one thousand *yojans* (a *yojan* is approximately eight miles) (for more details refer to *Acharanga,* Hindi commentary by A Atmaram ji M), (2) the area covered by plant life is also vast, and (3) the reincarnation of a being as plant life form is also more frequent That is why plant life is called *deerghalok* in Agams Fire acts as weapon against it

Another meaning of *deerghalok-shastra* is that fire is the sharpest and most devastating weapon It is mentioned in *Uttaradhyayan Sutra* that there is no sharper weapon than fire (35/12) It destroys large forests within no time It is also seen in sea as sea-fire

The word *ashashtra* (non-weapon) has been used for ascetic-discipline Absence of discipline is considered a mental weapon Therefore discipline, its opposite, is non-weapon or protector of every living being The statement under reference has an underlying meaning—he who knows violence knows *ahimsa* and vice versa

अग्निकायिक जीव-हिंसा-निषेध

३४. वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं संजएहिं सया जतेहिं सया अप्पमत्तेहिं।
जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडे पवुच्चइ।
तं परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं।

३४. वीरों-(ज्ञानी पुरुषों) ने, (ज्ञानावरण-दर्शनावरण आदि) कर्मों का क्षय करके अग्निकायिक जीवों का अस्तित्व देखा है। वे संयमी, सदा यतनाशील और सदा अप्रमत्त रहने वाले थे।

जो प्रमत्त है और जो गुणो (अग्नि के राँधना-पकाना आदि कार्यों) का आकांक्षी है, वह दण्ड कहलाता है।

यह जानकर मेधावी पुरुष सकल्प करे–"जो मैंने प्रमाद के वशीभूत होकर पहले हिसा की थी अब मैं वह (हिंसा) नही करूँगा।"

CENSURE OF HARMING FIRE-BODIED BEINGS

34. The braves (sages) by shedding *karmas* (like knowledge and perception obstructıng *karmas*) have observed the exıstence of fire-bodıed beıngs They were disciplined, ever careful and ever alert

One who is torpıd and desırous of the features (of fire, like heatıng and cookıng) is called a scourge.

After knowıng thıs, a wıse man should resolve—"Now I wıll not repeat the vıolence I commıtted in the past under stupor."

विवेचन–इन सूत्रो मे वीर आदि विशेषण सम्पूर्ण आत्म-ज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त करने की प्रक्रिया के सूचक है।

वीर--पराक्रमी–साधना मे आने वाले समस्त विघ्नो पर विजय पाना।

सयम–इन्द्रिय और मन को विवेक द्वारा निग्रहीत करना।

यम–क्रोध आदि कषायो को विजय करना।

अप्रमत्तता–स्व-रूप की स्मृति रखना। सदा जागरूक और विषयोन्मुखी प्रवृत्तियों से विमुख रहना।

प्रमाद और विषयाभिलाषा को हिंसा के दो हेतु बताये हैं। प्रमाद पाँच हैं–मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। सामान्यत शारीरिक जडता को आलस्य तथा मानसिक जडता को प्रमाद कहा जाता है। मनुष्य जब प्रमत्त होता है तभी वह अग्नि के उपयोगों–राँधना, पकाना, प्रकाश, ताप आदि की वाछा करता है और तब वह स्वय जीवों का दण्ड (हिसक) बन जाता है।

Elaboration—In these aphorısms adjectıves lıke *vır* (brave) are ındicatıve of the process of attaınıng perfect spırıtual knowledge (*keval-jnana*)

Vir—brave or courageous, to wın over all the hurdles on the spırıtual path

Samyam—to control the senses and mind through sagacity or discerning attitude

Yam—to win over passions such as anger

Apramattata—to be ever aware of the form of self, to be ever alert and be free of the attitude of indulgence in mundane pleasures

Pramad (torpor or stupor) and desire for mundane pleasures are said to be the two causes of violence There are five types of *pramad—madya* or intoxication, *vishaya* or mundane pleasures, *kashaya* or passions, *nidra* or sleep, *vikatha* or opprobrium In simple terms the inactivity of body is called lethargy or laziness and that of mind is called *pramad* or stupor Man desires of benefits of fire, such as to boil, to cook, to provide light, and to provide heat, only when he is under the influence of stupor And then he himself becomes a scourge of beings

३५. लज्जमाणा पुढो पास।

'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा। जमिण विरूवरूवेहि सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभेण अगणिसत्थ समारभमाणे अण्णे वऽणेगरूवे पाणे विहिसति।

३६. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया। इमस्स चेव जीवियस्स परिवदण-माणण-पूयणाए जाई-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेउ से सयमेव अगणिसत्थ समारभइ, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा अगणिसत्थ समारंभमाणे समणुजाणइ।

त से अहियाए, त से अबोहीए।

३५ प्रत्येक सयमी पुरुष (जीव-हिसा मे) लज्जा का अनुभव करते है। यह तू देख।

(और यह भी देख) जो यह कहते है कि 'हम अनगार–गृहत्यागी हैं' वे अनेक प्रकार के शस्त्रों से अग्निकाय की हिसा करते है। अग्निकाय के जीवो की हिसा करते हुए अन्य अनेक प्रकार के जीवो की भी हिसा करते है।

३६ इस विषय में भगवान ने परिज्ञा का निरूपण किया है। कुछ मनुष्य अपने जीवन के लिये, प्रशसा, सन्मान, पूजा के निमित्त, जन्म-मरण और मोक्ष के उद्देश्य से तथा दु खो का प्रतीकार करने के लिए म्वय अग्निकाय की हिसा करते है। दूसरो से अग्निकाय की हिसा करवाते है, अग्निकाय की हिसा करने वालो का अनुमोदन भी करते है।

यह हिसा उनके अहित के लिए होती है। यह उनकी अबोधि के लिए होती है।

35. See ! All disciplined persons feel ashamed (of violence towards fire-bodied beings)

(Also watch those) who pretend to be homeless. They indulge in sinful activities related to fire with various types of weapons Along with, they also destroy fire-bodied beings and various other types of beings.

36. Bhagavan has revealed the truth about this. When a person, for the sake of his life, praise, prestige and worship, birth, death and liberation, and removal of sorrows, (for these reasons) himself acts sinfully, causes others to act sinfully, or approves of others acting sinfully against fire-bodied beings

That (sinful act) is detrimental to him That is the cause of his ignorance

विवेचन–अग्निकाय के शस्त्रो का उल्लेख निर्युक्ति मे इस प्रकार किया गया है–

"पुढवी आउक्काए उल्ला य वणस्सइ तसा पाणा।
बायर तेउक्काय एय तु समासओ सत्थ॥" (*आचाराग निर्युक्ति*, गा १२३-१२४)

(१) मिट्टी या धूलि (इससे वायु निरोधक वस्तु कबल आदि भी समझना चाहिए), (२) जल, (३) आर्द्र वनस्पति, (४) त्रस प्राणी, (५) स्वकाय शस्त्र–एक अग्नि दूसरी अग्नि का शस्त्र है, (६) परकाय शस्त्र–जल आदि, (७) तदुभय मिश्रित–जैसे तुष-मिश्रित अग्नि दूसरी अग्नि का शस्त्र है, (८) भाव शस्त्र–असयम।

Elaboration—In the *Niryukti* (commentary) the weapons against fire-bodied beings are mentioned as follows—

(1) sand or dust (this also includes air obstructing things like blanket), (2) water, (3) damp plants, (4) mobile beings, (5) same-bodied weapon—a type of fire is weapon against another type, (6) other-bodied weapon, such as water, (7) mixed-bodied weapon, *e g* , fire with straw is weapon against other fire, (8) mental weapon or indiscipline (*Acharanga Niryukti* 123-124)

३७. से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवति–एस खलु गथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

इच्चत्थ गढिए लोए। जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणि-कम्म-समारंभेणं अगणि-सत्थ समारंभमाणे अण्णे वऽणेगरूवे पाणे विहिसइ।

३७ वह सयमी हिसा के परिणाम को भली प्रकार समझे और सयम-साधना मे सावधान हो जाता है।

तीर्थकर अथवा श्रुतज्ञानी मुनियो के निकट से सुनकर कुछ मनुष्यो को यह ज्ञात हो जाता है कि यह (अग्निकायिक जीव-हिसा) ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।

फिर भी सुख-सुविधा का लोभी मनुष्य (जीने के लिए, सम्मान, वदना आदि हेतुओ मे आसक्त हुआ) विविध प्रकार के शम्त्रो से अग्निकाय की हिसा करता है। अग्निकाय की हिसा करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के प्राणो/जीवो की भी हिसा करता है।

37. Properly understandıng (the bad consequences of vıolence), he (a dıscıplined aspırant) ındulges ın *adanıya* (practıcıng ascetıc-dıscıplıne)

By lıstenıng to (the sermon of) Bhagavan or *anagars* (ascetıcs) ıt becomes known (to some humans) that thıs (violence towards fire-bodıed beıngs) ıs a *granthı* (a knot or the cause of *karmıc* bondage), thıs ıs fondness (ıllusıon), thıs ıs (the cause of) death, and thıs ıs (the passage to) hell as well

A person who (ın spıte of thıs) has cravıngs (for pleasures and comforts), employıng varıous types of *shastras* (weapons) ın fire related vıolent actıvıtıes, causes harm to fire-bodıed beıngs (Such person) Destroys not only fire-bodıed beıngs but also many other types of beıngs

३८. से बेमि–सति पाणा पुढविणिस्सिया तणणिस्सिया पत्तणिस्सिया कट्ठणिस्सिया गोमयणिस्सिया कयवरणिस्सिया।

संति सपातिमा पाणा आहच्च सपयंति य।

अगणि च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जति। जे तत्थ सघायमावज्जंति ते तत्थ परियावज्जति। जे तत्थ परियावज्जति ते तत्थ उद्दायंति।

३८. मै कहता हूँ–पृथ्वी, तृण, पत्र, काष्ट, गोबर और कूडा-कचरा आदि के आश्रित बहुत से प्राणी रहते है।

कुछ (कीट, पतगे, मक्खी, पक्षी आदि) संपातिम/उडने वाले प्राणी होते हैं जो ऊपर से उडते-उडते नीचे गिर जाते हैं।

ये प्राणी अग्नि का स्पर्श पाकर संघात को (शरीर का सकोच) प्राप्त होते है। वे (अग्नि की उष्मा से) मूर्च्छित हो जाते है। मूर्च्छित हो जाने के बाद मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते है।

38. I say—Many beings thrive in earth, straw, leaf, wood, cow-dung, garbage and other such things.

There also are some wind-borne beings (such as worms, moths, fly and birds) which fall down while hovering above

When they come in contact with fire their bodies shrivel They become unconscious (due to the heat of the fire) After getting unconscious they die as well

विवेचन—टीका मे बताया गया है पृथ्वी के आश्रित त्रस एव स्थावर दोनों प्रकार के प्राणी रहते है। जैसे—कुथु, चीटियाँ, सर्प आदि त्रस प्राणी। वृक्ष, गुल्म, लता, तृण आदि स्थावर प्राणी। तृणो के आश्रय में रहने वाले पतगा, इल्ली आदि। काष्ट के आश्रय मे रहने वाले घुण, चींटी, अडे, सर्प आदि। गोबर के आश्रय में रहने वाले कृमि, कीट पतगा आदि। अग्नि जलाने से ये आश्रित प्राणी भी जल जाते है।

Elaboration—In the commentary it is mentioned that in earth thrive both mobile and stationary beings Examples are—mobile beings like worms, ants and snakes Stationary beings like trees, plants, creepers and grass In grass thrive moths, caterpillars and other insects In wood thrive wood-worm, ants, eggs and snakes. In cow-dung thrive worms and other insects By lighting a fire these beings are destroyed

३९. एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति।

एत्थ सत्थ असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणिसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं अगणिसत्थं समारंभावेज्जा, अगणिसत्थ समारंभमाणे अण्णे ण समणुजाणेज्जा।

४०. जस्सेते अगणिकम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे। त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

३९ जो अग्निकाय के जीवो पर शस्त्र-प्रयोग करता है, वह इन आरंभ-समारभ सम्बन्धी क्रियाओ से निवृत्त नही हो पाता अर्थात् वह हिंसा के दु.खद परिणामो से छूट नहीं पाता।

जो अग्निकायिक जीवों पर शस्त्र का प्रयोग नही करता है, वास्तव मे वह आरभ का ज्ञाता–त्यागी है।

यह जानकर मेधावी मनुष्य स्वय अग्नि शस्त्र का समारभ न करे, दूसरों से अग्नि शस्त्र का समारंभ न करवाए तथा उसका समारभ करने वाले दूसरो का अनुमोदन न करे।

४०. जिसने यह अग्नि-सम्बन्धी समारभ भली प्रकार ज्ञात कर लिया है, वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

39. He who uses weapons on fire-bodied beings is not free of these sins (the blemish of harming and killing living beings)

He who does not use weapons on fire-bodied beings is free of these sins

Therefore knowing about this (the unexpressed sufferings of beings) one (wise man) should not employ fire-weapon himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

40. He who has properly understood the violence related to fire is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitude abandons violence)

—So I say.

● END OF LESSON FOUR ●

पंचमो उद्देसओ	पंचम उद्देशक	LESSON FIVE

[पिछले उद्देशकों मे पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय की हिंसा का निषेध करने के पश्चात् यहाँ सामान्य क्रमानुसार वायुकाय का विषय आना चाहिए था परन्तु वनस्पतिकाय का प्रसंग पहले आ गया है। इसका कारण यह माना जाता है कि वायुकाय की गतिशीलता के कारण उसका निरूपण आगे त्रसकाय के पश्चात् किया गया है अतः यहाँ स्थावरकाय की शृंखला में वनस्पतिकाय का वर्णन किया जा रहा है।

वैसे तो स्थानागसूत्र (३) तथा तत्त्वार्थसूत्र (२/१४) मे अग्नि और वायुकाय दोनों को ही त्रसकाय मे माना गया है किन्तु वायु को जिस प्रकार तिर्यक् गति–तिरछी गति वाला माना है वैसा अग्नि के विषय में नही है। इसलिए तेजस्काय को स्थावर की गणना में ही रखा गया है।]

[In the preceding lessons violence against earth-bodied beings, water-bodied beings and fire-bodied beings have been proscribed If the common sequence of types of beings is followed air-bodied beings come next in order But here plant-bodied beings has been taken first It is believed that the reason for this is that, because of the mobility of air-bodied beings it has been placed after the mobile beings Therefore, in the sequence of stationary life-forms plant-bodied beings has been taken up here

In *Sthananga Sutra* (3) and *Tattvarth Sutra* (2/14) both fire-bodied beings and air-bodied beings have been classified as mobile beings But as, in contradistinction with air, fire is said to have no transverse movement, it is counted with stationary beings]

अणगार का लक्षण

४१. तं णो करिस्सामि समुट्ठाए।
मत्ता मइमं अभयं विदित्ता।
तं जे णो करए एसोवरए, एत्थोवरए, एस अणगारे त्ति पवुच्चति।

४१ वह (अहिंसा का व्रत स्वीकार करने वाला संकल्प करे)–मैं सयम अंगीकार करके हिसा नही करूँगा।

बुद्धिमान् मानव (पूर्व कथित जीवो के अस्तित्व व उनकी पीड़ा पर) मनन करे कि 'प्रत्येक जीव अभय चाहता है' यह जानकर (हिसा न करे)।

जो हिसा नही करता, वही हिसा से विरत है। हिसा से जो विरत है वही अनगार कहलाता है।

THE SIGN OF *ANAGAR*

41. He (who has taken the vow of *ahımsa* should resolve)—I will not commit vıolence once I accept ascetıc-dıscıplıne.

The wıse should ponder (over the exıstence and sufferıng of the aforesaıd beıngs) and realızing that every beıng desıres to be free of fear (should desıst from ındulgıng in vıolence)

He alone ıs rıd of violence who does not commıt vıolence He alone ıs called *anagar* who ıs rid of vıolence

विवेचन–हिसा का त्याग करने के लिए साधक को मनन करने का उपदेश है। अर्थात् वनस्पति आदि मे जीव है उनको भी अपने ही समान पीडा होती है इस विषय पर मनन-चिंतन करके यह जाने कि चाहे कोई अल्पविकसित चेतना वाला जीव है, वह भी मृत्यु से भयभीत रहता है इसलिए उसे भी अभयदान दे।

अभय का एक अर्थ सयम से भी है–

"अविद्यमान भयमस्मिन् सत्वानामित्यभय सयम।" *(आचा टीका)*

Elaboration—In order to be free of vıolence, the seeker has been advısed to contemplate Thıs means that he should ponder over the ıdea that plants and other thıngs we see around suffer paın just lıke us He shóuld understand that ırrespectıve of ıts beıng under-developed, every lıfe-form ıs fearful of death and consequently he should be clement towards ıt

Abhaya (free of fear) also means *samyam* (dıscıplıne)

(Acharanga Tıka)

४२.जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे।
उड्ढ अहं तिरियं पाईण पासमाणे रूवाइ पासइ, सुणमाणे सद्दाइ सुणेइ।
उड्ढं अहं तिरिय पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छइ, सद्देसु यावि।
एस लोगे वियाहिए।
एत्थ अगुत्ते अणाणाए।
पुणो पुणो गुणासाए वंकसमायारे पमत्ते गारमावसे।

४२. जो गुण–(शब्दादि विषय) है, वह आवर्त–संसार है। जो आवर्त है, वह गुण है।

ऊँचे, नीचे, तिरछे स्थानो में तथा पूर्व आदि दिशाओं में देखने वाला रूपों को देखता है। सुनने वाला शब्दों को सुनता है।

ऊँचे, नीचे, तिरछे तथा पूर्व आदि दिशाओ में विद्यमान वस्तुओ में मूर्च्छा करने वाला, रूपो मे मूर्च्छित होता है, शब्दो मे मूर्च्छित होता है।

यह (मूर्च्छा–आसक्ति) ही ससार कहा जाता है।

जो पुरुष इन विषयों में अगुप्त है (इन्द्रिय एव मन से असयत है) वह भगवान की आज्ञा–धर्म-शासन के बाहर है।

जो बार-बार विषयो का सेवन करता है (उनका भोग-उपभोग करता है) वह वक्र समाचार अर्थात् असयममय जीवन वाला है। वह प्रमत्त गृहत्यागी कहलाकर भी वास्तव मे गृहवासी ही है।

42. That which is attribute (reconised by sense organs, such as sound) is *avart* (whirlpool of life, world) That which is world is attribute

Looking up, down and at sides and in directions such as east, he sees forms and hears sounds.

Longing for things existing above, under and at sides and directions such as east, he gets attached to forms and gets attached to sounds

This (attachment) is called the world

He who is not guarded against these things (is indisciplined of senses and mind) is not following the word of Bhagavan or the religious order

He who repeatedly indulges in these activities (enjoys them) is of perverted conduct (leads an indisciplined life) That wanton person, pretending to be a renouncer, is in fact a householder.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे गुण का अर्थ किया है–पाँच इन्द्रियों के ग्राह्य विषय। वे क्रमश· यों है–शब्द, रूप, गध, रस और स्पर्श। ये ऊँची-नीची आदि सभी दिशाओ मे मिलते हैं। इन्द्रियों के द्वारा आत्मा इनको ग्रहण करता है, सुनता है, देखता है, सूँघता है, चखता है और स्पर्श करता

है। ग्रहण करना इन्द्रिय का गुण है। ग्रहीत विषयों के प्रति मूर्च्छा करना मन या चेतना का कार्य है। जब मन विषयो के प्रति आसक्त होता है तब विषय मन के लिए बन्धन या आवर्त बन जाता है। आवर्त का शब्दार्थ है–समुद्रादि का वह जल, जो वेग के साथ चक्राकार घूमता रहता है–भंवर जाल। भाव रूप मे–विषय अथवा शब्दादि गुण आवर्त है। इनमे जीव परिभ्रमण करता रहता है।

प्रस्तुत उद्देशक मे वनस्पतिकाय की हिंसा का निषेध किया गया है, यहाँ पर शब्दादि विषयों का वर्णन सहसा अप्रासगिक-सा लग सकता है। अत टीकाकार ने इसकी सगति बैठाते हुए कहा है–शब्दादि विषयो की उत्पत्ति का मुख्य साधन वनस्पति ही है। वनस्पति से ही वीणा आदि वाद्य, विभिन्न रग, रूप, पुष्पादि के गध, फल आदि के रस व रुई आदि के स्पर्श की निष्पत्ति होती है। अत वनस्पति के वर्णन से पूर्व उसके उत्पाद/वनस्पति से निष्पन्न वस्तुओ मे अनासक्त रहने का उपदेश करके प्रकारान्तर से उसकी हिसा न करने का ही उपदेश किया है। हिसा का मूल हेतु भी आसक्ति ही है। अगर आसक्ति न रहे तो विभिन्न दिशाओं/क्षेत्रों मे स्थित ये शब्दादि गुण आत्मा के लिये कुछ भी अहित नही करते।

Elaboration—In this paragraph the meaning of attributes or qualities is 'subjects of perception of five sense organs' which are—sound, form, smell, taste and touch All these exist in all directions Soul perceives these through sense organs by way of hearing, seeing, smelling, tasting and touching To receive or grasp is the activity of sense organs To have fondness for sensations so received is the activity of mind and soul When mind gets attached to these pleasures, they become bondage or *avart* for it *Avart* means a circular current in the sea, a whirlpool Psychologically speaking *avart* means the flow of attributes or features that make mundane pleasures, a being is caught in its eddy

This lesson proscribes the violence against plant-bodied beings The mention of topics like sound and form may appear to be irrelevant. In order to make it relevant the commentator has said—the main sources or instruments of origin of features like sound are plants Musical instruments like *veena* (a Sitar-like instrument), various colours and shapes, fragrance of flowers, taste of fruits, textures like that of cotton, are all of plant origin Therefore, before describing plant life, the advise to remain detached from any plant produce is an oblique reference to desist from violence against plant

life. The basic cause of violence is attachment If there is no attachment these attributes existing in various areas and direction can cause no harm to soul

वनस्पतिकाय-हिंसा-वर्जन

४३. लज्जमाणा पुढो पास।

'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा। जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइ-कम्म-समारंभेणं वणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

४४. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेदिता–इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाई-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेउं। से सयमेव वणस्सइसत्थं समारंभइ, अण्णेहि वा वणस्सइसत्थं समारभावेइ, अण्णे वा वणस्सइसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ।

तं से अहियाए, तं से अबोहीए।

४३ तू देख ! प्रत्येक सयमी हिसा से विरत रहता है।

'हम गृहत्यागी है' यह कहते हुए भी कुछ लोग विविध प्रकार के शस्त्रो से, वनस्पतिकायिक जीवो का समारभ करते है। वनस्पतिकाय की हिसा करते हुए वे अन्य अनेक प्रकार के जीवो की भी हिसा करते है।

४४ इस विषय मे भगवान ने परिज्ञा (विवेक) का निरूपण किया है–वर्तमान जीवन के लिए, प्रशसा, सम्मान, पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दु:ख का प्रतीकार करने के लिए, कोई स्वय वनस्पतिकायिक जीवो की हिसा करता है, दूसरो से हिंसा करवाता है तथा करने वाले का अनुमोदन करता है।

यह उसके अहित के लिए होता है। यह उसकी अबोधि के लिए होता है।

CENSURE OF HARMING PLANT-BODIED BEINGS

43. See ! All disciplined persons feel ashamed (of violence towards plant-bodied beings)

(Also watch those) who pretend to be homeless. They indulge in sinful activities related to plants with various types of weapons Along with, they also destroy plant-bodied beings and various other types of beings.

44. Bhagavan has revealed the truth about this—When a

person, for the sake of his life, praise, prestige and worship, birth, death and liberation, and removal of sorrows (for these reasons), himself acts sinfully, causes others to act sinfully, or approves of others acting sinfully against plant-bodied beings.

That (sinful act) is detrimental to him That is the cause of his ignorance.

४५. से तं संबुज्झमाणे आयाणीय समुट्ठाए। सोच्चा भगवओ अणगाराण वा अतिए इहमेगेसिं णाय भवइ–एस खलु गथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

इच्चत्थं गढिए लोए, जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहि वणस्सइ-कम्म-समारंभेण वणस्सइ-सत्थं-समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिसति।

४५ वह साधक (हिसा के कटु परिणामो को) समझता हुआ सयम की साधना मे सावधान हो जाए। भगवान से या त्यागी अनगारो के समीप सुनकर कुछ मनुष्यो को इस बात का ज्ञान हो जाता है–"यह (हिसा) ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।"

फिर भी सुख-भोग मे आसक्त मनुष्य, वनस्पतिकाय की हिसा करता हुआ वह नाना प्रकार के शस्त्रो से वनस्पतिकाय का समारभ करता है और वनस्पतिकाय का समारभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के जीवो की भी हिसा करता है।

45. Properly understanding (the bad consequences of violence), he (a disciplined seeker) indulges in *adaniya* (practicing ascetic-discipline) By listening to (the sermon of) Bhagavan or *anagars* (ascetics) it becomes known (to some humans) that "this (violence towards plant-bodied beings) is a *granthi* (a knot or the cause of *karmic* bondage), this is fondness (illusion), this is (the cause of) death, and this is (the passage to) hell as well "

A person who (in spite of this) has cravings (for pleasures and comforts), employing various types of *shastras* (weapons) in plant related violent activities, causes harm to plant-bodied beings (Such person) destroys not only plant-bodied beings but also many other types of beings

विवेचन—वनस्पतिकाय के शस्त्रों के विषय में निर्युक्तिकार का कथन इस प्रकार है—

"कप्पणि-कुहाणि-असिय गदन्ति य कुदाल वासि परसू य।
सत्थ वणस्सइए हत्था पाया मुहे अग्गी॥" (आचारांग निर्युक्ति १४९)

कैची, कुठार, हँसिया, छोटी हँसिया, कुदाली, वसूला और फरसा। हाथ, पैर, मुँह आदि। ये सब द्रव्य शस्त्र हैं तथा भाव शस्त्र है असयम।

Elaboration—Regardıng the weapons agaınst plant-bodıed beıngs the author of *Nıryuktı* (commentary) states as follows—

Clıppers, pıck-axe, sıckle, spade, hatchet, hoe and axe, and hands, feet, mouth, etc All these are physıcal weapons and the mental weapon ıs ındıscıplıne

मनुष्य शरीर एव वनस्पति शरीर की समानता

४६. से बेमि—इम पि जाइधम्मय, एयं पि जाइधम्मयं;

इम पि वुड्ढिधम्मयं, एयं पि वुड्ढिधम्मयं;

इमं पि चित्तमंतय, एयं पि चित्तमंतय;

इम पि छिण्णं मिलाइ, एयं पि छिण्णं मिलाइ;

इम पि आहारग, एय पि आहारग;

इम पि अणिच्चयं, एय पि अणिच्चय;

इम पि असासय, एय पि असासय;

इम पि चओवचइयं, एयं पि चओवचइयं;

इमं पि विप्परिणामधम्मय, एयं पि विप्परिणामधम्मय।

४६ मै कहता हूँ—यह मनुष्य शरीर भी जन्म लेता है, यह वनस्पति भी जन्म लेती है।

यह मनुष्य शरीर भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है।

यह मनुष्य शरीर भी चेतनायुक्त है, यह वनस्पति भी चेतनायुक्त है।

यह मनुष्य शरीर छिन्न होने पर म्लान होता है, यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है।

यह मनुष्य शरीर भी आहार करता है, यह वनस्पति भी आहार करती है।

यह मनुष्य शरीर भी अनित्य है, यह वनस्पति भी अनित्य है।

यह मनुष्य शरीर भी अशाश्वत है, यह वनस्पति भी अशाश्वत है।

यह मनुष्य शरीर भी आहार से उपचित होता है, (आहार के अभाव मे अपचित/क्षीण/दुर्बल होता है), यह वनस्पति भी इसी प्रकार उपचित-अपचित होती है।

यह मनुष्य शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है, यह वनस्पति भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त करती है।

THE SIMILARITY OF HUMAN AND PLANT BODIES

46. I say—This human body is born, so is this plant

This human body grows, so does this plant

This human body is sensitive, so is this plant

This human body withers when damaged, so does this plant

This human body has food intake, so has this plant

This human body decays, so does this plant

This human body is not permanent, so is this plant

This human body gets strong with nutrition and weak without it, so does this plant

This human body undergoes many changes, so does this plant

विवेचन—भारत के प्राय सभी दार्शनिको ने वनस्पति को सचेतन माना है किन्तु वनस्पति मे ज्ञान-चेतना अल्प होने के कारण उसके सम्बन्ध मे दार्शनिको ने कोई विशेष चिन्तन-मनन नही किया। जैनदर्शन मे वनस्पति के सम्बन्ध मे बहुत ही सूक्ष्म व व्यापक चिन्तन किया गया है। मानव-शरीर के साथ जो इसकी नौ प्रकार से तुलना की गई है, वह आधुनिक विज्ञान-सम्मत है। (देखे चित्र)

Elaboration—Almost every school of Indian philosophy has accepted plants as a life-form But as it has a very low level of consciousness not much thought has been given to it by philosophers However, in Jain philosophy the subject of plant life has been dealt with widely and in minute detail The aforesaid nine-way comparison of plants with human body is acceptable to modern science also (see **Illustration**)

चित्र परिचय ६	Illustration No. 6

मनुष्य एवं वनस्पति में समान वेदना

पृथ्वीकाय के समान वनस्पति में भी अव्यक्त चेतना होती है। दुःख की अनुभूति भी अव्यक्त होती है। विशेषता यह है कि मनुष्य एवं वनस्पति में विकास, वृद्धि तथा विनाश आदि में भी बहुत समानता है। जो प्रत्यक्ष दीखती है। जैसे

१ जन्मधर्मा - मनुष्य भी जन्म के बाद धीरे धीरे बढ़ता है, वनस्पति भी धीरे धीरे बढ़ती है।

२ वृद्धिधर्मा - मनुष्य को भी वृद्धि के लिए भोजन, पानी की आवश्यकता होती है, वनस्पति को भी प्रकाश, पानी, खाद आदि की जरूरत होती है।

३ युवावस्था में मनुष्य पूर्ण विकसित हो जाता है, समय होने पर वनस्पति भी।

४ जीर्णधर्मा - वृद्ध अवस्था होने पर मनुष्य का शरीर जीर्ण हो जाता है, वनस्पति भी पत्ते पीले होने व टहनियाँ सूखने के रूप में जीर्ण होती है।

५ म्लानधर्मा - मनुष्य चोट लगने पर मुरझा जाता है, वनस्पति पर भी प्रहार करने से म्लान होती है।

६ रोगधर्मा - मनुष्य शरीर पर अनेक प्रकार के रोग आक्रमण करते हैं जो समय समय पर पीड़ित करते रहते हैं, और उपचार न होने पर मारक बन सकते हैं, वनस्पति पर भी यह बात लागू होती है।

७ मरणधर्मा - आयु समाप्त होने पर मनुष्य की तरह वृक्ष आदि भी सूखकर गिर जाते हैं।

[illegible]

SIMILARITY OF PAIN IN HUMANS AND PLANT-BODIED BEINGS

Like earth bodied beings, plant bodied beings also have inarticulate consciousness. The feeling of pain is also inexpressible. However, there are marked and evident similarities in the development, growth and termination of humans and plants. For example-

1 After being born, human body slowly develops, plants also follow the same pattern.

2 Human body requires food and water for growth, plants also need light, water, fertilizer etc.

3 At a certain age human body becomes fully developed, so does a plant.

4 In old age human body becomes weak and emaciated, so does a plant, and it is evident in the form of withered and pale branches and leaves.

5 The human body is wounded when hit, so is a plant.

6 The human body is prone to numerous diseases which attack it time and again and may prove to be fatal if not treated, same is true for plants.

7 At the end of their life-span plants also die and fall just like humans.

—1/5/46

४७. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति।

४८. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे वणस्सइसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

४९. जस्सेते वणस्सइ-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे। त्ति बेमि।

॥ पंचमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

४७ जो वनस्पतिकायिक जीवों पर शस्त्र-प्रयोग करता है, वह उन आरंभों को त्याग नही पाता।

जो वनस्पतिकायिक जीवो पर शस्त्र-प्रयोग नही करता, वह आरंभो का त्यागी होता है।

४८ यह जानकर मेधावी मानव स्वय वनस्पतिकाय का समारभ न करे, न दूसरों से समारभ करवाए और समारभ करने वालो का अनुमोदन न करे।

४९ जिसको यह वनस्पति-सम्बन्धी समारभ परिज्ञात होते हैं, वही परिज्ञातकर्मा (हिसा-त्यागी) मुनि होता है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

॥ पंचम उद्देशक समाप्त ॥

47. He who uses weapons on plant-bodied beings is not free of these sins (the blemish of harming and killing living beings).

He who does not use weapons on plant-bodied beings is free of these sins

48. Therefore knowing about this (the unexpressed sufferings of beings) one (wise man) should not harm plant-bodied beings himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

49. He who has properly understood the violence related to plants is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitude abandons violence)

—So I say

● END OF LESSON FIVE ●

छट्ठो उद्देसओ	षष्ठ उद्देशक	LESSON SIX

ससार-स्वरूप

५०. से बेमि–संतिमे तसा पाणा, तं जहा–अडया, पोयया, जराउया, रसया, ससेइया, समुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया। एस संसारे त्ति पवुच्चइ।

मंदस्स अवियाणओ।

णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेय परिणिव्वाणं।

सव्वेसि पाणाण सव्वेमि भूताण सव्वेसि जीवाण सव्वेसि सत्ताण अस्साय अपरिणिव्वाण महब्भय दुक्ख ति बेमि।

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य।

तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति।

संति पाणा पुढो सिया।

५० मै कहता हूँ–ये सब त्रस प्राणी है, जैसे–अडज, पोतज, जरायुज, रसज, सम्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक। यह (त्रस जीवो का) ससार कहा जाता है।

मद (विवेकहीन) तथा अज्ञानी जीव ही ससार मे परिभ्रमण करता है।

प्रत्येक प्राणी परिनिर्वाण (शान्ति और सुख) चाहता है। यह देखकर, विचारकर हिसा से विरत रहे।

सब प्राणियो, सब भूतो, सब जीवो और सब सत्त्वो को असाता (वेदना) और अपरिनिर्वाण (अशान्ति) महाभयकर और दु खदायी हैं। ऐसा मै कहता हूँ।

ये दु खों से त्रस्त प्राणी दिशा और विदिशाओ मे, सब ओर से भयभीत रहते है।

तू देख, विषय-सुखाभिलाषी आतुर मनुष्य स्थान-स्थान पर इन त्रसकायिक जीवो को परिताप/कष्ट देते रहते है।

त्रसकायिक प्राणी पृथक्-पृथक् शरीरो मे आश्रित रहते है।

FORM OF THE WORLD

50. I say—All these are mobile-bodied beings—*andaj, potaj, jarayuj, rasaj, samsvedaj, sammoorchanaj, udbhij* and *aupapatik* This is called the world (of mobile beings).

Only a dull and ignorant being drifts in this world.

Every being desires salvation (peace and happiness). Seeing and contemplating this, one should refrain from violence.

To all *pranis* or breathing life-forms, all *bhoots* or living organisms, all *jivas* or living beings, and all *sattvas* (living entities) pain and discomfort (*aparinirvana*) are horrific and distressful So I say.

These distressed beings in all directions and intermediate directions are filled with fear from all sides.

See ! Mundane pleasure seeking men torment these mobile-bodied beings at every place

Mobile-bodied beings thrive in different types of individual bodies (or are individually embodied)

विवेचन–आगमो मे ससारी जीवों के दो भेद बताये है–स्थावर और त्रस। जो दु ख से अपनी रक्षा और सुख का आस्वाद करने के लिए हलन-चलन आदि क्रिया करने की क्षमता रखता हो, वह 'त्रस' जीव है। इसके विपरीत स्थिर रहने वाला 'स्थावर'। द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के प्राणी 'त्रस' होते हैं। एक मात्र स्पर्शनेन्द्रिय वाले स्थावर होते है। उत्पत्ति-स्थान की दृष्टि से त्रस जीवो के आठ भेद किये गये है–

(१) **अडज**–अंडो से उत्पन्न होने वाले–मयूर, कबूतर, हस आदि।

(२) **पोतज**–पोत अर्थात् शिशु। शिशु रूप मे उत्पन्न होने वाले पोतज कहलाते हैं, जैसे–हाथी, वल्गुली आदि।

(३) **जरायुज**–जरायु का अर्थ है गर्भ-वेष्टन या वह झिल्ली, जो जन्म के समय शिशु को आवृत किये रहती है। इसे 'जेर' भी कहते है। जरायु के साथ उत्पन्न होने वाले है, जैसे–गाय, भैस आदि।

(४) **रसज**–छाछ, दही आदि रस विकृत होने पर इनमें जो कृमि आदि उत्पन्न हो जाते है वे 'रसज' कहे जाते हैं।

(५) **सस्वेदज**–पसीने से उत्पन्न होने वाले, जैसे–जूँ, लीख आदि।

(६) **सम्मूर्च्छिम**–बाहरी वातावरण के संयोग से उत्पन्न होने वाले, जैसे–मक्खी, मच्छर, चीटी, भ्रमर आदि।

(७) **उद्भिज्ज**–भूमि को फोडकर निकलने वाले।

(८) **औपपातिक**–देवता फूलो की शय्या मे, नारक कुम्भी मे उत्पन्न होकर एक मुहूर्त्त के भीतर ही पूर्ण युवा बन जाते है, इसलिए वे औपपातिक (अकस्मात् उत्पन्न होने वाले) कहलाते है। (देखे **चित्र**)

इन आठ प्रकार के जीवो मे प्रथम तीन 'गर्भज' चौथे से सातवे भेद तक 'सम्मूर्च्छिम', और देव-नारक औपपातिक है। ये सभी 'सम्मूर्च्छनज, गर्भज, उपपातज–इन तीन भेदों मे समाहित हो जाते है। तत्त्वार्थसूत्र (२/३२) मे ये तीन भेद ही गिनाये है।

इन जीवो को ससार कहने का अभिप्राय यह है कि यह अष्टविध योनि-सग्रह ही जीवो के जन्म-मरण तथा गमनागमन का केन्द्र है। अत इसे ही ससार समझना चाहिए।

'परिनिर्वाण' शब्द मोक्ष का वाचक है। किन्तु प्रस्तुत प्रसग मे 'परिनिर्वाण' से सर्वविध सुख, अभय, दु ख और पीडा का अभाव आदि अर्थ ग्रहण किया गया है और बताया गया है कि प्रत्येक जीव सुख, शान्ति और अभय की आकाक्षा रखता है। अशान्ति, भय, वेदना उनको महान् भय व दु खदायी है। अत उनकी हिसा न करे।

प्राण, भूत, जीव, सत्त्व–ये चारो शब्द जीव के ही वाचक हैं। इनके अलग-अलग अर्थ भी किये गये है। जैसे–भगवतीसूत्र (२/१) मे बताया है–

दस प्रकार के प्राणयुक्त होने से श्वासोच्छ्‌वास लेता है, अत **प्राण** है।

तीनो काल मे सत्ता रूप मे रहने के कारण–**भूत** है।

आयुष्य कर्म के कारण जीता है–अत जीव है।

विविध पर्यायो का परिवर्तन होते हुए भी आत्म-द्रव्य की सत्ता मे कोई अन्तर नही आता, अत सत्व है।

टीकाकार आचार्य शीलाक ने निम्न अर्थ भी किया है–

"प्राणा· द्वि–त्रि–चतु प्रोक्ता भूतास्तु तरव स्मृता ।
जीवा पंचेन्द्रिया प्रोक्ता शेषा सत्त्वा उदीरिता ॥"

प्राण–द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव।

भूत–वनस्पतिकायिक जीव।

जीव–पाँच इन्द्रिय वाले जीव–तिर्यच, मनुष्य, देव, नारक।

सत्त्व–पृथ्वी, अप्, अग्नि और वायु काय के जीव।

Elaboration—According to *Agams* the worldly beings are divided into two broad classes—*sthavar* or immobile and *tras* or mobile Those who are capable of activities like stirring and moving in order to save themselves from torment or to enjoy pleasure are mobile

चित्र परिचय ७ | **Illustration No. 1**
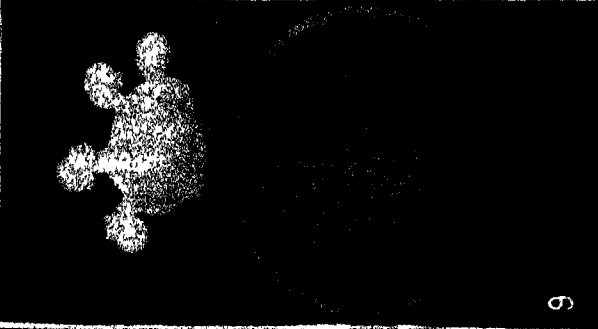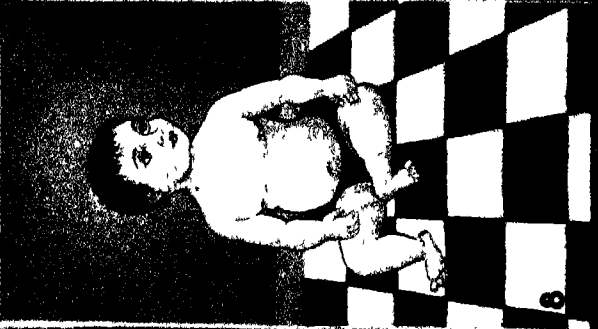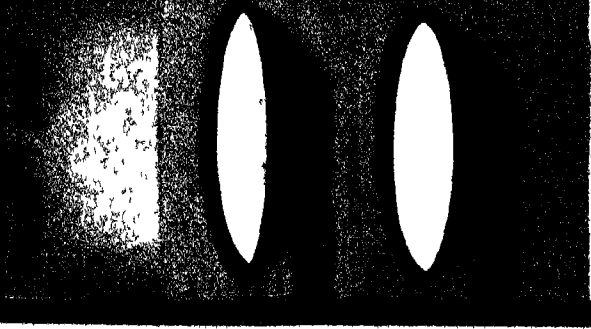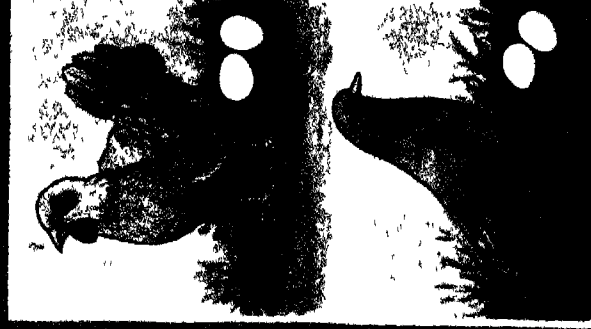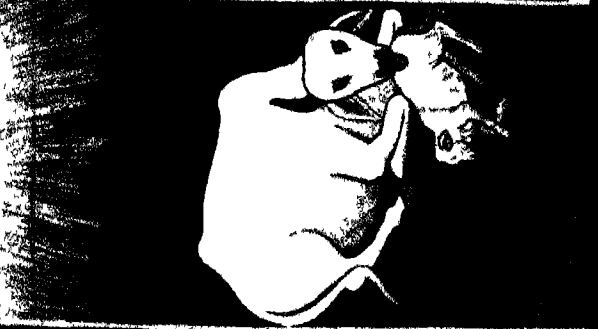
त्रस जीवों के विविध प्रकार

संति मे तसा पाणा—त्रस प्राणी अनेक प्रकार के हैं -

१ **अण्डज**—(क्रम ४-५) अण्डा से पैदा होने वाले जैसे-मुर्गा कबूतर, मोर आदि।

२ **पोतज**—(क्रम ६ ८) पोत अर्थात शिशु के रूप मे उत्पन्न होने वाले जैसे हाथी, मानव शिशु आदि।

३ **जरायुज**—(क्रम ७) जन्म के समय जिन पर झिल्ली लिपटी रहती है, जैसे- गाय आदि (ये तीनो गर्भज होते है)।

४ **रसज**—(क्रम १) छाछ दही आदि मे उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म जीव।

५ **संस्वेदज**-(क्रम २-३) पसीने मे उत्पन्न होने वाले खटमल जू लिडडा पतंगे मधुमक्खी आदि ये सभी सम्मूर्छिम और उद्‌भिज कहलाते है।

६ **औपपातिक**—(क्रम ९ १०) अचानक उत्पन्न होने वाले जैसे कुंभी मे उत्पन्न होने वाले नारक तथा पुष्प शय्या मे उत्पन्न होने वाले देव।

अ १ ८ सूत्र ५०

VARIOUS TYPES OF MOBILE BEINGS

1. Andaj—(Ill 4, 5) Born from an egg, as are cock, pigeon pea cock etc

2. Potaj—(Ill 6 8) *'Pota'* means infant Those born as fully formed infants are called potaj, as are elephants and human beings These are also garbhaj or born out of womb

3. Jaravuj—(Ill 7) *'Jaravu* means placenta Those born with placenta are called *jaravuj* or placental, such as cow, buffalo and human beings These are also garbhaj or born out of womb

4. Rasaj—(Ill 1) Born out of liquids, as are bacteria created when liquids like butter milk curd, etc ferment

5. Samsvedaj—(Ill 2, 3) Born out of sweat as are bed-bug, louse etc These also include *Sammoorchim* (flies, mosquitoes, ants, bumble-bees, etc) and *Udbhij* (those that burst out of the earth when born)

6. Aupapatik—(Ill 9-10) Born suddenly and fully formed instantaneously, like the hell beings in hell-pots and gods in beds of flowers

—*1/6/50*

beings. Its opposite or incapable of movement are immobile beings Beings having two to five sense organs are mobile Those that have only the sense of touch are immobile beings On the basis of their birth, the mobile-bodied beings are divided into eight types—

(1) ***Andaj***—born from an egg, as are pea-cock, pigeon, swan and other birds and reptiles

(2) ***Potaj***—*pota* means infant Those born as fully formed infants are called *potaj*, as are elephants and bats

(3) ***Jarayuj***—*jarayu* means placenta Those born with placenta are called *jarayuj* or placental, such as cow, buffalo and man

(4) ***Rasaj***—born out of liquids, as are bacteria created when liquids ferment

(5) ***Samsvedaj***—born out of sweat, as are louse

(6) ***Sammoorchim***—of asexual origin or born spontaneously in various atmospheric combinations, as are flies, mosquitoes, ants, bumble-bees, etc

(7) ***Udbhij***—those that burst out of the earth when born

(8) ***Aupapatik***—born suddenly and fully formed instantaneously, like the hell beings in hell-pot and gods in bed of flowers (see **Illustration**)

Of these eight types the first three are *garbhaj* (born out of womb), the later four are *sammoorchim,* and the last is *aupapatik* All these eight types fall into these three broad categories—*sammorchanaj, garbhaj* and *upapataj Tattvarth Sutra* (2/32) has mentioned only these three categories

The reason behind calling these beings the world is—this group of eight type of birth processes is the arena of birth and death and movement of all beings Therefore this alone should be considered the world

Parinirvana means *moksha* or liberation But here it has been used to convey—all types of pleasure, absence of fear, sorrow and

pain This has been done to show that every being desires happiness, peace and security Discomfort, fear and pain are horrifying and distressful to them Therefore desist from causing them harm.

Generally speaking *pran, bhoot, jiva* and *sattva* are synonyms of *jiva* or being But they have also been given different meanings For example, in *Bhagavati Sutra* (2/1) these words are defined as follows—

As it is endowed with ten types of *pran* (vital force) it breathes Therefore it is called *pran*

As it has existence in all the three times (past, present and future) it is called *bhoot*

Because of the age determining *karma* it lives, therefore it is called *jiva*

In spite of a variety of changes in form the existence of soul is unaffected therefore it is called *sattva*

Commentator Acharya Sheelank has defined these terms as follows—

Pran—two, three and four sensed beings

Bhoot—plant-bodied beings

Jiva—five sensed beings or animals, humans, gods and hell beings

Sattva—earth-bodied beings, water-bodied beings, fire-bodied beings and air-bodied beings

त्रसकाय-हिसा-निषेध

५१. लज्जमाणा पुढो पास। 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा। जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारभेण तसकायसत्थ समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिसइ।

५१ तू देख ! प्रत्येक सयमी साधक जीव-हिसा मे लज्जा का अनुभव करते हुए उससे विरत रहते है। कुछ साधु 'हम गृहत्यागी है' यह कहते हुए भी अनेक प्रकार के उपकरणो से त्रसकाय का समारभ करते है। जो विविध प्रकार के शस्त्रो से त्रसकाय का समारंभ करते हैं, वे त्रसकाय की हिसा करते हुए अन्य अनेक प्राणियो की भी हिसा करते हैं।

CENSURE OF HARMING MOBILE-BODIED BEINGS

51. See ! All disciplined persons feel ashamed (of violence towards mobile-bodied beings). (Also watch those) who pretend to be homeless. They indulge in sinful activities related to mobile-bodied beings with various types of weapons Along with, they also destroy mobile-bodied beings and various other types of beings.

५२. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइ-मरण-मोयणाए दुक्ख-पडिघायहेउं। से सयमेव तसकायसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा तसकायसत्थ समारभमाणे समणुजाणइ।

त से अहियाए, त से अबोहीए।

५२ इस विषय मे भगवान ने परिज्ञा का निरूपण किया है।

मनुष्य इस वर्तमान जीवन के लिए, प्रशसा, सम्मान, पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दु ख का प्रतीकार करने के लिए (त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है), स्वय भी त्रसकायिक जीवो की हिंसा करता है, दूसरो से हिसा करवाता है तथा हिसा करते हुए का अनुमोदन भी करता है।

यह हिसा उसके अहित के लिए होती है। अबोधि के लिए होती है।

52. *Bhagavan* has revealed the truth about this

When a person, for the sake of his life, praise, prestige and worship, birth, death and liberation; and removal of sorrows (for these reasons), himself acts sinfully, causes others to act sinfully, or approves of others acting sinfully against mobile-bodied beings

That (sinful act) is detrimental to him That is the cause of his ignorance

त्रसकाय-हिसा के विविध हेतु

५३. से तं सबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

इच्चत्थं गढिए लोए। जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकाय-कम्म-समारंभेणं तसकाय-सत्थं-समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

से बेमि–

अप्पेगे अच्चाए वहंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति, अप्पेगे मंसाए वहंति; अप्पेगे सोणियाए वहंति, अप्पेगे हिययाए वहंति, एवं पित्ताए, वसाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिंगाए, विसाणाए, दंताए, दाढाए, नहाए, ण्हारुणीए, अट्ठिए, अट्ठिमिंजाए। अट्ठाए अणट्ठाए।

अप्पेगे हिंसिंसु मे त्ति वा, अप्पेगे हिंसंति वा, अप्पेगे हिंसिस्सति वा णे वहंति।

५३. वह सयमी, उस हिसा को सम्यक् प्रकार से समझते हुए ग्रहण करने योग्य संयम मे सावधान हो जावे।

भगवान से या गृहत्यागी मुनियो के समीप सुनकर कुछ मनुष्यो को यह ज्ञात होता है कि "यह त्रसकायिक जीवो की हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।"

फिर भी सुख-सुविधा मे आसक्त मनुष्य नाना प्रकार के शस्त्रो से त्रसकायिक जीवो का समारभ करता है। त्रसकाय का समारभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के जीवो का भी समारभ/हिसा करता है।

मै कहता हूँ–

कुछ मनुष्य अर्चा (देवता की बलि, औषधि या शरीर के शृगार) के लिए जीव-हिसा करते है; कुछ चर्म के लिए, कुछ माँस के लिए, कुछ रक्त के लिए; कुछ हृदय के लिए एव पित्त, चर्बी, पख, पूँछ, केश, सींग, विषाण (हाथी का दॉत), दॉत, दाढ, नख, स्नायु, अस्थि (हड्डी) और अस्थिमज्जा के लिए प्राणियो की हिसा करते हैं। कुछ किसी प्रयोजनवश, कुछ निष्प्रयोजन (व्यर्थ ही) जीवों का वध करते हैं।

कुछ व्यक्ति (इन्होने मेरे स्वजनादि की हिसा की थी) इस कारण (प्रतिशोध की भावना) से हिसा करते है। कुछ व्यक्ति (यह मेरे स्वजन आदि की हिसा कर रहा है) इस कारण (प्रतीकार की भावना से) हिसा करते हैं। कुछ व्यक्ति (यह मेरे स्वजनादि की हिसा करेगा) इस कारण (भावी आतक/भय की सभावना या आशका) से हिसा करते है।

VARIOUS REASONS FOR HARMING MOBILE-BODIED BEINGS

53. Properly understandıng (the bad consequences of violence), he (a dıscıplıned seeker) indulges in *adanıya* (practıcing ascetic-dıscıplıne).

By listening to (the sermon of) *Bhagavan* or *anagars* (ascetics) it becomes known (to some humans) that "this (violence towards mobile-bodied beings) is a *granthi* (a knot or the cause of *karmic* bondage); this is fondness (illusion); this is (the cause of) death; and this is (the passage to) hell as well.

A person who (in spite of this) has cravings (for pleasures and comforts), employing various types of *shastras* (weapons) in mobile-bodied beings related violent activities, causes harm to mobile-bodied beings (Such person) Destroys not only mobile-bodied beings but also many other types of beings.

I say—

Some people slay beings (animals) for their bodies (to offer as sacrifice before a deity, to prepare medicines, or for cosmetic use) Others do it to get leather, flesh, blood, heart, bile, fat, feathers, tail, hair, horns, tusks, teeth, molars, nails, sinews, bones and bone-marrow Some slay with a purpose and others without any purpose

Some kill (with a feeling of vengeance) because a being attacked (their kinfolk) Some kill (for protection) because a being attacks (their kinfolk) Some kill (due to impending danger) because a being may attack (their kinfolk)

५४. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति।

५५. त परिण्णाय मेहावी णेव सय तसकायसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं तसकायसत्थ समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे तसकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

५६. जस्सेते तसकाय-समारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे।

त्ति बेमि।

॥ छट्ठो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

५४ जो त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है, वह इन आरम्भजनित कुपरिणामों से बच नही सकता।

जो त्रसकायिक जीवों की हिंसा नहीं करता है, वह इन आरम्भो से मुक्त रहता है।

५५. यह जानकर बुद्धिमान् मनुष्य स्वयं त्रसकाय-शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से समारंभ न करवाए, समारंभ करने वालों का अनुमोदन भी न करे।

५६. जिसने इन त्रसकाय-सम्बन्धी समारभो (हिंसा के तथा कुपरिणामो आदि) को जान लिया, वही मुनि परिज्ञातकर्मा–हिसा-त्यागी होता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

॥ षष्ठ उद्देशक समाप्त ॥

54. He who uses weapons on mobile-bodied beings is not free of these sins (the blemish of harming and killing living beings)

He who does not use weapons on mobile-bodied beings is free of these sins.

55. Therefore knowing about this (the unexpressed sufferings of beings) one (wise man) should not harm mobile-bodied beings himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

56. He who has properly understood the violence related to mobile-bodied beings is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitude abandons violence)

—So I say.

● END OF LESSON SIX ●

सत्तमो उद्देसओ	सप्तम उद्देशक	LESSON SEVEN

आत्म-तुला-विवेक

५७. पहू एजस्स दुगुंछणाए। आयंकदंसी अहियं ति णच्चा।

जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ। जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ। एयं तुलमण्णेसिं।

इह संतिगया दविया णावकखंति जीविउं।

५७ सयमी पुरुष वायुकायिक जीवो की हिंसा से निवृत्त होने मे समर्थ हो जाता है। क्योकि वह हिसा मे आतक देखता है और उसे अहितकारी मानता है।

जो अध्यात्म (अन्तर् जगत्) को जानता है, वह बाह्य (संसार) को भी जानता है। जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है। इस तुला का अन्वेषण कर, चिन्तन कर !

इस (जिनशासन) में (जो मुनि) शान्ति को प्राप्त-(कषाय जिनके उपशान्त हो गये हैं) और द्रविक-दयार्द्र हृदय वाले है, वे वायुकायिक जीवो की हिसा करके जीना नहीं चाहते।

COMPARISON WITH SELF

57. A disciplined person becomes capable of abandoning violence against air-bodied beings, because he sees terror in violence and considers it harmful.

He who knows the inner self (spirituality) knows the outer (world) He who knows the outer (world) knows the inner self (spirituality) Explore this comparison with self, ponder over this !

Those (ascetics) who have found peace (pacified their passion) in this (Jain order) and are filled with clemency, do not wish to live by killing air-bodied beings.

विवेचन—जहाँ-जहाँ प्राणियो की प्रवृत्ति होती है वहाँ सर्वत्र वायु व्याप्त है। इसलिए यह जिज्ञासा उठती है कि क्या वायुकायिक जीवो की हिंसा से बच पाना शक्य है? इस जिज्ञासा का समाधान इन सूत्रो में दिया गया है कि मनुष्य वायुकाय की हिंसा से बच सकता है।

'एज' का अर्थ है–वायु, पवन। वायुकायिक जीवो की हिंसा निवृत्ति के लिए 'दुगुञ्छा'–जुगुप्सा शब्द का प्रयोग हुआ है। आगमो में प्राय: 'दुगुञ्छा' शब्द गर्हा, ग्लानि, लोक-निन्दा, प्रवचन- हीलना एव साध्वाचार की निन्दा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किन्तु यहाँ पर यह 'निवृत्ति' अर्थ का बोध कराता है।

इस सूत्र में हिंसा-निवृत्ति के तीन विशेष हेतुओ पर बल दिया गया है–

(१) **आतंक-दर्शन**–हिंसा से कष्ट, भय, उपद्रव एवं पारलौकिक दु ख आदि होता है, इस तथ्य का दर्शन करना।

(२) **अहित-चिन्तन**–हिंसा से आत्मा का अहित होता है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की उपलब्धि दुर्लभ होती है, इस पर चिन्तन करना।

(३) **आत्म-तुलना**–अपनी सुख-दु ख की भावना के साथ अन्य जीवो की तुलना करना। जैसे–मुझे सुख प्रिय है, दु ख अप्रिय है, वैसे ही दूसरे जीवो को भी सुख प्रिय है, दु ख अप्रिय है। यह आत्म-तुलना या आत्मौपम्य की भावना है।

अहिसा का पालन भी अधानुकरण वृत्ति से अथवा मात्र पारम्परिक नही होना चाहिए, किन्तु ज्ञान और करुणापूर्वक होना चाहिए तथा अहिसा की भावना को सस्कारबद्ध बनाना चाहिए यह उक्त तीन हेतुओ का फलितार्थ है।

जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है–इस सूत्र पर कई दृष्टियो से चिन्तन किया जा सकता है–

(१) अध्यात्म का अर्थ है–आत्मा का स्वरूप-बोध। चेतन के स्वरूप का बोध हो जाने पर इसके प्रतिपक्ष 'जड' का स्वरूप-बोध स्वय ही हो जाता है। एक पक्ष को सम्यक् प्रकार से जानने वाला उसके प्रतिपक्ष को भी सम्यक् प्रकार से जान लेता है।

(२) अध्यात्म का एक अर्थ है–आन्तरिक जगत् अथवा जीव की मूल वृत्ति–सुख की इच्छा, जीने की भावना। जो अपनी इन वृत्तियो को पहचान लेता है, वह बाह्य अर्थात् अन्य जीवो की इन वृत्तियो को भी जान लेता है। अर्थात् स्वय के समान ही अन्य जीव सुखप्रिय एव शान्ति के इच्छुक हैं, यह जान लेना वास्तविक अध्यात्म है। सब जीवो मे समान चेतना का दर्शन करने से आत्म-तुला की धारणा सपुष्ट होती है।

शान्ति-गत का अर्थ है–जिसके कषाय, विषय, तृष्णा आदि शान्त हो गये है।

द्रविक का अर्थ है–करुणा से भीगा हुआ अन्त करण। टीकाकार ने 'द्रविक' का अर्थ किया है–करुणाशील संयमी पुरुष। वह हर समय शान्त रहता है।

Elaboration—Wherever beings exist air pervades This gives rise to a natural doubt—is it possible to avoid violence against air-bodied

beings ? This doubt has been cleared here and it has been established that man can avoid violence against air-bodied beings

'Ej' means air, wind For abandoning violence of air-bodied beings the word used is *dugumchha* or *jugupsa* In *Agams* this word has been generally used to convey the meanings—contempt, self-pity, infamy, loose talk and criticism of ascetic conduct But here it means abandoning

In this paragraph emphasis has been laid on three special means of avoiding violence—

(1) Visualizing the terror—To know and understand the fact that violence breeds distressful conditions like pain, fear, disturbances, and miseries in the next birth

(2) Ponder over harms—To ponder over the fact that violence is detrimental to soul and makes the progress towards right knowledge, perception or faith and conduct very difficult

(3) Comparability with self—The awareness of concordance of one's own feelings of pleasure and pain with that of other beings For example—"I like pleasure and dislike pain In the same way other beings too like pleasure and dislike pain " This is the attitude of comparing self with others

The code of *ahimsa* should not be observed as a blind faith or just traditionally, it should be observed with knowledge and compassion Also the feeling of *ahimsa* should be infused into *samskar* (temperament or second nature) That is practical significance of the said three means of avoiding violence

He who knows the inner self (spirituality) knows the outer (world) This statement can be analyzed from various angles

(1) *Adhyatma* (spirituality or spiritualism) means the awareness of the form of the self When one knows the form of the self or *chetan* (the life force or the living) he automatically knows about the form of its antithesis, matter or *jad* (the material force or the non-living) One who properly knows a concept, also properly knows its contrary.

(2) One meaning of *Adhyatma* is 'the inner world' or 'the basic nature of a being', which happens to be the desire for pleasure, the desire to live One who knows this basic nature of his own self also becomes aware of the outer world or the common basic nature of other beings In other words, true spirituality is to know that, like one's own self, other beings also love pleasure and desire peace By being conscious of the sameness of chetana in all beings, the feeling of similitude or identity with self is strengthened

Shanti-gat means 'one whose passions, desires, cravings and other such feelings have been pacified '

Dravik means 'a mind saturated with compassion ' The commentator *(Tika)* has interpreted *dravik* as—a compassionate disciplined individual He is always serene

वायुकायिक जीव-हिसा-वर्जन

५८ लज्जमाणा पुढो पास। 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहि सत्थेहिं वाउ-कम्म-समारंभेणं वाउसत्थ समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

५९. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेदिता–इमस्स चेव जीवियस्स परिवदंण-माणण-पूयणाए जाई-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेउ से सयमेव वाउसत्थ समारंभति, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा वाउसत्थ समारंभंते समणुजाणति।

तं से अहियाए, तं से अबोहीए।

५८. तू देख ! प्रत्येक सयमी पुरुष हिसा मे लज्जा का अनुभव करता है। उन्हे भी देख, जो 'हम गृहत्यागी है' यह कहते हुए विविध प्रकार के शस्त्रो/साधनो से वायुकाय का समारंभ करते है। वायुकाय-शस्त्र का समारभ करते हुए अन्य अनेक प्राणियो की हिसा करते है।

५९. इस विषय मे भगवान ने परिज्ञा/विवेक का उपदेश किया है। कोई मनुष्य, इस वर्तमान जीवन के लिए, प्रशसा, सन्मान और पूजा पाने के लिए, जन्म, मरण और मोक्ष के लिए; दु:ख का प्रतीकार करने के लिए स्वय वायुकाय के जीवो की हिसा करता है, दूसरों से हिसा करवाता है तथा हिसा करने वालो का अनुमोदन करता है।

वह वायुकायिक हिंसा, उसके अहित के लिए होती है। वह हिसा, उसकी अबोधि का कारण होती है।

CENSURE OF HARMING AIR-BODIED BEINGS

58. See ! All disciplined persons feel ashamed (of violence towards air-bodied beings). (Also watch those) who pretend to be homeless. They indulge in sinful activities related to air-bodied beings with various types of weapons. Along with, they also destroy air-bodied beings and various other types of beings.

59. *Bhagavan* has revealed the truth about this. When a person, for the sake of his life, praise, prestige and worship; birth, death and liberation; and removal of sorrows, (for these reasons) himself acts sinfully, causes others to act sinfully, or approves of others acting sinfully against air-bodied beings

That (sinful act) is detrimental to him. That is the cause of his ignorance

विवेचन–वायुकाय के शस्त्र के विषय में अनेक प्रकार की मान्यताएँ हैं। निर्युक्ति (१७०) में निम्न पाँच शस्त्र बताये गये हैं–

"विअणे य तालवंटे, सुप्पसियपत्त चेलकण्णे य।
अभिधारणा य बाहि गंधग्गी वाउसत्थाई॥"

व्यजन–पंखा, ताल वृत–ताड का पखा, चामर-पत्र तथा वस्त्र का छोर, पसीने से लथपथ शरीर पर हवा का स्पर्श (अभिधारणा), गध–चन्दन, खस आदि की सुगन्ध, अग्नि की उष्णता आदि। निशीथ भाष्य मे कहा है–एक वायु दूसरी वायु का शस्त्र है।

Elaboration—About the weapons against air-bodied beings there are many concepts In *Niryukti* (170) following five weapons have been mentioned—

Vyajan (a fan), *Taal vrint* (a palm-leaf fan), whisk, end of a piece of cloth, the touch of wind on a perspiring body, fragrance, heat of a fire, etc In *Nishith Bhashya* it is said that one type of air is weapon for other type of air

६०. से तं सबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

इच्चत्थं गढिए लोए। जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्म-समारंभेणं वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

६०. वह (मुनि) हिसा को भली प्रकार से समझता हुआ संयम मे समुपस्थित हो जाता है।

भगवान के या गृहत्यागी मुनियो के समीप सुनकर उन्हें ज्ञात होता है कि यह हिसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।

फिर भी सुख-सुविधा मे आसक्त मनुष्य विविध प्रकार के शस्त्रो द्वारा वायुकाय की हिसा करता है। वायुकाय की हिसा करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के जीवो की भी हिसा करता है।

60. Properly understanding (the bad consequences of violence), he (a disciplined seeker) indulges in *adaniya* (practicing ascetic-discipline)

By listening to (the sermon of) *Bhagavan* or *anagars* (ascetics) it becomes known (to some humans) that "this (violence towards air-bodied beings) is a *granthi* (a knot or the cause of *karmic* bondage), this is fondness (illusion), this is (the cause of) death, and this is (the passage to) hell as well"

A person who (in spite of this) has cravings (for pleasures and comforts), employing various types of *shastras* (weapons) in air-bodied beings related violent activities, causes harm to air-bodied beings (Such person) Destroys not only air-bodied beings but also many other types of beings

६१. से बेमि–संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति य।

फरिस च खलु पुट्ठा एगे सघायमावज्जंति। जे तत्थ संघायमावज्जंति ते तत्थ परियावज्जंति।

जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायंति।

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति।

६२. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं वाउसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे वाउसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

जस्सेते वाउसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिणायकम्मे।

त्ति बेमि।

६१ मैं कहता हूँ–(जो) संपातिम–उडने वाले प्राणी होते हैं, वे वायु से प्रताड़ित होकर नीचे गिर जाते है।

कुछ प्राणी वायु का स्पर्श/आघात होने से सिकुड जाते हैं। जब वे वायु-स्पर्श से सिकुड जाते है, तब वे मूर्च्छित हो जाते हैं।

जब वे जीव मूर्च्छा को प्राप्त होते है तो वहाँ मर भी जाते हैं।

जो यहॉ वायुकायिक जीवों की हिसा करता है, वह इन तत्सम्बन्धी हिसा की प्रवृत्तियों में अलिप्त नही रह सकता।

जो वायुकायिक जीवो की हिसा नही करता, वास्तव मे उसने आरम्भ को जानकर त्याग दिया है।

६२. यह जानकर बुद्धिमान् मनुष्य स्वय वायुकाय का समारभ नही करे। दूसरों से वायुकाय का समारभ न करवाए, वायुकाय का समारंभ करने वालो का अनुमोदन न करे।

जिसने वायुकाय-सम्बन्धी शस्त्र-समारभ को जान लिया है, वही मुनि परिज्ञातकर्मा है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

61. I say—The beings which fly fall down when hurt by air.

Some beings shrivel when they come in contact with air When they shrivel they also lose their sense

When they lose their sense they sometimes die.

He who uses weapons on air-bodied beings is not free of these sins (the blemish of harming and killing living beings)

He who does not use weapons on mobile-bodied beings is free of these sins.

62. Therefore knowing about this (the unexpressed sufferings of beings) one (the wise man) should not harm air-bodied beings himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

He who has properly understood the violence related to the air-bodied beings is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitnde abandons violence).

—So I say

विरति-बोध

६३. एत्थंपि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति। आरंभमाणा विणयं वयंति। छंदोवणीया अज्झोववण्णा आरंभसत्ता पकरेति संगं।

से वसुमं सव्वसमण्णागयपण्णाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्म णो अण्णेसिं।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवणिकायसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहि छज्जीवणिकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवणिकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

जस्सेते छज्जीवणिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे।

त्ति बेमि।

॥ सत्तमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ सत्थ परिण्णा पढम अज्झयण सम्मतं ॥

६३. इस प्रसंग में तुम जानो ! जो साधु इन्द्रिय-विषय आसक्ति की भावना से बँधे हुए हैं वे आचार में रमण नही करते। वे स्वय आरंभ करते हुए भी दूसरो को सयम का उपदेश करते हैं।

वे स्वच्छन्दाचारी और विषयो मे आसक्त होते है। वे आरम्भ मे आसक्त रहते हुए, पुन -पुन· कर्म का संग–बन्धन करते हैं।

जो वसुमान् (ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्न से युक्त मुनि) समस्त विषयों को ग्रहण करने वाली सत्यग्राही प्रज्ञा से युक्त है; वह अपने अन्तःकरण से पापकर्म को अकरणीय मानता हुआ उस विषय में मन से चिन्तन भी न करे।

यह जानकर मेधावी मनुष्य स्वयं षट्-जीवनिकाय का समारंभ न करे। दूसरों से उसका समारंभ न करवाए, उसका समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे।

जिसने भलीभाँति षट्-जीवनिकाय-शस्त्र का प्रयोग समझ लिया और त्याग दिया है, वही मुनि परिज्ञातकर्मा कहलाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

॥ शस्त्र परिज्ञा : प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

FEELING OF RENUNCIATION

63. In this context know this—there are those (ascetics) who are trapped in cravings for sensual pleasures, they do not embrace the conduct (the true nature of the self). While still attached to sinful activities, they preach discipline to others.

They are reckless and infatuated with mundane pleasures. Indulging in sinful activities they keep on multiplying the bonds of *karmas*

The accomplished one (the ascetic who has acquired the gem that is knowledge-faith-conduct) is endowed with the truth seeking intelligence that envelopes all knowledge. With all sincerity he should accept that all sinful activity is forbidden and stop even thinking about that.

Therefore knowing about this (the unexpressed sufferings of six life-forms) the wise should not harm the six life-forms himself, neither make others do so, nor approve of others doing so

He who has properly understood the violence related to the six life-forms is a *parijnat-karma muni* (a discerning sage or an ascetic who with a discerning attitude abandons violence).

—So I say.

● END OF LESSON SEVEN ●

● SHASTRA PARIJNA : END OF FIRST CHAPTER ●

लोगविजओ : बीअं अज्झयणं
लोक-विजय : द्वितीय अध्ययन

आमुख

✦ द्वितीय अध्ययन का नाम लोक-विजय है।

✦ कुछ विद्वानो का मत है कि इसका प्राचीन नाम 'लोक-विचय' होना चाहिए।

✦ प्रस्तुत अध्ययन की सामग्री को देखते हुए 'विजय' तथा 'विचय' दोनो ही नाम सार्थक लगते है। क्योकि इसमें लोक–संसार का स्वरूप, शरीर की क्षणभगुरता ज्ञातिजनो की अशरणता, विषयो-पदार्थों की अनित्यता आदि का विचार करते हुए साधक को आसक्ति का बन्धन तोडने की हृदयस्पर्शी प्रेरणा दी गई है। आज्ञा-विचय, अपाय-विचय आदि धर्मध्यान के भेदो मे भी इसी प्रकार के चिन्तन की मुख्यता रहती है।

इस अध्ययन मे मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं–

✦ अपने भीतर विद्यमान लोभ-वृत्ति को सतोष के द्वारा जीते।

✦ जीवन, यौवन और शक्ति को प्रतिक्षण क्षीण होते देखकर सयम मे सदा अप्रमत्त रहे। जागरूकता द्वारा प्रमाद को जीते।

✦ साथ ही सयम मे पुरुषार्थ, अप्रमाद तथा साधना मे आगे बढ़ने की प्रेरणा, कषाय आदि अन्तरंग शत्रुओ को 'विजय' करने का उद्घोष भी इस अध्ययन में पद-पद पर मुखरित है।

✦ 'विचय'–ध्यान व निर्वेद का प्रतीक है।

✦ 'विजय'–पराक्रम और पुरुषार्थ का बोधक है। प्रस्तुत अध्ययन मे ध्यान एव पुरुषार्थ के दोनो ही विषय समाविष्ट हैं।

✦ निर्युक्ति मे लोक का आठ प्रकार से निक्षेप करके बताया है कि नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव, पर्याय के भेद से लोक आठ प्रकार का है। प्रस्तुत अध्ययन मे 'भाव-लोक' का सम्बन्ध है। इसलिए कहा है–

"भावे कसायलोगो, अहिगारो तस्स विजएण।" –१७५

भाव-लोक का अर्थ है–क्रोध, मान, माया एव लोभरूप कषायो का समूह। यहाँ उस भाव-लोक की विजय का अधिकार है। क्योकि कषाय-लोक पर विजय प्राप्त करने वाला साधक

काम-निवृत्त हो जाता है। और–"काम नियत्तमई खलु संसारा मुच्चई खिप्पं।"–१७७ काम–निवृत्त साधक संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

सार रूप में कहा जा सकता है प्रथम अध्ययन मे अहिंसा का मुख्य विषय रहा है तो द्वितीय अध्ययन मे अपरिग्रह या अनासक्ति पर मुख्य बल दिया गया है।

इस अध्ययन के छह उद्देशको में (निर्युक्ति गाथा १७२ के अनुसार) क्रमश निम्न विषयो का उदूबोधन है।

१ स्वजन आदि में आसक्ति नही करे।

२ सयम मे अरति अर्थात् उदासीनता या शिथिलता त्यागे।

३ गोत्र, जाति आदि का मद तथा हीन जाति का शोक न करे।

४ भोगो मे आसक्ति नही रखे।

५ संयम-यात्रा के निर्विघ्न निर्वाह के लिए लोकनिश्रा मे विहार करे।

६ सर्वत्र ममत्वभाव का त्याग करते हुए विचरे।

LOGVIJAO : BEEAM AJJHAYANAM
LOK VIJAYA : SECOND CHAPTER
CONQUEST OF THE WORLD

INTRODUCTION

- The title of the second chapter is **Conquest Of The World.**
- Some scholars are of the opinion that the name should read *'Lok Vichaya'*
- Looking at the contents of this chapter both *'vijaya'* and *'vichaya'* appear to be relevant This is because in this chapter the *lok* (world)—its form, the ephemeral nature of the body, non-efficacious nature of relations or social bonds, the impermanence of material things and pleasures etc —has been discussed and effective inspiration to break the bonds of infatuation has been given to the seeker In categories of meditation also, such as *ajna vichaya* and *apaya vichaya,* stress is given on such contemplations

The important topics discussed in this chapter are—

- One should win over the existing attitude of greed with the feeling of contentment
- Appreciating that every passing moment brings depletion in life, youth and energy one should remain ever alert in discipline Inactivity should be defeated by alertness
- Besides this, from every word effuses the declaration to conquer the inner enemies like passions, progress ahead in spiritual practices, and be alert and dynamic in discipline
- *'Vichaya'* is symbolic of meditation and detachment
- *'Vijaya'* points at valour and endeavour In this chapter meditation and valour both have been discussed

✦ In the commentary *(Niryukti)* the term *lok* has been categorized into eight types—*naam* (nomenclature), *sthapana* (existence or basis), *dravya* (matter), *kshetra* (area or place), *bhaav* (attitude or feeling), *bhav* (reincarnation) and *paryaya* (alternatives or transformations) This chapter is about *'bhaav lok'* or the world of feelings or attitudes Therefore it is mentioned—"The world of attitudes is the aggregate of passions like anger, conceit, illusion and greed Here the conquest over that is discussed " (175)

This is because the seeker who conquers this world of passions is free of lust or indulgences, and—"One who is free of indulgences soon gets liberated " (177)

In brief, it may be said that whereas the theme of the first chapter is *ahimsa,* the theme of the second chapter is stress on non-possession or detachment

The topics discussed in the six lessons of this chapter are as follows (according to verse 172 of *Niryukti*)—

1 Not to have fondness for relatives and others

2 To abandon apathy for and laxity in discipline

3 To be free of superiority complex of higher caste and inferiority complex of lower caste

4 To avoid craving for mundane pleasures

5 To move with care in this world in order to make the path of discipline free of hurdles

6. To move avoiding fondness in everything.

●●

पढमो उद्देसओ	प्रथम उद्देशक	LESSON ONE

ससार का मूल आसक्ति

६४. जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे।

इति से गुणट्ठी महया परियावेणं वसे पमत्ते। तं जहा–

माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, सुण्हा मे, सहि-सयण-संगंथ-संथुया मे, विवित्तोवगरण-परियट्टण-भोयण-अच्छायण मे।

इच्चत्थ गढिए लोए वसे पमत्ते।

अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो।

६४ जो गुण (इन्द्रियों का विषय) है, वह (कषायरूप संसार का) मूल स्थान–आधार है। जो मूल स्थान है, वह गुण है।

विषयार्थी पुरुष इस प्रकार अत्यधिक परिताप (भोग अभिलाषा) से प्रमत्त होकर जीवन बिताता है। जैसे कि–

"यह मेरी माता, मेरा पिता, मेरा भाई, मेरी बहन, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्र-वधू, मेरा सखा, मेरा स्वजन-सम्बन्धी-सहवासी, मेरे विविध प्रचुर उपकरण (अश्व, रथ, आसन आदि) परिवर्तन (देने-लेने की सामग्री) भोजन तथा वस्त्र हैं।

इस प्रकार मेरेपन (ममत्व) मे आसक्त हुआ पुरुष, प्रमत्त होकर उनके साथ निवास करता है।

वह आसक्त पुरुष दिन-रात चिन्ता एव तृष्णा से परितप्त रहता है। काल या अकाल मे (समय-बेसमय अर्थार्जन में) प्रयत्नशील रहता है। वह सयोग का अर्थी होकर, अर्थ का लोभी बनकर, लूट-पाट करने वाला चोर या डाकू बन जाता है। सहसाकारी–दु साहसी और बिना विचारे कार्य करने वाला हो जाता है। अनेक प्रकार की आशाओ मे उसका चित्त लगा रहता है। वह बार-बार शस्त्र प्रयोग करता है।

THE CAUSE OF THE WORLD : ATTACHMENT

64. That which is attribute (subject of sense organs) is the root or basis (cause of the world of passions) That which is root is the attribute

A person having desires for attributes (pleasures) leads a life in stupor of obsessions (longing for pleasures), such as—

"This is my mother, my father, my brother, my sister, my wife, my son, my daughter, my daughter-in-law, my friend, my kin, relative or cohabit, my various and numerous equipment (horse, chariot, seat etc), things for barter, food and dresses.

Thus captivated by the fondness of owning (things), an individual so stupefied lives with them

That captivated person is tormented day and night by cravings and worries Timely or untimely, he continues to work to earn. Becoming opportunistic and avaricious he turns into a bandit or a thief or a dacoit He develops into a daredevil and acts without thinking. He is obsessed with a variety of ambitions He employs weapons time and again

विवेचन–पाँच इन्द्रियो के विषय 'गुण' है। इष्ट विषय के प्रति राग और अनिष्ट विषय के प्रति द्वेष की भावना से कषाय की वृद्धि होती है और कषाय ही जन्म-मरण के मूल को सीचते है। आगम मे कहा है–

"चत्तारि एए कसिणा कसाया
सिचति मूलाइ पुणब्भवस्स" *(दशवैकालिक ८/४०)*

"ये चारों कषाय पुनर्भव–जन्म-मरण की जड को सीचते है।"

अत इन्द्रियो की विषयासक्ति ही ससार का मूल कारण है।

Elaboration—The subjects of five sense organs are called attributes The feelings of attachment for the desirable and aversion of the undesirable cause growth of passions And passions nourish the roots of rebirth or life and death, as is said—

"These four passions nourish the root of rebirth."

(*Dashavaikalik* 8/40)

Therefore the obsession for the pleasures of senses is the root cause of this world or the cycles of rebirth.

६५. अप्पं च खलु आउं इहमेगेसिं माणवाणं। तं जहा–सोयपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, चक्खुपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, घाणपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, रसपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, फासपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं।

अभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए तओ से एगया मूढभावं जणयंति।

जेहिं वा सद्धिं संवसति तेऽवि णं एगया णियगा पुव्विं परिवयंति, सो ऽवि ते णियगे पच्छा परिवएज्जा। णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा।

से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रतीए, ण विभूसाए।

इच्चेवं समुट्ठिए अहोविहाराए।

६५ फलस्वरूप इस संसार में कुछ मनुष्यो का आयुष्य अल्प होता है। जैसे–श्रोत्र-परिज्ञान के परिहीन (दुर्बल या क्षीण) हो जाने पर, चक्षु-परिज्ञान के परिहीन होने पर, घ्राण-परिज्ञान के परिहीन होने पर, रस-परिज्ञान के परिहीन होने पर, स्पर्श-परिज्ञान के परिहीन होने पर (वह अल्प आयु मे ही मृत्यु की ओर अग्रसर होते है)।

वय–अवस्था/यौवन तेजी से बुढ़ापे की ओर जा रहा है यह देखकर वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है और उसके पश्चात् वह एकदा (इन्द्रिय शक्ति नष्ट होने पर) मूढ़ भाव को प्राप्त हो जाता है।

वह जिनके साथ रहता है, वे पारिवारिक जन (पत्नी-पुत्र आदि) कभी उसका तिरस्कार करने लगते हैं, उसे कटु व अपमानजनक वचन बोलने लगते हैं। बाद मे वह भी उन स्वजनो की निन्दा करने लगता है। हे पुरुष ! वे स्वजन तुम्हारी रक्षा करने मे या तुझे शरण देने में समर्थ नही हैं। तू भी उन्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है।

वह वृद्ध मनुष्य न हँसी–विनोद के योग्य रहता है, न क्रीडा/खेलने के, न रति-सेवन के और न शृगार आदि के योग्य रहता है।

इस प्रकार वृद्ध अवस्था में होने वाली दशा का चिन्तन करके मनुष्य संयम-साधना (अहोविहार) के लिए प्रस्तुत (उद्यत) हो जाये।

AWARENESS OF ABSENCE OF PROTECTION

65. As a result of it the life-span of some humans in this world is short. Which means—when the faculty of hearing languishes, when the faculty of seeing languishes, when the faculty of smelling languishes, when the faculty of taste

languishes, and when the faculty of touch languishes (they inch towards death at an early age).

He gets worried when he realizes that his fast advancing age is nearing the autumn of his life. After that at a point (when the vigour of organs is lost) he becomes senile.

The members of his family (wife, son, etc.) become rude to him and use harsh and insulting language Later he also starts grumbling at them Know O man ! That those kinsmen are not capable of protecting you or giving you refuge. Neither are you capable of protecting them or giving them refuge

That old man becomes unfit to indulge in merriment, games, sex, or cosmetic embellishments

Contemplating thus about the conditions of old age, a man should prepare himself for practising discipline.

विवेचन—श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा होने वाला ज्ञान यहाँ स्रोत-प्रज्ञान कहा गया है। इसी प्रकार चक्षु-प्रज्ञान आदि का अर्थ है—देखकर, सूँघकर, चखकर, छूकर ज्ञान करने वाली इन्द्रियाँ या इन इन्द्रियो से होने वाला ज्ञान।

आगमो मे बताया है—मनुष्य का अल्पतम आयु एक क्षुल्लक भव (अन्तर्मुहूर्त्त मात्र) तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम प्रमाण होता है। इसमे संयम-साधना का समय अन्तर्मुहूर्त से लेकर देशोनकोटि-पूर्व तक का हो सकता है। साधना की दृष्टि से यह समय बहुत अल्प है। इस कारण यहाँ आयुष्य को अल्प बताया है।

वृद्ध अवस्था आने पर इन्द्रियो की शक्ति क्षीण होने लगती है। तब विषयों के प्रति आसक्ति बढ़ जाती है। इस कारण उसे मूढ भाव/व्याकुलता उत्पन्न होती है।

'त्राण' का अर्थ है रोग व जरा से रक्षा करना तथा 'शरण' का अर्थ है सुरक्षा देकर पोषण करना, आश्रय देना।

इस सूत्र में 'संयम' के अर्थ में 'अहोविहार' (अद्‌भुत विहार) शब्द का प्रयोग हुआ है। हिसा एवं परिग्रह में जीने वाले सामान्य मनुष्य की दृष्टि में संयम—आश्चर्यपूर्ण तथा असाधारण जीवन यात्रा होने से 'अहोविहार' कहा गया है।

Elaboration—For the information acquired through ears the term used here is *srot-prajnana* In the same way the terms like *chakshu-*

prajnana etc mean the sense organs of seeing, smelling, taste and touch or the information gathered through these

According to the *Agams* the minimum life-span of man is one *kshullak bhav* (only *antar-muhurt* or less than 48 minutes) and the maximum is three *palyopam* (a conceptual unit of time) Out of this the possible time for *samyam* (ascetic discipline) is between *antar-muhurt* to *deshonakoti-purva* (less than ten million *purva*, another conceptual unit of time) From the angle of spiritual practices, even this period is very small That is why the life-span of humans is said to be short

With old age the vigour of sense organs withers This results in increase of craving for sensual pleasures that leads to frustration and dotage

'Tran' means to protect from disease and weakness and *'sharan'* means to protect and nourish or to provide refuge

In this paragraph, for *'samyam'* or ascetic discipline the term used is *'ahovihar'* (strange life-style) To a man leading a life of violence and indulgences, disciplined life appears strange and unusual That is why the term *'ahovihar'* has been used

प्रमाद-परिवर्जन

६६. अंतरं च खलु इम संपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए।

वओ अच्चेइ जोव्वण च।

६७. जीविए इह जे पमत्ता। से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवेत्ता उत्तासयित्ता। अकडं करिस्सामि त्ति मण्णमाणे।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते वा ण एगया णियगा तं पुव्विं पोसेंति, सो वा ते णियगे पच्छा पोसेज्जा। नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा तुम पि तेसि नालं ताणाए वा सरणाए वा।

६६. इस जीवन को एक अन्तर–दुर्लभ अवसर समझकर अथवा अपनी अन्तर आत्मा की सप्रेक्षा कर धीर पुरुष मुहूर्त्त भर भी प्रमाद न करे (एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दे)।

वय–(बाल्यकाल आदि) अवस्थाएँ बीत रही हैं। यौवन चला जा रहा है।

६७. जो इस जीवन में प्रमत्त है (आसक्त है) वह हनन, छेदन, भेदन, प्रहार, ग्रामघात, उपद्रव और उत्त्रास (पत्थर आदि मारकर त्रास देना) आदि में प्रवृत्त रहता है। (वह इस प्रकार मनोरथ करता रहता है कि) जो आज तक किसी ने नहीं किया, वह 'अकृत काम मैं करूँगा'।

जिनके साथ वह रहता है, वे आत्मीय जन पहले कभी (बाल्य एव रुग्ण अवस्था में) उसका पोषण करते है। वह भी बाद में उनका पोषण करता है। (इतना स्नेह-सम्बन्ध होने पर भी) वे स्वजन तुम्हे त्राण या शरण देने के लिए समर्थ नही है। तुम भी उनको त्राण व शरण देने मे समर्थ नही हो।

ABANDONING STUPOR

66. Considering this life to be a mere gap or a scarce opportunity or with the awareness of the inner-self, the wise should not relax even for a muhurt (not waste even a moment).

Stage of life are passing away and so is age and youth

67. One who is under stupor (having attachment) indulges in killing, drilling, piercing, hitting, attacking villages, agitating, hitting by throwing objects and other such activities (He is driven by the desire that) I will do what has not been done before

At one time (during his childhood and ailing conditions) the kinfolk with whom he lives support him Later, he also supports them (In spite of this close kinship) those kinsmen are not capable of protecting you or giving you refuge Neither are you capable of protecting them or giving them refuge

६८ उवाइयसेसेण वा सन्निहि-सण्णिचओ कज्जइ इहमेगेसिं असंजयाणं भोयणाए।

तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति।

जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा ण एगया नियगा पुव्विं परिहरंति, सो वा ते नियगे पच्छा परिहरेज्जा।

नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा।

६८. (मनुष्य) उपभोग मे आने के बाद बचे हुए धन को पुत्र, पौत्रादि के भोग के लिए सन्निधि (–दूध, दही आदि का संग्रह) तथा सचय (–चीनी, घृत आदि पदार्थों का भण्डारण) करके सुरक्षित रखता है। उसे वह उनके भोजन के लिए उपयोग मे लेता है।

कभी (अति भोगोपभोग के कारण अथवा भोगकाल मे) उसके शरीर मे रोग की पीड़ा उत्पन्न होने लगती है।

जिन स्वजन-स्नेहियों के साथ वह रहता आया है, वे ही उसे (रोग आदि के कारण घृणा करके) पहले छोड़ देते हैं। बाद मे वह भी अपने स्वजन-स्नेहियो को छोड देता है।

हे पुरुष ! वे तेरी रक्षा करने और तुझे शरण देने में समर्थ नही है। और तू भी उनकी रक्षा व शरण के लिए समर्थ नहीं है।

68. (A man) after his own use saves (wealth), collects (things like milk and curd), stores (things like sugar and butter) and preserves them for his progeny He uses these to feed them

Some time (as a consequence of over indulgence or during that) ailments infest his body and cause pain

First the relatives with whom he lived abandon him (repulsed by his ailing condition) Later he too abandons them

Know O man ! Those kinsmen are not capable of protecting you or giving you refuge. Neither are you capable of protecting them or giving them refuge

आत्म-हित की साधना

६९. जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं। अणभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए, खणं जाणाहि पंडिए !

जाव सोय-पण्णाणा अपरिहीणा जाव णेत्त-पण्णाणा अपरिहीणा जाव घाण-पण्णाणा अपरिहीणा जाव जीह-पण्णाणा अपरिहीणा जाव फास-पण्णाणा अपरिहीणा, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम्मं समणुवासेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

६९. सुख और दुःख–प्रत्येक प्राणी का अपना-अपना होता है यह जानकर जो वय (यौवन एवं शक्ति) अभी बीती नही है, उसका विचारकर। हे पण्डित ! क्षण (समय) को/अवसर को पहचान।

जब तक तेरा श्रोत्र का परिज्ञान (श्रोत्रेन्द्रिय की शक्ति) क्षीण नही हुआ है, इसी प्रकार नेत्र-परिज्ञान, घ्राण-परिज्ञान, जिह्वा-परिज्ञान और स्पर्श-परिज्ञान अक्षीण है, तब तक इन विभिन्न परिज्ञानो के परिपूर्ण रहते हुए आत्म-हित के लिए अथवा मोक्ष के लिए सम्यक् प्रकार से प्रयत्न कर।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

BENEFIT OF THE SOUL

69. Realizing that every being has its own pleasure and pain, knowing the period of life (youth and vigour) not yet lost, O wise ! Recognize the moment (time or opportunity).

As long as your faculty of hearing has not languished, and also the faculties of seeing, smelling, taste and touch have not languished, equipped with all these faculties, you should properly work for the betterment or liberation of the soul

—So I say

विवेचन–जब तक शरीर स्वस्थ एवं इन्द्रिय-बल परिपूर्ण है, तब तक साधक आत्मार्थ अथवा मोक्षार्थ का सम्यक् अनुशीलन करता रहे।

'क्षण' शब्द का प्रयोग सबसे अल्प, निमेषमात्र काल के अर्थ में किया जाता है। किन्तु अध्यात्मशास्त्र मे 'क्षण' जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अवसर है। आचारांग टीका में 'क्षण' की अनेक दृष्टियो से व्याख्या की गई है। जैसे कालरूप क्षण–समय। भावरूप क्षण–अवसर। अन्य नय से भी क्षण के चार अर्थ किये हैं, जैसे–(१) द्रव्य क्षण–मनुष्य जन्म। (२) क्षेत्र क्षण–आर्य क्षेत्र। (३) काल क्षण–धर्माचरण का समय या प्रथम द्वितीय अवस्था। (४) भाव क्षण–उपशम, क्षयोपशम आदि उत्तम भावों की प्राप्ति।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Till a seeker is healthy and fully endowed with the vigour of all sense organs, he would continue the right endeavour for uplift of soul and consequent liberation.

The word *'kshan'* has been used to indicate the smallest fraction of time or a moment. But in the spiritual field *'kshan'* means an important opportunity In the commentary (*Tika*) of *Acharanga*, '*kshan*' has been defined from many different angles For example—in context of time *kshan* means *samaya* (the indivisible fraction of time), in context of attitude *kshan* means opportunity There are four other interpretations from different viewpoints—(1) *dravya kshan* means birth as a human being, (2) *kshetra kshan* means the area inhabited by *Aryas*, (3) *kala kshan* means the time of religious practices or its stages, and (4) *bhaav kshan* means attaining purity of attitude like *upasham* (the process of suppression of *karmas*), *kshayopasham* (the process of extinction-cum-suppression of *karmas*) and others

● **END OF LESSON ONE** ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

अरति एव लोभ का त्याग

७०. अरइं आउट्टे से मेहावी खणंसि मुक्के।

७१. अणाणाए पुट्ठा वि एगे णियट्टंति मदा मोहेण पाउडा।

'अपरिग्गहा भविस्सामो' समुट्ठाए लद्धे कामे अभिगाहइ। अणाणाए मुणिणो पडिलेहंति।

एत्थ मोहे पुणो पुणो सण्णा णो हव्वाए णो पाराए।

७० जो अरति से दूर हो जाता है, वह बुद्धिमान् है। वह (विषय-तृष्णा से) शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

७१. अनाज्ञा मे (जिन आज्ञा के विपरीत आचरण करने वाले) कोई-कोई (कामनाओ के वश होकर अथवा सयम जीवन में परीषह आने पर) वापस गृहवासी भी बन जाते है। उनकी बुद्धि–मोह से आच्छादित रहती है।

(कुछ पुरुष) "हम अपरिग्रही होगे।" ऐसा सकल्प करके सयम धारण करते है, किन्तु जब इन्द्रिय-विषयो के आकर्षण का अवसर उपस्थित होता है, तो उनमे फॅस जाते है। वे मुनि वीतराग-आज्ञा से बाहर (विषयो की ओर) देखने लगते है।

वे (विषयो की आसक्ति रूप) मोह मे बार-बार निमग्न होते जाते है। (इस दशा मे वे) न तो इस तीर हव्व (गृहवास) पर आ सकते है और न उस पार (श्रमणत्व) तक जा सकते है।

ABANDONING INDISCIPLINE AND GREED

70. One who gets away from indiscipline is wise He soon becomes free (of mundane cravings)

71. Under wrong influence (having conduct contrary to the tenets of the *Jina*) some (driven by their desires or when they face afflictions during the ascetic life) return to become householders Their wisdom remains obscured by fondness or attachment

(Some) accept ascetic discipline by resolving—"We shall remain free of attachments" But on the first opportunity of

facing sensual attraction they get captivated Such ascetics drift away (towards mundane pleasures) from rules laid down by the Detached (*Tirthankar*)

They sink deeper and deeper in fondness (in the form of infatuation for mundane pleasures) (In this state) they can neither reach this bank (householder's life) nor that bank (ascetic life)

विवेचन–संयम मे, निज स्वरूप मे रमण करना, आनन्द अनुभव करना 'रति' है। इसके विपरीत चित्त की व्याकुलता, उद्वेगपूर्ण स्थिति 'अरति' है। अरति से मुक्त होने वाला क्षणभर में–अर्थात् स्वल्प समय मे विषय/तृष्णा के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अरति-प्राप्त व्याकुल चित्त साधक की मनोदशा का चित्रण करते हुए कहा है–उसके मन में सयम-निष्ठा न होने से जब कभी विषय-सेवन का प्रसग आता है तो वह स्वय पर नियंत्रण नही कर सकता। वह बार-बार विषयो का सेवन करने लग जाता है और उसकी लालसा बढ़ती ही जाती है।

वह लज्जा, भय, परवशता आदि कारणो से मुनि-वेश छोडता भी नही और विषयासक्ति के वश हुआ विषयो की खोज या आमेवना भी करता रहता है। ऐसा पुरुष (मुनि) वेश मे गृहस्थ नहीं होता और आचरण मे मुनि नही होता। "**उभयभ्रष्टो न गृहस्थो नापि प्रव्रजित**।"–वह न इस तीर (गृहस्थ) पर आता है, और न उस पार (मुनिपद) पर पहुँच सकता है। वह दलदल में फँसे प्यासे हाथी की तरह या त्रिशंकु की भाँति बीच मे लटकता हुआ अपना जीवन नष्ट कर देता है।

Elaboration—'*Rati*' is to indulge in and enjoy ascetic discipline or the self The opposite of this or the agitated or excited mental state is '*arati*' One who is free of *arati* instantaneously comes out of the trap of desires or mundane pleasures

Describing the mental state of an agitated or indisciplined seeker it is said—in absence of sincerity of discipline, whenever he comes across an opportunity to enjoy mundane pleasures, he looses control over himself He indulges repeatedly in such enjoyments and his desires are ever increasing

He fails to leave the ascetic garb due to shame, fear and dependence on others and driven by his obsession, continues to explore for and indulge in mundane pleasures Such individual is neither a householder by garb nor an ascetic by conduct He can neither reach this bank (householder's life) nor that bank (ascetic life) He fritters away his life like a thirsty elephant caught in a swamp or a man in suspended animation

७२. विमुक्का हु ते जणा जे जणा पारगामिणो।
लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे णाभिगाहइ।
विणा वि लोभं निक्खम्म एस अकम्मे जाणइ पासइ।
पडिलेहाए णावकंखति। एस अणगारे त्ति पवुच्चइ।

७२. जो विषयो के पार चले जाते है, वे विमुक्त है।

अलोभ (सतोष) से लोभ को पराजित कर साधक काम-भोग प्राप्त होने पर भी उनका सेवन नही करता।

जो लोभ से निवृत्त होकर प्रव्रज्या लेता है, वह अकर्मा अर्थात् कर्मावरण से मुक्त होकर सब-कुछ जानता है, देखता है।

अनगार उसी को कहा जाता है जो विषय-कषायो आदि के परिणाम का विचार कर उनकी आकाक्षा नही करता।

VICTORY OVER GREED

72. Those who rise above mundane pleasures are the liberated ones

By defeating greed with contentment a seeker desists from indulging in mundane pleasures even when he has an opportunity

He who gets initiated after getting free of greed, comes out of the veil of *karmas* and sees and knows everything

Only he is called *anagar* (ascetic) who, considering the consequences of mundane indulgence and passions, desists from any desire for the same

विवेचन–अलोभ से लोभ को जीतना यह प्रतिपक्ष भावना का सिद्धान्त है। आचार्यो ने कहा है–"जैसे आहार-परित्याग करना ज्वर की औषधि है, वैसे ही लोभ-परित्याग (सतोष) करना तृष्णा की औषधि है।" चूर्णिकार ने यहाँ प्रश्न उठाया है–"ते पुण कह पारगामिणो।"–वे पार कैसे पहुँचते है? "**भण्णति–लोभ अलोभेण दुगुछमाणा।**"–लोभ को अलोभ से जीतता हुआ पार पहुँचता है।

आचार्य शीलांक कृत टीका में '**विणा वि लोभ**' के स्थान पर '**विणइत्तु लोभ**' पाठ भी है। चूर्णिकार ने '**विणा वि लोभं**' पाठ दिया है। दोनो पाठो से यह भाव ध्वनित होता है कि जो

लोभ-सहित दीक्षा लेते हैं वे भी आगे चलकर लोभ का त्यागकर कर्मावरण से मुक्त हो जाते हैं। और जो भरत चक्रवर्ती की तरह लोभमुक्त होकर दीक्षा लेते हैं वे भी कर्मरहित होकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि का क्षय कर ज्ञाता-द्रष्टा बन जाते हैं।

Elaboration—To win over greed through non-greed or contentment is the principle of contra-attitude or negation *Acharyas* have said—"Abandoning food intake acts as medicine for fever In the same way abandoning greed (contentment) acts as medicine for craving." The author of the *Churni* (commentary) has raised a question here—"How do they reach across ?" The answer is—"Conquering greed with contentment he reaches across "

In the *Tika* (commentary) by Acharya Sheelank we find ***'vinaittu lobham'*** in place of ***'vina vi lobham'***. The author of the *Churni* opts for the later one Both the alternatives convey that even those who get initiated when still enamoured with greed may also abandon greed later, and get free of the veil of *karmas* And those who, like Bharat Chakravarti, get initiated after abandoning greed also get free of the *karmas,* shed the veils obscuring knowledge and perception, and become all perceiving and all knowing

अर्थ-लोभी की वृत्ति

७३. अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाई, सजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो।

७४. से आयबले, से णाइबले, से मित्तबले, से पेच्चबले, से देवबले, से रायबले, से चोरबले, से अतिहिबले, से किवणबले, से समणबले। इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहि दंडसमायाणं सपेहाए भया कज्जइ, पावमोक्खो त्ति मण्णमाणे अदुवा आसंसाए।

७३. वह (विषय लोभी) रात-दिन परितप्त रहता है। काल या अकाल में सतत प्रयत्न करता रहता है। विषयो का संयोग प्राप्त करने का इच्छुक होकर वह धन का लोभी बनता है। चोर व लुटेरा बन जाता है। उसका चित्त व्याकुल व चचल बना रहता है। और वह पुनः-पुनः शस्त्र-प्रयोग (हिंसा व सहार) करता रहता है।

७४ वह शरीर-बल, ज्ञाति-बल, मित्र-बल, पारलौकिक-बल, देव-बल, राज-बल, चोर-बल, अतिथि-बल, कृपण-बल और श्रमण-बल आदि इन नानाविध कार्यों की पूर्ति लिए अनेक प्रकार के कर्मों (उपक्रमो) द्वारा दण्ड का प्रयोग करता है।

कोई अपेक्षा–कामनावश अथवा कोई भय से प्रेरित होकर हिसा आदि करता है। कोई पाप से मुक्ति पाने की भावना से हिंसा करता है तथा कोई किसी आशसा (अप्राप्त को प्राप्त करने की अभिलाषा) से हिसा-प्रयोग करता है।

THE TENDENCIES OF GREED FOR WEALTH

73. He (the greedy) suffers day and nıght. Timely or untımely he always keeps on workıng. Hıs desıre for mundane pleasures turns ınto greed for wealth He becomes a thief and a bandıt Hıs mind remaıns dısturbed and unstable and he habıtually uses weapons (for violence and destructıon)

74. He employs various means of oppressıon to accomplish various achıevements lıke strength of the body, strength of the kın, strength of frıendshıp, supernatural power, dıvine power, support of the state or the kıng, support of thieves, support of guests, support of the destıtute and support of *Shramans*

Some ındulge ın vıolence to fulfil desıres and others out of fear Some commıt vıolence for salvatıon from sıns and others due to some ambıtıon (desıre to attaın the unattaıned)

विवेचन–सूत्र ७४ मे हिसा के विविध प्रयोजनो की चर्चा है। चूर्णि एव टीका मे विस्तार के साथ बताया है–मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा के लिए विविध हेतुओ से हिसा करता है। जैसे–

(१) **आत्म-बल**–शरीर-बल–शरीर की शक्ति बढ़ाने के लिए मद्य, माँस आदि का सेवन करता है।

(२) **ज्ञाति-बल**–अपना पक्ष मजबूत करने के लिए स्वजन–सम्बन्धियो को धन आदि देकर शक्तिमान बनाता है।

(३) **मित्र-बल**–धन-प्राप्ति तथा प्रतिष्ठा-सम्मान आदि मानसिक तुष्टि के लिए मित्र-शक्ति को बढ़ाता है।

(४) व (५) **प्रेत्य-बल** तथा **देव-बल**–परलोक में सुख पाने के लिए तथा देवता आदि को प्रसन्न कर उनकी कृपा पाने के लिए यज्ञ, पशु-बलि, पिण्डदान आदि करता है।

(६) **राज-बल**–राजा का सम्मान एव सहारा पाने के लिए कूटनीतिक चाले चलता है। शत्रु आदि को परास्त करने मे सहायक बनता है।

(७) **चोर-बल**–चोर आदि के साथ साँठ-गाँठ करके, उन्हे सहयोग करके धन-प्राप्ति तथा आतंक जमाना चाहता है।

चित्र परिचय ८	Illustration No. 8

हिंसा के विविध प्रयोजन

से आयबले से णाइबले-मनुष्य अनेक प्रकार के प्रयोजनों से हिंसा करता है। जैसे-

१-आत्मबल-अपने शरीर को बलवान बनाने के लिए मांस, मदिरा, औषधि आदि खाता है।

२ ज्ञातिबल-मित्र, जाति और परिवार वालों को अपने अनुकूल रखने के लिए धन आदि देता है।

३ देवबल-देवी आदि को प्रसन्न करने के लिए बलि देता है।

४ राजबल-आजीविका आदि के लिए राजाओं को प्रसन्न करता है।

५ चोरबल-चोर, लुटेरे आदि को शस्त्र आदि से सहयोग कर धन प्राप्त करना चाहता है।

६ अतिथि, कृपण, श्रमण-बल-आदि को यश कीर्ति के लिए भोजन दान आदि देता है।

इस प्रकार विभिन्न प्रयोजनों से वह हिंसा करता रहता है। -२/२/७३

VARIOUS REASONS FOR VIOLENCE

Human beings commit violence for various reasons such as

1 Atma-bal--In order to make the body strong he consumes meat, alcohol, tonic, etc.

2 Jnati-bal--In order to strengthen his support he distributes money and favours to his friends, relatives and family members.

3. Dev bal--In order to please gods, etc. he indulges in animal sacrifice.

4. Raj-bal--To get favour and support from kings he pleases them.

5. Chor-bal--Through association with thieves and bandits and by assisting them he tries to acquire wealth.

6. Atithi, Kripan, Shraman-bal--Gives charity and donation to these to gain fame, glory and piety.

Thus he continues to indulge in violence for various reasons. --2/2/73

(८), (९) व (१०) अतिथि-बल, कृपण-बल तथा श्रमण-बल—अतिथि—मेहमान, भिक्षुक आदि; कृपण—अनाथ, अपंग, याचक; और श्रमण—आजीवक, शाक्य तथा निर्ग्रन्थ—इनको यश, कीर्ति और धर्म-पुण्य की प्राप्ति के लिए दान देता है। (देखें चित्र)

'सपेहाए' के स्थान पर तीन प्रयोग मिलते हैं-(१) सयं पेहाए—स्वयं विचार करके, (२) सपेहाए—विविध प्रकार से चिन्तन करके, (३) सपेहाए—किसी निजी स्वार्थ या अपेक्षा के कारण।

Elaboration—In paragraph 74 various factors inspiring violence have been discussed In the commentaries (*Churni* and *Tika*) various reasons for indulging in violence during one's life-time are discussed in greater detail For example—

(1) Atma-bal—Strength of the self or the body In order to make the body strong he consumes meet, alcohol and other such things

(2) Jnati-bal—Power of the family In order to strengthen his support he works to make his family members and relatives strong

(3) Mitra-bal—Power of friends To acquire wealth and prestige and to satisfy his ego he expands the circle of his friendship

(4) and (5) Pretya-bal and Dev-bal—Divine power For happiness in the next birth and to get favour of deities by pleasing them he indulges in *yajna*, animal sacrifice, charity in name of ancestors and other such deeds

(6) Raj-bal—Power of the state. To get support and honour from the king he indulges in diplomacy and conspiracies Helps the king to defeat his enemies

(7) Chor-bal—Power of thieves Through association with thieves and bandits and by assisting them he tries to acquire wealth or establish a reign of terror

(8), (9) and (10) Atithi-bal, Kripan-bal and Shraman-bal—**Atithi** means guest, mendicant, or other such people who visit a household, **Kripan** means orphan, disabled, beggar etc , and **Shraman** means *Ajivak, Buddhist* and *Nirgranth* or *Jain* ascetics He gives charity and donation to these to gain fame, glory and piety (see **Illustration**)

The word *'sapehaye'* is found in three different forms with similar meanings—(1) ***Sayam pehae***—after thinking himself, (2) ***Sampehae***—after deliberating in different ways, and (3) ***Sapehae***—due to some self interest or expectation

७५. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंड समारंभेज्जा, नेव अन्नं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवण्णं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभंतं समणुजाणेज्जा।

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए। जहेत्थ कुसले णोवलिंपेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

७५. मेधावी पुरुष यह जानकर स्वयं हिंसा न करे, दूसरो से हिंसा न करवाए तथा हिसा करने वाले का अनुमोदन न करे।

आर्य पुरुषो ने–तीर्थंकरो ने (अलोभ, अप्रमाद और अपरिग्रह का अथवा लोक-विजय का) यह मार्ग बताया है। कुशल पुरुष इन विषयो में लिप्त न हो।

–ऐसा मै कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

75. Knowing this the wise should not indulge in violence himself, neither make others do so, nor approve of others doing so.

The accomplished ones or *Tirthankars* have shown this path (of contentment, alertness, and detachment for conquering this world, *i.e*, liberation). Intelligent men should avoid these indulgences

—So I say

● END OF LESSON TWO ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

[जिस प्रकार अर्थ-संग्रह, पदार्थ-संग्रह तथा मित्र ज्ञाति आदि बल-सग्रह करके पुरुष सन्मान की इच्छा करता है, उसी प्रकार अपने गोत्र या जाति पर भी अहकार से दीप्त होता है। अत. यहाँ पर गोत्रवाद का निरसन किया गया है। आज के समय में इसे 'जातिवाद' के विरोध के परिप्रेक्ष्य मे देखा जा सकता है।]

[As a man seeks prestige through accumulating wealth, hoarding things, and amass power through enlisting support of family and friends, he also basks in the glory and pride of his clan or caste Therefore casteism has been defied here It can be seen in context of the modern day opposition to casteism]

गोत्रवाद का निरसन

७६ से असइं उच्चागोए, असइं णीयागोए। णो हीणे, णो अइरित्ते णो पीहए।

इति सखाए के गोयावादी ? के माणावादी ? कंसि वा एगे गिज्झे ?

तम्हा पंडिए णो हरिसे, णो कुज्झे।

७६ आत्मा अनेक वार उच्च गोत्र और अनेक बार नीच गोत्र में जन्म ले चुका है। इसलिए न तो कोई हीन है और न कोई अतिरिक्त/उच्च है। यह जानकर उच्च गोत्र की स्पृहा न करे।

इस सत्य को समझ लेने पर कौन गोत्रवादी होगा? कौन मानवादी होगा? और कौन किसी एक गोत्र/स्थान मे आसक्त होगा?

इसलिए विवेकशील मनुष्य (उच्च गोत्र प्राप्त होने पर) हर्षित न हो और (नीच गोत्र प्राप्त होने पर) कुपित न हो।

RENOUNCING CASTEISM

76. A soul has already been born many a time in higher caste and many a time in lower caste Therefore no one is either low or otherwise (high) Knowing this one should not crave for higher caste

After realizing this truth who will be a casteist ? Who will be concieted ? And who will have attachment for a particular caste or place ?

Therefore a discerning person should neither be pleased (when born to higher caste) nor indignant (when born to lower caste)

विवेचन–इस सूत्र में जाति व गोत्र आदि के प्रति अहकार अथवा हीनता के भावों से स्वयं को ग्रस्त न करने का उपदेश है। अनादिकाल से जो आत्मा कर्म के अनुसार भव-भ्रमण करता है, उसके लिए विश्व में कही ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ उसने अनेक बार जन्म धारण न किया हो। जैसा कहा है–

"न सा जाई न सा जोणी न तं ठाण न त कुल।
जत्थ न जाओ मओ वावि एस जीवो अणतसो॥"

–ऐसी कोई जाति, योनि, स्थान और कुल नहीं है, जहाँ पर यह जीव अनन्त बार जन्म-मृत्यु को प्राप्त न हुआ हो।

भगवतीसूत्र (१२/७) मे कहा है–"**नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे, जत्थ णं अय जीवे न जाए वा न मए वा वि।**"–इस विराट् विश्व मे परमाणु जितना भी ऐसा कोई प्रदेश नही है, जहाँ यह जीव न जन्मा हो, न मरा हो। फिर किस स्थान का वह अहकार करे ? किस स्थान के लिए दीनता अनुभव करे ? क्योंकि वह स्वय उन स्थानो पर अनेक बार जन्म ले चुका है। इस सत्य को जानकर मन मे समभाव की जागृति करे। मन को न तो अहकार से हर्षित होने दे, न अपमान के कारण कुपित होने दे।

Elaboration—This paragraph advises against superiority complex and inferiority complex caused by higher and lower status of one's caste For a soul which has been drifting through cycles of rebirth under the influence of *karmas* since time immemorial, there is no place in the world where it has not taken birth many times As is said—

"There is no caste, genus, place or clan where a being has not been born and died infinite times "

According to *Bhagavati Sutra*—"In this huge world there is no place even as tiny as an ultimate particle where a being has not been born and died." Then for which place he be proud ? And for which place he be dejected ? He himself has taken birth at all these places Knowing this reality he should strive for equanimity He should allow himself neither to be happy with pride, nor disgusted by insult

७७. भूएहिं जाण पडिलेह सायं।

समिए एयाणुपस्सी। तं जहा—अंधत्तं बहिरत्तं मूयत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं। सह पमाएणं अणेगरूवाओ जोणीओ संधेति, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदेइ।

७८. से अबुज्झमाणे हओवहए जाई-मरणं अणुपरियट्टमाणे।

जीवियं पुढो पियं इहमेगेसि माणवाणं खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं। आरत्तं विरत्तं मणिकुडल सह हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता।

ण एत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति।

संपुण्णं बाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेति।

७७ (हे आत्मन् !) तू जीवो के इष्ट-अनिष्ट कर्म-विपाक का विचार कर। प्रत्येक जीव को सुख प्रिय है।

जो सम्यग्दृष्टि है वह इस (कर्म-विपाक) को देखता है। जैसे—अन्धापन, बहरापन, गूँगापन, कानापन, लूला-लँगडापन, कुबडापन, बौनापन, कालापन, चितकबरापन (कुष्ट आदि चर्म रोग) आदि की प्राप्ति अपने ही प्रमाद (जनित कर्मवन्ध) के कारण होती है। वह अपने प्रमाद (जनित कर्मबन्ध) के कारण ही विविध योनियो मे जाता है और विविध प्रकार के दु खो का अनुभव करता है।

७८ वह कर्म के विपाक को नही समझता हुआ (शारीरिक दु खो से) हत तथा (मानसिक पीडाओ से) उपहत (पुन -पुन पीडित) होता हुआ बार-बार जन्म-मरण का परिभ्रमण करता है।

जिनको यह असयत जीवन ही प्रिय लगता है वे मनुष्य, क्षेत्र (खुली भूमि) तथा वास्तु (भवन—मकान) आदि मे ममत्व रखते है। वे रग-बिरगे वस्त्र, मणि, कुण्डल, हिरण्य-स्वर्ण और स्त्रियो का परिग्रह कर उनमे ही आसक्त रहते है।

ऐसे (परिग्रही) पुरुष न तप कर मकते हैं, न दम (इन्द्रिय-निग्रह) और न नियम कर सकते है।

परिग्रह मे आसक्त अज्ञानी, ऐश्वर्यपूर्ण निर्विघ्न जीवन जीने की अभिलाषा करता है। (बार-बार सुख-प्राप्ति की आशा रखता है। किन्तु सुखो की प्राप्ति न होने पर वह) मूढ़ व्यथा से पीडिन हुआ विपर्यास (सुख के बदले दु ख) को ही प्राप्त होता है।

FAULTS OF STUPOR AND ATTACHMENT

77. (O soul !) Think about the fruits of good and bad *karma* of beings Every being loves happiness

The sagacious sees this (fruition of *karmas*) For example—becoming blind, deaf, dumb, one-eyed, without limbs, hunchback, black, spotted (due to skin disease or leprosy) and getting other deformities is because of (the bondage of *karma* caused by) one's own stupor. Only because of (the bondage of *karma* caused by) his own stupor he drifts (takes birth) into various *yonis* (genus) and suffers a variety of miseries

78. Not understanding the fruition of *karmas*, tortured (physically) and tormented (mentally), he continues to drift in cycles of rebirth

Those people who love only this indisciplined life, they have fondness for area (open land) and constructions (buildings). They acquire colourful dresses, gems, earrings, gold and women and remain obsessed with them

Such (attached) people can neither indulge in austerities nor discipline their senses or follow any rules

An ignorant attached to possessions desires to live an opulent life without any disturbance (and with a desire to enjoy again and again) (But when he fails to acquire happiness) that fool gets the opposite and is tormented by the pain

विवेचन–ससार में जितने भी दु ख हैं, स्वयं के प्रमाद के कारण ही होते है। जैसा आगम में कहा है–"**दुक्खे केण कडे ? जीवेण कडे। पमाएण।**"–दु ख किसने किया ? जीव ने ही अपने प्रमाद से किया है।

विषय आदि मे आसक्त–प्रमत्त मनुष्य परिग्रह का संग्रह करता है, उनमे अत्यन्त गृद्ध हो जाता है। ऐसा व्यक्ति तप (अनशनादि), दम (इन्द्रिय-निग्रह, प्रशमभाव), नियम (अहिंसादि व्रत आदि) का आचरण नही कर सकता, अगर लोक-प्रदर्शन के लिए करता भी है तो वह सिर्फ ऊपरी है, उसके तप, दम, नियम निष्फल–फलरहित होते हैं।

Elaboration—All the miseries in this world are caused by one's own stupor As is said in the *Agams*—"Who brought about misery ? A being did that through his stupor."

An illusioned man having fondness for mundane pleasures hoards possessions and gets infatuated with them Such person cannot indulge in activities like austerities (fasting etc), discipline (self control, suppression of desires etc) and following rules (vows like *ahımsa*) If at all he does it for popularity it is only superficial All such practices by him are useless and bear no fruit.

७९. इणमेव णावकंखंति जे जणा धुवचारिणो।
जाती-मरण परिण्णाय चरे संकमणे दढे॥

णत्थि कालस्स णागमो।

सव्वे पाणा पिआउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा। सव्वेसि जीविय पिय।

७९ जो पुरुष ध्रुवचारी अर्थात् मोक्ष की ओर गतिमान होते है, वे ऐसा विपर्यासपूर्ण जीवन नही चाहते। वे जन्म-मरण को जानकर दृढ़तापूर्वक मोक्ष के पथ पर बढ़ते रहे।

काल (मृत्यु) का अनागम नही है (मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है)।

सभी प्राणियो को आयुष्य प्रिय है। सभी सुख का आस्वाद चाहते है। दु ख से सब घबराते है। उनको वध (मृत्यु) अप्रिय है, जीवन प्रिय है। वे जीवित रहना चाहते है। सबको जीवन प्रिय है।

79. Those who are firm in their conduct or who move towards liberation do not wish a life of such contradictions Understanding about life and death they should resolutely tread the path of liberation

Death is inevitable (it can come any moment).

All beings love life All like to taste happiness. All are afraid of misery They dislike death and like life They want to live. Every one loves life

विवेचन—इस सूत्र मे आया 'ध्रुव' शब्द मोक्ष का वाचक है। आगमों में मोक्ष के लिए 'ध्रुव स्थान' का प्रयोग कई जगह हुआ है। जैसे—

"अत्थि एगं धुवं ठाणं।" *(उत्तरा २३/८१)*

ध्रुव शब्द मोक्ष के कारणभूत ज्ञानादि का भी बोधक है।

यहाँ एक शका उठ सकती है परिग्रह के प्रसग में 'सबको सुख प्रिय है, दु.ख अप्रिय है' यह कहने का क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह तो अहिंसा का सिद्धान्त है। इसका समाधान इस प्रकार है—

"परिग्रह का लोभी मनुष्य स्वयं के सुख के लिए दूसरो के सुख-दु ख की परवाह नही करता, तथा शोषक तथा उत्पीडक भी बन जाता है। इसलिए परिग्रह के साथ हिसा का अनुबध माना गया है। इस दृष्टि से परिग्रही को भी यह बोध होना आवश्यक है कि जैसे मुझे सुख प्रिय है, वैसे ही दूसरों को भी। अत वह दूसरों के सुख को लूटकर स्वय का सुख न चाहे।"

Elaboration—The word *'dhruva'* points at liberation In the *Agams* *'dhruva sthan'* has been frequently used for liberation For example—

"atthi egam dhuvam thanam " (*Uttaradhyayan* 23/81)

Dhruva also means knowledge and other things that lead to liberation

A doubt arises here—What is the meaning of stating that all beings love pleasure and detest pain in context of attachment, when this principle is about *ahimsa* The explanation is—

"A man having avarice, while seeking pleasure, does not care for pleasure or pain of others Consequently he also becomes tormentor and exploiter Therefore it is believed that violence is connected with possessions Thus it is necessary even for a person obsessed with attachment to understand that as he likes pleasure others too like pleasure Therefore he should not seek pleasure by depriving others "

परिग्रह से दु ख-वृद्धि

८०. त परिगिझ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं ससिचियाण तिविहेणं जा ऽवि से तत्थ मत्ता भवइ अप्पा द बहुगा वा।

से तत्थ गढिए चिट्ठइ भोयणाए।

तओ से एगया विप्परिसिट्ठ संभूयं महोवगरणं भवइ।

तं पि से एगया दायादा विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरति, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सति वा से, विणस्सति वा से, अगारदाहेण वा से डज्झति।

इति से परस्सऽट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासुवेइ।

मुणिणा हु एयं पवेइयं।
अणोहंतरा एए, णो य ओहं तरित्तए।
अतीरंगमा एए, णो य तीरं गमित्तए।
अपारंगमा एए, णो य पारं गमित्तए।
आयाणिज्जं च आयाय तम्मि ठाणे ण चिट्ठइ।
वितहं पप्पऽखेयण्णे तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ॥

८०. जो परिग्रह मे आसक्त होता है, वह द्विपद (मनुष्य–कर्मचारी) और चतुष्पद (पशु आदि) का परिग्रह करके जबर्दस्ती अपना काम करवाता है। फिर धन का संग्रह–सचय करता है। फिर त्रिविध (अपने, दूसरो के और दोनो के सम्मिलित) प्रयत्नों से (अथवा अपनी पूर्वार्जित पूँजी, दूसरो का श्रम तथा बुद्धि–तीनो के सहयोग मे) उसके पास अल्प या बहुत मात्रा में धन सग्रह हो जाता है।

वह उस धन मे गृद्ध–आसक्त हो जाता है और भोग के लिए उसकी रखवाली करता है।

भोगोपभोग करने के बाद बची हुई विपुल अर्थ-सम्पदा से वह महान् उपकरण वाला–सपत्तिशाली बन जाता है।

एक समय ऐसा आता है, जब उस सचित सम्पत्ति मे से दामाद, बेटे, पोते हिस्सा बॅटा लेते है, चोर चुरा लेते है, राजा उसे छीन लेते है। या वह नष्ट-विनष्ट हो जाती है। या कभी गृह-दाह–आग लगने से जलकर समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार दूसरो के लिए क्रूर कर्म करता हुआ वह अज्ञानी पुरुष अपने स्वयं के लिए दु ख उत्पन्न करता है, फिर उस दु ख से मूढ़ हो वह (सुख की खोज करता है, किन्तु अन्त मे उसके हाथ दु ख ही लगता है इस प्रकार) विपर्यास भाव को प्राप्त होता है।

भगवान ने यह सत्य प्रकट किया है–

(जो क्रूर कर्म करता है, वह मूढ़ होता है। मूढ़ मनुष्य सुख की खोज मे बार-बार दुःख प्राप्त करता है।)

ये मूढ़ मनुष्य ओघ (ससार-प्रवाह) को तैरने मे समर्थ नही होते। (वे प्रव्रज्या लेने मे असमर्थ रहते है।)

वे अतीरगम है अर्थात् तीर–किनारे तक पहुँचने में (मोह-कर्म का क्षय करने मे) समर्थ नही होते।

वे अपारंगम हैं, पार (ससार के उस पार–निर्वाण तक) पहुँचने मे समर्थ नहीं होते।

परिग्रह मे आसक्त पुरुष आदानीय–सत्य मार्ग को प्राप्त करके भी उस स्थान मे ठहर नही पाता। अपनी मूढ़ता के कारण वह वितथ–असत्य मार्ग को प्राप्त कर उसी में ठहर जाता है।

AVARICE ADDS TO MISERY

80. One who ıs attached to possessions, employs men and animals and forces them to do his work Then he starts acquırıng wealth With three types of efforts (by hımself, by others and by both or hıs wealth combıned wıth skıll and labour of others) he hoards meager or enormous wealth

He is obsessed wıth that wealth and protects ıt for enȷoyments

With the large wealth saved after hıs enȷoyments, he becomes enormously rıch and with much belongıngs

A tıme comes when hıs son-ın-law, sons and grandsons take away shares of that collected wealth, thıeves steal, or kıngs confiscate ıt Or ıt ıs lost or destroyed Or ıt turns to ashes ıf the hıs catches fire.

Thus ındulgıng in cruel deeds for others, that ıgnorant, ın fact, creates mıserıes for hımself In the end he gets the opposite (strıvıng for pleasure he, ın the end, gets paın) and ıs stupefied by grıef

Bhagavan has revealed this truth—

(He who does cruel deeds ıs an ıgnorant An ıgnorant, ın hıs search for pleasure, gets mıseries tıme and agaın)

These ıgnorant are not capable of swımmıng (ın the current of life) (They are not capable of gettıng ınıtıated.)

They are not capable of reachıng the bank (shedding the *karma* causıng fondness)

They are not capable of crossıng (the ocean of lıfe to get liberated).

A man obsessed with possessions fails to stay on the true path even when he finds it. Because of his stupidity he finds the wrong path and sticks to it

विवेचन–चूर्णिकार ने 'आयाणिज्ज' का अर्थ–पचविहो आयारो–पाँच प्रकार का आचार अर्थ किया है कि वह परिग्रही मनुष्य ज्ञानाचार, दर्शनाचार आदि आचार में स्थिर नहीं हो सकता।[9]

Elaboration—The author of the *Churnı* (commentary) has ınterpreted *'ayanıjja'* as five types of conduct Thıs means that an attached person cannot stıck to the five types of conduct including conduct of knowledge and conduct of perceptıon.

(*Acharanga* edıted by Jambuvıjaya jı)

८१. उद्देसो पासगस्स णत्थि।

बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ।

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

८१ जो तत्त्व को देखता है वह पश्यक है, उसके लिए उपदेश की आश्यकता नहीं होती।

अज्ञानी पुरुष स्नेह-बन्धन मे बँधा रहता है, काम-सेवन मे आसक्त होता है, वह कभी दु ख का शमन नही कर पाता। दु खो के आवर्त मे (चक्र में) बार-बार भटकता रहता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

81. He who sees truth (fundamentals) needs no preachıng.

An ıgnorant ıs captivated by affectıon and infatuated with lust He can never be rıd of sorrows He contınues to whirl around ın the whirlpool of sorrows.

—So I say

● END OF LESSON THREE ●

९ आचारांग (जम्बूविजय जी) टिप्पण, पृष्ठ २३

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

काम-भोग जनित पीडा

८२. तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति।

जेहिं वा सद्धिं सवसति ते वा णं एगया णियया पुव्वि परिवयति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवएज्जा।

नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुम पि तेंसि नाल ताणाए वा सरणाए वा।

८२ (उस अर्थ-सग्रह करने वाले मनुष्य के जीवन मे) एक समय ऐसा आता है जब शरीर मे अनेक प्रकार के रोग-उत्पात (पीडाएँ) उत्पन्न हो जाते है।

जिनके साथ वह रहता है, वे ही स्व-जन कभी (रोगग्रस्त होने पर) उसका तिरस्कार व निन्दा करने लगते है। बाद मे वह भी उनका तिरस्कार व निन्दा करने लग जाता है।

हे पुरुष ! वे स्वजनादि तुझे त्राण (रक्षा करने) देने मे, शरण (रोग का उपशमन करने में) देने मे समर्थ नही है। तू भी उन्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है।

PAIN OF CARNALITY

82. A time comes (in the life of that person who accumulates wealth) when his body is infested with various (pain causing) diseases

There is a stage when (repulsed by his ailing condition) the relatives with whom he lives avoid him and abuse him Later he too avoids and abuses them

Know O man ! Those kinsmen are not capable of protecting you (from these diseases) or giving you refuge (by curing) Neither are you capable of protecting them or giving them refuge

८३. जाणित्तु दुक्खं पत्तेय सायं।

भोगामेव अणुसोयति।

इहमेगेसिं माणवाणं, तिविहेण जा वि से तत्थ मत्ता भवइ–अप्पा वा बहुगा वा। से तत्थ गढिए चिट्ठइ भोयणाए।

भोगासक्ति का भंवर जाल

1

2

चित्र परिचय ९

Illustration No 9

भोगासक्ति का भँवर जाल

१ से गुणट्ठी—मनुष्य विषयों का लोभी होकर विविध प्रकार से धन संग्रह करता है। भवन बनाता है। मित्र स्वजन एवं परिवार आदि की ममता में फँसा रहता है। यह एक प्रकार से आसक्ति का भँवर है।

२ तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति—कभी उसके शरीर में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं तब, जिनके लिए धन संग्रह किया वे स्वजन ही उससे मुँह फेर लेते हैं। वे असहाय छोड़ देते हैं।

३ नालं ते ताणाए—अथवा परिवार, मित्र, वैद्य आदि भी रोग से या मृत्यु से उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते। अतः जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं—तुम जानो प्रत्येक व्यक्ति का दुःख अपना ही होता है। दूसरा उसे कोई नहीं बाँट सकता।

—२/३/८२ सूत्र

THE WHIRLPOOL OF MUNDANE PLEASURES

1 Driven by the greed for mundane pleasures man amasses wealth in many ways. He builds houses and remains trapped in the love for his friends, relatives and family members. This is a type of whirlpool of mundane pleasures or attachment.

2 There comes a time when his body is infested with various diseases and then those kinfolk for whom he had hoarded wealth turn their faces away. They leave him helpless.

3 Also his family, friends, doctors and others are not capable of providing him protection against disease or death. Therefore you should know that every individual s sorrow is his own. None other can share it.

--2/3/82

तओ से एगया विप्परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ। तं पि से एगया दायादा विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरति, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से, अगारदाहेण वा से डज्झति।

इति से परस्स अट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासुवेइ।

८३. प्रत्येक आत्मा का दु ख और सुख अपना-अपना स्वयकृत होता है, यह जानकर (इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर)–

कुछ मनुष्य भोग के विषय मे ही बार-बार सोचते रहते है।

इस ससार मे कुछ मनुष्य (जो विषयो की चिन्ता करते हैं) त्रिविध (अपने, दूसरो के अथवा दोनो के सम्मिलित) प्रयत्नो से अल्प या बहुत-सी धन-सम्पदा एकत्र कर लेते है। वह फिर उस धन-सम्पदा मे आसक्त होता है। भोग के लिए उसकी रक्षा करता है।

भोग के बाद बची हुई विपुल सम्पत्ति के कारण वह महान् वैभव वाला बन जाता है। फिर जीवन मे कभी ऐसा समय आता है, जब उस सम्पत्ति मे से दायाद (पुत्र आदि) हिस्सा बँटाते है, चोर उसे चुरा लेते है, राजा उसे छीन लेते है, वह अन्य प्रकार से नष्ट-विनष्ट हो जाती है। गृह-दाह आदि से जलकर भस्म हो जाती है।

इस प्रकार अज्ञानी पुरुष दूसरो के लिए अनेक क्रूर कर्म करता हुआ दु ख उत्पन्न होने पर मूढ बनकर विपर्यास भाव को प्राप्त होता है।

83. Knowing that every soul causes its own happiness or grief (one should win over the senses)—

Some repeatedly think about mundane pleasures

In this world some men (who are obsessed with mundane pleasures), with three types of efforts (his own, by others and by both or his wealth combined with skill and labour of others) accumulate little or enormous wealth He is then obsessed with that wealth and protects it for enjoyments

With the large wealth saved after his enjoyments he becomes enormously rich and with much belongings A time comes when his son-in-law, sons and grandsons take away shares of that collected wealth, thieves steal, or kings confiscate it Or it is lost or destroyed Or it turns to ashes if the house catches fire

Thus indulging in cruel deeds for others that ignorant, in fact, creates miseries for himself In the end he gets the opposite (striving for pleasure he in the end gets pain) and is stupefied by grief.

आसक्ति ही शल्य है

८४. आसं च छंदं च विगिंच धीरे।

तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु।

जेण सिया तेण णो सिया।

इणमेव णाव बुज्झंति जे जणा मोहपाउडा।

८४. हे धीर मानव ! तू आशा (भोगाभिलाषा) और स्वच्छन्दता (इन्द्रिय सुखो की परवशता) का त्याग कर दे।

तुमने ही भोगेच्छा रूप शल्य को उत्पन्न किया है।

जिन (भोगो को भोगने से) तुझे कभी सुख मिलता है उनसे सुख नही भी मिलता है। (क्योकि भोग का परिणाम दु ख है।)

जो मोह के सघन आवरण से ढके है, वे इस तथ्य को (–कि पौद्गलिक साधनो से कभी सुख मिलता है, कभी नही, वे क्षण-भगुर है तथा वे ही शल्य–कॉटा रूप है) नही जानते।

ATTACHMENT IS THE THORN

84. O resolute one ! Abandon hope (desire for mundane pleasures) and wantonness

It is you who have created the thorn of mundane desires

That (indulgence in those activities) sometimes gives pleasure and at others not (Because the ultimate consequence of mundane indulgence is grief)

Those who are covered by the dense fog of fondness are ignorant of this fact (that the mundane means are not capable of giving happiness always, they are ephemeral; they are like a thorn).

८५. थीभि लोए पव्वहिए।

ते भो ! वयंति एयाइं आयतणाइं।

से दुक्खाए मोहाए माराए णरगाए णरग-तिरिक्खाए।

सततं मूढे धम्मं णाभि जाणइ।

८५. यह संसार स्त्रियों के द्वारा पराजित है (उनका दास बना हुआ है)।

हे पुरुष ! वे (स्त्रियों के दास) कहते हैं–"ये स्त्रियाँ आयतन हैं (भोग की सामग्री हैं)।"

(किन्तु उनका) यह कथन दु ख का हेतु है एवं मोह, मृत्यु, नरक तथा नरक से पुन· तिर्यंचगति (पुन·-पुन जन्म-मरण) का निमित्त बनता है।

निरन्तर मूढ़ रहने वाला मनुष्य धर्म को नहीं जान पाता।

85. This world is overpowered by women (it has become their slave)

O man ! They (the slaves of women) say—"Woman is the source of pleasure "

This concept is cause of grief and is instrumental in his passage through fondness, death, hell and rebirth as animal (repeated cycles of rebirth).

One who is always in stupor cannot know *dharma* (true path)

विषय तृष्णा · महामोह

८६. उदाहु वीरे अप्पमादो महामोहे।

अलं कुसलस्स पमाएणं। संति-मरणं संपेहाए, भेउरधम्मं संपेहाए।

नालं पास। अलं ते एएहिं।

एवं पास मुणी ! महब्भयं। नाइवाएज्ज कंचणं।

८६. भगवान महावीर ने कहा है–"साधक महामोह (स्त्रियाँ तथा विषय की अभिलाषा) में अप्रमत्त रहे।"

कुशल पुरुष को प्रमाद से बचना चाहिए। शान्ति (मोक्ष) और मरण (संसार) को देखने/समझने वाला तथा शरीर को भंगुरधर्मा–नाशमान है (यह समझने वाला अप्रमाद में रहता है)।

देख, ये भोग (तेरी अतृप्ति की प्यास बुझाने मे) समर्थ नही हैं। फिर तुझे इन भोगो से क्या प्रयोजन है ?

हे मुनि ! यह देख, यह कामासक्ति महाभयकर है। अत (भोगो के लिए) किसी प्राणी की हिसा न कर।

MUNDANE DESIRES . THE GREAT ALLUREMENT

86. Bhagavan Mahavir has said—"A seeker should avoid the great allurement (the desire for woman and mundane pleasures) "

The wise should avoid stupor He who knows and understands peace (liberation) and death (the world) and that this mundane body is ephemeral and mortal (is able to avoid stupor)

See, these indulgences are not capable (of quenching your thirst for gratification) Then, for you where is the need of these indulgences ?

O Sage ! See here, this carnality is very dangerous Therefore don't commit violence against any being (for the sake of carnal pleasures)

भिक्षाचरी मे समभाव

८७. एस वीरे पसंसिए जे ण णिव्विज्जति आयाणाए।

ण मे देइ ण कुप्पेज्जा। थोव लद्धु न खिसए। पडिसेहिओ परिणमेज्जा।

एय मोण समणुवासेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

८७ वह वीर प्रशसा योग्य होता है जो कभी सयम से उद्विग्न नही होता।

'यह (दाता) मुझे भिक्षा नही देता।' ऐसा सोचकर उस पर कुपित नही होना चाहिए। थोडा मिलने पर निदा नही करे और (दाता) यदि निषेध करे तो (शान्त भाव से) वापस लौट जाना चाहिए।

मुनि इस मौन (धर्म) का भलीभाँति पालन करे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

EQUANIMITY IN ALMS-COLLECTION

87. That brave is worthy of praise who is not disturbed by discipline

'He (donor) does not give me alms' Thinking thus one should not get angry with him. When one gets less he should not grumble and if denied (by the donor) he should retreat (calmly)

An ascetic should properly conform to this (code of) silence

—So I say.

● **END OF LESSON FOUR** ●

पंचमो उद्देसओ	पंचम उद्देशक	LESSON FIVE

[चतुर्थ उद्देशक में भोग-निवृत्ति का उपदेश दिया गया। भोग-निवृत्त गृहत्यागी अहिसाचारी श्रमण के समक्ष जब शरीर-निर्वाह के लिए भोजन का प्रश्न उपस्थित होता है, तो वह क्या करे? शरीर-धारण किये रखने हेतु आहार कहाँ से, किस विधि से प्राप्त करे? ताकि उसकी ज्ञान-दर्शन-चारित्र यात्रा सुखपूर्वक गतिमान रहे। इसी प्रश्न का समाधान प्रस्तुत उद्देशक में दिया गया है।]

[The fourth lesson contains advise to refrain from mundane indulgence When faced with the requirement of food for survival what should a *Shraman,* who has renounced the household, is free of mundane indulgences and follows the code of *ahimsa,* do ? In order to maintain his body, so that his voyage of *jnana* (knowledge), *darshan* (perception or faith), *charitra* (conduct) continues peacefully, from where and how should he obtain food ? The solution of this problem has been given in this lesson]

शुद्ध आहार की एषणा

८८. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्मसमारंभा कज्जति। त जहा–

अप्पणो से पुत्ताण धूआणं सुण्हाणं णातीण धातीण राईणं दासाण दासीण कम्मकराणं कम्मकरीणं आएसाए पुढो पहेणाए सामासाए पायरासाए।

संनिहिं-सन्निचओ कज्जति इहमेगेसि माणवाण भोयणाए।

८८ असंयमी मनुष्य अनेक प्रकार के शस्त्रो द्वारा कर्म-समारभ करते रहते है। जैसे–

अपने लिए, पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधू, ज्ञातिजन, धाय, राजा, दास-दासी, कर्मचारी, कर्मचारिणी, आदेश अर्थात् पाहुने–मेहमान आदि के लिए तथा विभिन्न लोगो को उपहार देने के लिए एव सायकालीन तथा प्रात कालीन भोजन के लिए।

इस प्रकार वे कुछ लोगो के भोजन के निमित्त सन्निधि और सन्निचय करते रहते है।

SEARCH FOR PURE FOOD

88. Indisciplined people, using various weapons, continue to indulge in sinful activities that are sources of inflow of *karmas* For example—

For themselves and for son, daughter, daughter-in-law, kinfolk, governess, king, slaves, employees, guests and other such people. For giving gifts to other people and for morning and evening meals.

Thus they collect and accumulate for providing food to some people

८९. समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदंसी अयं संधी ति अदक्खु।

से णाइए, णाइआवए, न समणुजाणए।

सव्वामगंधं परिण्णाय णिरामगंधो परिव्वए।

अदिस्समाणे कय-विक्कएसु। से ण किणे, ण किणावए, किणंतं ण समणुजाणइ।

से भिक्खू कालण्णे, बलण्णे, मायण्णे, खेयण्णे, खणयण्णे, विणयण्णे, समयण्णे, भावण्णे।

परिग्गहं अममायमाणे कालेणुट्ठाई अपडिण्णे। दुहओ छेत्ता नियाइ।

८९ सयम मे प्रवृत्त आर्य, आर्यप्रज्ञ (निर्मल बुद्धि) और आर्यदर्शी (सत्य को देखने वाला) अनगार प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करता है। वह 'यह भिक्षा का उचित समय–सधि (अवसर) है' यह देखकर (भिक्षा के लिए) जाये।

(आसक्ति की वृद्धि करने वाले) सदोष आहार को मुनि स्वय ग्रहण न करे, दूसरों से ग्रहण न करवाए तथा ग्रहण करने वाले की अनुमोदना नही करे।

अनगार सब प्रकार के आमगंध (दोषयुक्त आहार या आसक्ति) का परित्याग करता हुआ निर्दोष आहार के लिए परिव्रजन (भिक्षाचरी) करे।

वह आहार के लिए वस्तु के क्रय-विक्रय मे लिप्त न हो। न तो स्वयं वस्तु का क्रय करे, न दूसरो से करवाए और न करने वाले का अनुमोदन करे।

उक्त आचार का पालन करने वाला भिक्षु कालज्ञ है, बलज्ञ है, मात्रज्ञ है, क्षेत्रज्ञ है, क्षणज्ञ है, विनयज्ञ है, समयज्ञ है, भावज्ञ है।

परिग्रह की ममता नहीं रखने वाला, समय पर उचित कार्य करने वाला अप्रतिज्ञ है। वह दोनो (राग और द्वेष) का छेदन कर अनासक्तिपूर्वक जीता है।

89. A disciplined ascetic who is noble *(arya)* and has pure intellect *(arya-prajna)* and perception *(arya-drishta)* does every

act at its proper time He should ascertain that it is the proper time for alms-seeking (before going out to seek alms)

An ascetic should not accept, nor cause others to accept, or approve others accepting food that is faulty (that which inflates yearning)

An ascetic should seek faultless food as alms, rejecting all types of faulty things (food or fondness)

He should not get involved in buying or selling for food He should neither purchase a thing himself nor cause others to purchase or approve others purchasing

The ascetic who follows the said conduct is conversant with time, strength, area, moment, conduct, principles and attitude

One who has no attachment with possessions and who does a work at its proper time is non-aspiring He lives a detached life after puncturing both (attachment and aversion)

विवेचन–सूत्र ८८-८९ मे बताया है–गृहत्यागी श्रमण गृहस्थ के लिए बने हुए भोजन मे से निर्दोष भोजन यथासमय विधिपूर्वक प्राप्त कर लेवे।

सधि अर्थात् भोजन का समय देखे। जिस समय गृहस्थ के घर पर भिक्षा मिल सकती हो, उस अवसर को जाने। क्योकि अनगार के लिए भिक्षाकाल का ज्ञान रखना आवश्यक है। आगमकाल मे भिक्षा का समय दिन का तृतीय पहर माना जाता था। उसके उत्तरवर्ती काल मे क्रमश द्वितीय पहर भिक्षाकाल मान लिया गया। इसके अतिरिक्त जिस देश-काल मे भिक्षा का जो उपयुक्त समय हो, वही भिक्षाकाल माना जाता है। भिक्षा विधि का विशेष वर्णन दशवैकालिक, अध्ययन ५, मे किया गया है।

कुछ व्याख्याकारो ने **सधि** का अर्थ 'छिद्र' करके इस वाक्य को पिछले **सन्निधि सचय** पाठ के साथ जोडा है कि सग्रह संयम के लिए छिद्र है।

श्रमण के तीन विशेषण है–(१) आर्य, (२) आर्यप्रज्ञ, और (३) आर्यदर्शी। 'आर्य' का अर्थ है–जो सद्गुणी हो, श्रेष्ठ आचरण वाला हो। आचार्य शीलाक के अनुसार–जिसका अन्त करण निर्मल हो, सद्गुणी हो, वह आर्य है। जिसकी बुद्धि परमार्थ की ओर प्रवृत्त हो, वह आर्यप्रज्ञ है। जिसकी दृष्टि गुणो मे सदा रमण करे, वह अथवा सत्य मार्ग का द्रष्टा आर्यदर्शी है।

सव्वामगधं–अशुद्ध, अनेषणीय, आहार के लिए 'आमगध' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'आम' का अर्थ अपक्व है। वैद्यक ग्रन्थों मे अपक्व-कच्चा फल, अन्न आदि को 'आम' शब्द से

व्याख्यात किया है। पालिग्रन्थों में पाप के अर्थ में 'आम' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैनसूत्रों व टीकाओं में 'आम' व 'आमगंध' शब्द आधाकर्मादि दोष से दूषित, अशुद्ध तथा भिक्षु के लिए अकल्पनीय आहार के अर्थ मे अनेक स्थानों पर आया है। कही-कहीं आसक्ति को भी आमगध कहा है।

कालज्ञ आदि शब्दो का इस संदर्भ में विशेष आशय इस प्रकार है–

कालण्णे–कालज्ञ–भिक्षा के उपयुक्त समय को जानने वाला अथवा प्रत्येक आवश्यक क्रिया का उचित समय जानने वाला।

बलण्णे–बलज्ञ–अपनी शक्ति एव सामर्थ्य को पहचानकर भिक्षाचरी करने वाला।

मातण्णे–मात्रज्ञ–भोजन आदि प्रत्येक वस्तु का परिमाण एवं ऋतु अनुसार उसका उपयोग जानने वाला। जैसे–सामान्य रूप मे आहार की मात्रा है–दो भाग भोजन, एक भाग पानी एव एक भाग हवा के लिए पेट को खाली रखना।

खेयण्णे–क्षेत्रज्ञ–खेदज्ञ अर्थात् जिस समय व जिस स्थान पर भिक्षा के लिए जाना हो, उसका भलीभाँति ज्ञान रखने वाला।

खणयण्णे–क्षणज्ञ–क्षण को अर्थात् समय को पहचानने वाला। काल और क्षण मे अन्तर यह है कि काल एक दीर्घ अवधि के समय को कहा गया है, जैसे–दिन-रात, पक्ष आदि। क्षण–छोटी अवधि का समय। वर्तमान समय क्षण कहलाता है।

विणयण्णे–विनयज्ञ–अपने आचार का जानकार। साथ ही बडो एव छोटो के साथ व्यवहार की उचित रीति का जिसे ज्ञान हो, जो लोक-व्यवहार का ज्ञाता हो।

समयण्णे–समयज्ञ। यहाँ 'समय' का अर्थ सिद्धान्त है। भिक्षु अपने तथा दूसरो के सिद्धान्तो का सम्यक् ज्ञाता हो।

भावण्णे–भावज्ञ–दाता व्यक्ति के भावो–अभिप्रायो को भलीभाँति जानने वाला हो।

शरीर एव उपकरणो को आत्मा के संदर्भ मे परिग्रह कहा जाता है, परन्तु यह परिग्रह तभी है जब उसके साथ मूर्च्छा जुडी हो। "**परिग्गह अममायमाणे**।"–साधु इन पर मूर्च्छा भाव नहीं रखे।

योग्य समय पर उचित उद्यम एव पुरुषार्थ करने वाला **कालेणुट्ठाई–कालानुष्ठायी** कहलाता है।

अपडिण्णे–अप्रतिज्ञ–कषाय एव राग-द्वेष के वश होकर किसी प्रकार का भौतिक सकल्प–निदान न करने वाला।[1] चूर्णिकार के अनुसार जो मुनि अकेला अपने लिए नहीं किन्तु गुरु साधर्मिक साधुओ के लिए भी भिक्षा लाता है, वह अप्रतिज्ञ है। (*चूर्णिकार*, पृ ७९)

अप्रतिज्ञ शब्द से एक तात्पर्य यह भी स्पष्ट होता है कि श्रमण किसी विषय मे प्रतिज्ञाबद्ध–एकान्त आग्रही न हो। विधि-निषेध एव उत्सर्ग-अपवाद मार्ग का समझने वाला हो।

---

१ देखें–आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत हिन्दी टीका, पृ २६८

Elaboration—Paragraphs 88 and 89 convey that a *Shraman* should accept faultless food out of the food prepared for a householder at proper time and following prescribed procedure

Sandhi—Proper time for seeking food. He should ascertain the time for seeking alms He should find out about the right time when he can get alms from a household It is essential for an ascetic to know about the time of alms-seeking In the *Agam*-period the alms-seeking time was believed to be the third quarter of the day In the later period this gradually shifted to the second quarter of the day Besides this, the proper alms-seeking time varies according to place and time and is decided accordingly Detailed description of alms-seeking time has been discussed in the 5th chapter of *Dashavaikalik Sutra*

Some commentators have interpreted *sandhi* as breach—accumulation being a breach in discipline—and related this sentence with the preceding chapter which deals with collection and accumulation

Arya, arya-prajna and *arya-darshi* are adjectives for *Shraman* '*Arya*' means one who is virtuous or has noble conduct According to Acharya Sheelank he who is pure of heart and is virtuous is called *arya* One who is altruistic is called *arya-prajna* One who always strives for virtues or the right path is called *arya-drishta*

Savvaamagandham—Faulty or unacceptable food '*Aam*' means unripe In books on *ayurveda* raw or unripe fruit or grain is called '*aam*' In Pali texts '*aam*' has been used for sin In *Jain* canons and their commentaries '*aam*' and '*aamagandha*' words have been used at many places for food that is faulty, unprocessed, impure and not acceptable for an ascetic At some places attachment or yearning has also been called *aamagandh*

The special meanings of *Kaalajna* and other terms in this context are as follows—

Kaalanne* or *kaalajna—One who knows about the proper time for alms-seeking or one who knows about the proper time of every essential activity

Balanne* or *balajna—One who collects alms after assessing his own strength and capacity

Maatanne* or *maatrajna—One who is conversant with the appropriate quantity as well as seasonal application of food and other things For example, the ratio of an average meal is—Out of four, two parts food and one part water, the remaining one part being left for air

Kheyanne* or *kshetrajna—One who has complete knowledge of the time and place to go for alms-seeking

Khanayanne* or *kshanajna—One who knows about the moment The difference between *kaal* (time) and *kshan* (moment) is that *kaal* represents a longer duration like day, night, month etc and *kshan* represents shorter duration like minute, second etc The present moment is called *kshan*

Vinayanne* or *vinayajna—One who is conversant with his conduct Also, one who is aware of the codes of courtesy with respect to seniors and juniors One who knows the social etiquette

Samayanne* or *samayajna—Here *'samaya'* means principles An ascetic should correctly know the principles of his and other schools

Bhaavanne* or *bhaavajna—He should have the ability to fathom the attitude and feelings of donors

Pariggaham amamaayamaane—With reference to soul, body and equipment of an ascetic are known as *parigrah* or possessions However, they are possessions only if there is a fondness for them Therefore this phrase advises an ascetic to be free of fondness for these

Kaalenutthai* or *kaalaanushthai—One who does right effort at right time

Apadinne* or *apratijna—One who does not nurture mundane aspirations under the influence of passions, attachment and aversion According to the commentator (*Churni*, page 79) an ascetic who seeks alms not only for himself but also for his guru and fellow ascetics is called *apratijna*

Apratijna also indicates that a *Shraman* should be free of any bias or dogma He should be aware of the procedures and prohibitions as also of the ideal nd exceptions

वस्त्र, पात्र, आहार-सयम

९०. वत्थं पडिग्गह कबलं पायपुछण उग्गहं च कडासण। एतेसु चेव जाएज्जा।

लद्धे आहारे अणगारे मायं जाणेज्जा। से जहेयं भगवया पवेइय।

लाभो त्ति न मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोएज्जा।

बहु पि लद्धु ण णिहे। परिग्गहाओ अप्पाण अवसक्केज्जा।

अण्णहा ण पासए परिहरेज्जा।

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए। जहेत्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि।

त्ति बेमि।

९० (सयमी) ऐसे वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद प्रोछन (पॉव पोछने का वम्त्र), अवग्रह–स्थान और कटासन–चटाई आदि की याचना करे जोकि गृहस्थ के लिए निर्मित हो। शुद्ध हो।

भगवान ने जो विधि बताई है उसके अनुसार, आहार प्राप्त होने पर, उसकी मात्रा का ज्ञान रखना चाहिए।

इच्छानुसार आहार आदि प्राप्त होने पर (अपने प्रभाव व लब्धि का) मद–अहकार नही करे। यदि प्राप्त न हो तो शोक (चिन्ता) न करे।

अधिक मात्रा मे प्राप्त होने पर उसका सग्रह न करे। परिग्रह से अपने को दूर रखे।

(गृहस्थ जिस प्रकार वस्तु को ममत्वभाव से देखते है, उस प्रकार न देखे) अन्यथा प्रकार से देखे व भोगे।

यह (अनासक्ति का) मार्ग आर्य–तीर्थकरो द्वारा प्रतिपादित है। कुशल पुरुष परिग्रह मे लिप्त न हो।

–ऐसा मै कहता हूँ।

DISCIPLINE OF DRESS, POTS, FOOD

90. (An ascetic) should seek as alms such clothes, pots, blankets, cloth for wiping feet (towel), place (to stay) and mat which have been made for a householder and are pure or clean.

Following the procedure laid down by *Bhagavan,* when one finds the food he should be careful about the quantity.

When he gets the desired food he should not feel proud (of his influence or power) Also, when he does not get he should not lament or worry

If he gets in larger quantity he should not store it He should remain free of the desire to possess

He should look at and use things in a different way (He should not look at and use things fondly as a householder does)

This path (of detachment) has been propagated by the *Aryas (Tirthankars)* The wise should avoid the attitude of attachment to possession

—So I say

विवेचन–साधु को जीवनोपयोगी वस्त्र, पात्र, भोजन आदि उपकरणों की याचना गृहस्थ से करनी पडती है। किन्तु वह इन वस्तुओ मे आसक्त नही होता। समुद्र पार करने के लिए जैसे नौका की आवश्यकता होती है, किन्तु यात्री नौका को साध्य नही मानता, न उसमे आसक्त होता है, किन्तु उसे साधन मात्र मानता हुआ उस पार पहुँचकर नौका को छोड देता है। मुनि धर्मोपकरणो को इसी दृष्टि से ग्रहण करे और मात्रा अर्थात् मर्यादा एव प्रमाण का ज्ञान रखता हुआ उनका उपयोग करे।

उग्गहण (अवग्रहण) शब्द के दो अर्थ है–(१) स्थान, अथवा (२) आज्ञा लेकर ग्रहण करना।

माय जाणेज्जा–मात्रा अर्थात् भोजन का परिमाण जाने। सर्व सामान्य अनुपात-दृष्टि से भोजन की मात्रा साधु के लिए बत्तीस कवल (कौर) और साध्वी के लिए अट्ठाईस कवल प्रमाण बताई गई है। उसमे कुछ कम ही खाना चाहिए। सामान्यत: भूख से कम खाना यह अभिप्राय है। आहार के अतिरिक्त वस्त्र, पात्र आदि उपकरणो की मात्रा को भी जानना चाहिए।

परिग्गहाओ अप्पाण अवसक्केज्जा–परिग्रह से स्वय को दूर हटाए–इस वाक्य का भाव है–भिक्षा मे जो निर्दोष वस्तु प्राप्त होती है, उसको भी मुनि अपनी न समझे, बल्कि यह माने कि "यह जो वस्तु मुझे प्राप्त हुई है, वह संघ की है, संघ या आचार्य के आदेश से मै इसका स्वय के लिए उपयोग कर सकूँगा।"

अण्णहा णं पासए–इस शब्द का चूर्णिकार ने स्पष्टीकरण किया है कि **"ण मम एतं आयरिय सतगं।"**–यह प्राप्त वस्तु मेरी नही, आचार्य की निश्रा की है। अन्यथा दृष्टि का दूसरा अर्थ यह भी है कि जैसे सामान्य गृहस्थ (अज्ञानी मनुष्य) वस्तु को देखता है तथा उसका उपयोग करता है, वैसे नहीं करे। ज्ञानी और अज्ञानी दोनो ही वस्तु को देखते है, उसका उपयोग करते हैं; किन्तु उनका उद्देश्य, भावना तथा विधि मे बहुत बडा अन्तर होता है। अज्ञानी सुख व स्वाद के लिए भोगता है, जबकि ज्ञानी केवल साधना के लिए।

Elaboration—A true ascetic has to beg for clothes, pots, food and other essentials from a householder, but he does not get attached to these things To cross a sea a boat is required but the traveller neither considers it to be the goal nor gets attached to it Considering it to be just a means, he abandons it the moment he reaches his destination An ascetic should accept the religious equipment with a similar intent and use with an awareness of the limitations of quantity or volume

Uggahanam* or *avagrahan—This word has two meanings—(1) place, and (2) to take after seeking permission

Maayam jaanejja—Know the quantity of food The average norm of the quantity of food is said to be thirty two mouthfuls for a male ascetic and twenty eight mouthfuls for a female ascetic One should eat slightly less than this The principle being that one should eat a little less than his appetite Besides food, one should also know about the limitations regarding clothes, pots and other equipment

Pariggahaao appaanam avasakkejja—One should avoid possessions This phrase conveys the message that an ascetic should not consider as his own, a thing that he gets as alms He should believe that "The thing I got belongs to the sangh (religious organization) and I will be able to use it only with the permission of the *sangh* or the *acharya* "

Annaha nam paasae—To look differently The commentator *(Churni)* has explained this term as—"The thing I have got is not mine, it is under the command of the *acharya* " Different perspective also means to look at and use a thing in a way different from that

employed by an ordinary householder (an ignorant person) An ignorant and a wise both look at things and use them but their purpose, attitude and process of use are considerably different An ignorant uses just for pleasure and taste whereas a wise uses it for his endeavour only

काम-भोग विरति

९१. कामा दुरतिक्कमा। जीवियं दुप्पडिबूहगं।

कामकामी खलु अयं पुरिसे। से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिड्डइ परितप्पइ।

९२. आयतचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहोभागं जाणइ, उड्ढं भागं जाणइ तिरियं भागं जाणइ। गढिए लोए अणुपरियट्टमाणे।

संधिं विइत्ता इह मच्चिएहि।

एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए।

९१ काम (इच्छा-वासना) का पार पाना कठिन है। जीवन (आयुष्य) को बढ़ाया नहीं जा सकता।

यह पुरुष काम-भोग की कामना करने वाला है (किन्तु कामना परितृप्त नहीं हो सकती, इसलिए) वह शोक करता है (काम की प्राप्ति न होने तथा वियोग होने पर) खिन्न होता है फिर वह ऑसू बहाता है या शरीर से जीर्ण हो जाता है, पीड़ा और परिताप (पश्चात्ताप) से दु खी होता रहता है।

९२ वह आयतचक्षु–विशाल दृष्टि वाला लोकदर्शी होता है। वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है और तिरछे भाग को जानता है। वह यह भी जानता है–(काम-भोग मे) आसक्त पुरुष ससार में (अथवा काम-भोग के पीछे) अनुपरिवर्तन–पुन -पुन चक्कर काटता रहता है।

यहाँ (ससार में) मनुष्यो के (मरणधर्मा शरीर की) संधि को जानकर (विरक्त हो)।

वह वीर प्रशसा के योग्य है जो (काम-भोगो में) बँधे हुओ को मुक्त कराता है।

DETACHMENT FROM CARNAL INDULGENCES

91. It is difficult to win over carnal desires. The span of life (age) cannot be increased.

This man desires carnal indulgences (but this thirst cannot be quenched, therefore) he laments (when his carnal desires

are not fulfilled or he ıs deprıved of the means), he deplores and he sheds tears or gets emacıated Wıth paın and mısery he continues to grıeve

92. Thıs farsıghted man sees the world He knows the lower part (the nether world), the hıgher part (the heavens) and the transverse part (the mıddle world) He also knows that an obsessed (wıth carnal desıres) person contınues to drıft agaın and agaın ın thıs world (or ın pursuıt of mundane pleasures)

Know (and get detached) about the lınk (fate of the mortal body) holdıng the humans here (ın thıs world)

That brave is worthy of praıse who lıberates the fettered (wıth carnal desıres)

विवेचन—इन दो सूत्रो मे काम-भोग की कटुता बताकर उसमे चित्त को विरक्त करने के उपाय बताये गये है। काम दो प्रकार का है—

१ **इच्छा-काम**—आशा, तृष्णा, रतिरूप। यह मोहनीय कर्म के उदय से हास्य, रति आदि कारणो से उत्पन्न होता है।

२ वासना या विकाररूप **कामेच्छा—मदन-काम** है। यह मोहनीय कर्म के भेद—वेद त्रय के उदय से प्रकट होता है।

काम सज्ञा चिर सचित सस्कारो का परिणाम होने से उसका निवारण कष्ट साध्य है—दुरतिक्रम है। जो 'काम' के दुष्परिणाम को नही जानता, वह उसमे विरक्त नही हो सकता। इसलिए प्रस्तुत दो सूत्रो मे काम-विरक्ति के पॉच आलम्बन बताये है। जैसे—

(१) जीवन की क्षण-भगुरता का विचार करना। जीविय दुप्पडिबूहग—आयुष्य प्रतिक्षण घटता जा रहा है और इसको स्थिर रखना या बढ़ा लेना किसी के वश का नही है।

(२) **से सोयइ**—कामी को होने वाले अनेक प्रकार के मानसिक, शारीरिक परिताप, पीडा, एव शोक आदि को समझना।

(३) **लोक-दर्शन**—इस शब्द पर तीन दृष्टियो से विचार किया जा सकता है—

(क) लोक का अधोभाग देखना—अधोभागवर्ती नैरयिक विषय-कषाय से आसक्त होकर शोक-पीडा आदि से दु खी हो रहे है। लोक का ऊर्ध्व भाग (देव) तथा मध्य भाग (मनुष्य एव तिर्यंच) भी विषय-कषाय मे आसक्त होकर शोक व पीडा से दु खी है।

ऊर्ध्व लोक
मध्य लोक
2
अधो लोक
3

चित्र परिचय १०

Illustration No. 10

लोक विपश्यना

'आयत चक्खू लोग विपस्सी लोगस्स अहोभाग जाणइ,

उड्ढ भाग जाणइ, तिरिय भाग जाणइ।

दीर्घदर्शी साधक ध्यान के समय लोक विपश्यना अर्थात् लोक पर चिन्तन करता है। जैसे-

लोक का अधो भाग अपने अशुभ कर्मो के कारण सतत घोर कष्टो आदि मे पीडित है। साधक अधोगति के उन कारणो पर भी विचार करता है और उन्हे छोडता है।

लोक के मध्य भाग मे तिर्यंच व मनुष्य अपने अशुभ तथा शुभ कर्मो के कारण दु:ख मे त्रस्त है। साधक उन गतियो के कारण का भी विचार करता है। फिर उनका वर्जन करता है।

लोक के ऊर्ध्व भाग मे देवता आदि निवास करते है। वे भी विषय-वासना मे आसक्त हुए शोक आदि से पीडित होते है। साधक उस गति के कारणो पर विचार करता है।

लोक मे आत्मा ऊर्ध्व लोक से तिर्यक् लोक मे आता है वहा से अधोलोक मे जाता है पुन तिर्यक् व ऊर्ध्व लोक मे गमन करता है। इस प्रकार कर्मो के कारण सतत परिभ्रमण करता रहता है।

इस प्रकार लोक दर्शन या लोक विपश्यना करने वाला लोक परिभ्रमण से मुक्त हो जाता है।

२-४-९२

PONDER OVER THE WOLRD

A farsighted aspirant should ponder over the world while doing meditation For example—

The lower part of the world is the Nether world where beings are always tormented The aspirant thinks about the causes of such birth and avoids them

The middle part of the world is the animal world where humans and animals suffer due their sinful deeds An aspirant thinks about the causes of birth in these genuses and then avoids them

The upper part of the world is inhabited by gods They are also tormented due to their cravings for mundane pleasures An aspirant thinks about the causes of such birth and avoids them

In this world the soul transmigrates from upper to middle world and then to the lower world and again to middle and upper worlds Thus it moves around continuously due to its *karmas*

The seeker who thus ponders over the world gets liberated from these wanderings in the world —*2/4/92*

(ख) दीर्घदर्शी साधक इस प्रकार का चिन्तन करें–अमुक भाव व वृत्तियाँ अधोगति की हेतु हैं, अमुक ऊर्ध्व गति की तथा अमुक तिर्यक् (मध्य–मनुष्य-तिर्यंच) गति की हेतु हैं।[1]

(ग) लोक अर्थात् भोग्य-वस्तु या विषय। शरीर भोगायतन है। शरीर के तीन भाग कल्पित करके उन पर चिन्तन करना लोक-दर्शन है। ये तीन भाग हैं–

(I) अधोभाग–नाभि से नीचे का भाग

(II) ऊर्ध्वभाग–नाभि से ऊपर का भाग

(III) तिर्यक्भाग–नाभि-स्थान

इन तीनों भागो पर चिन्तन करने से यह अशुचि भावना का आलम्बन बन जाता है। इससे शरीर की नश्वरता, असारता आदि की भावना दृढ़ हो जाती है। शरीर के मोह मे कमी आती है। बौद्ध साधना में इसे 'शरीर-विपश्यना' भी कहा गया है।[2] तीनो लोकों पर विभिन्न दृष्टियो से चिन्तन करना ध्यान की एक पद्धति रही है।

इस सूत्र मे यह इगित है कि भगवान महावीर अपने साधना-काल मे ऊर्ध्वलोक मे, अधोलोक मे तथा तिर्यक्लोक मे वहाँ स्थित तत्त्वो पर ध्यान केन्द्रित करके समाधिभाव मे लीन हो जाते थे।[3] 'लोक भावना' मे भी तीनो लोक के स्वरूप का चिन्तन तथा वहाँ स्थित पदार्थों पर ध्यान केन्द्रित कर एकाग्र होने की साधना की जाती है।

(४) अनुपरिवर्तन का बोध–पुन -पुन काम-भोग के आसेवन से काम-वासना कभी भी शान्त व तृप्त नही हो सकती, बल्कि अग्नि मे घी डालने की भाँति विषयाग्नि अधिक प्रज्वलित होती है। कामी बार-बार विषय के पीछे दौडता है और अन्त मे मिलती है अशान्ति ! अतृप्ति !! यह अनुपरिवर्तन का बोध है।

(५) सधि-दर्शन–टीका मे सधि का अर्थ–'अवसर' किया गया है। यह मनुष्य-जन्म ज्ञानादि की प्राप्ति का, आत्म-विकास करने का स्वर्णिम अवसर है अत यह सुवर्ण-सधि है।

'संधि-दर्शन' का एक अर्थ यह भी किया गया है कि शरीर की सधियो (जोडो) का स्वरूप-दर्शन कर शरीर के प्रति रागरहित होना। शरीर को मात्र अस्थि-ककाल (हड्डियो का ढाँचा मात्र) समझना उसके प्रति आसक्ति को कम करता है। शरीर मे एक सौ अस्सी सधियाँ मानी गई है। इनमे चौदह महासंधियाँ हैं उन पर विचार करना भी सधि-दर्शन है। शरीर के चैतन्य केन्द्र अथवा चक्र भी 'सधि' शब्द से ग्राह्य है।[4] (देखे चैतन्य केन्द्रो का चित्र)

---

१ देखें–स्थानाग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक ४ सूत्र ३७३ (चार गति के विभिन्न कारण)

२ विशुद्धि मग्गो, भाग १, पृष्ठ १६०-१७५–उद्धृत 'आचारांग भाष्य (आचार्य महाप्रज्ञ), पृ १२९

३ अध्ययन ९, सूत्रांक ३२०, गा १०७–"उड्ढ अहेय तिरियं च पेहमाणे समाहिमपडिण्णे।"

४ देखें–आयारो, पृष्ठ ११४

इसी आगम मे सधि शब्द छह स्थानो पर आया है, जो प्रसग के अनुसार भिन्न-भिन्न अभिप्राय प्रकट करता है।

'आयतचक्खू' शब्द के अनेक अर्थ किये जाते है, जैसे–दीर्घ दृष्टि तथा सर्वांग-चिन्तनशीलता–अनेकान्त दृष्टि। आचार्य श्री आत्माराम जी म के अनुसार भोगो के कटु परिणामो पर चिन्तन करना, भूत-भविष्य का विचार करना दीर्घ द्रष्टा का गुण है। टीका के अनुसार–"इहलोक-परलोक के अपायो–कष्टो को देखने की क्षमता रखने वाला–आयत चक्षु है।"

Elaboration—In these two paragraphs the bitterness of carnal indulgences has been shown in order to inspire one to get detached from them *Kaam* or carnal indulgence is of two types—

1. Iccha kaam or fancies which manifest in the form of hope, craving and indulgence This is caused by precipitation of *Mohaniya karma* (*karma* that tempts soul towards fondness for things) and triggered through merriment, erotica and other such things

2. Madan kaam or lust (perverted sexual desire) This is caused by precipitation of physical gender which is a type of *Mohaniya karma*

As carnal desires are the result of long sustained attitudes, it is very difficult to get rid of them One who is not aware of the bitter consequences of carnal desires cannot get detached from them That is why five things that help getting detached from carnal desires are mentioned in these two paragraphs They are—

(1) To ponder over the ephemeral nature of life Every moment the life-span is approaching its end It is beyond any body's power to stop it or extend it

(2) ***Se soyai***—To understand numerous afflictions a lascivious person experiences, such as mental and physical torture, pain and grief

(3) **Lok darshan**—Viewing the world This can be contemplated from three angles—

(a) To view the lower part of the world and know that the hell beings living in the nether worlds are suffering grief and pain for

The Centers of Consciousness in the Human
स्थान
योग
Yoga Circles
of the head
Chakra
Center of Forehead
Chakra
No. स्थान Place
४. हृदय के पास
Solar plexus
नाभि के मध्य
Navel
नाभि से चार अंगुल

चित्र परिचय १९

Illustration No. 19

चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान

सूत्र ९२ में बताया है, संधि विइत्ता–संधि को जानकर विरक्त बने। शरीर के चेतन्य केन्द्र संधि-स्थल माने जाते है।

आगम के अनुसार 'सव्वेण सव्वं' चेतना के असंख्य प्रदेश समूचे शरीर में व्याप्त है किन्तु शरीर मे कुछ स्थल ऐसे है जहाँ पर चैतन्य अन्य स्थानो मे अधिक सघन होता है। इन स्थानो पर शरीर के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र अधिक तीव्र संवेदनशील होते है। शरीर शास्त्र के अनुसार इन्हे नाडी तंत्र तथा ग्रंथि तंत्र कहा जाता है। आयुर्वेद की भाषा मे इन चैतन्य केन्द्रों को मर्म स्थान कहा जाता है। योगशास्त्र मे इन्हे 'चक्र' या 'कमल' कहा गया है और शरीर विज्ञान के अनुसार इन स्थानो पर स्थित विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रो को ग्लण्ड्स (ग्रंथियाँ)। बौद्ध पद्धति 'जूडो' मे इन्हे क्यूसोस (Kyushos) कहते है। इन चक्रो व केन्द्रो पर ध्यान स्थिर करने से ये जागृत हो जाते है। शुभ ध्यान मे इनमे निर्मलता बढती है। निर्मल होने से ज्ञान चेतना का प्रवाह ऊर्ध्वमुखी होता जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे इन संधि स्थलो को देखने का संकेत है। इसका अभिप्राय है–इन संधि-स्थलो की प्रेक्षा या ध्यान करने से वृत्तियाँ एकाग्र, निर्मल व विशुद्ध होती है।

MEDITATING ON CENTRE OF CONSCIOUSNESS

Aphorism 92 informs that one should know the *Sandhi* (joint) and become detached The centres of consciousness in the body are said to be these joints

According to the *Agams* there are innumerable areas of conscious-energy in the human body But there are some points where there is a higher concentration of this conscious-energy At these places the subtle electromagnetic fields of the body are highly sensitive Physiologically these spots are parts of the nervous system or glandular system In *Ayurvedic* language these are called sensitive spots In *Yoga Shastra* they are termed as circles or lotuses and in anatomy the centres of subtle electromagnetic fields located at these spots are called glands In the *Buddhist* system of *Judo*, popular in Japan, these are called *Kushos* When attention is focused on these circles or centres they are activated Through pious meditation their purity increases This purity directs the flow of spiritual consciousness upwards In this aphorism it is advised to visualize these centres *(Sandhi)* This means that meditating on these centres helps in progressive concentration and purification of attitudes

their attachment with carnal desires and passions In the same way the beings living in the higher world or heavens (gods) and the middle world (human beings and animals) are also suffering grief and pain for their attachment with carnal desires and passions

(b) A farsighted seeker should think about the specific feelings and attitudes that become governing cause for a birth in higher, lower or middle world

(c) *Lok* also means an instrument or subject of indulgence Human body is an instrument of indulgence To conceive it as constituted of three separate sections and ponder over each of them is called *lok darshan* or viewing the world The three parts are—

(i) Lower part—below the navel

(ii) Higher part—above the navel

(iii) Middle part—navel itself

Contemplation on these three sections becomes a source of a feeling of aversion for the body due to its evident impurity This strengthens the ideas like ephemeral nature and worthlessness of the body and consequently reduces the fondness for it In the Buddhist system of spiritual practices this is called *'Sharir-vipashyana'* To ponder over the three worlds from different angles has been an established process of meditation

This paragraph alludes that Bhagavan Mahavir, during his spiritual practices, focused his attention on fundamentals located in higher world, lower world and middle world and commenced his meditation In *Lok bhavana* (the attitude towards the world, a specific meditational practice) also the stream of thoughts is directed at the form of the three worlds and the things existing there and effort is made to focus undivided attention on these

(4) **The awareness of repetition**—Lust cannot be quenched or pacified by repeated indulgence in carnal pleasures Instead, the fire of carnality is inflamed and rekindled as if butter was poured in a

fire A lecherous person runs after carnal pleasures again and again In the end he is left with inner turmoil and dissatisfaction This is known as awareness of futility of continued indulgence

(5) **Viewing sandhi**—In the commentary *(Tika) sandhi* has been interpreted as opportunity The birth as a human being is a golden opportunity *(suvarna-sandhi)* for self-development by acquiring knowledge and other virtues

Another interpretation of *'sandhi-darshan'* is viewing the conjunction of bones or skeletal joints of the body and be free of the fondness or attachment for the body To consider the body to be just a structure of bones reduces attachment for it The human body is said to have one hundred and eighty joints Of these, fourteen are major-joints To contemplate over these is also called *sandhi-darshan* The centers of vitality, *chakras* in yogic terminology, in the body are also called *sandhis*

In this *Agam* the word *'sandhi'* has been used at six different places expressing different meanings

***Ayat-chakkhu*—farsighted**—This word is interpreted in many different ways such as farsighted, multi-directional thinking, non-absolute view point, etc According to Acharya Shri Atmaram ji M the qualities of a farsighted person are to ponder over the bitter consequences of mundane indulgences and to contemplate the past and future According to the commentary (*Tika*)—"One who has the capacity to see the torments of this life and the next is called *ayat-chakshu* "

देह की असारता का बोध अशुचि भावना

९३. जहा अतो तहा बाहिं, जहा बाहि तहा अतो।

अंतो अतो पूइदेहतराणि पासइ पुढो वि सवंताइ। पडिए पडिलेहाए।

से मइमं परिण्णाय मा य हु लाल पच्चासी।

मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावायए।

९३. (यह शरीर) जैसा भीतर है, वैसा बाहर है, जैसा बाहर है वैसा भीतर है।

(साधक देखे–) इस शरीर के भीतर-भीतर अशुद्धि भरी हुई है, देह से झरते हुए अनेक अशुचि-स्रोतो को भी देखें। (इस प्रकार) पंडित शरीर की अशुचिता को भलीभाँति जानें।

वह मतिमान शरीर की असारता (अशुचिता एव काम-भोगों के कटु परिणामों) को जानकर तथा उसको त्यागकर पुन लार को न चाटे। (वमन किये हुए भोगों का पुन सेवन न करे।)

साधक स्वय को तिर्यक् मार्ग मे (काम-भोग के बीच मे अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विपरीत मार्ग मे) न फँसाए।

THE AWARENESS OF THE WORTHLESSNESS OF THE BODY

93. As is its interior (of the body) so is its exterior As is its exterior so is its interior

(The seeker should see—) This body is filed with impurities within Also see the numerous oozing sources of impurities of the body (Thus) a wise should become well aware of the impure nature of the body

Knowing the worthlessness (impure nature and consequences of carnal pleasures) of the body and rejecting it, that intelligent person should not lick the saliva (should not yield to the desires he has vomited or abandoned)

A seeker should not get himself caught in the diagonal path (the path of carnal indulgences or the path leading away from *jnana-darshan-charitra*)

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे शरीर की अशुचिता को बताते हुए कहा है–यह जैसा भीतर मे–मल, मूत्र, रुधिर, माँस, अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि से भरा है, वैसा ही बाहर भी है। जैसा अशुचि से भरा मिट्टी का घडा भीतर से अपवित्र रहता है, उसे बाहर से धोने पर भी वह शुद्ध नही होता, इसी प्रकार भीतर से अपवित्र शरीर स्नान आदि करने पर भी बाहर मे अपवित्र ही रहता है।

अशुचि भरे मिट्टी के घडे से जैसे उसके छिद्रो मे से प्रतिक्षण अशुचि झरती रहती है, उसी प्रकार शरीर के रोम–कूपो तथा अन्य छिद्रो (देहान्तर) द्वारा प्रतिक्षण अशुचि बाहर झर रही है–इस पर चिन्तन कर शरीर की सुन्दरता के प्रति राग तथा मोह को दूर करे।

अशुचि भावना का उद्‌बोधन देते हुए टीकाकार ने एक प्राचीन गाथा उद्‌धृत की है–

"मसट्ठी रुहिर-ण्हासवणद्ध कललमय-मेय-मज्जासु।
पुण्णमि चम्मकोसे दुग्गंधे असुइ बीभच्छे॥" (टीका, पत्र १२४)

यह शरीर माँस, अस्थि, रुधिरयुक्त तथा स्नायुओ से बँधा हुआ कललमय मेद और मज्जा से परिपूर्ण एक चर्म कोश है। यह दुर्गन्धमय तथा अशुचि होने के कारण बीभत्स (डरावना तथा घृणास्पद) है।

इस प्रकार चिन्तन करने से शरीर के प्रति मोह तथा आसक्ति दूर होती है।

मा तेसु तिरिच्छ–शब्द से अभिप्राय है तिरछे मार्ग पर मत जाओ। ज्ञान-दर्शन-चारित्र का मार्ग सरल व सीधा मार्ग है। इसके विपरीत मिथ्यात्व-कषाय आदि का मार्ग तिरछा–तिर्यक् व टेढा मार्ग है। अथवा काम-आसक्ति का मार्ग तिर्यक् मार्ग है तुम उसमे मत फँसो।

Elaboration—Conveying the impure nature of the body, it is said that as is its interior (full of excreta, blood, flesh, bones, marrow and semen) so is its exterior An earthen pot filled with filth remains dirty inside, it does not become pure by washing it from outside In the same way the impure body remains so even after bathing or other types of cleansing

An earthen pot filled with excreta oozes impurity every moment In the same way various openings in the body, including pores, constantly ooze out impurity The seeker should ponder over this and free himself of the fondness and attachment for the beauty of this body

Expounding the subject of impurity the commentator *(Tika)* has quoted an ancient verse—

This body is a vessel made of skin (leather) combined with flesh, bones and blood, reinforced with ligaments, and filled with cells, fat and marrow Being stinking and impure it is hideous (horrifying and detestable)

Contemplating thus one is rid of fondness and attachment for the body

Maa tesu tirichham—This phrase means do not go on the diagonal path. The path of *jnana-darshan-charitra* is simple and straight forward As against this, the path of falsity or passions and

other such vices is the diagonal path In other words—the path of carnal desires is the diagonal path, do not get trapped into that

९४. कासंकासे खलु अयं पुरिसे। बहुमाइ, कडेण मूढे। पुणो तं करेइ लोभं।
वेरं वड्ढेति अप्पणो।
जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव पडिबूहणयाए।
अमरायइ महासड्ढी। अट्टमेतं तु पेहाए। अपरिण्णाए कंदइ।

९४ "मैने यह काम कर लिया और यह काम अभी करूँगा।"–इस प्रकार की उधेड़-बुन में रहने वाला कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। वह भोगों की प्राप्ति के लिए माया–कपट रचता है और फिर अपने रचे मायाजाल मे स्वय फँसकर मूढ़ बन जाता है। वह मूढ़भाव से ग्रस्त होकर फिर लोभ करता है और प्राणियो के साथ अपना वैर बढ़ाता रहता है।

जो कहा जाता है (कि वह कामी पुरुष माया तथा लोभ का आचरण कर अपना वैर बढ़ाता है) उसका यह आचरण इस शरीर को पुष्ट बनाने के लिए होता है।

वह काम-भोग मे महान् श्रद्धा (आसक्ति) रखता हुआ अपने को अमर की भाँति समझता है। तू देख, वह आर्त्त (पीडित) है। परिग्रह का त्याग नही करने वाला क्रन्दन करता है (रोता है)।

94. "I have done this work and will now do that," a man caught in such ambiguities can never attain peace. To appease his carnal desires he resorts to deception; caught into the trap of deception, he in the end makes a fool of himself Under the influence of this stupidity he develops greed and continues to inflame his animosity with other beings.

The said conduct (that a lecherous man inflames animosity through deception and greed) is (in fact) for making his body strong

Having great faith (craving) in carnal indulgences he considers himself immortal See man, he is tormented. One who does not abandon attachment cries (in the end).

विवेचन–'कासंकासे' शब्द द्वारा रात-दिन सपने देखने वाले मनुष्य की वृत्ति को व्यक्त किया गया है। ऐसा स्वप्नदर्शी मनुष्य–"यह किया है, यह करना बाकी है।"–इसी उधेड़-बुन में फँसा अनेक हथकंडे रचता है, वैर बढ़ाता है। वह जीवन में इतना आसक्त हो जाता है कि दूसरों को मरते हुए देखकर भी स्वयं को अमर की तरह मानने लगता है।

आचार्य शीलाक ने उदाहरण देते हुए इसकी व्याख्या की है–

अर्थ-लोभी व्यक्ति सोने के समय मे सो नही पाता। स्नान के समय में स्नान नहीं कर पाता। भोजन के समय भोजन भी नहीं कर पाता। रात-दिन उसके सिर पर धन का भूत चढा रहता है। वह अपने आप को भूल-सा जाता है। यहाँ तक कि 'मृत्यु' जैसी अवश्यभावी स्थिति को भी विस्मृत-सा कर देता है।

एक बार राजगृह मे 'धन' नाम का सार्थवाह आया। वह दिन-रात धनोपार्जन मे ही लीन रहता। उसकी विशाल समृद्धि की चर्चा सुनकर 'मगधसेना' नाम की गणिका उसके आवास पर गई। सार्थवाह अपने आय-व्यय का हिसाब जोडने और स्वर्ण-मुद्राएँ गिनने में इतना दत्तचित्त था कि उसने द्वार पर खडी सुन्दरी गणिका की ओर नजर उठाकर भी नही देखा।

मगधसेना का अहकार तिलमिला उठा। दाँत पीसती हुई उदास मुख लिए वह सम्राट् जरासध के दरबार मे गई। जरासध ने पूछा–"सुन्दरी ! तुम उदास क्यो हो ? किसने तुम्हारा अपमान किया ?"

मगधसेना ने व्यग्यपूर्वक कहा–"उस अमर ने !"

"कौन अमर ?"–जरासध ने विस्मयपूर्वक पूछा।

"धन सार्थवाह ! वह धन की चिन्ता मे, स्वर्ण-मुद्राओ की गणना मे इतना बेभान है कि उसे मेरे पहुँचने का भी भान नही हुआ। जब वह मुझे भी नही देख पाता, तो वह अपनी मृत्यु को कैसे देखेगा ? वह स्वय को अमर-जैसा समझता है।"

शास्त्रकार ने कहा है–भोग एव अर्थ मे अत्यन्त आसक्त पुरुष स्वय को अमर की भाँति मानने लगता है और इस घोर आसक्ति का परिणाम आता है–आर्त्तता–पीडा, अशान्ति और क्रन्दन। पहले भोग-प्राप्ति की आकाक्षा मे क्रन्दन करता है, फिर भोग छूटने के शोक (वियोग चिन्ता) मे क्रन्दन करता है।

'बहुमायी' शब्द के द्वारा बताया है–अव्यवस्थित चित्त वाला पुरुष कभी माया, कभी क्रोध, कभी अहकार और कभी लोभ करता रहता है। वह विक्षिप्त–पागल की तरह आचरण करने लगता है।

Elaboration—*'Kaasamkaase'* means ambiguity This term has been used to convey the attitude of a day-dreamer Such procrastinator is caught in the indecisive attitude—"I have done this, I have yet to do this "—and is busy framing conspiracies and inflaming animosity He is so obsessed with life that in spite of seeing others die he considers himself to be immortal

Acharya Sheelank has elaborated this giving an example—

A man having greed for wealth cannot sleep at bed-time He can neither bathe nor eat at the proper time Day and night he is plagued by the ghost of wealth He becomes a lost man So much so that he even fails to recognize an inevitable consequence like death

Once a merchant named Dhan came to Rajagriha Day and night he was busy earning money. Knowing about his enormous wealth a courtesan named Magadhasena visited his residence. The merchant was so engrossed in checking his accounts and counting gold coins that he did not even look up to see the beautiful courtesan standing at the door

This hurt Magadhasena's ego Inflamed with anger and with a sad face she went to the court of emperor Jarasandh The emperor asked—"O pretty one ! Why are you so sad ? Who has insulted you ?"

Magadhasena uttered tauntingly—"That immortal !"

"Who is this immortal ?" Jarasandh asked with surprise

"Merchant Dhan ! He is so obsessed with his wealth and so engrossed in counting gold coins that he was unaware of my approach When he is unable to look at me how could he see his death? He considers himself to be immortal "

The author of this scripture says—A man deeply obsessed with carnal pleasures and wealth believes himself to be like an immortal. And the consequence of this deep obsession is torment, pain, disturbance and wailing First he wails with the desire of acquiring means of pleasure and then with the worry of getting deprived of the pleasures

Bahumayi means numerous illusions A disorganized person is a drift in streams of illusion, anger, pride and greed He behaves like an insane

सदोष चिकित्सा-निषेध

९५. से तं जाणह जमहं बेमि।

तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवइत्ता 'अकडं करिस्सामि' त्ति मण्णमाणे, जस्स वि य णं करेइ।

अलं बालस्स संगेणं, जे वा से कारेइ बाले।

ण एवं अणगारस्स जायति।

त्ति बेमि।

॥ पचमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

९५. जो मैं कहता हूँ तुम उसे जानो और धारण करो।

स्वयं को चिकित्सा-पंडित बताते हुए वह (वैद्य) चिकित्सा (काम-चिकित्सा) में प्रवृत्त होता है। वह (काम-चिकित्सा के लिए) अनेक जीवों का हनन, भेदन, लुम्पन, विलुम्पन और प्राण-वध करता है। "जो अभी तक किसी ने नहीं किया, ऐसा काम मैं करूँगा।" यह मानता हुआ (वह जीव-हिसा करता है)। वह जिसकी चिकित्सा करता है (वह भी जीव-हिसा में सम्मिलित होता है)।

अज्ञानी (जो हिसा-प्रधान चिकित्सा करने वाला है) की सगति से क्या लाभ है ! जो ऐसी चिकित्सा करवाता है, वह भी बाल–अज्ञानी है।

अनगार ऐसी चिकित्सा नही करवाता।

–ऐसा मै कहता हूँ।

CENSURING FAULTY TREATMENT

95. Know and understand (absorb) what I say Claiming himself to be the master of medicine he (doctor) offers cure (for carnal desires) He kills, pierces, chases, displaces and destroys many beings (for this purpose) He resolves that "I will do what no one has done" (and indulges in violence) His patient too (joins him in violence)

What is the benefit of the company of such ignorant (the healer who employs violent methods) ? He who goes for such cure is also ignorant

An ascetic does not resort to such cure

—So I say

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में हिसा-जन्य चिकित्सा का निषेध है। आचार्य श्री आत्माराम जी म के कथनानुसार–पिछले सूत्रो मे काम (विषयो) का वर्णन आने से यहाँ यह भी सभव है कि काम-चिकित्सा को लक्ष्य कर ऐसा कथन किया गया है। काम-वासना की तृप्ति के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की रासायनिक औषधियो का (वाजीकरण–उपवृहण आदि के लिए) सेवन करता है, मरफिया आदि के इन्जेक्शन लेता है, शरीर के अवयव जीर्ण व क्षीणसत्त्व होने पर अन्य पशुओं के अंग-उपाग-अवयव लगाकर काम-सेवन की शक्ति को बढ़ाना चाहता है। उसके निमित्त वैद्य-चिकित्सक अनेक प्रकार की जीव-हिसा करते हैं। चिकित्सक और चिकित्सा कराने वाला दोनों ही इस हिंसा के भागीदार होते हैं। इस प्रकार की औषधियों से काम की चिकित्सा के नाम पर काम-वृद्धि ही होती है। वास्तव मे काम का उदय मोह-कर्म के कारण होता है, मोह-कर्म का

उपशम–वैराग्य, तप एव ध्यान द्वारा ही हो सकता है। अत· काम की योग्य चिकित्सा तो वैराग्य व ध्यान ही है।[1]

व्याधि-चिकित्सा के सन्दर्भ मे भी साधक जीव-हिंसा-जन्य चिकित्सा नहीं करवाता। यहाँ उसका निषेध किया है।

॥ पचम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In thıs paragraph any treatment based on vıolence has been censured According to Acharya Shrı Atmaram jı M —As ın the precedıng paragraphs the subject dıscussed ıs carnal desıres, ıt ıs possıble that thıs reference to treatment ıs ın context of sexual competence and venereal dıseases To enhance hıs sexual enjoyment man uses varıous medıcınes, aphrodısıac and drugs lıke morphıne When body becomes weak and he loses hıs sexual competence he wants to regaın and extend hıs potency through ımplants, prostheses and other surgıcal methods usıng anımal organs or medıcınes made thereof For thıs purpose doctors and other healers ındulge ın vıolence towards anımals Thus the patıent and doctor both are partners ın such vıolence Thıs type of treatment ıncreases lıbıdo ınstead of curıng ıt In fact, carnal desıres are caused by precıpıtatıon of *Mohanıya karma* and thıs *karma* can be subdued only through detachment, austerıtıes and medıtatıon Therefore the proper cure for carnal desıres ıs detachment and medıtatıon

Even ın case of treatment for normal aılments an ascetıc does not go for a method that ınvolves vıolence Here ıt has been censured

● **END OF LESSON FIVE** ●

---

१ आचाराग हिन्दी टीका–आचार्य श्री आत्माराम जी म, पृ २८२

छट्ठो उद्देसओ | षष्ठ उद्देशक | LESSON SIX

सर्व अव्रत-विरति

९६. से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए तम्हा पाव कम्मं णेव कुज्जा ण कारवे।

९७. सिया से एगयरं विप्परामुसइ छसु अण्णयरम्मि कप्पइ।

सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ। सएण विप्पमाएण पुढो वयं पकुव्वइ। जंसिमे पाणा पव्वहिया।

९६ मुनि उस सदोष चिकित्सा को (अथवा आसक्ति को) भलीभाँति से जानकर संयम-साधना में सावधान रहे। वह स्वय पापकर्म न करे, दूसरो से न करवाए (अनुमोदन भी न करे)।

९७. कदाचित् वह किसी एक जीवकाय का समारभ करता है, तो वह छहो जीवकायो में से किसी का भी (या सभी का) समारभ कर सकता है।

वह सुख का इच्छुक, बार-बार सुख की कामना करता है, (किन्तु) स्व-कृत कर्मो के कारण मूढ़ बन जाता है और विषयादि सुख के बदले दु ख को ही प्राप्त करता है। वह (मूढ) अपने अति प्रमाद के कारण ही अनेक योनियो में भ्रमण करता है, जहाँ पर कि प्राणी अत्यन्त दु ख भोगते है।

REJECTING INDISCIPLINE

96 Knowing well about that faulty cure (or attachment) an ascetic should be cautious in his practices of discipline He should neither indulge in sinful activities nor cause others to do so (or approve others doing so)

97. If he harms one life-form *(jiva-nikaya)* he is capable of harming any or all of the six life-forms

Desirous of pleasure, he continues to yearn for pleasures. But as a consequence of his own deeds he is stupefied and instead of mundane pleasures he ends up in misery Due to his excessive stupor he drifts to numerous genuses (in cycles of rebirth) where beings suffer extreme torture.

विवेचन–सूत्र ९७ पर टीका एव चूर्णि मे विस्तृत चर्चा की गई है। कदाचित् कोई श्रमण प्रमादवश किसी एक जीवकाय की हिसा करे, अथवा जो असयत है–अन्य श्रमण परिव्राजक हैं, वे किसी एक जीवकाय की हिसा करें तो क्या वे अन्य जीवकायो की हिंसा से बच सकेगे? इसका उत्तर दिया गया है–"**छसु अण्णयरम्मि कप्पइ**।' –एक जीवकाय की हिसा करने वाला छहो जीवकाय की हिंसा कर सकता है।

भगवान महावीर के समय मे अनेक परिव्राजक आदि कहते थे कि "हम केवल पीने के लिए पानी के जीवो की हिंसा करते है, अन्य जीवो की हिसा नहीं करते।" गैरिक व शाक्य आदि श्रमण भी यह कहते थे कि "हम केवल भोजन के निमित्त जीव-हिसा करते है, अन्य कार्य के लिए नही।"

सभावना की जाती है कि ऐसा कथन करने वालो को सामने रखकर आगम मे यह उल्लेख किया गया है कि जब साधक के चित्त मे किसी एक जीवकाय की हिसा का विचार उठता है तो वह अन्य जीवकाय की हिसा भी कर सकता है और करेगा।

जल मे वनस्पति का नियमत सद्भाव है, अत जलकाय की हिसा करने वाला वनस्पतिकाय की हिसा भी करता ही है' जल के हलन-चलन-प्रकम्पन से वायुकाय की भी हिसा होती है, जल और वायुकाय के समारभ से वहाँ रही हुई अग्नि भी प्रज्वलित हो सकती है तथा जल के आश्रित अनेक प्रकार के सूक्ष्म त्रस जीव भी रहते है। जल मे मिट्टी (पृथ्वी) का भी अश रहता है अत एक जलकाय की हिसा से छहो काय की हिसा होती है।[1]

टीकाकार के मतानुसार 'छसु' शब्द से पॉच महाव्रत तथा छठा रात्रि-भोजन-विरमण व्रत भी सूचित किया गया है। एक अहिसा व्रत खण्डित हो जाने पर सत्य व्रत भी खण्डित हो जाता है, क्योकि साधक ने हिसा त्याग की प्रतिज्ञा की थी। प्रतिज्ञा-भग असत्य का सेवन है। जिन प्राणियो की हिसा की जाती है उनके प्राणो का हरण करना चोरी है। हिसा से कर्म-परिग्रह भी बढ़ता है तथा हिसा के साथ सुखाभिलाष–काम-भावना उत्पन्न हो सकती है।

पुढो वय–इस शब्द के दो अर्थ किये गये है–(१) विविध व्रत, और (२) विविध गति–योनिरूप ससार। यहाँ दोनो ही अर्थ उपयुक्त लगते है। एक व्रत का भग करने वाला अन्य सभी व्रतो को भग कर डालता है, तथा वह अपने अति प्रमाद के ही कारण पृथक्-पृथक् गतियो मे, अर्थात् संसार मे भ्रमण करता है।

Elaboration—This paragraph (97) has been discussed in detail in the commentaries (*Churni* and *Tika)* If ascetics or indisciplined mendicants belonging to other school, out of stupor, commit violence against one life-form, will they be able to avoid violence against other life-forms ? The answer given to this question is—one who

१ आचा शीला टीका, पत्राक १२७-१२८। आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत हिन्दी टीका, पृ २८९-२९० देखें।

commits violence against one life-form can commit violence against all the six life-forms

During Bhagavan Mahavir's period many *parivrajaks* and other mendicants used to say—"For the sake of drinking water we commit violence only against the beings living in water and not against any other beings " Similarly the *Gairik* and *Shakya* mendicants also used to say—"We commit violence against beings only for the sake of food and for no other purpose "

It is possible that keeping in view the mentality of such people it has been mentioned in the *Agams* that—when the idea of committing violence against one life-form arises in the mind of a seeker, he is capable of committing violence against other life-forms and will do so

There is a natural affinity between water and plant life, therefore when one commits violence against water-bodied beings he is also including plant-bodied beings Disturbance, movement and agitation of water results in violence against air-bodied beings Such violence against water-bodied and air-bodied beings may also cause eruption of fire Also, many types of mobile micro-organism exist in water A water body also has sand (earth-bodied beings) in it Thus violence against just one life-form (water) includes that against all the six life-forms *(Sheelank Tika on Acharanga)*

In view of the commentator the word *'chhasu'* also points at five great vows and the sixth vow of abstaining from eating after sunset When the vow of *ahimsa* is violated the vow of truth is automatically violated because the ascetic had vowed to abandon violence Breaking a vow is to go against truth To snatch away lives of beings as a result of violence amounts to theft Violence also means acquisition and accumulation of *karmas* and it may also enhance carnal desires

Pudho vayam—This term has two meanings—(1) various vows, and (2) various genuses or the world Here both the meanings appear appropriate. He who breaks one vow breaks all the other

vows and as a consequence of his excessive stupor he drifts around in various genuses or the cycles of rebirth that is this world.

९८. पडिलेहाए णो णिकरणाए। एस परिण्णा पवुच्चइ। कम्मोवसंती।

जे ममाइयमतिं जहाइ से जहाइ ममाइयं।

से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स णत्थि ममाइयं।

तं परिण्णाय मेहावी विइत्ता लोगं, वंता लोगसण्णं, से मतिमं परक्कमेज्जासि।
त्ति बेमि।

९८ (परिग्रह के कारण दुःख उत्पन्न होता है) यह जानकर परिग्रह का संकल्प त्याग देवे। यही परिज्ञा/विवेक कहा जाता है। इसी से कर्मों की उपशान्ति (क्षय) होती है।

जो ममायित मति–मेरापन की ममत्व-बुद्धि का त्याग करता है, वह ममत्व (परिग्रह) का त्याग कर देता है।

जिसके अन्त करण मे ममत्व नहीं है वही मुनि मोक्ष-मार्ग को देखने वाला दृष्ट-पथ है।

यह जानकर मेधावी मनुष्य लोक का स्वरूप जाने। लोक-संज्ञा (आसक्ति) का त्यागकर, सयम मे पुरुषार्थ करे वही मतिमान (बुद्धिमान्) ज्ञानी पुरुष कहा जाता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

98. With awareness (that possession causes misery) one should stop aspiring for possession. This is called awareness or sagacity This is what pacifies (or makes one shed) *karmas*.

He who frees himself of the attitude of fondness (or owning) gets free of possessions

The sage whose mind is free of fondness is the one who has seen the path of liberation.

Knowing this a wise man should understand the form of the world Getting rid of worldly awareness (attachment) he should pursue the path of discipline. Only that person is called wise.

—So I say

विवेचन–इस सूत्र के कथनानुसार ममत्व-बुद्धि–मूर्च्छा एवं आसक्ति, बन्धन का मुख्य कारण है। पदार्थ के साथ जब ममत्व-बुद्धि जुड़ जाती है तब वह पदार्थ परिग्रह कोटि में आता है और उससे कर्मबंध होता है। इसलिए कहा है–"जो ममत्व-बुद्धि का त्याग कर देता है, वह सम्पूर्ण ममत्व अर्थात् परिग्रह का त्याग कर देता है और वही परिग्रह-त्यागी पुरुष वास्तव में सत्य-पथ

का द्रष्टा है।'' चूर्णि में भरत चक्रवर्ती के उदाहरण द्वारा बताया है–उन्होने शीशमहल मे रहते हुए भी ममकार मति का त्याग करके कैवल्य प्राप्त किया था।

लोगसण्ण–लोक-संज्ञा से तीन अर्थ सूचित किये गये हैं–(१) आहार-सज्ञा, भय-सज्ञा आदि दस प्रकार की लोक-सज्ञा।[1] (२) यश की कामना, अहकार, प्रदर्शन की भावना, मोह, विषयाभिलाषा, पदार्थ की आसक्ति, विचारमूढ़ता, गतानुगतिक वृत्ति आदि। (३) मनगढ़न्त लौकिक रीतियाँ, जैसे–श्वान यक्ष रूप है, विप्र देवरूप हैं, अपुत्र की गति नहीं होती आदि। इन तीनो प्रकार की संज्ञाओ/वृत्तियों का त्याग यहाँ अपेक्षित है।

Elaboration—According to this paragraph fondness and craving for mundane pleasures is the main cause of bondage The attitude of fondness for a thing is classified as possession and it causes bondage of *karma* That is why it is said—"He who frees himself of the attitude of fondness gets free of possessions " And only that person who is free of fondness, in fact, sees the right path In the commentary *(Churni)* is given the example of Bharat Chakravarti who, while still living in his palace of glasses, attained *Keval-jnana* just by casting of the attitude of fondness

Logasannam—Three meanings of this term have been listed—(1) Ten types of worldly awareness including appetite and fear *(Prajnapana Sutra)* (2) Desire of fame, ego, exhibitionism, fondness, desire for pleasure, attachment for things, mental stupor, procrastination etc (3) Social idiosyncrasies like—god is a deity, Brahmin is god, a man without a son is not liberated etc Getting free of all such attitudes and inclinations is desired here

अरति-रति-विवेक

९९. नारइं सहइ वीरे, वीरे णो सहइ रतिं।
जम्हा अविमणे वीरे तम्हा वीरे न रज्जइ॥

१००. सद्दे फासे अहियासमाणे णिव्विंद नंदि इह जीवियस्स।
मुणी मोण समादाय धुणे कम्मसरीरग।
पंत लूहं सेवंति वीरा समत्तदंसिणो।
एस ओघंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए।
त्ति बेमि।

---

१ प्रज्ञापना सूत्र, पद १०

९९. वीर पुरुष (संयम के प्रति) अरति को सहन नहीं करता और (असयम में) रति (विषयों की अभिरुचि) को भी सहन नहीं करता। इसलिए वह वीर पुरुष इन दोनों में ही अर्थात् मध्यस्थ–स्थिर–शान्तमना रहकर इष्ट-अनिष्ट विषयो में आसक्त नहीं होता।

१00. मुनि (रति-अरति उत्पन्न करने वाले मधुर एव कटु) शब्द (रूप, रस, गन्ध) और स्पर्श को सहन करता है। शब्दादि से होने वाले नंदी अर्थात् आमोद हर्ष आदि से विरत होता है।

मुनि मौन (संयम तथा ज्ञान) को धारण कर कर्म-शरीर को धुन डालता है।

समत्वदर्शी वीर साधक, प्रान्त (वासी बचा हुआ तथा) रूखे-सूखे नीरस आहार का समभावपूर्वक सेवन करते है।

यह समदर्शी मुनि जन्म-मरणरूप ससार-प्रवाह को तैरने वाला है। उसे ही वास्तव में मुक्त, विरत कहा जाता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

JUDGING INDULGENCE AND NON-INDULGENCE

99. A brave does not tolerate non-indulgence (in discipline) as well as indulgence (in indiscipline or liking of mundane pleasures) Therefore that brave remains equanimous or unaffected in both (conditions) and avoids attachment (with desirable as well as undesirable things)

100. An ascetic tolerates sound (and form, taste and smell) and touch (soft and harsh, evoking like and dislike) He abstains from enjoying the pleasures of sound (etc.)

An ascetic takes to silence (discipline and knowledge) and cards (cleanses by vibrating) the karmic-body.

A brave and equanimous seeker quietly eats stale (leftover), dry and tasteless food.

This equanimous ascetic is capable of swimming across the flow of life and death that is this world. It is he who is truly called liberated and detached

—So I say

विवेचन–मनुष्य के अन्तःकरण में छुपी हुई विषय की अभिरुचि रूप दुर्बलता का ही नाम रति तथा अरति है। अरति–का अर्थ है संयम-साधना मे तपस्या, सेवा, स्वाध्याय आदि के प्रति उत्पन्न होने वाली अरुचि एवं अनिच्छा। इस प्रकार की अरुचि संयम-साधना के लिए घातक होती है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध आदि मोहक विषयो के प्रति चित्त की प्रसन्नता/रुचि, आकर्षण तथा कामेच्छा को रति कहा गया है।

यहाँ एक ही सूत्र में 'वीर' शब्द चार बार आने का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म ने लिखा है–"साधना में अरति का त्याग, असयम मे रति का त्याग, मन की चंचलता का त्याग तथा शब्दादि विषयो मे आसक्ति का त्याग इन चार प्रयोजनो को सूचित करने के लिए चार बार 'वीर' शब्द आया है।"

मोण–मौन के दो अर्थ किये जाते है, मौन–मुनि का भाव–सयम, अथवा मुनि जीवन का मूल आधार ज्ञान।

धुणे कम्मसरीरग–कर्म शरीर को धुनने का तात्पर्य है ध्यान आदि द्वारा आठ प्रकार के कर्मों को क्षीण करें। क्योंकि इस औदारिक शरीर को धुनने से, क्षीण करने से तब तक कोई लाभ नहीं, जब तक राग-द्वेषजनित कर्म (कार्मण) शरीर को क्षीण नही किया जाये। आगमो व टीका ग्रन्थो मे मुख्य रूप में कर्म शरीर धुनने का ही निर्देश है। कही-कहीं प्रसंगानुसार तप के प्रकरण में औदारिक शरीर को धुनना तथा ध्यान के प्रसग मे कर्म शरीर को धुनना मुख्य होता है। यह औदारिक शरीर तो साधना के लिए साधन मात्र है। हाँ, सयम के साधनभूत शरीर के नाम पर वह इसके प्रति ममत्व भी न लाये, सरस-मधुर आहार से इसकी वृद्धि भी न करे, इस बात का स्पष्ट निर्देश करते हुए कहा है–"**पंत लूहं सेवति।**" वह साधक शरीर से धर्म-साधना करने के लिए रूखा-सूखा, यथाप्राप्त भोजन का सेवन करे। यहाँ खाद्य सयम व तप के द्वारा औदारिक शरीर को कृश करने का संकेत है।

अनेक प्रतियों में **समत्तदंसिणो** के स्थान पर **सम्मत्तदसिणो** पाठ भी उपलब्ध है। टीकाकार शीलाकाचार्य ने इसका पहला अर्थ 'समत्वदर्शी' तथा दूसरा अर्थ 'सम्यक्त्वदर्शी' किया है। यहाँ नीरस भोजन के प्रति 'समभाव' का प्रसग होने से 'समत्वदर्शी' अर्थ अधिक उपयुक्त लगता है।

Elaboration—It is the weakness concealed within the human mind in the form of affinity for mundane pleasures that is called *rati* (indulgence) and *arati* (non-indulgence) *Arati* means the lack of desire or dislike for spiritual activities like practicing ascetic discipline, austerities, service and self study Such apathy is detrimental to practices of ascetic discipline

The liking and attraction for sources of sensual pleasure such as sound, touch, form, taste and smell and libido is called *rati*

Explaining the purpose of quadruple recurrence of the word *'vir'* Acharya Shri Atmaram ji M has written—"Abandoning apathy for practices, abandoning affinity with indiscipline, abandoning fickleness of mind and abandoning attachment for mundane

pleasures like sound; to lay emphasis on these four the word *vir* has been repeated four times "

Mauam—silence This word is interpreted two ways. One—the attitude of a *muni* (ascetic) which is discipline, and two—the basis of ascetic life which is knowledge

Dhune kammasariragam—Carding of *karmic* body points at shedding of *karmas* through practices like meditation No purpose is served by carding or vibrating the physical body unless the *karmic* body created by attachment and aversion is weakened. In the *Agams* and their commentaries directions are mainly given for efforts at disintegrating the *karmic* body At some places, in context of austerities, stress is given on carding the physical body but in context of meditation it is always about carding the *karmic* body The physical body is just the instrument of spiritual practice Of course, any fondness for this body, even as an instrument of spiritual practices, should be avoided It should not be pampered with rich and tasty food This has been stressed by stating—"A brave and equanimous seeker quietly eats stale (leftover), dry and tasteless food " This is an indication of reducing the physical body through discipline of food and austerities

In many versions *'sammattadamsino'* is found as an alternative text for *'samattadamsino'*. Commentator *(Tika) Sheelankacharya* has given *'samyaktvadarshi'* and *'samatvadarshi'* as transliterations respectively As the context here is equanimity for drab food *'samatvadarshi'* appears to be more appropriate

बंध-मोक्ष-परिज्ञान

१०१. दुव्वसु मुणी अणाणाए, तुच्छए गिलाइ वत्तए।

१०२. एस वीरे पसंसिए अच्चेइ लोगसंजोगं। एस णाए पवुच्चइ।

जं दुक्खं पवेइअं इह माणवाणं तस्स दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति। इति कम्मं परिण्णाय सव्वसो।

जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे, जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी।

१०१ जो मुनि (पूर्व मे बतायी गई) वीतराग की आज्ञा का पालन नहीं करता वह (सयम, धन, ज्ञानादि रत्नत्रय) से रहित–दुर्वसु है–दरिद्र है। वह (चारित्र से शून्य) पुरुष धर्म का कथन–करने में ग्लानि (लज्जा या भय) का अनुभव करता है।

१०२ आज्ञा के अनुसार चलने वाला वीर पुरुष सर्वत्र प्रशसा प्राप्त करता है और लोक-सयोग (मोह, धन, परिवार आदि) से दूर हट जाता है। यही न्याय मार्ग (तीर्थंकरों का बताया मार्ग) है।

(इस ससार मे) मनुष्यो के जो दु:ख या दु ख के कारण विदित है, कुशल पुरुष उन दु खो की परिज्ञा अर्थात् दु खों से मुक्त होने का मार्ग भी बताते है। इस प्रकार (कर्म तथा कर्म के कारण) को जानकर सर्व प्रकार से निवृत्ति करे।

जो अनन्य (चैतन्य आत्मा) को देखता है, वह अनन्य (आत्मा) मे ही रमण करता है। जो अनन्य मे रमण करता है, वह अनन्य को देखता है।

AWARENESS OF BONDAGE AND LIBERATION

101. The ascetic who does not obey the order of the Detached (mentioned earlier) is a destitute (deprived of the wealth of discipline or the three gems) That person (deprived of right conduct) feels flustered in stating *dharma* (the right path)

102. The brave who follows the order gets praise everywhere and moves away from worldly attachments (fondness for wealth and family) This is the just path (as shown by *Tirthankars*)

The miseries and sources of miseries of man (in this world) are known The accomplished ones give the knowledge of (show the way of salvation from) those miseries Knowing thus (*karmas* and their sources) one should renounce all this

He who sees the truth (the perfect soul) dwells in truth (the self). He who dwells in truth (the self) sees the truth (the perfect soul)

विवेचन–सूत्र १०१ मे बताया है, जो साधक वीतराग की आज्ञानुसार सम्यक् आचरण नही करता वह ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप धन से दरिद्र (दुव्वसु) हो जाता है। जिन-शासन मे वीतराग आज्ञा की आराधना ही संयम की आराधना मानी गई है। आणाए मामग धम्म–आदि वचनो मे

आज्ञा और धर्म का सह-अस्तित्व बताया गया है–जहाँ आज्ञा है वहीं धर्म है, जहाँ धर्म है वहाँ आज्ञा है। आज्ञा-विपरीत आचरण का अर्थ है–सयम-विरुद्ध आचरण।

लोग सजोगं–वाक्य का तात्पर्य है–वह वीर साधक धर्माचरण करता हुआ संसार के संयोगो–बंधनों से मुक्त हो जाता है। सयोग दो प्रकार के हैं–

(१) बाह्य संयोग–धन, भवन, पुत्र, परिवार आदि।

(२) आभ्यन्तर सयोग–राग, द्वेष, कषाय, आठ प्रकार के कर्म आदि।

एस णाए–शब्द दो अभिप्राय सूचित करता है–यह न्याय मार्ग (सन्मार्ग) है, तीर्थंकरो द्वारा प्ररूपित मार्ग है। सूत्रकृत् मे भी 'नेआउय सुअक्खाय'[1] एव 'सिद्धिपह णेयाउय धुवं' पदों द्वारा सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक मोक्ष-मार्ग का तथा मोक्ष स्थान का सूचन किया गया है।

दूसरा अर्थ है एष नायक । आज्ञा मे चलने वाला मुनि मोक्ष-मार्ग की ओर ले जाने वाला नायक–नेता है और वह लोक सयोगों से दूर रहता है।

अणण्णदसी अणण्णारामे–अध्यात्मशास्त्र मे चेतन को 'स्व' तथा जड को 'पर'–अन्य माना गया है। परिग्रह, शरीर, कषाय, विषय आदि सभी 'अन्य' है। 'अन्य' से इतर–दूसरा अनन्य है, अर्थात् आत्मा अनन्य है। जो इस अनन्य को देखता है, वह इस अनन्य मे (आत्मा मे) रमण करता है। जो आत्म-रमण करता है, वह आत्मा को देखता है। रत्नत्रय की भाषा मे इस प्रकार भी कहा जा सकता है–"आत्मा को जानना–देखना सम्यग्ज्ञान एव सम्यग्दर्शन है और आत्मा मे रमण करना सम्यक् चारित्र है।"

Elaboration—In aphorism 101 it is shown that the seeker who does not perfect his conduct according to the tenets of the Detached becomes deprived of the wealth of *jnana-darshan-charitra* In the Jain order the practice of the tenets of the Detached is believed to be the practice of discipline In the statements like *'Aanaae maamagam dhammam'* the coexistence of tenets and *dharma* has been revealed—where there are tenets there is *dharma,* and where there is *dharma* there are tenets Conduct against order means conduct contrary to ascetic discipline

Log sanjogam—This phrase means—through right conduct that brave seeker gets liberated from the worldly attachments or bondage Attachments are of two types—

(1) Outer attachments like wealth, buildings, sons, family etc

---

१ श्रु १, अ ८, गा ११

(2) Inner attachments like attachment and aversion, passions, eight types of *karma* etc.

Es naaye—This term has two meanings One is—this is the just path (right path) or the path shown by *Tirthankars.* In *Sutrakritanga* also this term has been used to indicate the path of liberation through right knowledge, perception and conduct, and also the state of liberation

The second meaning is the leader The ascetic who follows the order (tenets) is the leader who shows the path of liberation He keeps away from worldly attachments

Anannadamsi anannaaraame—In the spiritual texts soul is believed to be the self *(sva)* and matter to be the other *(anya)* possessions, body, passions, mundane activities are all *'anya'* The non-other *(ananya)* or opposite to this other (matter) is soul (*ananya* or perfect soul or the ultimate truth) He who sees *ananya* dwells in this *ananya* (the self or the truth) He who dwells in the self sees the perfect soul (the truth) In the terminology of *ratnatraya* (three-gems) it can be said that to know soul is right knowledge, to see soul is right perception and to dwell in soul is right conduct

उपदेश-कौशल

१०३. जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ॥
अवि य हणे अणादियमाणे। एत्थं पि जाण सेयं ति णत्थि।
केऽयं पुरिसे कं च णए।

१०३. (धर्म का प्रवचन करने वाला–आत्मदर्शी साधक) जैसे पुण्यवान (सम्पन्न) व्यक्ति को धर्मोपदेश देता है, वैसे ही तुच्छ (विपन्न-दरिद्र) को भी धर्मोपदेश देता है और जैसे तुच्छ को धर्मोपदेश देता है, वैसे ही पुण्यवान को भी धर्मोपदेश देता है।

कभी (धर्मोपदेश-काल मे किसी व्यक्ति या सिद्धान्त का) अनादर होने पर वह (श्रोता) उस (धर्मकथी) को मारने-पीटने भी लग जाता है। अतः यहाँ यह भी जानो कि (उपदेश की उपयुक्त विधि जाने विना) धर्मकथा करना भी श्रेय नही है।

(धर्मोपदेशक को यह पहले जान लेना चाहिए कि) यह पुरुष (श्रोता) कौन है? किसका अनुयायी है?

PREACHING SKILL

103. As he (the preacher of *dharma* or he who knows the soul) enlightens a pious (endowed) one so he enlightens a lowly (deprived) one, and as he enlightens a lowly one so he enlightens a pious one

Sometimes due to disrespect (shown for some person or principle while preaching) he (the listener) starts manhandling him (the preacher) Therefore, also know that it is not beneficial even to preach (indiscriminately and without learning proper procedure)

Who is this person (listener) ? Whose follower is he ? (a preacher should know this before preaching)

१०४. एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए।

उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, से सव्वओ सव्वपरिण्णाचारी ण लिप्पइ छणपएण वीरे।

१०४ वह वीर प्रशसनीय है, जो (समीचीन धर्म-कथन करके) बँधे हुए मनुष्यों को मुक्त करता है।

जो ऊँची, नीची और तिरछी दिशाओं मे, सब प्रकार से सम्पूर्ण परिज्ञा के साथ चलता है वह मेधावी है, वह हिसा-स्थान से लिप्त नही होता।

104. That brave is worthy of praise who (by showing right path) liberates people in bondage

The accomplished one who moves in higher, lower, diagonal and all directions with complete awareness does not get involved in violence.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्रो में धर्म-कथन करने की कुशलता का वर्णन है। आत्मदर्शी तत्त्वज्ञ उपदेशक धर्म का उपदेश करते समय पूर्ण निर्भय और समभाव मे स्थित रहे। उपस्थित श्रोता समूह (परिषद्) में चाहे कोई पुण्यवान–धन, सत्ता आदि से सम्पन्न है, चाहे कोई गरीब, सामान्य स्थिति का व्यक्ति है; धर्मज्ञ कभी उनमें कोई भेदभाव नहीं करता। वह निर्भय, निस्पृह और यथार्थवादी होकर समान रूप से सत्य का उपदेश देता है।

पुण्णस्स–शब्द का 'पूर्णस्य' अर्थ भी किया जाता है। पूर्ण की व्याख्या इस प्रकार की गई है–

"ज्ञानैश्वर्य-धनोपेतो जात्यन्यबलान्वित ।
तेजस्वी मतिमान् ख्यात पूर्णस्तुच्छोविपर्ययात् ॥"

–जो ज्ञान, प्रभुता, धन, जाति और बल से सम्पन्न हो, तेजस्वी हो, बुद्धिमान् हो, प्रख्यात हो, उसे 'पूर्ण' कहा गया है। इसके विपरीत तुच्छ समझना चाहिए।

इस सूत्र के प्रथम चरण मे वक्ता की निस्पृहता तथा समभावपूर्वक धर्म-कथन करने का निदर्शन है, तो उत्तर चरण मे बौद्धिक कुशलता की अपेक्षा बताई गई है। वह द्रव्य से–समय को पहचाने, क्षेत्र से–इस नगर में किस धर्म-सम्प्रदाय का प्रभाव है, यह जाने, काल से–परिस्थिति को परखे, तथा भाव से–श्रोता के विचारो व मान्यताओं का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करे। कुशल पर्यवेक्षण किये बिना ही अगर वक्ता धर्म-कथन करने लगता है तो कभी सभव है, अपने सप्रदाय या मान्यताओं का अपमान समझकर श्रोता अभिनिवेशवश उलटा वक्ता को ही मारने-पीटने लगे और इस प्रकार धर्म-वृद्धि के स्थान पर क्लेश-वृद्धि का प्रसग आ जाये।

Elaboration—In these paragraphs is described the efficacy of preaching A preacher, who has had self-realization and knows the fundamentals, should be fearless and equanimous while preaching A perfect preacher does not discriminate between a pious (wealthy or powerful) person and a poor (common man) present in the congregation He preaches truth realistically without any fear or bias

Punnassa—This term is also transliterated as *'purnasya'* (to the complete one) *Purna* or complete is defined as follows—

"He who is endowed with knowledge, status, wealth, high lineage and power Who is valourous, intelligent and famous is called *'purna'* Opposite of this should be considered lowly"

The first part of this aphorism stresses on preaching with equanimity and without bias The second part stresses on the need of intelligence and wisdom With the material point of view he should comprehend time With the point of view of area he should know which religion or sect has influence in the particular place. From the viewpoint of time he should adjudge the prevailing circumstances And from the viewpoint of attitude he should

minutely study the thoughts and beliefs of the listener. If he starts preaching without such minute observation, there are chances that a listener may consider this to be an insult to his religious or sectarian beliefs and in retaliation proceed to manhandle the preacher Thus instead of propagation of religion he may end up in escalating animosity.

१०५. से मेहावी अणुग्घायणस्स खेयण्णे जे य बंधपमोक्खमण्णेसी।
कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के।
से जं च आरभे, जं च णारभे, अणारद्धं च ण आरभे।
छणं छणं परिण्णाय लोगसण्णं च सव्वसो।

१०५ बुद्धिमान् वही है जो अनुद्घात–अहिसा का संपूर्ण स्वरूप जानता है तथा जो कर्मो के बधन से मुक्त होने की अन्वेषणा करता है।

कुशल (ममत्वभाव से मुक्त) पुरुष न बद्ध होता है और न मुक्त।

उन कुशल साधको ने जिस प्रवृत्ति का आचरण किया है और जिसका आचरण नही किया है उसे जानकर, उनके द्वारा अनाचरित मार्ग का आचरण न करे।

हिसा तथा हिसा के कारणो को जानकर उनका त्याग कर दे। लोक-संज्ञा को भी सर्व प्रकार से त्याग दे।

105. Only he is wise who knows *ahimsa* perfectly and who explores the possibilities of getting liberated from the bondage of *karmas*

An accomplished one (free of fondness) is never trapped and so, never needs getting liberated

Knowing about the activity they (accomplished seekers) indulged in and those they avoided, he should not indulge in activities they avoided

Knowing violence and causes thereof he should avoid them He should also completely abandon the worldly attitude

विवेचन–अणुग्घायणस्स खेयण्णे–इस पद का टीकाकार ने–'कर्म प्रकृति के मूल एव उत्तर भेदो को जानकर उन्हें क्षीण करने का उपाय जानने वाला' यह अर्थ किया है। 'अन + उद् + घात' = अनुद्घात का अर्थ अहिसा व सयम भी होता है।

बधप्पमोक्खमण्णेसी–इस सूत्र का पिछले सूत्र से सम्बन्ध जोड़ते हुए कहा है–जो कर्मों का समग्र स्वरूप या अहिंसा का समग्र स्वरूप जानता है, वह बंधन से मुक्त होने के उपायों का अन्वेषण या आचरण भी करता है। इस प्रकार पहला पद ज्ञान का तथा उत्तर पद क्रिया का सूचक है।

कुसले पुण णो बद्धे–इस वाक्य का स्पष्टीकरण करते हुए टीका में लिखा है–कर्म का ज्ञान तथा मुक्ति की खोज–ये दोनों आचरण छद्मस्थ साधक के लिए हैं। जो केवली कुशल हो चुके हैं, वे चार घातिकर्मों का क्षय कर चुके हैं अत. वे न तो सर्वथा बद्ध कहे जा सकते हैं और न सर्वथा मुक्त। इसका अभिप्राय यह है कि जो अप्रमत्तभावपूर्वक प्रवृत्ति करता है वह कर्मों से बँधता नहीं है तथा वह शरीर में स्थित है अतः मुक्त भी नही कहा जा सकता।

सूत्रकृताग वृत्ति के अनुसार 'कुश' का अर्थ है–आठ प्रकार के कर्म। कर्म का छेदन करने वाले 'कुशल' कहलाते हैं। 'कुशल' शब्द तीर्थंकर भगवान महावीर का विशेषण भी है।

Elaboration—***Anugghatanassa kheyanne***—The commentator *(Tika)* has interpreted this phrase as—One who is aware of the basic and secondary classifications of *karma-prakriti* (nature of *karmas)* as well as the ways to weaken them *Anudghata* also means *ahimsa* and *discipline*

Bandhappamokkhamannesi—This phrase connects this paragraph with the preceding one He who knows the complete form of *karmas* or *ahimsa,* also explores and employs the ways of getting liberated from the bondage. Thus the first part informs about knowledge and the second about action

Kusale puna no baddhe—Explaining this sentence it is mentioned in the commentary *(Tika)*—The knowledge of *karmas* and quest of liberation, these two pursuits are for a *chhadmasth* (one who has a finite cognition, not omniscience) seeker The accomplished omniscients have already destroyed the four *ghati-karmas* (*karmas* that have a vitiating effect upon the qualities of soul), therefore they are neither in a state of complete bondage nor that of complete liberation This means that as all his activity is with a feeling of complete detachment, he does not attract *karmic* bondage But at the same time, as he still exists in a body, he cannot be called liberated

According to the *Sutrakritanga Vritti 'kush'* means eight types of *karma* Those who destroy *karmas* are called *kushal* (accomplished). The term is also used as an adjective for Tirthankar Bhagavan Mahavir.

१०६. उद्देसो पासगस्स णत्थि।

बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ।

त्ति बेमि।

॥ छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ लोगविजओ · बीअ अज्झयणं सम्मत्त ॥

१०६ (पूर्व कथित हिंसा एव परिग्रह के दोषो को जानने वाला) जो द्रष्टा अथवा आत्मदर्शी है, उसके लिए कोई उद्देश (विधि-निषेध रूप विधान/निदेश अथवा उपदेश) नही है।

बाल-(अज्ञानी) बार-बार विषयो में स्नेह-(आसक्ति) करता है। विषयों को मनोज्ञ समझता है इसलिए वह दु खो का शमन नही कर पाता। वह (शारीरिक एव मानसिक) दु खो से दु.खी बना हुआ दु.खो के आवर्त-चक्र मे ही परिभ्रमण करता रहता है।

-ऐसा मै कहता हूँ।

॥ षष्ठ उद्देशक समाप्त ॥

॥ लोक-विजय द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

106. For him who sees (the soul and knows the evils of violence and attachment) there is no advise (preaching or codes of conduct)

An ignorant continues to hanker for mundane pleasures. As he likes mundane pleasures he is unable to subdue grief. Plagued by miseries (physical and mental) he continues to whirl around in the whirlpool of miseries

—So I say.

● END OF LESSON SIX ●

● LOK VIJAYA : END OF SECOND CHAPTER ●

सीओसणिज्जं : तइअं अज्झयणं
शीतोष्णीय : तृतीय अध्ययन

आमुख

✦ द्वितीय अध्ययन मे कषायो पर विजय प्राप्त करने का सन्देश दिया गया है। अनुकूल-प्रतिकूल सयोग मिलने के कारण राग-द्वेष आदि कषायो का उदय होता है। अत उन सयोगों मे समभाव रखने का उपदेश इस अध्ययन मे दिया गया है।

✦ तृतीय अध्ययन का नाम 'शीतोष्णीय' है। शीतोष्णीय का अर्थ है--शीत अर्थात् अनुकूल और उष्ण अर्थात् प्रतिकूल। अनुकूल तथा प्रतिकूल परीषह आदि को समभावपूर्वक सहन करने से सम्बन्धित विषय की चर्चा इस अध्ययन मे है। अत इसको शीतोष्णीय कहा है।

✦ साधु जीवन के लिए बताये गये बाईस परीषहो में दो परीषह 'शीत-परीषह' है, जैसे-- 'स्त्री-परीषह' तथा 'सत्कार-परीषह'। अन्य बीस 'उष्ण-परीषह' माने गये है।

"इत्थी-सक्कार परीसहो य, दो भाव सीयला एए।
सेसा वीसे उण्हा, परीसहा हुति नायव्वा॥" (*आचा नि*, *गाथा* २०१)

✦ शीत से यहाँ 'भाव-शीत' अर्थ समझना चाहिए जोकि जीव का परिणाम विशेष है। यहॉ चार प्रकार के भाव-शीत बताये गये है--(१) मन्द परिणाम वाले परीषह, (२) प्रमाद का उपशम, (३) विरति (प्राणातिपात आदि से निवृत्ति, सत्रह प्रकार का सयम), और (४) सुख (सातावेदनीय कर्मोदय जनित)।

✦ उष्ण से 'भाव-उष्ण' समझने की सूचना की है। वह भी जीव का परिणाम विशेष है। निर्युक्तिकार ने भाव-उष्ण ८ प्रकार के बताये है--(१) तीव्र-दु सह परिणाम वाले प्रतिकूल परीषह, (२) तपस्या मे उद्यम, (३) क्रोध-मान-कषाय, (४) शोक, (५) आधि (मानसिक व्यथा), (६) वेद (स्त्री-पुरुष-नपुसक वेद), (७) अरति (मोहोदयवश चित्त का विक्षेप), और (८) दु ख (असातावेदनीय कर्मोदय जनित)।

✦ सक्षेप में समभाव या निवृत्ति को शीतल और कषायभाव को उष्ण बताया गया है।

✦ मुमुक्षु साधक को भाव-शीत और भाव-उष्ण, दोनों को ही समभावपूर्वक सहन करना चाहिए। सुख में प्रसन्न और दु ख में खिन्न नही होना चाहिए अर्थात् अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों में समभाव रखना चाहिए। यही शीतोष्णीय अध्ययन का सार है। (*आचारांग भाष्यम्* १६४)

इस अध्ययन के चार उद्देशकों में निम्न विषय हैं–

✦ प्रथम उद्देशक में अध्यात्म-साधना की दृष्टि से जागृत और सुप्त की चर्चा है। विशेषत. अप्रमाद और प्रमाद का, अनासक्ति और आसक्ति का विवेक बतलाया गया है।

✦ द्वितीय उद्देशक मे बताया है कि भाव निद्रा में सुप्त व्यक्ति अध्यात्म दृष्टि से शून्य होते हैं, वे ही दु ख-सुख का अनुभव करते हैं तथा भाव दृष्टि से जागृत साधक द्रव्य दृष्टि से सुप्त रहकर भी जागृत है।

✦ तृतीय उद्देशक मे साधक का कर्त्तव्यबोध निर्दिष्ट है कि केवल कष्ट सहने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता।

✦ चौथे उद्देशक मे कषायादि से विरति का उपदेश दिया है।

✦ सुप्त और जागृत की चर्चा के साथ इस अध्ययन का आरम्भ होता है। शरीर के लिए सोने का भी महत्त्व है और जागने का भी। अध्यात्म की दृष्टि से केवल जागरण का ही महत्त्व है। दर्शनमोहनीय कर्म का उदय महानिद्रा है, जो इसको उपशान्त या क्षय कर देता है, वह सदा जागृत रहता है।

✦ इस प्रकार चारो उद्देशकों मे आत्मा के परिणामो मे होने वाली भाव-शीतलता और भाव-उष्णता को लक्ष्य कर अनेक विषयो की चर्चा की गई है।

SIOSANIAJJAM : TAIAM AJJHAYANAM
SHEETOSHNIYA : THIRD CHAPTER
COLD AND HOT

INTRODUCTION

- The second chapter contains advice to win over passions It is the favourable and unfavourable conditions that give birth to passions like attachment and aversion Therefore this chapter contains the message to be equanimous in such conditions
- The name of the third chapter is *Sheetoshniya* *Sheet* means cold or favourable or pleasant and *ushna* means hot or unfavourable or unpleasant Thus *sheetoshniya* means cold and hot This chapter contains discussions about tolerating pleasant and unpleasant afflictions with equanimity That is why it is titled *Sheetoshniya*
- In the list of twenty two afflictions for an ascetic there are two pleasant afflictions—affliction by women and affliction through hospitality The remaining twenty are believed to be unpleasant afflictions (*Acharanga Niryukti*, verse 201)
- *Sheet* (favourable) here means *bhavasheet* or mentally favourable This is a specific attitude of beings Here four types of *bhavasheet* have been mentioned—(1) mild afflictions, (2) controlling stupor, (3) renunciation (renouncing acts like killing living beings and practicing seventeen types of discipline), and (4) pleasure (caused by precipitation of *sata-vedaniya karma* or the *karma* that causes feelings of pleasure)
- It is mentioned that *ushna* (unfavourable) should be taken as *bhava-ushna* or mentally unfavourable This too is a specific attitude of beings The commentator *(Niryukti)* has mentioned eight types of *bhava-ushna*—(1) unfavourable afflictions with intense and intolerable consequences, (2) endeavour towards austerities, (3) passions like anger and conceit, (4) grief, (5) mental torture,

(6) physical gender (masculine, feminine and neuter), (7) *arati* (dislike for spiritual activities or perversion caused by fondness), and (8) sorrow (caused by precipitation of *asata-vedaniya karma* or the *karma* that causes feelings of pain or grief)

- ✦ In brief, attitude of equanimity or detachment is said to be favourable and attitude infested with passions is said to be unfavourable.
- ✦ A seeker of liberation should tolerate both these favourable and unfavourable conditions with equanimity He should not be joyous in pleasure and disturbed in pain This is the gist of this chapter titled *Sheetoshniya*

The four lessons of this chapter contain the following topics—

- ✦ The first lesson contains discussion about the states of slumber and awakening from the spiritual angle In particular it explains how to differentiate between alertness and stupor, and detachment and attachment
- ✦ The second lesson explains that a man in mental slumber is devoid of spiritual insight It is he who experiences pleasure or pain A mentally alert seeker is awake even if he is physically asleep
- ✦ The third lesson contains directions about the sense of duty of a seeker emphasizing that merely tolerating pain does not make one a *Shraman*
- ✦ The fourth lesson advises to get free of passions (etc.)
- ✦ This chapter commences with the discussions about the states of slumber and alertness For body, sleep as well as wakefulness are important From spiritual point of view only the state of alertness is important The precipitation of *darshan-mohaniya karma* is the deepest slumber One who suppresses or sheds this *karma* is ever awakened or alert.
- ✦ This way, in these four lessons numerous topics have been discussed in context of mentally favourable and unfavourable conditions or states.

पढमो उद्देसओ	प्रथम उद्देशक	LESSON ONE

सुप्त-जाग्रत

१०७. सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरति।

लोगंसि जाण अहियाय दुक्ख।

समय लोगस्स जाणित्ता एत्थ सत्थोवरए।

१०७ अमुनि-(अज्ञानी) सोते है, मुनि-(ज्ञानी) सदैव जागते रहते है।

इस वात को तुम जानो कि लोक मे मोह और दु ख अहित का कारण है।

लोक मे सयम अनुष्ठान (एव समभाव को श्रेष्ठ) जानकर (सयमी पुरुष) जो शस्त्र है, उनसे निवृत्त रहे।

THE SLEPT AND THE AWAKENED

107. The ignorant sleep, the wise (sages) are ever awake

Know this that in this world attachment and misery are causes of harm

Knowing that (for) the practice of discipline (and feeling of equality to be beneficial) one (disciplined person) should abstain from use of weapons in this world

विवेचन–जिन्होने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग रूप भाव-निद्रा का त्याग कर दिया है, जिन्हें सम्यक्‌बोध प्राप्त है और मोक्ष-मार्ग से स्खलित नही होते, वे मुनि है। इसके विपरीत जो मिथ्यात्व, अज्ञान आदि से ग्रस्त है, मिथ्यादृष्टि है, वे 'अमुनि'–अज्ञानी हैं। भाव-निद्रा की प्रधानता से यहाँ अज्ञानी को सुप्त और ज्ञानी को जागृत कहा गया है।

सुप्त दो प्रकार के है–द्रव्य-सुप्त और भाव-सुप्त। निद्रा के अधीन व्यक्ति द्रव्य-सुप्त है। जो मिथ्यात्व, अज्ञान आदि महानिद्रा से व्यामोहित है, वे भाव-सुप्त है अर्थात् जो आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से शून्य, हैं, मिथ्यादृष्टि, असंयमी और अज्ञानी है, वे जागते हुए भी भाव से. आन्तरिक दृष्टि से सोये है।

जो कुछ सोये हैं, कुछ जागृत है, वे देशविरत श्रावक सुप्त-जागृत है और जो उत्कृष्ट सयमी और ज्ञानी हैं, वे जागृत है।

सुप्त जागृत

चित्र परिचय ११

Illustration No. 11
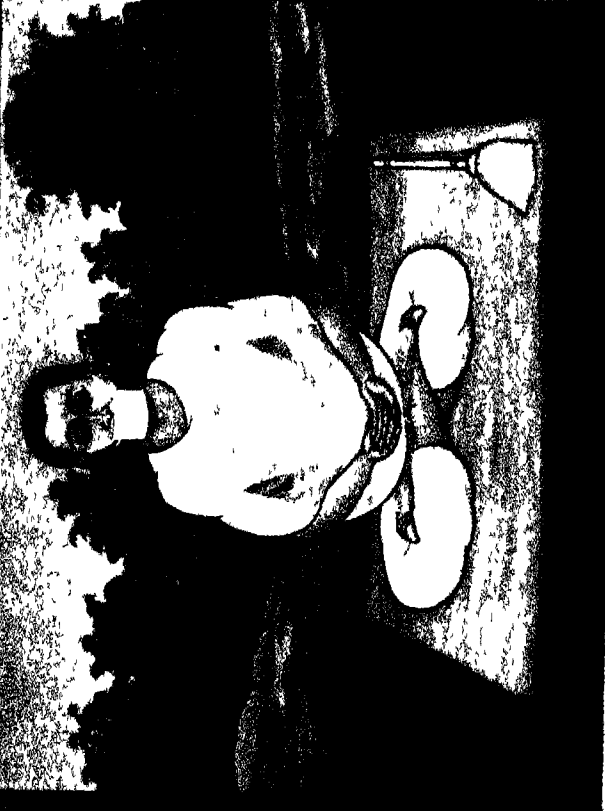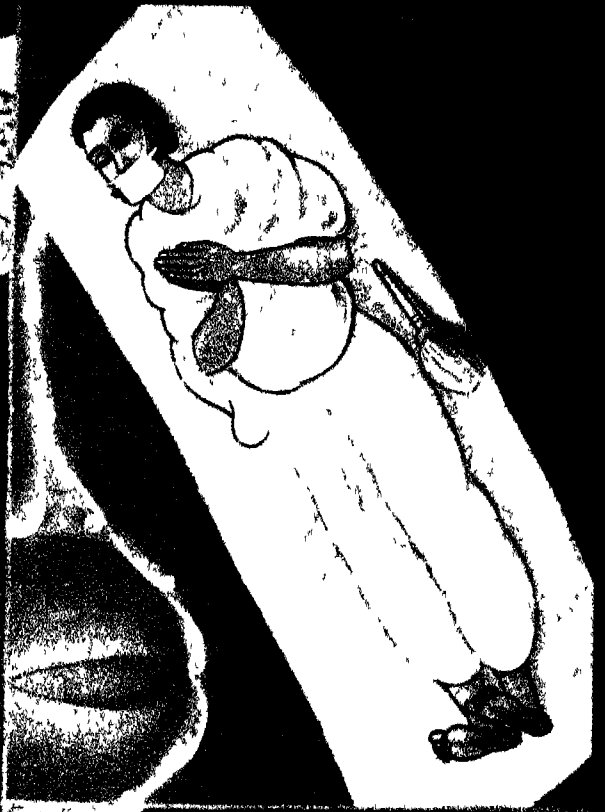
सुप्त-जागृत

"सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति।"

अज्ञानी चाहे जागृत है या सुप्त है, वे भाव रूप में सदा सुप्त ही कहे जाते हैं।

आचार्य श्री भद्रबाहु ने इस पर चौभंगी बताई है-

१. जो सांसारिक विषय भोग आदि में आसक्त हैं, वे सोये हुए तो सोये हुए ही हैं, जागते भी सोये हैं, उन्हें सुप्त सुप्त कहा गया है।

२. यदि वे व्यापार आदि कार्यों में संलग्न रहकर जागृत रहते हैं, तब भी उन्हें भाव सुप्त कहा जाता है।

३. जो मुनि अपने संयम, ध्यान, स्वाध्याय आदि में संलग्न हैं, वे भाव से भी जागृत हैं, द्रव्य से भी जागृत हैं।

४. जो संयमी पुरुष निद्रा लेते हैं, तो वे द्रव्य रूप से सुप्त हैं, किन्तु भाव रूप से सदा जागृत ही हैं। —आ. ३/१ गाथा १०७

ASLEEP-AWAKENED

An ignorant, irrespective of being in a state of slumber or awake, is always asleep spiritually.

Acharya Bhadrabahu has four alternative combinations of this–

1. Those who are attached with mundane pleasures are asleep when sleeping. They are even asleep while they are awake. They are called alseep-asleep.

2. While they are performing their normal duties of business (etc.) and are awake, they are still called spiritually asleep.

3. The ascetics who indulge in discipline, meditation, studies and other such activities are awake physically as well as spiritually.

4. The disciplined individuals who are sleeping are physically asleep but they are always awake spiritually. —*3/1/107*

जागृत भी दो प्रकार के हैं–जो निद्रामुक्त हैं, वह द्रव्य-जागृत है। जो सम्यक् दृष्टि हैं, अप्रमत्त हैं, आत्म-स्वरूप में स्थित हैं, वह भाव-जागृत हैं।

जो संयम के आधारभूत शरीर को टिकाने के लिए शास्त्र की आज्ञा अनुसार द्रव्य से सोते–निद्राधीन होते हुए भी आत्म-स्वरूप में जागृत रहते हैं, वे निद्रा में भी अकरणीय कार्य नहीं करते। वे धर्म की दृष्टि से जागृत हैं। अर्थात् यहाँ भाव-सुप्त एवं भाव-जागृत–दोनों अवस्थाएँ धर्म की अपेक्षा से कही गयी हैं।

भगवतीसूत्र मे जयंती श्राविका और भगवान महावीर का एक सवाद है। जयंती श्राविका प्रभु से पूछती है–"भन्ते ! सुप्त अच्छे या जागृत ?"

भगवान ने धर्मदृष्टि से अनेकान्त शैली में उत्तर दिया–"जो धर्मिष्ठ हैं, उनका जागृत रहना श्रेयस्कर है और जो अधर्मिष्ठ है, पापी हैं, उनका सुप्त रहना अच्छा है।" (*भगवती*, श १२, उ २)

यहाँ सुप्त और जागृत द्रव्य-दृष्टि से है, भाव-दृष्टि से नहीं।

'समय' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। पूर्व में सिद्धान्त के अर्थ मे समय शब्द आया है। यहाँ इसका अर्थ सयम अथवा 'समताभाव' दोनो ही लिया गया है। अहिसा की दृष्टि से सब जीवों को आत्म-समान समझना 'समता' है और अपरिग्रह की दृष्टि से लाभ-अलाभ में तटस्थ रहना 'समभाव' है।

शस्त्र आदि के विषय मे प्रथम अध्ययन में बताया जा चुका है।

Elaboration—Those who have come out of the slumber of falsity, attachment, stupor, passions and evil affiliations, who have acquired right knowledge, and who do not drift away from the path of liberation are called *muni* (sages or ascetics) Those who are contrary to this, who are plagued by falsity, ignorance and wrong knowledge are *amuni* (ignorant or unwise) Due to the preponderance of mental slumber (insensitivity), here the ignorant have been termed as sleeping and wise as awakened

There are two categories of this state of slumber—physical slumber and mental slumber Those who are physically asleep are in a state of physical slumber Those who are under the influence of the great-slumber *(mahanidra)* of ignorance and falsity are in a state of mental slumber In other words, those who are devoid of any spiritual development, who are perverse, indisciplined and ignorant are in a state of mental slumber in spite of being physically awake

The partially detached *shravaks* (lay Jains) are partly asleep and partly awakened Those who have right perception, who are ever alert, and dwell in the spiritual world are awakened

The awakened are also of two types—those who are not asleep are physical awake and those who are perfectly disciplined and sagacious are mentally awake

Those who while sleeping, following the tenets in scriptures for the purpose of maintaining the body that is the instrument of ascetic discipline, are spiritually awake, do not commit any prohibited deed They are awake from the religious or spiritual viewpoint This means that these two states of physical and mental slumber have been defined in context of religion or spirituality

In *Bhagavati Sutra* there is a mention of a discussion on this subject between Bhagavan Mahavir and Jayanti Shravika She asks, "*Bhante,* who are better, the sleeping or the awakened ?"

Bhagavan replied in his *anekanta* (non-absolute or relative) style, "The awakened state of a religious person is good and so is the state of slumber of a sinner" (*Bhagavati* 12/2)

Here the reference is to physical and not mental slumber

The word *samaya* has many meanings Earlier it was used in the sense of principle Here it is used in the sense of discipline as well as equanimity In context of *ahimsa* equanimity means to consider all beings same as one self or the feeling of universal equality In context of non-possession or detachment equanimity means to be neutral in profit and loss

The term weapon has been discussed in detail in the first chapter

अरति-रति-त्याग

१०८. जस्सिमे सद्दा य रूवा य गंधा य रसा य फासा य अभिसमण्णागया भवंति से आयवं नाणवं वेयवं धम्मव बंभवं।

पण्णाणेहिं परिजाणइ लोयं मुणी ति वुच्चे धम्मविउ त्ति अंजू।

आवट्टसोए संगमभिजाणइ।

सीओसिणच्चाइ से णिग्गंथे अरइ-रइसहे फारुसियं णो वेदेति।
जागर-वेरोवरए वीरे एव दुक्खा पमोक्खसि।

१०८ जिस पुरुष ने शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श को सम्यक् प्रकार से जान लिया है, वह आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् और ब्रह्मवान् होता है।

जो अपनी प्रज्ञा-(विवेक) से लोक को जानता है, वह मुनि कहलाता है। वह धर्मवेत्ता और ऋजु-(सरल) होता है।

वह मुनि संग-(आसक्ति) को और आवर्त-स्रोत-(जन्म-मरणादि के द्वार/उद्गम) को बहुत अच्छी प्रकार से जान लेता है।

निर्ग्रन्थ वह है, जो शीत और उष्ण-(सुख और दु ख) का त्यागी है। वह अरति और रति को सहन करता हुआ उन्हे त्यागने मे पीडा/कष्ट का अनुभव नहीं करता।

जो जागृत और वैर से उपरत है, वह वीर होता है। तू इस प्रकार (ज्ञान, अनासक्ति, सहिष्णुता, जागरूकता और समता-प्रयोग द्वारा) दु खों के कारणभूत कर्मों से मुक्ति पा सकेगा।

ABANDONING INDULGENCE AND NON-INDULGENCE

108. A person who has properly understood sound, form, smell and taste and touch is *atmavan* or spiritualist, *jnanavan* or sagacious, *vedavan* or scholar of canons, *dharmavan* or religious and *brahmavan* or chaste

One who knows the world through his knowledge (sagacity) is called a *muni* (ascetic) He knows *dharma* and is simple

He acquires perfectly the knowledge about attachment and the source of the cycle (of birth and death)

He who rejects cold and hot (happiness and misery) is without a knot (*nirgranth,* a term used for Jain ascetic) Enduring (the pleasure and pain of) indulgence and non-indulgence, he does not mind casting them off.

He who is alert and free of animosity is brave. This is the way (making use of knowledge, detachment, tolerance, alertness and equanimity) following which you will be able to get liberated from *karmas*, the root cause of sorrow

विवेचन–इस सूत्र के अनुसार जो पचेन्द्रिय-विषयो के स्वरूप का ज्ञाता तथा उनका त्यागी है, वही मुनि एव निर्ग्रन्थ होता है।

अभिसमन्वागत का अर्थ है–विषयो के इष्ट-अनिष्ट, मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्वरूप का ज्ञाता तथा उनके उपभोग से होने वाले दुष्परिणामों को भी भलीभाँति जानकर जो उनका त्याग करता हो।

शब्दादि विषयो का परित्याग करके आत्मा की रक्षा करने वाला **आत्मवान्** कहा जाता है।

ज्ञानवान् वह है जो जीवादि पदार्थों का यथावस्थित ज्ञाता हो।

जीवादि का स्वरूप जिनसे जाना जा सके, उन वेदो–आचाराग आदि आगमो का जो ज्ञाता है अर्थात् आगम मे प्रतिपादित राग-द्वेष-मुक्ति मार्ग को जानने वाला **वेदवान्** है।

वह **धर्मवान्** है, जैसा कि टीका मे कहा है–**धर्म चेतनाऽचेतनद्रव्य स्वभाव श्रुत-चारित्ररूप वा वेत्ती ति धर्मवित्** जो श्रुत-चारित्ररूप धर्म का अथवा साधना की दृष्टि से आत्मा के स्वभाव (धर्म) का ज्ञाता हो।

अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य से सम्पन्न आत्मा को **ब्रह्मवान्** कहा है।

ब्रह्मचर्य के अठारह भेद ये हैं–

"दिवा-कामरइसुहा तिविह तिविहेण नवविहा विरई।
ओरालिया उ वि तहा त बभ अट्ठदसभेयं॥"

अर्थात् देव-सम्बन्धी भोगो का मन, वचन और काया से सेवन न करना, दूसरो से न कराना तथा करते हुए को भला न जानना, इस प्रकार नौ भेद हो जाते है। औदारिक अर्थात् मनुष्य एव तिर्यञ्च सम्बन्धी भोगो के लिए भी इसी प्रकार नौ भेद है। कुल मिलाकर अठारह भेद हो जाते है।

इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि जो पुरुष शब्दादि विषयो को भलीभाँति जान लेता है, उनमे राग-द्वेष नही करता, वह आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् एव ब्रह्मवान् होता है।

"**जो प्रज्ञा से लोक को जानता है, वह मुनि कहलाता है।**" इस वाक्य का तात्पर्य है कि जो साधक मति-श्रुतज्ञान-जनित सद्-असद् विवेकशालिनी बुद्धि से प्राणिलोक या प्राणियो के आधारभूत लोक को सम्यक् प्रकार से जानता है, वह मुनि है। वृत्तिकार ने मुनि का निर्वचन इस प्रकार किया है–'**जो जगत् की त्रिकालावस्था-गतिविधि का मनन करता है, जानता है, वह मुनि है।**' 'ज्ञानी' के अर्थ मे यहाँ 'मुनि' शब्द का प्रयोग हुआ है।

पदार्थो का यथार्थ स्वरूप जानने के कारण जिसकी आत्मा सरल हो गई है उसे **ऋजू** (अजू) कहा है।

जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोकादि दु खरूप ससार को भाव आवर्त–भँवरजाल कहा गया है। इसका उद्गम स्थल है–विषयासक्ति। अत जो इसे जान लेता है वह आवर्त-स्रोत का ज्ञाता कहलाता है।

आचार्य महाप्रज्ञ जी ने आवर्त का अर्थ किया है–इन्द्रियो की आसक्ति से होने वाली मन की चंचलता। तथा स्रोत का अर्थ किया है 'इन्द्रियाँ'।

शीतोष्ण-त्यागी का मतलब है–जो साधक शीत परीषह और उष्ण परीषह अथवा अनुकूल और प्रतिकूल परीषह को समभावपूर्वक सहन करता है तथा सुख-दु.ख की अनुभूति से मन को चंचल नहीं होने देता उसे शीतोष्ण-त्यागी कहा है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने शीत का अर्थ मदता, शिथिलता और उष्ण का अर्थ चचलता, अधीरता आदि बताकर कहा है–ज्ञानाचार आदि मे न अति शीत (मन्द) रहे और न अति उष्ण (उतावला बने) अर्थात् तटस्थ भाव रखे।

'अरति-रतिसहे' शब्द का तात्पर्य है–जो सयम और तप मे होने वाली अप्रीति और अरुचि को समभावपूर्वक सहता है वही बाह्य एव आभ्यन्तर ग्रन्थ से रहित निर्ग्रन्थ है।

परीषहों और उपसर्गो को सहने मे जो कठोरता–कर्कशता या पीड़ा उत्पन्न होती है, निर्ग्रन्थ साधक उस पीडा को पीडा रूप मे अनुभव नहीं करता। इस भाव को **फारुसिय णो वेदेति** वाक्य द्वारा स्पष्ट किया है।

Elaboration—Accordıng to thıs paragraph only he ıs a *munı* wıthout a knot (an ascetıc) who knows the functıons of the five senses and abstaıns from them

Abhısamanvagat—one who knows about the good and bad, pleasant and unpleasant forms and functıons of mundane ındulgence and knowıng very well the evıl consequences, refraıns form such ındulgence

Atmavan ıs he who protects hıs soul by abstaınıng from mundane ındulgences lıke that of hearıng sound (wıth attachment)

Jnanavan ıs he who has true knowledge of fundamentals lıke *jıva* (beıng)

Vedavan ıs he who ıs a scholar of scrıptures, lıke *Acharanga,* that are helpful ın acquırıng knowledge about true form of fundamentals lıke beıng *(Jıva)* In other words, he who knows the path of lıberation from attachment and aversıon as propagated ın *Agam* ıs called *Vedavan*

Dharmavan ıs one who knows *dharma* (relıgıon) ın the form of conduct conformıng to the canons or, ın context of spırıtual practıces, the *dharma* (nature) of soul

Brahmavan is one who practices celibacy of eighteen types

These types are—Neither to indulge nor cause others to indulge or approve others of indulging in sexual activity relating to the divine realm through mind, speech and body These nine types are related to the divine realm In the same way there are nine types related to the physical realm which includes humans and animals, making a total of eighteen

The message of this paragraph is that the person who properly understands sound and other sources of mundane pleasures and is free of attachment and aversion towards them is *atmavan* or spiritualist, *jnanavan* or sagacious, *vedavan* or scholar of canons, *dharmavan* or religious and *brahmavan* or chaste

"One who knows the world through his knowledge (sagacity) is called a *muni* (ascetic)" This statement means that the seeker who rightly knows the world of beings with the help of the discerning attitude acquired through *mati-jnana* (sensory knowledge) and *shrut-jnana* (the knowledge of the scriptures belonging to the oral tradition of Jains) is known as muni The commentator *(Vritti)* has interpreted the word *muni* as—one who ponders over and understands the present, past and future activities of this world (is called *muni*) Here the term *muni* has been used as a synonym of *jnani* or sagacious

One whose soul has become simple by getting rid of the complexities of mind through the knowledge of the real form of matter is called *riju* or *anju*

The world filled with miseries like birth, aging, ailments and grief is called *bhav-avart* or whirlpool of rebirth The place of origin of this (source) is attachment for mundane indulgences Therefore he who knows about it is said to be acquainted with the source of whirlpool

Acharya Mahaprajna has interpreted *avart* as the fickleness of mind caused by attachment for sensual pleasures Thus the sources of *avart* are sense organs

Abstainer of cold-hot means a seeker who tolerates cold or pleasant and hot or unpleasant afflictions with equanimity, also, who does not allow the mind to waver while suffering pleasure or pain Acharya Shri Atmaram ji M has interpreted *sheet* (cold) as feebleness and languidness, and hot as liveliness and impatience Accordingly he says that a seeker should neither be excessively lethargic nor hyperactive in his quest for knowledge, in other words, he should have a neutral or equanimous attitude

Arati-ratisahe—one who counters with equanimity the lack of interest and liking for discipline and austerities is a *nirgranth* free of outer and inner knots or complexities

Harshness and pain are essential consequences of suffering afflictions and torments A *nirgranth* seeker does not take pain as pain This attitude has been expressed by the sentence—*farusiyam no vedati*

अप्रमत्तता

१०९. जरा-मच्चुवसोवणीए नरे सययं मूढे धम्मं णाभिजाणइ।

पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए।

मंता एयं मइमं पास।

आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा, मायी पमायी पुणरेइ गब्भं।

उवेहमाणो सद्द-रूवेसु अंजू माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ।

१०९ जरा और मृत्यु के वशीभूत मनुष्य शरीरादि के मोह के कारण मूढ़ बना रहता है। मूढ़ता के कारण वह धर्म को नहीं जान पाता।

मनुष्यो को (शारीरिक-मानसिक दुःखो से) आतुर–(आकुल-व्याकुल) देखकर सतत अप्रमत्त होकर विचरण करे।

हे मतिमान् ! तू मननपूर्वक इन (आतुर प्राणियों) को देख।

यह दुःख आरम्भ से उत्पन्न है, यह जानकर (आरंभ का त्याग कर) मायी और प्रमादी मनुष्य बार-बार गर्भ मे आता है।

शब्द और रूप आदि के प्रति जो उपेक्षा करता है (राग-द्वेष नहीं करता है) वह ऋजु होता है। वह मार-(मृत्यु) के प्रति सदा आशकित (सतर्क) रहता हुआ मृत्यु (मृत्यु के भय) से मुक्त हो जाता है।

ALERTNESS

109. Overpowered by (the thought of) old-age and death, a man remaıns stupıd due to his fondness for hıs body (etc) Due to thıs stupıdıty he faıls to know *dharma* (relıgıon)

Seeing people dısturbed or tormented (by physıcal and mental mıserıes) one should be ever alert ın hıs movement

O possessor of wısdom ! You should observe these (dısturbed beıngs) thoughtfully

Knowıng that thıs grıef ıs born out of ıll-ıntent (you should be free of ıll-ıntent). The deluded and careless are born tıme and again

One who ıgnores (is free of attachment and aversıon) ıs simple (ınnocent) Always apprehensıve (alert) of death he gets free of death (fear of death)

विवेचन–इस सूत्र मे साधक को बुढ़ापा, मृत्यु आदि विभिन्न दु खो मे आतुर प्राणी की दशा एव उसके कारणों और परिणामों पर विचार करने की सूचना दी है।

यहाँ वृत्तिकार ने एक प्रश्न उठाया है–देवता 'निर्जर' और 'अमर' कहलाते है, तो वे मोहमूढ़ नही होते होगे? इस प्रश्न का समाधान किया गया है कि "देवता निर्जर कहलाते हैं, किन्तु उनमे भी जरा विद्यमान है क्योंकि च्यवनकाल से पूर्व उनके भी लेश्या, बल, सुख, प्रभा, वर्ण आदि क्षीण होने लगते है। यह एक तरह से जरावस्था ही है। और मृत्यु तो देवो की भी होती है, शोक, भय आदि दु'ख भी उनके साथ लगे हैं। इसलिए देव भी मोह-मूढ़ बने रहते हैं।"

(वृत्ति, पत्रांक १४०)

शारीरिक एवं मानसिक दु खों के अथाह सागर मे डूबे हुए, किकर्त्तव्यविमूढ़ बने हुए प्राणियो के लिए 'आउरे पाणे' शब्द आया है।

'माई' शब्द चार कषायो में से मध्यम कषाय का वाचक है। इसलिए आदि और अन्त के क्रोध, मान और लोभ कषाय का भी इससे ग्रहण हो जाता है। चारो कषाय के अर्थ मे यहाँ 'माई' शब्द समझना चाहिए।

'उवेहमाणो', 'अञ्जू' और 'माराभिसकी' ये तीनों विशेषण अप्रमत्त एवं जागृत साधक के हैं जो शब्द आदि विषयों के प्रति उपेक्षा करता है, वही सरल आत्मा होता है और वही मृत्यु के प्रति सावधान है।

Elaboration—This paragraph advises a seeker to observe and ponder over the condition of a being tormented by various fears like old-age and death, their causes and consequences

Here the commentator *(Vritti)* has raised a question—Gods are said to be non-aging and immortal, therefore they must be free of the stupor of fondness ? The answer provided is—"Although gods are called non-aging, they too age Because before the moment of descent their *leshya* (the colour-code indicator of purity of soul), power, happiness, aura, complexion, etc , start fading In a way this is also a process of aging They also die They are also afflicted by sorrows like grief and fear Therefore gods are also under the stupor of fondness or attachment " (*Vritti,* leaf 140)

Aure pane—beings engulfed in the unfathomable ocean of physical and mental miseries and perplexed thereby

Mai—denotes the middle passion But here it also includes the first two and last as well Thus here it should be understood to include all the four passions—anger, conceit, illusion and greed

Uvehamano, anju* and *marabhisamki—these three are adjectives used for alert and awakened seeker Only he who ignores sound and other subjects of sense organs, has unblemished soul and is consciously alert of death

११०. अप्पमत्तो कामेहिं उवरओ पावकम्मेहि। वीरे आयगुत्ते जे खेयण्णे।
जे पज्जवजाय-सत्थस्स खेयण्णे से असत्थस्स खेयण्णे।
जे असत्थस्स खेयण्णे से पज्जवजाय-सत्थस्स खेयण्णे।

११०. जो क्षेत्रज्ञ है वह काम-भोगो के प्रति अप्रमत्त होता है। पापकारी प्रवृत्तियो से उपरत रहता है वह पुरुष वीर और आत्मगुप्त–आत्मा को सुरक्षित रखने वाला है।

जो इन्द्रिय-विषयों की पर्यायो से होने वाले शस्त्र–असयम के खेद को जानता है, वह अशस्त्र–सयम के खेद को भी जानता है।

जो अशस्त्र–संयम को जानता है, वह विषयो के विभिन्न पर्यायो मे होने वाले शस्त्र–असंयम को जानता है।

110. One who knows the domain *(kshetra)* is alert towards mundane pleasures A man who remains free of sinful attitude and activity is brave and self-guarded (who keeps his soul protected).

One who knows the consequence of (using) weapons (indiscipline or violence) inspired by attachment with varieties (of mundane indulgences), he also knows the consequence of not using weapons (discipline or *ahimsa*)

One who knows the consequence of discipline or *ahimsa* also knows the consequence of indiscipline or violence inspired by attachment with varieties of mundane indulgences

विवेचन–'खेयण्णे' शब्द के प्रसग अनुसार अनेक अर्थ किये गये है। जैसे–खेदज्ञ अर्थात् प्राणियो की पीडा को समझने वाला। क्षेत्रज्ञ–क्षेत्र शब्द के भी अनेक अर्थ होते है–शरीर, काय, इन्द्रिय-विषय, हिसा, मन, वचन, काय की प्रवृत्ति तथा हार्द–मर्म, रहस्य।

"शब्द, रूप, रस आदि विभिन्न प्रकार के इन्द्रिय-विषयो की अवस्थाएँ (पर्याय) राग-द्वेष की वृद्धि करने वाली एव असंयम–शस्त्र को बढ़ाने वाली है।" जो इस रहस्य को जान लेता है, वह संयम को भी जान लेता है। सयम एव असंयम दोनो का ज्ञान एक-दूसरे पर अवलम्बित है। अत· एक को भली प्रकार से जानने पर दूसरे को भी जान लिया जाता है।

Elaboration—*Kheyanne*—This word has been used to convey a variety of meanings in different context For example—*khedajna* meaning one who understands pain of beings, *kshetrajna* meaning one who understands domain or area Domain has numerous meanings—body, constitution, subjects of sense organs, violence, attitudes and activities of mind, speech and body, and secrets and mysteries

One who knows the secret that "the variations and stages of various subjects of sense organs such as sound, form and taste are factors that increase attachment and aversion as well as indiscipline

(weapon)" also knows what is dıscıplıne The knowledge of dıscıplıne and that of ındıscıplıne are ınterdependent. Thus by knowıng one well the other also becomes known

लोक-संज्ञा का त्याग

१११. अकम्मस्स ववहारो ण विज्जइ।

कम्मुणा उवाही जायइ।

११२. कम्मं च पडिलेहाए।

कम्ममूलं च जं छणं पडिलेहिय।

सव्वं समायाय दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे। त परिण्णाय मेहावी।

विइत्ता लोगं वंता लोगसण्णं से मइमं परक्कमेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१११. अकर्म (कर्मो से मुक्त शुद्ध आत्मा) के लिए कोई (लोक) व्यवहार नही होता।

कर्म से उपाधि होती है।

११२ कर्म का सम्यक् प्रकार से विचार करके उसे नष्ट करने का प्रयत्न करे।

जो हिसा है, वही कर्म का मूल है—उसका भलीभाँति निरीक्षण करके परित्याग करे।

इन सब का सम्यक् निरीक्षण करके दोनो (राग और द्वेष) अन्तो से अदृश्य (दूर) होकर रहे।

मेधावी राग-द्वेषादि को ज्ञात करके (ज्ञ-परिज्ञा से जाने और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से छोडे)।

वह मतिमान् साधक इस राग-द्वेषरूप लोक को जानकर लोक-सज्ञा का त्याग करे तथा सयमानुष्ठान मे पराक्रम करे।

—ऐसा मै कहता हूँ।

LEAVING THE AWARENESS OF THE WORLD

111. One who ıs free of *karma* ıs also free of mundane behavıour

It is *karma* that leads to appellatıons.

112. One should properly ponder over *karma* and try to destroy ıt.

That which is *hımsa* (vıolence) ıs the root of *karma*, therefore after properly examınıng ıt one should abstaın from it

After properly examınıng all thıs one should remain untouched (away) from both the ends (attachment and aversıon).

The wıse should understand attachment and aversıon (etc.) (through awareness of knowledge he should know them and through awareness of detachment he should abandon them)

Understandıng the world of attachment and aversıon, that sagacıous seeker should cast off the awareness (desıre) of the world and pursue the conduct of dıscıplıne

--So I say

विवेचन–कर्म और उसके संयोग से होने वाली आत्मा की हानि तथा कर्म के उपादान (राग-द्वेष) आदि को भलीभॉति जानकर उसका त्याग करने का निर्देश इन सूत्रो मे किया है। कर्मो के बीज–राग और द्वेष रूप दो अन्तों का परित्याग करके (विषय-कषायरूप) लोक को जानकर लोक-सज्ञा–आसक्ति को छोडकर सयम मे उद्यम करने की प्रेरणा दी है।

अकम्मस्स–जो अकर्म अर्थात् सर्वथा कर्ममुक्त हो जाता है, उसके लिए नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, बाल, वृद्ध, युवक, पर्याप्तक, अपर्याप्तक आदि कुछ भी व्यवहार (सज्ञाएँ) नही होता।

जो कर्मयुक्त है, उसके लिए ही कर्म को लेकर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य आदि की या एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक की, मन्द बुद्धि, तीक्ष्ण बुद्धि, स्त्री-पुरुष आदि उपाधि–व्यवहार या विशेषण होता है। इन सब विभाजनो–विभेदो और व्यवहारो का हेतु कर्म है, इसलिए कर्म ही उपाधि का कारण है।

चूर्णिकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है–कर्म से उपधि होती है। उपधि तीन प्रकार की है–आत्मोपधि, कर्मोपधि और शरीरोपधि। जब आत्मा विषय-कषायादि मे दुष्प्रयुक्त होता है, तब आत्मोपधि–आत्मा परिग्रह रूप होता है। तब कर्मोपधि का सचय होता है और कर्म से शरीरोपधि होती है। शरीरोपधि से लेकर नैरयिक, मनुष्य आदि व्यवहार (सज्ञा) होता है।

'कम्म च पडिलेहाए' का तात्पर्य है–कर्म का समग्र स्वरूप जानकर कर्मो को क्षय करने का प्रयत्न करना चाहिए।

कर्मबन्ध के मूल कारण पाँच है–(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग। इन कर्मों के मूल का विचार करे। 'क्षण' का अर्थ क्षणन–हिंसा है, इसका एक अर्थ यह भी होता है–कर्म का मूल हिसा है अथवा हिसा का मूल कर्म है। **दोहिं अंतेहि**–दो अन्त अर्थात् किनारे है–राग और द्वेष। इनको भली प्रकार जाने।

'अदिस्समाणे' का अर्थ है–राग और द्वेष द्वारा जीव दृश्यमान (देखा जाता है, अर्थात् प्रभावित होता है) होता है, परन्तु वीतराग राग और द्वेष इन दोनों से दृश्यमान नहीं होते अर्थात् प्रभावित नहीं होते।

'लोगसण्ण'–प्राणिलोक की आहारादि चार संज्ञाएँ अथवा दस संज्ञाएँ लोक सज्ञा कही जाती हैं। वित्तैषणा, कामैषणा (पुत्रैषणा) और लोकैषणा रूप जो तीन एषणाएँ बताई हैं, वे भी लोकसज्ञा हैं। विषयो की ओर दौडने की मनोवृत्ति को भी लोक संज्ञा कहते हैं।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—These phrases direct at knowing well and avoiding the harms caused to soul by its association with *karmas* and their source (attachment and aversion) The message contains inspiration to be away from the two ends of the seed of *karma,* namely attachment and aversion, to get free of the desire of the world (attachment) after knowing its true form (mundane indulgences and passions), and to pursue the path of discipline

Akammassa—One who is without *karma* or is free of all *karmas* is also free of mundane appellations like those of hell-being, animal, human-being, god, child, old man, youth, perfect (having all sense), imperfect (not having all sense), etc

All such appellations or adjectives as hell-being, animal and human-being, or one sensed to five sensed, or stupid and intelligent, or female and male, etc are for one who is infested with *karmas* The cause of all these divisions and differences or classifications is *karma,* therefore *karma* is the only cause of appellations

The commentator *(Churni)* has defined this as—*karma* causes imposture It is of three types—of the soul, of *karmas,* and of the body When the soul is infested with desire for indulgences and passions it is soul-imposture (the acquisitive nature) This leads to acquisition of imposture of *karmas* which leads to imposture of the body In the mundane domain it turns into appellations (a misleading adjective because the ultimately true form of the soul is pure) like those of hell-beings, human-beings, etc

Kammam cha padilehae—to make an effort to shed *karmas* after knowing completely their form and effects.

There are five primary causes of *karmic* bondage—(1) *mithyatva* (false perception or belief), (2) *avirati* (attachment), (3) *pramad* (stupor), (4) *kashaya* (passions), (5) *yoga* (affiliation) One should ponder over the origin of these *karmas* *Kshan* means *kshanan* or violence, it also conveys that the cause of *karmas* is violence and cause of violence is *karma* ***Dohim antehim***—means two ends, which here means attachment and aversion One should properly know all these

Adissamane—not visible or not influenced, every being is under the influence of attachment and aversion, but a *vitaraga* (detached) is invisible to (not influenced by) attachment and aversion

Logasannam—worldly awareness, the four or ten types of awareness like food (etc) The three desires *(eshana)*—for wealth, progeny, and world—are also included in this The attitude of hankering for indulgences is also called worldly awareness (involvement)

● END OF LESSON ONE ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

[प्रथम उद्देशक मे भाव रूप मे सुप्त और जागृत पुरुष के विषय मे बताया है। इस उद्देशक में बताया है–भाव रूप मे जाग्रत पुरुष पाप नही करता। वह हिसादि के कारण होने वाले दु:खो को पहले ही जानकर उनसे निवृत्त हो जाता है।]

[The first lesson informs about persons in mental states of stupor and alertness This second lesson informs that a mentally alert person does not commit sin He gets aware of the miseries caused by violence and other such acts and refrains from indulging in them]

बध-मोक्ष-परिज्ञान

११३. जाइं च वुड्ढि च इहऽज्ज पासे, भूएहिं जाण पडिलेह सायं।
तम्हा तिविज्जो परमं ति णच्चा सम्मत्तदंसी ण करेइ पावं॥

११३ हे आर्य ! तू इस संसार मे जन्म और वृद्धि–बुढ़ापे को देख। प्राणियो के (कर्मबन्ध और उसके विपाक रूप) सुख-दु ख को जान। तीन विद्याओं का ज्ञाता या अतिविद्य बना हुआ साधक परम तत्त्व–(मोक्ष) को जानकर समत्वदर्शी होकर पाप नहीं करता।

AWARENESS OF BONDAGE AND LIBERATION

113. *O Arya* (a noble person) ! Observe the birth and growth (aging) in this world. Know about the pleasure and pain (caused by *karmic* bondage and its fruition) of beings A highly learned person (or one who has acquired three types of knowledge) who knows the ultimate truth (liberation), becomes *samatvadarshi* (acquires equanimous perception) and avoids sinful activities

विवेचन–जो जन्म, जरा और मृत्यु के स्वरूप को जानता है वह उनसे बचने का प्रयत्न करता है। जन्म, मृत्यु का कारण हिंसा और आसक्ति है। यही जीवो के सुख-दु ख का हेतु है। इसका विचार करने से प्राणी दु:ख के कारणो से बच सकता है।

'तम्हातिविज्जं' का अर्थ है–तीन विद्याओं का ज्ञाता। इस सूत्र मे तीन बातो को जानने-देखने का निर्देश किया है। वे तीन बातें ये है–(१) पूर्वजन्म का ज्ञान, (२) जन्म-मरण का ज्ञान, तथा

(३) अपने सुख-दु ख के साथ अन्य प्राणियो के सुख-दु ख की तुलना करके पर्यालोचन करना। इन्हीं तीन बातों का ज्ञान प्राप्त करना त्रिविद्या है।

बौद्धदर्शन मे त्रिविद्या का निरूपण इस प्रकार है-(१) पूर्वजन्मो को जानने का ज्ञान, (२) मृत्यु तथा जन्म को जानने का ज्ञान, (३) चित्तमलो के क्षय का ज्ञान। इन तीन विद्याओ को प्राप्त करने वाले को वहाँ 'तिविज्ज' (त्रैविद्य) कहा है।

दूसरा पाठान्तर 'अतिविज्जे' है। इसका अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है-जिसकी विद्या जन्म, जरा, सुख-दु ख के दर्शन से तत्त्व का विश्लेषण करने वाली है, वह अतिविद्य अर्थात् उत्तम ज्ञानी है।

'परम' के अनेक अर्थ हो सकते है-निर्वाण, मोक्ष, सत्य (परमार्थ)। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र तथा पारिणामिक भाव।

"जो समत्वदर्शी है, वह पाप नही करता।" इसका तात्पर्य यह है कि पाप और विषमता के मूल कारण राग और द्वेष हैं। जो अपने भावो को राग-द्वेष से कलुषित-मिश्रित नही करता और न ही किसी प्राणी को राग-द्वेषयुक्त दृष्टि से देखता है, वह समत्वदर्शी होता है।

सम्मत्तदसी का एक रूप सम्यक्त्वदर्शी अर्थात् सम्यग्दृष्टि होता है। "सम्यग्दृष्टि जीव आरभ-समारभ मे आसक्त नहीं बनता" यह कथन तो ठीक है, किन्तु वह पाप नही करता यह कथन ऊँचे गुणस्थानो की अपेक्षा से ही लगता है, ऐसा आचार्य श्री आत्माराम जी म का अभिमत है।

Elaboration—One who knows about birth, aging and death tries to avoid these The cause of life and death is violence and attachment These are also the roots of happiness and misery Pondering over this, a being can protect himself from these sources of misery

Tamhativijjam—one who has acquired three types of knowledge This is an indication to perceive and know three things which are—(1) knowledge of earlier births, (2) knowledge about birth and death, and (3) comparative study of one's own happiness and sorrow and those of other beings *Trividya* means to acquire the knowledge of these three things

Buddhism lists *trividya* as—(1) knowledge of earlier births, (2) knowledge about birth and death, and (3) the knowledge about process of casting off the dirt of mind or thoughts One who acquires these three is called *tivijja* or *traividya*

Another transliteration is *ativijje (ativijna)* The commentator *(Vritti)* has interpreted it as—one who has acquired the capacity to analyze fundamentals through his knowledge of life, aging, happiness and sorrow is called highly learned or *ativijna.*

Param (ultimate) can be interpreted in many ways—*nirvana, moksha* or liberation, truth (for beneficence), right knowledge, right perception and right conduct and resultant attitude

"One who becomes *samatvadarshi* (who has acquired equanimous perception) and avoids sinful activities " This statement conveys that the root causes of complexities and sin are attachment and aversion One who does not tarnish his thoughts with attachment and aversion, who does not look at any being from a view biased by attachment and aversion, is *samatvadarshi* (who has acquired equanimous perception)

Alternative transliteration of *sammattadamsi* is *samyaktvadarshi* or *samyagdrishti* Acharya Shri Atmaram ji M. is of the view that a *samyakdrishti* being, indeed, does not indulge in violence against beings But "he does not indulge in any sinful activity" can only be true with reference to higher levels of *Gunasthana* (levels of spiritual purity)

११४. उम्मु च पास इह मच्चिएहिं, आरंभजीवी उभयाणुपस्सी।
कामेसु गिद्धा णिचयं करेंति, संसिच्चमाणा पुणरेंति गब्भं॥

११४. हे पुरुष ! इस ससार मे मनुष्यो के साथ तेरा जो रागादि बन्धन रूप पाश है, उसे तोड डाल, (क्योकि जो हिसादि रूप आरभ करके जीते है) वे आरभजीवी पुरुष दोनो (शारीरिक एव मानसिक सुखो) को ही देखते रहते है अथवा आरभजीवी होने से वह दण्ड आदि के भय का अनुभव करते रहते हैं। काम-भोगों मे आसक्त प्राणी कर्मों का संचय करते रहते हैं तथा कर्मों की जडे बार-बार सींची जाने से वे पुन -पुन जन्म धारण करते हैं।

114. O man ! Break the bond (in the form of your attachment, etc) with mortals in this world; (because) the people who indulge in sinful activities are subject to both (mental and physical happiness and sorrow) In other words—

as they indulge in sinful activities, they continue to live in fear of punishment and other such consequences. People involved in mundane pleasures continue to accumulate *karmas* and as the roots of *karma* are repeatedly irrigated they are reborn time and again

विवेचन—इस सूत्र मे पापकर्मो का सचय करने वाले की वृत्ति, प्रवृत्ति और परिणति (फल) का दिग्दर्शन कराया गया है।

'पाश' अर्थात् बधन दो प्रकार के है–द्रव्य बन्धन और भाव बन्धन। भाव बन्धन राग, मोह, स्नेह, आसक्ति, ममत्व आदि है। ये ही साधक को जन्म-मरण के जाल में फँसाने वाले पाश है।

'आरभजीवी उभयाणुपस्सी' पद मे आरम्भ से महारम्भ और उसका कारण महापरिग्रह दोनो का ग्रहण करना चाहिए। कई प्रतियों मे 'उभयाणुपस्सी' पाठ है जिसका अर्थ होता है–महारम्भ-महापरिग्रह के कारण वह पुन -पुन भय को देखता है।

'ससिच्चमाणा पुणरेति गब्भ' मे बताया है–हिसा, झूठ, चोरी, काम-वासना, परिग्रह आदि कर्म की जडे है। जो उन्हे लगातार सीचते रहते है, वे विविध गतियो और योनियो मे बार-बार जन्म लेते है।

Elaboration—In this verse indicates the attitude, activity and consequence of the person who accumulates *karmas*

Paash—bonds These are of two types, physical and mental The mental bonds are in the form of attachment, fondness, affection, cravings, possessiveness, etc These are the bonds that ensnare a seeker into the trap of life and death

Arambhajivi ubhayanupassi—In this phrase *arambh* (sinful activity) should be taken to be both *maharambh* (extremely sinful activities) and its cause, *mahaparigrah* (extreme attachment to possessions) In some versions an alternative reading is found as *ubhayanupassi* which means—because of extreme sin and attachment he is ever apprehensive

Samsichchamana punarenti gabbham conveys that violence, falsity, stealing, lust, attachment, etc are the roots of *karma* Those who irrigate them continuously are reborn again and again at various places and genuses

११५. अवि से हासमासज्ज, हंता णंदीति मण्णति।
अलं बालस्स संगेणं, वेरं वड्ढेति अप्पणो॥

११५ काम-भोग मे आसक्त मनुष्य हास्य-विनोद के कारण प्राणियों का वध करके खुशी मनाता है। ऐसे अज्ञानी पुरुषो के संसर्ग से क्या लाभ है? इससे तो आत्मा का वैरभाव ही बढ़ता है।

115. A man fond of mundane pleasures celebrates kıllıng of beings for his enjoyment and entertaınment What ıs the use of associatıon wıth such foolısh people ? It only enhances the feelıng of anımosıty ın one's mınd

विवेचन—कई महारभी-महापरिग्रही मनुष्य दूसरों को मारकर, सताकर, जलाशय मे डुबोकर, कोडों आदि से पीटकर या सिह आदि हिस्र पशुओं के समक्ष मनुष्य को मरवाने के लिए छोडकर अथवा यज्ञादि मे निर्दोष पशु-पक्षियों की बलि देकर या उनका शिकार करके अथवा उनकी हत्या करके मनोरंजन करते हैं। इसी प्रकार कई लोग झूठ बोलकर, चोरी करके या स्त्रियो के साथ व्यभिचार करके या दूसरो का धन, मकान आदि हड़प करके या अपने कब्जे मे करके हास्य-विनोद या प्रमोद की अनुभूति करते है। ये सभी दूसरे प्राणियो के साथ अपना वैर बढ़ाते रहते है। हँसी-मजाक से भी कई बार तीव्र वैर बँध जाता है। वृत्तिकार ने समरादित्य कथा के द्वारा सकेत किया है कि गुणसेन ने अग्निशर्मा की अनेक तरह से हँसी उड़ाई, इस पर दोनो का वैर बँध गया, जो नौ जन्मो तक लगातार चला।[1]

Elaboration—Many extremely sınful and covetous persons seek entertaınment ın cruel and vıolent actıvıtıes lıke—torturıng and kıllıng beıngs, drownıng them ın water bodıes, floggıng them wıth whıps, leavıng them at the mercy of ferocıous anımals lıke lıon, offerıng ınnocent anımals and bırds as sacrıfice ın *yajna,* or huntıng ınnocent beıngs as a sport In the same way many people derıve theır enjoyment or entertaınment through tellıng lıes, stealıng, womanızıng, or misappropriatıng wealth, property and other belongings of others Such people keep on ıncreasıng theır anımosıty wıth other beıngs Even sımple laughter and makıng fun causes anımosıty sometımes The commentator *(Vrıttı)* has gıven an example from *Samaradıtya Katha* that Gunasena taunted Agnısharma many ways Thıs caused an anımosıty between the two and ıt continued for nıne rebırths

१ आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत टीका, पृ ३२८

११६. तम्हाऽतिविज्जं परमं ति णच्चा, आयंकदंसी ण करेइ पावं।
अग्गं च मूल च विगिंच धीरे, पलिछिंदियाण णिक्कम्मदसी।

११६. इसलिए वह उत्तम ज्ञानी परम–मोक्ष पद को जानकर तथा हिसा आदि में नरक आदि का आतक–(कष्ट) दु ख देखता हुआ पापकर्म का आचरण नही करता।

हे धीर ! तू दु.ख के अग्र और मूल का विवेक कर। उसे पहचान। रागादि बन्धनो को परिच्छिन्न करके स्वयं निष्कर्मदर्शी बन जा। कर्मरहित हो।

116. Therefore that hıghly learned one, knowıng about the ultımate state (lıberatıon) and vısualızıng the torments of hell ın vıolence and other such actıvıtıes, does not ındulge in sınful activıtıes

O patıent one ! Judge the tıp and root of sorrow (recognıze ıt) Break the bonds of attachment (etc) and reach the *karmaless* state (free of *karmas*)

विवेचन–आतंकदर्शी पाप नहीं करता, इस पद का रहस्य है–"कर्म या हिसा के कारण दु:ख होता है।" जो इस सत्य को जान लेता है, वह आतक को जान लेता है इसलिए वह आतंकदर्शी है। वह स्वय पापकर्म नहीं करता, न दूसरो से कराता है और न करने वाले का अनुमोदन करता है।

'अग्र' और 'मूल' शब्द के अनेक अर्थ होते है। जैसे–वेदनीयादि चार अघाति कर्म अग्र है। मोहनीय आदि चार घाति कर्म मूल है।

मोहनीय सब कर्मों का मूल है, शेष सात कर्म अग्र है।

मिथ्यात्व मूल है, शेष अव्रत-प्रमाद आदि अग्र है।

साधक कर्मों के अग्र अर्थात् परिणाम और मूल अर्थात् जड (मुख्य कारण) दोनों पर विवेक-बुद्धि से चिन्तन करता है। किसी भी दुष्कर्मजनित कष्ट के केवल अग्र = परिणाम पर विचार करने से वह मिटता नही, उसके मूल पर ध्यान देना जरूरी है। कर्मजनित दु खो का मूल मोहनीय कर्म है, शेष सब उसके पत्र-पुष्प है।

'पलिछिंदियाण णिक्कम्मदसी' के भावार्थ को स्पष्ट करते हुए टीकाकार ने बताया है–तप और संयम के द्वारा राग-द्वेषादि को या उनके कार्यरूप कर्मों को सर्वथा छिन्न करके आत्मा निष्कर्मदर्शी हो जाता है। निष्कर्मदर्शी के चार अर्थ हो सकते है–(१) कर्मरहित शुद्ध आत्मदर्शी, (२) राग-द्वेष के सर्वथा छिन्न होने से सर्वदर्शी, (३) वैभाविक क्रियाओं (कर्मों–व्यापारों) के सर्वथा न होने से अक्रियादर्शी, और (४) जहाँ कर्मों का सर्वथा अभाव है, ऐसा मोक्षदर्शी।

गोत्र
आयुष्य
नाम
मोह
अन्त
दर्शना
ज्ञाना
अग्र
↑
मूल
↓
राग द्वेष
नाम
गोत्र
आयुष्य
अन्तराय
दर्शना
अग्र
↑
मूल
↓
मोहनीय
1
2
3
चलनी में जल
12

चित्र परिचय १२

Illustration No. 12
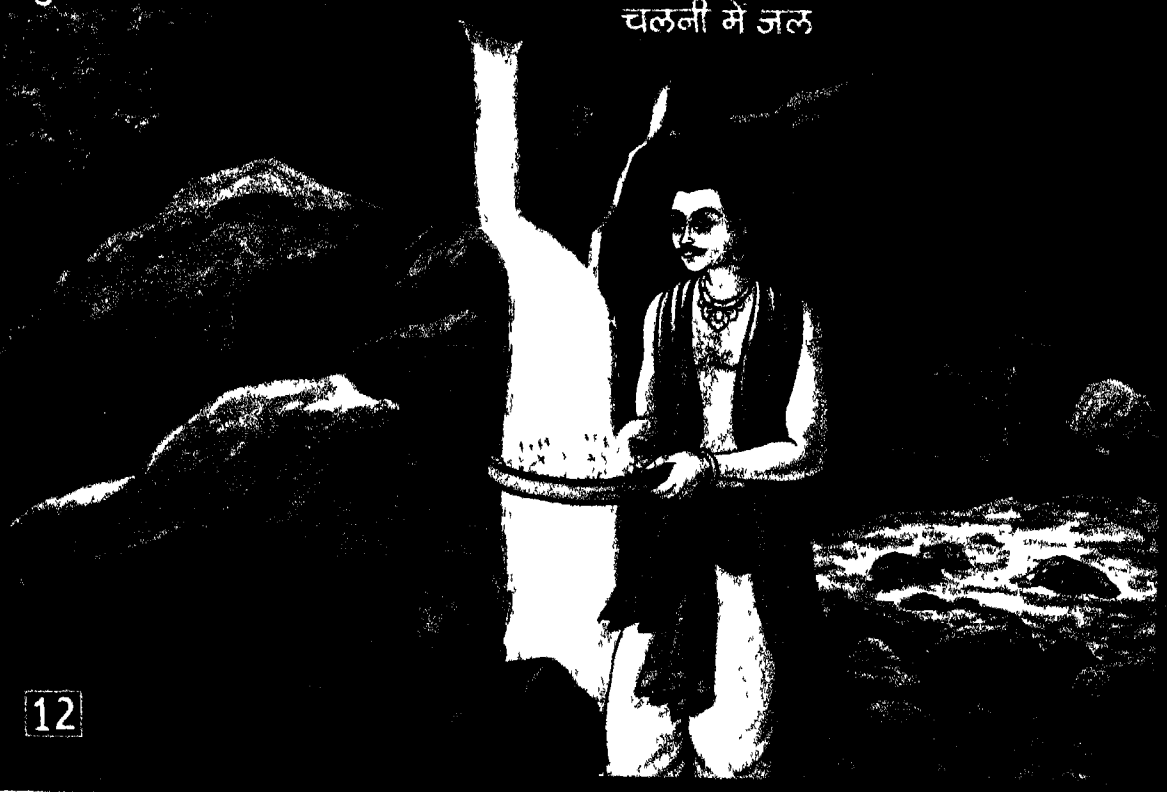
कर्म का अग्र और मूल

अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे।

हे धीर पुरुष! कर्म के अग्र और मूल दोनों का विवेक करो, इन्हें पहचानो।

-अ ३, उ १ सूत्र ११६

१ कर्म का मूल अर्थात् जड़ है, राग और द्वेष तथा इनसे आगे वृक्ष बढ़ता है, वह है अग्र अर्थात् दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म ये आठ कर्म उसके अग्र शाखाएँ। विविध प्रकृतियाँ पत्ते के समान हैं। *उत्तराध्ययन ३२/५*

२ सब कर्मों का मूल है--मोहनीय कर्म तथा ज्ञानावरणीय आदि अन्य सात कर्म उसके अग्र हैं। उसी मोह वृक्ष की शाखाएँ हैं। *दशाश्रुत स्कन्ध ५/११-१४ (अ ३ उ २ सूत्र १०२)*

चलनी में जल

'से केयण अरिहए पूरइत्तए।' जो मनुष्य धन व भोगोपभोग की वस्तुओं से अपनी इच्छा को भरना चाहता है वह ऐसा बाल्य प्रयास करता है जैसे कोई व्यक्ति झरनों से बहती जलधारा से चलनी को भरना चाहता है। यह सम्भव नहीं है।

अ ३ उ २ सूत्र ११९

THE ROOT AND TIP OF *KARMA*

O patient one! Judge and recognize the tip and root of *karma*

—3 1/116

1 Attachment and aversion are like roots, and the tree that develops out of these is the tip which includes the eight *karmas*—*Mohaniya, Antaraya, Jnanavaraniya Darshanavaraniya Vedaniya, Ayushya, Naam* and *Gotra* The various manifestations of these *karmas* are like leaves of the tree

--Uttaradhyayan 32/5

2 The *mohaniya karma* is the root of all *karmas* and the remaining seven are like tips *—Dashashrut skandh 5/11 14, 3/2/102*

WATER IN A STRAINER

A person who wants to fulfill his desires by acquiring wealth and other mundane pleasures and comforts is doing something childish like an attempt to fill a strainer with water from rivers and streams That is impossible *—3/2/119*

Elaboration—One who sees the torments does not indulge in sinful activity The idea behind this statement is that he who realizes that sorrow is caused by *karma* or violence, knows terror He does not indulge in sinful activities himself nor does he cause others to do so or approves others doing so

The terms *agra* (tip) and *mool* (root) are interpreted many ways For example—The four *aghati* (benign) *karmas* like *vedaniya* (*karma* responsible for mundane experience of pain and pleasure) are like tips and the four *ghati* (baneful) *karmas* like debiding *karmas* are like roots

The *mohaniya karma* (illusion breeding *karma* or *karma* that tempts soul towards fondness for things) is the root of all *karmas* and the remaining seven are like tips

Falsity is the root and stupor, indiscipline and other vices are like tips

A practicer ponders with sagacity over the tips or consequences as well as roots or primary cause of *karmas* To think only about the tip (evidence) of a pain caused by evil *karmas* does not provide relief from it It is essential to attend to the root (cause) The root of the sorrows produced by *karma* is *mohaniya karma,* all other *karmas* are like its leaves and flowers

Palichhhindiyana nikkammadamsi—explaining this phrase the commentator *(Vritti)* says—By completely destroying attachment and aversion or their resultant *karmas* with the help of austerities and discipline, a soul becomes *nishkarmadarshi* (having perception unveiled by *karmas*) *Nishkarmadarshi* can be interpreted four ways—(1) being free of all *karmas,* who becomes *atmadarshi* or soul-perceiving, (2) being free of attachment and aversion, who becomes *sarvadarshi* or all-perceiving, (3) in absence of consequential activities or the effects of *karmas,* who becomes *akriyadarshi* or inactivity-perceiving, and (4) in total absence of *karmas,* who

becomes *mokshadarshi* or liberation-perceiving Here *darshi* or perceiving does not simply mean looking at or seeing, it implies that such a seeker has attained that state

११७. एस मरणा पमुच्चति, से हु दिट्ठभये मुणी।

लोगसि परमदसी विवित्तजीवी उवसते समिए सहिए सया जए कालकंखी परिव्वए।

बहु च खलु पावं कम्मं पगड।

११७ वह निष्कामदर्शी जो जन्म-मरणरूप भय को देख चुका है, मृत्यु से मुक्त हो जाता है। वह ज्ञानी पुरुष लोक मे (निम्न सात गुणो से युक्त होकर जीवन-यापन करता है)–

(१) परमदसी–परम–मोक्ष को या निर्मल चैतन्य स्वरूप को देखता है।

(२) विवित्तजीवी–राग-द्वेष से मुक्त होकर जीता है।

(३) उवसते–कषाय रूप विकारो का उपशमन करता है।

(४) समिए–अपने लक्ष्य पर केन्द्रित–स्थिर होता है या पाँच समितियो से युक्त रहता है।

(५) सहिए–ज्ञान-दर्शन से युक्त रहता है।

(६) सया जए–सयम मे यतनाशील होता है।

(७) कालकंखी–मरण भय से मुक्त रहकर समाधिमरण का लक्ष्य रखता है।

अतीतकाल मे इस जीव ने बहुत सारे पापकर्म किये है अत अब उनको क्षीण करने का प्रयत्न करता है।

117. That *(nishkamadarshi)* person who has visualized fear in form of life and death gets liberated from death That learned person (leads life equipped with the following seven virtues)—

(1) *Paramdamsi*—he sees the ultimate state which is liberation or the soul in its absolutely pure form.

(2) *Vivittajivi*—he leads a life free of attachment and aversion

(3) *Uvasante*—he subdues vices in form of passions

(4) ***Samiye***—he has unwavering concentration on his goal; in other words he is equipped with five *samitis* (practices of self regulation)

(5) ***Sahiye***—he is equipped with right knowledge and perception.

(6) ***Saya jaye***—he is careful in his discipline

(7) ***Kalakankhi***—remaining free of the fear of death, he keeps meditational end of life as his goal

११८. सच्चंमि धिइ कुव्वह। एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं कम्म झोसेइ।

११८ हे साधक ! तू सत्य मे धृति कर। सत्य मे स्थिर रहने वाला मेधावी समस्त पापकर्मो का क्षय कर डालता है।

118. O practicer ! Be firm on (pursuance of) truth A sage who is firm on truth, destroys all evil *karmas*

विवेचन–इस सूत्र मे, साधक को सत्य में स्थिर रहने का महत्त्व समझाया है।

वृत्तिकार ने विभिन्न दृष्टियो से सत्य के अनेक अर्थ किये है–

(१) प्राणियो के लिए जो हितकारी है, वह सत्य है–वह है सयम।

(२) जिनेश्वर देव द्वारा उपदिष्ट आगम सत्य है, क्योंकि वह यथार्थ वस्तु-स्वरूप को प्रकाशित करता है वही शाश्वत सत्य है।

(३) सत्य का अर्थ है, प्रतिज्ञा। अर्थात् गृहीत व्रतो का निर्दोष पालन करना सत्य है। इसमें धैर्य या धृति रखने का उपदेश प्रस्तुत सूत्र मे है।

Elaboration—This aphorism informs about the importance of being firm on truth

The commentator *(Vritti)* has interpreted truth in different ways from different angles—

(1) That which is beneficial for beings is truth, and it is discipline.

(2) The tenets of the *Jineshvar* lord given in the form of *Agams* is truth because it reveals the true form of things Thus it is the ultimate truth

(3) Truth means resolution To faultlessly follow the vows one has accepted is truth

It is advised here to be firm on truth

असयत की व्याकुल चित्तवृत्ति

११९. अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहए पूरइत्तए।

से अण्णवहाए अण्णपरियावाए अण्णपरिग्गहाए।

जणवयवहाए जणवयपरियावायाए जणवयपरिग्गहाए।

११९ वह असयमी पुरुष अनेक चित्त (चचल मन) वाला है। वह चलनी को जल से भरना चाहता है।

(तृष्णा की पूर्ति के लिए) व्याकुल चित्त मनुष्य दूसरो का वध करने के लिए, दूसरो के परिताप के लिए, दूसरो के परिग्रह के लिए तथा जनपद के वध के लिए, जनपद के परिताप के लिए और जनपद के परिग्रह के लिए प्रवृत्ति करता है।

THE DISTURBED STATE OF INDISCIPLINED MIND

119. The indisciplined person is of many minds (having a flickering mind) He wants to fill water in a sieve

A man with disturbed mind (to fulfill his desires) indulges in killing others, inflicting pain on others, and enslaving others He also indulges in destroying, inflicting pain on and enslaving (conquering) inhabited areas (village, city or state)

विवेचन–ससार-सुखाभिलाषी पुरुष को अनेकचित्त वाला बताया गया है, क्योकि वह लोभ से प्रेरित होकर कृषि, व्यापार, कारखाने आदि अनेक प्रकार के धधे करता है, उसका चित्त रात-दिन उन्ही अनेक धधो की उधेड-बुन मे लगा रहता है।

अनेकचित्त पुरुष अतिलोभी बनकर ऐसी असम्भव इच्छा करता है, जैसे कोई चलनी को जल से भरना चाहता है, अर्थात् चलनी रूप तृष्णा को धनरूपी जल से भरना असभव है। अपनी तृष्णा के खप्पर को भरने हेतु वह दूसरे प्राणियों का वध करता है, दूसरों को शारीरिक, मानसिक सताप देता है, **द्विपद**–दास-दासी, नौकर-चाकर आदि **चतुष्पद**–चौपाये जानवरो का सग्रह करता है। इतना ही नहीं, वह असीम लोभ मे पागल होकर सारे जनपद या नागरिकों का संहार करने पर उतारू हो जाता है, उन्हे नाना प्रकार से यातनाएँ देने को उद्यत हो जाता है, अनेक जनपदो को जीतकर अपने अधिकार मे कर लेता है।

Elaboration—A man desirous of mundane pleasure is said to be with many minds This is because driven by greed, he indulges in numerous business activities like agriculture, trading, industry, etc Day and night his mind is obsessed with thoughts and worries of such business activities

Such multi-directional person becomes excessively greedy and craves for filling a sieve with water The insinuation is that it is impossible to fill the sieve that is mundane desire with water that is wealth To fill the pot of his mundane desires, he kills other beings, inflicts physical and mental torture on others, and acquires bipeds like slaves and servants and quadrupeds like domestic animals He does not just stop there, driven by extreme greed he proceeds to destroy, inflict pain in numerous ways on, and conquer entire inhabited areas

सयम में समुत्थान

१२० आसेवित्ता एयमट्ठं इच्चेवेगे समुट्ठिआ। तम्हा तं बिइयं नो सेवए।

णिस्सार पासिय णाणी।

उववाय चवण णच्चा अणण्णं चर माहणे।

से ण छणे, न छणावए, छणतं नाणुजाणइ।

निव्विद णदि अरए पयासु। अणोमदंसी णिसण्णे पावेहिं कम्मेहिं।

१२०. कुछ व्यक्ति आरभ, परिग्रह आदि असयम का आसेवन करके अन्त मे सयम-साधना मे सलग्न हो जाते है। इसलिए वे फिर दुबारा काम-भोग तथा हिसा आदि का आसेवन नही करते।

तू देख, विषय-भोग साररहित है।

तू जान, केवल मनुष्यो के ही जन्म-मरण नही, अपितु देवो के भी उपपात और च्यवन निश्चित हैं, यह जानकर विषय-सुखों मे आसक्त मत हो। हे माहन ! (हे श्रमण !) तू अनन्य आत्मा मे रमण कर।

मुनि प्राणियो की हिसा स्वय न करे, न दूसरो से हिसा कराए और न हिसा करने वाले का अनुमोदन करे।

तू निर्वेद–कामभोगजनित आमोद-प्रमोद से विरक्त हो। प्रजाओ–स्त्रियो में आसक्ति मत कर। क्योंकि अनवमदर्शी–उत्तम तत्त्व आत्मा को देखने वाला पापकर्मों से विषण्ण–उदासीन रहता है।

PROGRESS IN DISCIPLINE

120. Some people indulging in sinful activities, attachment, and other types of indiscipline at last commence practice of discipline. Therefore they do not indulge in mundane pleasures and violence again

You should see that mundane pleasures are worthless.

Know this—it is not that life and death of only human beings are inevitable, even the origin and descent of gods are also inevitable Knowing this, do not get infatuated with mundane pleasures O Brahman *(Shraman)* ! Involve yourself only with the solitary (soul)

He (*muni* or ascetic) should neither himself harm, nor cause others to harm, or approve others harming beings

Become *nirved* (genderless or apathetic to enjoyment of carnal pleasures) Do not get infatuated with women Because one who perceives the ultimate fundamental (soul) remains apathetic to sinful activities

विवेचन–इस सूत्र मे विषय-भोगों से विरक्त होकर सयम-साधना मे जुटे हुए साधक को विषय-भोगों की असारता एव जीवन की अनित्यता का सन्देश देकर हिसा तथा काम-भोग जनित आनन्द, अब्रह्मचर्य आदि पापो से विरत रहने की प्रेरणा दी गयी है।

विषय-भोग इसलिए निस्सार हैं कि उनके प्राप्त होने पर तृप्ति कदापि नहीं होती। इसीलिए भरत चक्रवर्ती आदि विषय-भोगों को निस्सार समझकर सयमानुष्ठान के लिए उद्यत हो गये थे।

'उववाय' और 'चयण' का आशय यह है कि मनुष्यो का जन्म और मरण तो सर्वविदित है ही, देवों के सम्बन्ध मे भ्रान्ति है कि उनका विषय-सुखो से भरा जीवन अमर है, वे जन्मते-मरते नहीं, अत इसे बताने के लिए उपपात और च्यवन–इन दो पदो द्वारा देवों के भी जन्म-मरण का संकेत किया है।

'अणण्ण'–'अनन्य' शब्द मोक्ष, संयम और आत्मा की एकता का बोधक है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परम तत्त्व को देखने वाला 'अणोमदसी' है।

Elaboration—In this aphorism, by explaining about worthlessness of mundane pleasures and ephemeral nature of life, inspires a seeker, averse to mundane pleasures and involved in practices of ascetic discipline, to be apathetic to acts of sin like carnal pleasures and non-celibacy

Mundane pleasures are worthless because they never culminate into satiation That is why people like Bharat Chakravarti, understanding the worthlessness of mundane pleasures, proceeded towards ascetic discipline

The words *uvavaya* and *chyavan* have been used to point at the birth and death of gods The birth and death of human beings is a well known fact but a misconception prevails that divine life with abundance of mundane pleasures is eternal, gods are immortal These two words refute that misconception

Ananna or *ananya* points at the solitary nature of soul during practice of discipline and in liberation

One who perceives (attains) the ultimate fundamental in the form of right perception-knowledge-conduct is called *anomadamsi*

१२१. कोहाइमाण हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंतं।
तम्हा हि वीरे विरए वहाओ, छिदिज्ज सोय लहुभूयगामी॥

१२१ हे वीर पुरुष ! क्रोध और मान को नष्ट कर, लोभ को महान् नरक के रूप मे देख ! इसलिए हिसा से विरत होकर विषय-वासना रूप स्रोतो को छिन्न-भिन्न करके लघुभूत होकर विचरण करे।

121. O brave ! Destroy anger and conceit and see greed as the lowest hell. Thereby refrain from violence, shatter the sources (of *karma* in the form of mundane pleasures) and drift after becoming light (rarified in terms of passions).

विवेचन–'लहुभूयगामी' का अर्थ है आत्मा को राग-द्वेष के भार से हल्का बनाकर विचरे। ज्ञातासूत्र म लघुभूत तुम्बी का उदाहरण देकर बताया है कि जैसे–सर्वथा लेपरहित होने पर तुम्बी जल के ऊपर आ जाती है, वैसे ही लघुभूत कर्ममुक्त–आत्मा ससार से ऊपर मोक्ष में पहुँच जाता है।

चूर्णि में इसके स्थान पर 'छिदिज्ज सोत ण हु भूतगाम' पाठ मिलता है। उत्तरार्ध का अर्थ यो है–ईर्यासमिति आदि से युक्त साधक १४ प्रकार के भूत ग्राम (प्राणि-समूह) का छेदन न करे।

Elaboration—*Lahubhuyagami*—move after making the soul light or free of the burden of attachment and aversion In *Jnata Sutra* this has been explained with the help of the example of a gourd. As a gourd, free of the weight of layers of mud, comes to the surface of a water body, so does a soul rise to the realm of the liberated *(moksha)*

In the commentary *(Churni)* there is an alternative reading—*'Chhindijja sotam na hu bhootagamam'* This means—an ascetic practicing *iryasamiti* and other *samitis* (self-regulation) should not pierce (harm) fourteen types of *bhootagram* (collection of living organisms)

१२२. गथ परिण्णाय इहऽज्ज वीरे, सोयं परिण्णाय चरेज्ज दते।
उम्मग्ग लद्धु इह माणवेहि, णो पाणिण पाणे समारभेज्जासि॥
त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१२२ हे वीर ! इस लोक मे ग्रन्थ–परिग्रह को जानकर आज ही अविलम्ब छोड दे। इसी प्रकार संसार के स्रोत–विषयो को भी जानकर सयम मे विचरण कर। यह जानो कि मनुष्य-जन्म में ही ससार सिन्धु से तरने का, उन्मज्जन का अवसर मिलता है, अत मुनि प्राणियो के प्राणो का समारम्भ न करे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

122. O brave ! Knowing about the knots (attachments) in this world, abstain from them at once In the same way know about the sources (mundane pleasures) and lead a disciplined life Know that it is only during the life as a human being that one gets the opportunity to swim across the ocean of life (Knowing this) an ascetic should not terminate or harm the lives of beings.

—So I say

● END OF LESSON TWO ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

[द्वितीय उद्देशक मे कष्ट-सहिष्णुता तथा क्रोध आदि कषायो को जीतने का उपदेश दिया है। हिसा-कषाय आदि से विरक्त होने के लिए आत्म-द्रष्टा बनना जरूरी है। जो सब जीवो को अपने समान समझता है वही हिसा आदि से बच सकता है–इस विषय का प्रतिपादन इस उद्देशक मे किया गया है।]

[The second lesson contains the message about tolerating pain and conquering passions like anger To avoid violence and passions it is essential to become a perceiver of soul Only he can avoid violence (etc) who considers all beings like his own self This topic has been discussed in this chapter]

समता-दर्शन

१२३ संधि लोगस्स जाणित्ता आयओ बहिया पास। तम्हा ण हता ण विघायए।

जमिण अण्णमण्णवितिगिच्छाए पडिलेहाए ण करेइ पाव कम्म कि तत्थ मुणी कारणं सिया ?

१२३ हे साधक ! धर्मानुष्ठान की सन्धि–अवसर को समझकर अपनी आत्मा के समान बाह्य-जगत् (दूसरी आत्माओ) को देख। इसलिए मुनि जीवो की हिसा न करे और न दूसरो से कराए।

जो मानव परस्पर एक-दूसरे की आशका से, भय से अथवा दूसरे के सामने लज्जा के कारण पापकर्म नही करता, तो क्या उसका कारण मुनि होना है? (नही।)

SEEING EQUALITY

123. O seeker ! Recognize the opportunity (of practicing ascetic discipline) and visualize the outer world (other souls or beings) as similar to your own soul Thereby an ascetic should neither harm beings nor cause others to do so

A man may not indulge in sinful activity for mutual apprehension, fear or shame Can he be called an ascetic because of this ? (No.)

विवेचन–'सधि' का अर्थ है छिद्र या अवसर। सधि दो प्रकार की होती है–द्रव्य सधि–दीवार आदि का छिद्र। भाव सधि–आत्म-विकास का अवसर। इसके तीन प्रकार हैं–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

टीकाकार का अभिप्राय है, जैसे कारागार में बन्द अपराधी दीवार आदि मे कहीं छेद मिलने पर उससे मुक्त होने का प्रयास करता है, वैसे ही मोह कारागार से मुक्त होने का यह जीवन एक अवसर है, इसको समझे।

आचार्य महाप्रज्ञ जी के अनुसार यहाँ हिसा-अहिसा का प्रसग होने से 'सन्धि' का अभिप्राय है हड्डियों का 'जोड़'। "सभी प्राणी जीना चाहते हैं, सबको अपने समान जीवन प्रिय है। आत्मा के समान दूसरो को समझने का यह दर्शन ही 'सधि' है, इसे जानकर किसी प्राणी की हिसा न करें।" (आचाराग भाष्य, पृ १८२) इसी आगम मे अनेक प्रसगो मे 'संधि' शब्द आया है और उसके प्रसगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थ होते है। *(विशेष शब्दार्थ, आचारांग भाष्य, पृ ४७४)*

जमिण अण्णमण्णे–इस पद मे यह सूचित किया है कि यदि कोई किसी विचिकित्सा–भय, प्रलोभन, दबाव या आशका के कारण किसी की घात नही करता है तो इसमे उसका मुनि अथवा ज्ञानी होना कारण नही है, क्योकि मुनि तो वह है जो पापकर्म न करने के सकल्प के साथ किसी की घात नही करता है।

Elaboration—*Sandhi* means breach or opportunity It is of two types—physical, like a hole in a wall, and mental, like an opportunity for spiritual development The latter in turn, is of three types—right perception, right knowledge and right conduct

The commentator (*Tika*) explains that when a prisoner finds a breach in the wall of the prison he tries to free himself In the same way this life is like a breach (opportunity) to free oneself from the prison of attachment. An ascetic should understand this

According to Acharya Mahaprajna as the context is of violence and *ahimsa*, the meaning of *sandhi* is 'joint' here He explains—"Every being wants to live, everyone loves a life like his own The philosophy of considering others like ones own self is *sandhi* Knowing this, do not indulge in harming any being." (*Acharanga Bhashya*, p 182) The word *sandhi* has been used frequently in this *Agam* and it has different meanings in different context

(see *Vishesh Shabdarth, Acharanga Bhashya,* p 474)

***Jaminam annamane*—This phrase conveys that if someone does not kill a being out of fear, allurement, apprehension or other such pressures, it is not an evidence of his being an ascetic or a sage. In fact an ascetic is one who does not harm a being for no other reason but his resolve not to indulge in sinful activities.

१२४. समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए।

अणण्णपरमं णाणी णो पमाए कयाइ वि।

आयगुत्ते सदा वीरे जायामायाए जावए।

विरागं रूवेहिं गच्छेज्जा महया खुड्डएहिं वा।

आगतिं गतिं परिण्णाय दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणेहिं से ण छिज्जइ, ण भिज्जइ, ण डज्झइ, ण हम्मइ कंचणं सव्वलोए।

१२४ मुनि समता दृष्टि से विचार करके आत्मा को सदा प्रसन्न रखे।

ज्ञानी मुनि, अनन्य परम-(सर्वोच्च सयम) मे कदापि प्रमाद न करे।

साधक सदा आत्मा को गुप्त रखे और पराक्रमशील रहे तथा अपनी संयम-यात्रा का निर्वाह (मात्रा के अनुसार) परिमित आहार से करे।

छोटे या बड़े सभी रूपो-दृश्यमान पदार्थों के प्रति वैराग्य धारण करे।

प्राणियो की गति और आगति को भलीभाँति जानकर जो राग और द्वेष के दोनों अन्तो से दूर रहता है, वह समस्त लोक मे किसी से कहीं भी छेदा नहीं जाता, भेदा नहीं जाता, जलाया नही जाता और मारा नही जाता।

124. An ascetic should always keep his soul blissful with the viewpoint of equality

A sagacious ascetic should never be lethargic about the unique ultimate (the highest discipline).

An ascetic should always guard his soul and be vigorous and committed. Also, (he should) subsist on his spiritual path with limited food (quantitatively)

He should be detached towards all forms (of visible matter) big or small.

When one knows from where beings come and where will they go, and when he is away from both ends that are attachment and aversion, he is neither cut, nor slit, nor burnt, nor killed by anyone in the whole world.

विवेचन–समय तत्थुवेहाए–सूत्र ११६ मे कहा है कि जो किसी भय आदि कारण से जीव-हिसा नही करता, इसमे मुनित्व का कोई कारण नही है। अब इस सूत्र मे बताया है कि जो '**समय**' अर्थात् 'समता' को समझकर पापकर्म नही करता वह मुनि है। जिसके जीवन में 'समता भाव' रम जाता है, उसी मे उसकी आत्मा को प्रसन्नता व आनन्द का अनुभव होता है।

अणण्णपरम का अर्थ है, जो सबसे उत्कृष्ट है, वह है सयम या समताभाव। ज्ञानी अपने संयम अथवा समताभाव मे कभी प्रमाद न करे। सयम के लिए आहार विवेक भी आवश्यक है, अत अगले पद मे 'जायामायाए' द्वारा सूचित किया है कि 'सयम यात्रा' के निर्वाह हेतु जितना आहार आवश्यक है, उतना ही आहार करे। क्योकि अति मात्रा मे भोजन करना, अति स्निग्ध रसदार भोजन करना सयम के लिए घातक होता है इसलिए आहार की मात्रा का ज्ञान रखे।

आहार की मात्रा का सयम करने के साथ ही रूप आदि के प्रति भी वैराग्य धारण करे इसलिए अगला पद '**विराग रूवेहि**' कहा गया है। रूप आदि मे विरक्त रहना भी वैराग्य का हेतु है।

'**आगति गति परिण्णाय**' का तात्पर्य यह है कि चार गतियाँ है, उनमे से किस गति का जीव कौन-कौन-सी गति में आ सकता है और किस गति से कहाँ-कहाँ जा सकता है ? इसका ऊहापोह करना चाहिए। जैसे तिर्यच और मनुष्य की आगति और गति (गमन) चारो गतियो मे हो सकती है, किन्तु देव और नारक की आगति-गति तिर्यच और मनुष्य इन दो ही गतियो मे हो सकती है। किन्तु मनुष्य इन चारो गतियो मे गमनागमन की प्रक्रिया को तोडकर पचम गति–मोक्ष गति मे भी जा सकता है, जहाँ से लौटकर वह अन्य किसी गति मे नही जाता।

Elaboration—***Samayam tatthuvehae***—In the 116th aphorism it is stated that if someone does not harm beings out of fear (etc) it is not an evidence of his being an ascetic Now this aphorism conveys that one who refrains from sinful activities after understanding equality is an ascetic When the feeling of equality pervades ones life, his soul derives happiness and bliss there in

Anannaparam—That which is best of all, and that is discipline or the feeling of equality A sage should never be lethargic or wanting in his discipline or sense of equality In observing discipline it is also necessary to have food-discipline Therefore in the following phrase it is conveyed by the word *jayamayae* that one should subsist

on his spiritual path only with just essential quantity of food. As taking excessive quantity of food or very tasty and rich food is detrimental to the practice of discipline, one should have knowledge of the quantitative aspects of food.

With the food-discipline one should also acquire a feeling of detachment towards form and other attributes. This is conveyed by *viragam ruvehim* Detachment for forms also leads to the ultimate detachment.

Aagatim gatim parinnaya—There are four *gatis* (states or dimensions of birth) One should ponder over the question—A being of which *gati* can come to which other *gati* or from which *gati* a being can go to which other *gati* ? For example an animal or a human being can pass to or come from any four *gatis,* but gods and hell beings can pass to or come from only two *gatis* namely animal and human And it is only humans who can transcend into the fifth *gati*, liberation, by terminating this process of transference. From there they return no more to any other *gati*

१२५. अवरेण पुव्विं ण सरंति एगे किमस्सतीतं किं वाऽऽगमिस्सं ?
भासंति एगे इह माणवाओ जमस्स तीयं तं आगमिस्सं॥
णातीतमट्ठं ण य आगमिस्सं अट्ठं णियच्छंति तहागया उ।
विहूयकप्पे एयाणुपस्सी णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी॥
का अरइ के आणंदे ? एत्थंपि अग्गहे चरे।
सव्वं हासं परिच्चज्ज आलीणगुत्तो परिव्वए॥

१२५ कुछ पुरुष भविष्य का तथा अतीत का स्मरण नहीं करते। वे इसकी चिन्ता नही करते कि इसका अतीत क्या था, भविष्य क्या होगा? कुछ मानव यों कह देते हैं कि जो जिसका अतीत था, वही इसका भविष्य होगा। किन्तु तथागत-(सर्वज्ञ) न तो अतीत के (विषय-भोगादि रूप) अर्थ का स्मरण करते हैं और न ही भविष्य के दिव्यांगना-संगादि वैषयिक सुख का चिन्तन करते हैं।

विधूत के समान कल्प-आचार वाला महर्षि इन्हीं तथागतों के दर्शन का अनुगामी होता है, अथवा वह क्षपक महर्षि वर्तमानदर्शी होता है। वह कर्म शरीर को क्षीण कर देता है।

उस योगी के लिए भला क्या अरति है और क्या आनन्द है? वह इस विषय मे आग्रहरहित होकर विचरण करे। वह सभी प्रकार के हास्य आदि प्रमादो का त्याग करके इन्द्रियनिग्रह तथा मन-वचन-काया को गुप्त करते हुए विहार करे।

125. Some persons do not think about future and past They do not bother about what was its past and what will its future be ? Some say that as was its past so will be its future But an omniscient neither thinks about the meaning (in context of mundane pleasures) of the past nor does he consider the future mundane pleasures such as the company of divine damsels

A great sage with purity of conduct (ascetic conduct) is a follower of the philosophy of these omniscients, in other words, that advancing sage perceives the present only He weakens the *karmic*-body

For him what is discontent and what is pleasure ? He should lead a life free of any such predilections Giving up all frivolities like mirth, disciplining his senses and guarding his body-speech-mind, he should lead a religious life

विवेचन—इस सूत्र की व्याख्या भिन्न-भिन्न दृष्टियो से की गई है। जैसे—दार्शनिक दृष्टि से कुछ लोग कहते है—भविष्य के साथ अतीत की स्मृति नही करनी चाहिए। क्योकि अतीत के साथ भविष्य का कोई सम्बन्ध नही है। कुछ लोग यह मानते थे कि जिसका जैसा भूतकाल था वैसा ही भविष्य भी होता है। प्राणी जैसा पिछले जन्म मे स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी जैसा था वैसा ही वर्तमान मे हुआ है।

अध्यात्म दृष्टि से कहा गया है—अतीत मे भोगे हुए भोगो की स्मृति भी नही करना चाहिए और भविष्य के भोगो की अभिलाषा भी नही करना चाहिए।

इस सूत्र मे आये कुछ विशेष शब्दो की व्याख्या इस प्रकार है—

'तथागत' टीकाकारो ने इसका अर्थ 'सर्वज्ञ' किया है जो वीतराग है, पदार्थ के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता है। **विधूतकल्प**—कर्ममल जिन्होने धो डाला है वे 'विधूत' है, उनके द्वारा कथित आचार विधूतकल्प अर्थात् मुनि का आचार। **अग्गहे**—अग्रह—ग्रहणभाव से रहित। अर्थात् राग-द्वेष का ग्रहण नही करता हुआ। अनासक्तभाव से तथा कछुए की भाँति इन्द्रियो का निग्रह करके परिव्रजन करे।

Elaboration—This paragraph has been interpreted in various ways from various angles For example—from philosophical angle

some people say that past should not be contemplated along with the future, because future has no relation with the past Some people believe that the future is same as the past A being takes the same form as it had in his earlier birth, man, woman, animal or bird

From the spiritual angle it is said that one should neither remember the experiences of pleasure and pain in the past nor desire for such indulgences in future

Some special words from this paragraph are explained as follows—

Tathagat—The commentators (*Tika*) have interpreted it as *sarvajna* or omniscient who is absolutely detached and who knows the real form of things *Vidhoot kalp*—those who have washed away the dirt of *karmas* are called *vidhoot,* the conduct propagated by them is *vidhoot kalp* or ascetic conduct *Aggahe*—devoid of the desire of acquiring Which means that he should move about without acquiring attachment and aversion In other words, he should lead a life of detachment, disciplining his senses as a tortoise draws its limbs and neck into the shell

मित्र-अमित्र-विवेक

१२६. पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्त, किं बहिया मित्तमिच्छसि ?

ज जाणेज्जा उच्चालइय तं जाणेज्जा दूरालइयं। जं जाणेज्जा दूरालइयं तं जाणेज्जा उच्चालइयं।

१२६ हे पुरुष ! (आत्मन् !) तू ही तेरा मित्र है, फिर बाहर मित्र क्यो खोजता है?

जिसे तुम अध्यात्म की उच्च भूमिका पर स्थित समझते हो, उसको सब आसक्तियों से दूर समझो। जिसे कामनाओ से अत्यन्त दूर समझते हो, उसे उच्च भूमिका पर स्थित समझो।

JUDGEMENT OF FRIEND AND FOE

126. O man ! You are your own friend, why then you look for a friend outside ?

Whom you consider to dwell at a high spiritual level, take him to be away from all cravings Whom you consider to be away from all desires, take him to be dwelling at a high spiritual level

१२७. पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि।

१२७ हे पुरुष ! अपनी आत्मा का ही निग्रह कर। इसी विधि से तू दुःखो से मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

127. O man ! Discipline your soul Only through this process you will get liberated from sorrows.

विवेचन—सूत्र ११९ में मित्र-अमित्र की व्याख्या निश्चय दृष्टि से की गई है। जो बाह्य मित्र-अमित्र की भावना से मुक्त है वह 'उच्चालय' ऊँची भूमि पर स्थित है। आत्मा शब्द से चित्त निग्रह का सन्देश दिया है। अनुकूल सवेदनों में राग और प्रतिकूल संवेदनो मे द्वेष करने वाला चित्त ही है। इनके कारण ही दु ख होता है। चित्त का निग्रह करने से स्वतः ही दु खो से छुटकारा मिल जाता है।

Elaboration—In the 119th aphorism friendship has been defined from *nishchaya* angle (absolutistic viewpoint) One who is free of the concept of outside friendship dwells in a high abode Disciplining the soul indicates disciplining mind and attitude It is the mind that gets attached to favourable experience and is averse to unfavourable experience These are the sources of misery This disciplining of mind automatically rids one of sorrows

सत्य में समुत्थान

१२८. पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरइ।

सहिए धम्ममादाय सेयं समणुपस्सइ।

दुहओ जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जंसि एगे पामयेंति।

सहिए दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए।

पासिमं दविए लोगालोगपवचाओ मुच्चइ।

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ समत्तो ॥

१२८. हे पुरुष ! तू सत्य को भलीभाँति समझ। सत्य की आज्ञा (मर्यादा) में उपस्थित रहने वाला मेधावी मार–मृत्यु (संसार) को तर जाता है।

सत्य से युक्त साधक धर्म को ग्रहण करके श्रेय का सम्यक् प्रकार से साक्षात्कार कर लेता है।

राग और द्वेष के अधीन होकर आत्मा जीवन की वन्दना, सम्मान और पूजा के लिए हिंसादि पापो मे प्रवृत्त होता है। कुछ साधक भी इनके लिए प्रमाद करते हैं।

ज्ञानादि से युक्त साधक दु:ख की मात्रा–शीत-उष्ण परीषह से स्पृष्ट होने पर व्याकुल नही होता।

आत्म-द्रष्टा वीतराग पुरुष लोक मे दिखाई देने वाले प्रपंचो (विकल्पों) से मुक्त हो जाता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

PROGRESS INTO TRUTH

128. O man ! Understand truth properly. A sage who is governed by the discipline of truth, crosses the void of death (the cycles of rebirth)

A seeker equipped with truth accepts *dharma* (right path) and properly gains the ultimately beneficent

Driven by attachment and aversion, a soul indulges in sins like violence for the purpose of revering, respecting and worshiping life. Even some seekers become lax for these.

A seeker equipped with knowledge and other virtues is not disturbed even when touched by volumes of misery (pleasant and unpleasant afflictions)

A self-knowing absolutely detached person becomes free of the evident deceptions or illusions in this world

—So I say

विवेचन–'सच्चमेव समभिजाणाहि' में वृत्तिकार ने सत्य के तीन अर्थ किये हैं। (देखें सूत्र ११८)

'झंझाए' का अर्थ है–दु ख और सकट के समय हतप्रभ हो जाना, व्याकुल हो जाना। झंझा का संस्कृत रूप बनता है **ध्यन्धता** (धी + अन्धता) बुद्धि की अन्धता। झझा दो प्रकार की होती है–राग-झंझा और द्वेष-झझा। इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर राग-झझा होती है, जबकि अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर द्वेष-झझा होती है।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The commentator has gıven three meanıngs of truth ın context of *sachchameva samabhıȷanahı* Refer to aphorısm 118 for thıs

Jhanjhaye—to get nervous or dısturbed ın face of mısery or trouble The Sanskrıt translıteratıon of *ȷhanȷha* ıs *dhyandhata* (*dhı* + *andhata*) blındness of wısdom or dumbness Thıs ıs of two types—*Raga-ȷhanȷha* (dumbness due to attachment) and *Dvesh-ȷhanȷha* (dumbness due to aversıon) In face of favourable experıence one suffers from *raga-ȷhanȷha* and ın face of unfavourable experıence one suffers from *dvesh-ȷhanȷha*

● **END OF LESSON THREE** ●

चउत्थो उद्देसओ

चतुर्थ उद्देशक

LESSON FOUR

कषाय-विजय

१२९. से वंता कोहं च माणं च मायं च लोभं च। एयं पासगस्स दंसणं उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स।

आयाणं सगडब्भि।

१२९ साधक क्रोध, मान, माया और लोभ का त्याग कर देता है। यह हिंसा से निवृत्त तथा समस्त कर्मों का अन्त करने वाले सर्वज्ञ-सर्वदर्शी (तीर्थंकरो) का उपदेश है।

जो पुरुष अपने कर्मों के आदान–कषायों, आस्रवो का निरोध करता है, वही कर्मो का नाश करने वाला है।

VICTORY OVER PASSIONS

129. A seeker gives up anger, conceit, illusion and greed This is a tenet of *Tirthankars* (omniscient) who are devoid of violence and have destroyed all *karmas*.

He alone is the destroyer of *karmas* who stops the inflow of *karmas* (by disciplining passions)

विवेचन–इस सूत्र मे क्रोध आदि चार कषायों का उच्छेद करने का उपदेश देते हुए कहा है–यही **पश्यक** अर्थात् सर्वद्रष्टा भगवान महावीर का दर्शन है। **उपरतशस्त्र**–हिसादि शस्त्रो से मुक्त। **पर्यंतकर**–चार घाती कर्मो का क्षय करने वाले तथा **आयाण सगडब्भि**–कषाय आस्रवों का निरोध करने वाले। ये सभी भगवान महावीर के विशेषण हैं।

Elaboration—Here, advising to give up four passions including anger, it is said that this is the philosophy of *pashyak* (all seeing Bhagavan Mahavir) *Uparat-shastra*—free of weapons such as violence *Paryant-kar*—who has shed the four vitiating *karmas* *Ayanam sagadbbhi*—who has blocked passions, the sources of inflow of *karmas* All these are adjectives used for Bhagavan Mahavir

१३०. जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ।

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं।

जे एगं णामे से बहुं णामे, जे बहुं णामे से एगं णामे।

दुक्खं लोयस्स जाणित्ता, वंता लोगस्स संजोगं। जंति वीरा महाजाणं।

परेण परं जंति, णावकंखति जीवियं।

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ, पुढो विगिंचमाणे एग विगिंचइ।

सड्ढी आणाए मेहावी।

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं।

अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं।

१३०. जो एक को जानता है, वह सब को जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।

प्रमत्त को सब ओर से भय होता है, अप्रमत्त को कही से भी भय नही होता।

जो एक को नमाता है, वह बहुतो को नमाता है। जो बहुतो को नमाता है, वह एक को नमाता है।

लोक के दु ख को जानकर (उसके हेतु कषाय का त्याग करे।) वीर साधक लोक के–(संसार के) सयोग–ममत्व-सम्बन्धो का परित्याग कर महायान–मोक्षपथ को प्राप्त करते है।

वे आगे से आगे बढ़ते जाते है, उत्तरोत्तर विशुद्धि प्राप्त करते हैं। उन्हें फिर असयमी जीवन की आकांक्षा नही रहती।

एक–(अनन्तानुबधी कषाय) को (जीतकर) पृथक् करने वाला, अन्य (कर्मों) को भी (जीतकर) पृथक् कर देता है। अन्य को पृथक् करने वाला, एक को भी पृथक् कर देता है।

वीतराग की आज्ञा मे श्रद्धा रखने वाला मेधावी होता है।

जो साधक जिनेश्वर देव की आज्ञा–वाणी के अनुसार लोक को जानकर विषयो का त्याग कर देता है, वह अकुतोभय–पूर्ण अभय हो जाता है।

शस्त्र (असंयम) एक से एक बढ़कर तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होता है किन्तु अशस्त्र (सयम) एक से एक बढ़कर नहीं होता।

130. He who knows one, knows all He who knows all, knows the one.

He who ıs in stupor is in danger He who ıs alert ıs free of any danger from any direction

He who conquers one, conquers all He who conquers all, conquers one

Knowing the misery of the world (giving up passions for that), the brave seekers renounce the affiliations (fondness and relationship) and proceed on the great journey (the path of liberation).

They progressively move towards purity and are left with no desire for life of indiscipline.

He who severs (by winning) one (extreme passion), severs others as well, and he who severs others, severs one also.

He who has faith in the tenets of the absolutely detached is a sage

The seeker who, understanding the world according to the tenets of *Jineshvar* (*Tirthankar*), renounces (the mundane pleasures) becomes free of all fear from anywhere.

Weapons (indiscipline) have degrees of sharpness, but non-weapon (discipline) has no degrees

विवेचन–'एग जाणइ.' इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जो विशिष्ट ज्ञानी एक परमाणु आदि द्रव्य तथा उसके किसी एक भूत-भविष्यत् पर्याय अथवा स्व या पर-पर्याय को पूर्ण रूप से जानता है, वह समस्त द्रव्यो एव स्व-पर-पर्यायो को जान लेता है, क्योकि समस्त वस्तुओं के ज्ञान के बिना अतीत-अनागत पर्यायो सहित एक द्रव्य का पूर्ण ज्ञान नही हो सकता। इसी प्रकार जो ससार की सभी वस्तुओं को जानता है, वह किसी एक वस्तु को भी उसके अतीत-अनागत पर्यायों सहित पूर्ण रूप मे जानता है।

यही तथ्य इस श्लोक मे प्रकट किया गया है–

"एकोभाव सर्वथा येन दृष्ट, सर्वे भावा सर्वथा तेन दृष्टा।
सर्वे भावा· सर्वथा येन दृष्टा, एकोभाव सर्वथा तेन दृष्ट ॥"

प्रसगानुसार यहाँ पर कषाय तथा आस्रव का कथन होने से ऐसा भी अर्थ किया जाता है–जो एक आस्रव या एक क्रोध को सम्पूर्ण रूप मे जान लेता है वह सभी को जान लेता है तथा जो आस्रव को जान लेता है वह सवर को भी जान लेता है।

'जे एग णामे.'–इस सूत्र का आशय है–(१) जो एक अनन्तानुबन्धी क्रोध को नमा देता है–क्षय कर देता है, वह बहुत से मान आदि अनन्तानुबन्धी को नमा-खपा देता है, अथवा अपने ही अन्तर्गत अप्रत्याख्यानी आदि कषायो को नमा-खपा देता है। (२) जो एक मोहनीय-कर्म को नमा देता है–क्षय कर देता है, वह शेष कर्म प्रकृतियों को भी नमा-खपा देता है।

'**महायान**' का एक अर्थ–विशाल पथ अथवा 'राजमार्ग' भी हो सकता है। सयम का पथ–राजमार्ग है जिस पर सभी कोई निर्भय होकर चल सकते है।

'**परेण परं जंति**' का तात्पर्य है आध्यात्मिक दृष्टि से आगे से आगे बढ़ना। वृत्तिकार ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है–सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से नरक-तिर्यंचगतियो मे भ्रमण रुक जाता है, साधक सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का यथाशक्ति पालन करके आयुष्य क्षय होने पर सौधर्मादि देवलोको मे जाता है। पुण्य शेष होने से वहाँ से मनुष्यलोक मे कर्मभूमि, आर्यक्षेत्र, सुकुलजन्म, मनुष्यगति तथा सयम आदि पाकर विशिष्टतर अनुत्तर देवलोक तक पहुँच जाता है। फिर वहाँ से च्यवकर मनुष्य-जन्म तथा उक्त उत्तम सयोग प्राप्त कर उत्कृष्ट सयम पालन करके समस्त कर्मक्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार पर अर्थात् सयमादि के पालन से पर अर्थात् स्वर्ग-परम्परा से अपवर्ग–मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। अथवा पर = सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से उत्तरोत्तर आगे बढ़ते-बढ़ते साधक अयोगीकेवली (१४वाँ) गुणस्थान तक पहुँच जाता है।

'**परेण परं**' से एक अर्थ यह भी ध्वनित होता है कि वह क्रमश उत्तरोत्तर सुख, तेज-द्युति को प्राप्त होता है। भगवतीसूत्र (१४) मे बताया है–एक मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण व्यन्तर देवो की तेजस्विता व सुखो से आगे बढ़ जाता है। क्रमश भवनपति, असुरकुमार, ज्योतिषी देवो की तेज-द्युति आदि का अतिक्रमण कर छह मास की दीक्षा-पर्याय वाला सौधर्म व ईशान देवलोक की तेजोद्युति का अतिक्रमण करता है। बारह मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण अनुत्तर विमानवासी देवो के सुख-तेज आदि का भी अतिक्रमण कर जाता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर विशुद्ध तेजोलेश्या की प्राप्ति होती रहती है।

'**एगं विगिंचमाणे**'–इस सूत्र का आशय यह है कि क्षपकश्रेणी पर आरूढ उत्कृष्ट साधक एक अनन्तानुबन्धी कषाय का क्षय करता हुआ, अन्य दर्शनावरण आदि का भी क्षय कर लेता है। आयुष्यकर्म बँध भी गया हो तो भी दर्शनसप्तक का क्षय कर लेता है। (पृथक्)–अन्य का क्षय करता हुआ एक अनन्तानुबन्धी नामक कषाय का भी क्षय कर देता है।

Elaboration—*Egam janai. . . . .*—This sentence conveys that a highly learned seeker who completely knows one ultimate particle of matter and its past or future transformations (*paryaya*) with reference to its own and outside factors, comes to know all the substances and every transformation with reference to own and outside factors This is because without the knowledge of all substances the knowledge of one substance with all its past and future transformations cannot be gained In the same way one who knows all the things in this world knows any one thing with all its past and future transformations

As there is a mention of passions and *asrava* (inflow of *karmas*), this sentence can also be interpreted as—He alone who completely knows *asrava* or anger, comes to know all other passions And when he knows *asrava* he also knows *samvar* (blocking the inflow of *karmas*).

Je egam name......—This can be interpreted two ways—(1) He who subdues (severs or sheds) *anantanubandhi krodh* (anger that causes so strong a bondage of *karmas* that it takes infinite time to purify the soul, extreme anger) also subdues many other such acute vices including conceit and other intense passions (2) He who subdues (sheds) *mohaniya karma* also sheds the remaining varieties of *karma*

Mahayan—one of its meaning is wide path or highway The path of discipline is a highway on which anyone can move fearlessly

Parena param janti—to move ahead progressively from spiritual angle The commentator (*Vritti*) has explained it as follows—By gaining right perception rebirths in hell and as animals are avoided After this, the seeker pursues the path of right knowledge and conduct to the best of his ability and reincarnates as a god in *Saudharma* or other dimensions The leftover meritorious *karmas* cause him to be born in the world of humans as a human being in favourable conditions like land of activity, area of nobles, good family, ascetic discipline, etc This leads to a reincarnation as god in the loftiest *Anuttar* dimension Descending from there he is again born as a human in the said favourable conditions Observing highest degree of discipline he sheds all the *karmas* and attains liberation Thus he progressively moves ahead in ascetic discipline to attain liberation In other words he progressively advances in levels of spiritual purity from *samyagdrishti* or fourth *Gunasthan* to *ayogikevali* or 14th *Gunasthan*

This phrase also appears to convey another meaning—that he gradually and progressively attains higher levels of happiness and brilliance It is mentioned in *Bhagavati Sutra*—A *Shraman* with

one month *diksha* (formal initiation) crosses the limit of intensity of brilliance of vyantar gods Progressively surpassing the intensity of brilliance of *bhavan-pati, asurakumar* and *jyotishka* gods, a *Shraman* with six month experience after *diksha* (initiation) crosses even the brilliance of *Saudharma* and *Ishan* gods A *Shraman* with one year experience crosses even the limit of intensity of brilliance of *Anuttar* gods Thus he progressively acquires purer and purer intensity of *tejoleshya* (radiant energy)

Egam viginchamane—This paragraph conveys that a highly accomplished seeker who has reached the level of *kshapak shreni* the ladder leading to shedding of *karmas* or progressive levels of lightness in context of the burden of *karmas*) while shedding *anantanubandhi kashaya* (extreme passion) also sheds other *karmas* like *darshanavaran* (perception obscuring) Even if he has acquired age-determining *karma*, he sheds the seven sub-types of *karmas* related to perception And while shedding other *karmas* he also sheds extreme passion

१३१. जे कोहदंसी से माणदसी, जे माणदसी से मायदसी,
जे मायदसी से लोभदंसी, जे लोभदसी से पेज्जदंसी,
जे पेज्जदंसी से दोसदंसी, जे दोसदंसी से मोहदंसी,
जे मोहदसी से गब्भदंसी, जे गब्भदसी से जम्मदसी,
जे जम्मदंसी से मारदसी, जे मारदसी से णिरयदसी,
जे णिरयदंसी से तिरियदसी, जे तिरियदंसी से दुक्खदसी।

से मेहावी अभिणिवट्टेज्जा कोहं च माण च मायं च लोभं च पेज्जं च दोस च मोहं च गब्भं च जम्मं च मारं च णरगं च तिरियं च दुक्ख च।

एयं पासगस्स दंसणं उवरयसत्थस्स पलियतकरस्स।

आयाणं निसिद्धा सगडब्भि।

१३२. किमत्थि उवाही पासगस्स, ण विज्जइ ? णत्थि।

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ सीओसणिज्ज तइअ अज्झयण सम्मत्त ॥

१३१. जो क्रोधदर्शी होता है, वह मानदर्शी होता है; जो मानदर्शी होता है, वह मायादर्शी होता है,

जो मायादर्शी होता है, वह लोभदर्शी होता है; जो लोभदर्शी होता है, वह प्रेमदर्शी होता है;

जो प्रेमदर्शी होता है, वह द्वेषदर्शी होता है; जो द्वेषदर्शी होता है, वह मोहदर्शी होता है;

जो मोहदर्शी होता है, वह गर्भदर्शी होता है, जो गर्भदर्शी होता है, वह जन्मदर्शी होता है,

जो जन्मदर्शी होता है, वह मृत्युदर्शी होता है, जो मृत्युदर्शी होता है, वह नरकदर्शी होता है;

जो नरकदर्शी होता है, वह तिर्यंचदर्शी होता है; जो तिर्यंचदर्शी होता है, वह दु खदर्शी होता है,

(अत) वह मेधावी क्रोध, मान, माया, लोभ. प्रेम, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक, तिर्यच और दु ख को दूर भगा दे।

यह समस्त कर्मो का अन्त करने वाले, हिसा-असयम से उपरत एव निरावरण द्रष्टा का दर्शन है।

जो कर्म के आदान-(कषाय) को रोकता है, वही अपने कृत कर्मो का भेदन करता है।

१३२ क्या द्रष्टा के कोई उपाधि (कषाय रूप परिणाम या कर्मबन्धन) होती है, या नही होती ? नही।

–ऐसा मै कहता हूँ।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

॥ शीतोष्णीय · तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

131. He who perceives anger also perceives conceit, he who perceives conceit also perceives illusion (deceit)

He who perceives deceit also perceives greed, he who perceives greed also perceives love

He who perceives love also perceives hatred, he who perceives hatred also perceives fondness.

He who perceives fondness also perceives womb, he who perceives womb also perceives birth

He who perceives birth also perceives death, he who perceives death also perceives hell.

He who perceives hell also perceives animals, he who perceives animals also perceives misery

(Therefore) that sage should completely order come anger, conceit, illusion (deceit), greed, love, hatred, fondness, womb, birth, death, hell, animals and misery

This is the philosophy of the Seer who has destroyed all *karmas*, is free of violence (indiscipline), and has unveiled perception

132. Does the Seer have any appellation (bondage of *karma* or its effect in form of passions) or not ? No, he does not

—So I say

● **END OF LESSON FOUR** ●

● **END OF CHAPTER THREE** ●

सम्मत्तं : चउत्थं अज्झयणं
सम्यक्त्व : चतुर्थ अध्ययन

आमुख

✦ तृतीय अध्ययन में शीत-उष्ण परीषह सहने तथा क्रोधादि कषायों से मुक्त होने का उपदेश दिया गया है क्योंकि कष्ट सहन करना मात्र धर्म नही है, वह धर्म तब होता है जब कषायों से मुक्ति मिले। कषायो से मुक्ति पाने का मुख्य हेतु है सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान। अतः चतुर्थ अध्ययन मे सम्यग्ज्ञान के विविध अगो का वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम 'सम्यक्त्व' है।

✦ 'सम्यक्त्व' वह अध्ययन है जिसमे आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित सत्यों–सचाइयों–सम्यक् वस्तु-तत्त्वो का निरूपण हो। वस्तुस्वरूप का यथार्थ–बोध सम्यक्त्व है।

✦ 'सम्यक्त्व' शब्द से भाव सम्यक् का ग्रहण करना यहाँ अभीष्ट है, द्रव्य सम्यक् का नहीं।

✦ भाव सम्यक् चार प्रकार के हैं, जो मोक्ष के अग है–(१) सम्यग्दर्शन, (२) सम्यग्ज्ञान, (३) सम्यक् चारित्र, और (४) सम्यक् तप। इन चारो भाव-सम्यक्-तत्त्वार्थों का प्रतिपादन करना ही सम्यक्त्व अध्ययन का उद्देश्य है।

✦ सम्यक्त्व अध्ययन के चार उद्देशक है। प्रथम उद्देशक मे यथार्थ वस्तु-तत्त्व का प्रतिपादन होने से सम्यग्वाद की चर्चा है। इसमे बताया है, किसी जीव का घात नही करना। सबको जीवन प्रिय है। इसमें दृढ़ विश्वास रखना सम्यक् श्रद्धा है।

✦ द्वितीय उद्देशक मे विभिन्न धर्म-प्रवादियों के प्रवादो मे युक्त-अयुक्त की विचारणा होने से धर्म-परीक्षा का निरूपण है।

✦ तृतीय उद्देशक में निर्दोष/निरवद्य तप का वर्णन होने से उसका नाम सम्यक् तप है।

✦ चतुर्थ उद्देशक में सम्यक् चारित्र से सम्बन्धित निरूपण है।

✦ निर्युक्तिकार ने भाव सम्यक् के तीन ही प्रकार बताये हैं–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र। इनमें दर्शन और चारित्र के क्रमश· तीन-तीन भेद हैं–(१) औपशमिक, (२) क्षायोपशमिक, और (३) क्षायिक।

✦ सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं–(१) क्षायोपशमिक ज्ञान, और (२) क्षायिक ज्ञान।

✦ इस प्रकार चार उद्देशकों में क्रमश सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् तप और सम्यक् चारित्र, इन चारों भाव सम्यक्त्वों का भलीभाँति प्रतिपादन हुआ है।

SAMMATTAM : CHAUTTHAM AJJHAYANAM
SAMYAKTVA : FIRST CHAPTER
RIGHTEOUSNESS

INTRODUCTION

✦ In the third chapter was given the advice to tolerate favourable and unfavourable inflictions and to get free of passions like anger This was because just tolerating pain is not pious, it becomes pious only when one is free of passions What helps attain freedom from passions is right perception and right knowledge Therefore, various facets of right knowledge have been described in the fourth chapter That is why it bears the title *Samyaktva* or righteousness

✦ '*Samyaktva*' is the chapter that deals with truth or reality about the fundamentals of spiritual life The awareness or knowledge of the true form of things is *samyaktva*

✦ Here *samyaktva* should be taken as *bhava-samyak* or in mental context and not just *dravya-samyak* or in physical context In other words *samyaktva* is righteousness related to feelings, thoughts and attitude, not just things

✦ *Bhava-samyak* is of four types which are part of the process of liberation—(1) *Samyak-darshan* (right perception), (2) *Samyak-jnana* (right knowledge), (3) *Samyak-charitra* (right conduct), and (4) *Samyak-tap* (right austerities) This chapter, titled *Samyaktva*, is aimed at defining the fundamentals of these four types of righteousness of attitude

✦ This chapter has four lessons As the first lesson defines the fundamental reality of things, it discusses the theory of righteousness It is stated here that no being should be killed or

harmed To believe in the concept that every being loves life, is right perception or right faith.

- The second lesson contains analysis about validity and non-validity of refutations by opposing schools, thus it presents validation of religion
- The third lesson describes faultless austerities, therefore it is named *Samyak-tap* or right austerities
- The fourth lesson contains details about right conduct
- The commentator (*Niryukti*) has stated only three types of righteousness of attitude—*Samyak-darshan*, *Samyak-jnana* and *Samyak-charitra* Of these *Samyak-darshan* and *Samyak-charitra* have three categories each—(1) ***Aupashamik*** or the one gained through pacification of ***karmas***, (2) ***Kshayopashamik*** or the one gained through extinction-cum-pacification of ***karmas***, and (3) ***Kshayik*** or the one gained through extinction of ***karmas***.
- *Samyak-jnana* has only two categories—(1) *Kshayopashamik-jnana*, and (2) *Kshayik-jnana*
- Thus the four lessons have comprehensively propagated the four types of righteousness of attitude—right perception, right knowledge, right conduct and right austerities

पढमो उद्देसओ	प्रथम उद्देशक	LESSON ONE

[साधना का मूल आधार है सम्यक्त्व-सम्यक् श्रद्धा। श्रद्धा सम्यक् होने पर ही चारित्र, तप आदि की साधना सार्थक होती है। अत इस प्रथम उद्देशक में श्रद्धा किस प्रकार करनी चाहिए? इसी प्रश्न का समाधान किया गया है।]

[The basis of *samyaktva* is right faith Only when faith is right the pursuit of conduct and austerities hears fruits Therefore this first lesson provides answer to the question—How to have right faith ?]

अहिसा की सार्वभौमता

१३३ से बेमि-जे य अईया, जे य पडुप्पण्णा, जे य आगमिस्सा अरहता भगवता ते सव्वे एवमाइक्खति, एवं भासति, एव पण्णवेंति, एव परूवेंति-सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेत्तव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा।

एस धम्मे सुद्धे निइए सासए समेच्च लोय खेयण्णेहिं पवेइए। त जहा-

उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा। उवट्ठिएसु वा अणुवट्ठिएसु वा। उवरयदडेसु वा अणुवरयदडेसु वा। सोवहिएसु वा अणोवहिएसु वा। संजोगरएसु वा असजोगरएसु वा।

१३३ मै कहता हूँ-जो अर्हत् अतीत मे हुए है, जो वर्तमान मे है और जो भविष्य मे होगे, वे सब ऐसा कहते है, ऐसा भाषण करते है, ऐसी प्रज्ञापना करते है, ऐसी प्ररूपणा करते है-समस्त प्राणियो, सर्वभूतो, सभी जीवो और सभी सत्त्वो का हनन नही करना चाहिए, बलपूर्वक उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हे दास नही बनाना चाहिए, उन्हे परिताप नही देना चाहिए और उनके सत्त्व का विनाश नही करना चाहिए।

यह (अहिसा) धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। खेदज्ञो-(अर्हतो) ने लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर इसका प्रतिपादन किया है।

(अर्हतो ने) इस धर्म का उन सब के लिए प्रतिपादन किया है जो उठे है, अथवा अभी नही उठे है, जो उपस्थित हुए है या नहीं हुए है, जो जीवों की हिसा से उपरत है अथवा अनुपरत है, जो उपधि से युक्त है, अथवा उपधि से रहित है; जो संयोगो में रत है, अथवा सयोगों मे रत नहीं है।

UNIVERSALITY OF AHIMSA

133. I so pronounce—All the omnıscıents of all tımes (who have exısted ın the past, who exist ın the present and who will exist ın the future) state, speak, propagate, and elaborate that nothing whıch breathes, whıch exists, whıch lives, and whıch has any essence or potential of life, should be destroyed or ruled over, or subjugated, or harmed, or deprived of its essence or potentıal.

This *dharma* or truth (*ahımsa*) is pure, undefileable, and eternal It has been propagated by self knowıng omnıscients, after understandıng all there is to know in the unıverse

The *Arhats* (omnıscıents) have propagated this *dharma* for all those who have rısen or not, who are present or not, who avoıd vıolence or do not, who have possessıons or not, and who have affilıatıons or not

विवेचन–'से बेमि ' इन पदो द्वारा तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा जाना हुआ, अतीत-अनागत-वर्तमान तीर्थंकर द्वारा कहा हुआ, अनुभव किया हुआ, केवलज्ञान द्वारा देखा हुआ जो अहिसा धर्म है, उसकी सार्वभौमिकता की घोषणा की गई है। अतीत के तीर्थंकर अनन्त है, क्योकि काल अनादि होता है। भविष्य के भी अनन्त है, क्योकि आगामी काल भी अनन्त है, वर्तमान मे कम से कम (जघन्य) २० तीर्थंकर हैं जो पाँच महाविदेहों मे से प्रत्येक में चार-चार के हिसाब से विद्यमान है। अधिक से अधिक (उत्कृष्ट) १७० तीर्थंकर हो सकते है, जैसे–महाविदेह क्षेत्र ५ है, उनमे प्रत्येक मे ३२-३२ तीर्थकर होते है, अत· ३२ × ५ = १६० तीर्थकर हुए। ५ भरत क्षेत्रो मे पाँच, और ५ ऐरावत क्षेत्रो मे पाँच–यो कुल मिलाकर एक साथ १७० तीर्थकर हो सकते है।

आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना और प्ररूपणा शब्दो के अर्थ मे थोडा-थोडा अन्तर है। दूसरो के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उसका उत्तर देना **आख्यान** है। देव-मनुष्यादि की परिषद् मे बोलना '**भाषण**' कहलाता है। शिष्यो की शका का समाधान करने के लिए कहना '**प्रज्ञापना**' है। तात्त्विक दृष्टि से किसी तत्त्व या पदार्थ का निरूपण करना '**प्ररूपणा**' है। (*आचा टीका*, पत्राक १६२)

प्राण, भूत, जीव और सत्व ये शब्द वैसे तो एकार्थक माने गए है, जैसे कि आचार्य जिनदास कहते है–'**एगट्ठिता वा एते**', किन्तु इन शब्दों के कुछ विशेष अर्थ भी किये गये हैं। प्रथम अध्ययन के सूत्र ४९ मे इनका विवेचन किया जा चुका है।

'**हतव्वा**' से लेकर '**उद्दवेयव्वा**' तक हिंसा के ही पाँच प्रकार बताये गये हैं। इनका पृथक्-पृथक् अर्थ इस प्रकार है–

'हंतव्वा'–हनन करना या मारना।

'अज्जावेयव्वा'–बलात् काम लेना, जबरन आदेश का पालन कराना।

'परिघेत्तव्वा'–बंधक या गुलाम बनाकर अपने कब्जे में रखना। दास-दासी आदि रूप में रखना।

'परितावेयव्वा'–परिताप देना, सताना, हैरान करना, व्यथित करना।

'उद्दवेयव्वा'–उपद्रव करना या सत्त्वविहीन करना।

अहिंसा धर्म के चार विशेष लक्षण यहाँ बताये हैं–

सुद्धे–शुद्ध–राग-द्वेष हिंसा से रहित।

निइए–नित्य–जिसका स्वरूप सदा एक समान है।

सासए–शाश्वत–जो तीनों काल में विद्यमान है।

खेयण्णे–क्षेत्रज्ञ प्रवेदित–आत्मा को जानने वाले पुरुषो द्वारा कहा गया है।

उत्थित आदि दश विशेषणो का विशेष अर्थ इस प्रकार है–

१ उत्थित–धर्म के प्रति प्रयत्नशील।

२ अनुत्थित–धर्म के प्रति उदासीन।

३ उपस्थित–धर्म सुनने व ग्रहण करने को इच्छुक।

४ अनुपस्थित–धर्म सुनने व ग्रहण करने मे इच्छुक नही।

५ उपरत दंड–हिंसा के त्यागी।

६ अनुपरत दंड–हिसा से विरत नही।

७ सोपधिक–परिग्रह सहित।

८ अनुपधिक–परिग्रह का त्यागी।

९ सयोगरत–पुत्र-स्त्री आदि सयोग सम्बन्धो से युक्त।

१० असंयोगरत–पुत्रादि के सम्बन्धो से मुक्त।

Elaboration—*Se bemi......*—this statement pronounces the universality of the ***Ahimsa-dharma*** (truth about *ahimsa* or the way of life based on *ahimsa*) as known, experienced and propagated by Bhagavan Mahavir and the *Tirthankars* of past, present and future

with the help of their omniscience There are innumerable *Tirthankars* belonging to the past, because the past is an infinite period of time Same is true for the future During the present time a minimum of 20 *Tirthankars* exist, four each in the five *Mahavideh* areas The maximum number of *Tirthankars* at a given time can be 170 This figure is arrived at on the basis that the maximum number of *Tirthankars* in five *Mahavideh* areas can be 32 each (160) and that in five *Bharat* areas and five *Airavat* areas can be one each (10), the total being 170

The terms *akhyan*, *bhashan*, *prajnapana* and *prarupana* have slight differences in their meanings, although the basic meaning is stating or conveying To answer questions by others is *akhyan*, to give a speech in an assembly of gods and human beings is *bhashan*, to remove doubts of disciples is *prajnapana*, and to elaborate or explicate an object or principle is *prarupana*

(*Sheelank Tika of Acharanga*, leaf 162)

As confirmed by Acharya Jinadas, *praan*, *bhoot*, *jiva* and *sattva* are accepted as synonyms But some special interpretations of these words have also been done, as already discussed in aphorism 49 of chapter one

Hantavva to ***uddaveyavva*** are five types of violence The meanings are as follows—

Hantavva—to destroy or kill

Ajjaveyavva—to force to do some work or to force to obey order

Parighettavva—to subjugate or enslave

Paritaveyavva—to cause harm, pain, irritation, inconvenience, etc

Uddaveyavva—to create disturbance, to deprive one of its essence

Four attributes of the *ahimsa* way of life have been stated here—

Suddhe* or *shuddha—pure, free of attachment-aversion and passions

Ni-iye* or *nitya—whose form is undefileable or unchangeable

Sasaye* or *shashvat—eternal, existing in past, present and future

Kheyanne* or *kshetrajna—told by those who know self or soul.

The particular meanings of ten adjectives like *utthit* are as follows—

(1) *Utthit*—who has risen, who pursues religion

(2) *Anutthit*—who has not risen, who is apathetic towards religion

(3) *Upasthit*—who is present, who is keen on listening about religion and accepting it

(4) *Anupasthit*—not present, who is neither keen on listening about religion nor accepting it

(5) *Uparat dand*—who avoids violence

(6) *Anuparat dand*—who does not avoid violence

(7) *Sopadhik*—who has possessions

(8) *Anupadhik*—who has renounced possessions

(9) *Samyogarat*—who has affiliations like wife, children and relatives

(10) *Asamyogarat*—who is free of such affiliations

१३४. तच्चं चेयं तहा चेय अस्सिं चेयं पवुच्चइ।
तं आइत्तु ण णिहे, ण णिक्खिवे। जाणित्तु धम्मं जहा तहा।
दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा। णो लोगस्सेसणं चरे।
जस्स णत्थि इमा णाइ अण्णा तस्स कओ सिया ?
दिट्ठं सुयं मयं विण्णाय जमेयं परिकहिज्जइ।

समेमाणा पलेमाणा पुणो पुणो जाइं पकप्पेंति।

अहो य राओ य जयमाणे धीरे सया आगयपण्णाणे।

पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्ते सया परक्कमिज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१३४. वह अर्हद्भाषित अहिसाधर्म सत्य है, तथ्य है, तथारूप है। यह (अहिंसा धर्म) इस अर्हत्प्रवचन में सम्यक् प्रकार से प्रतिपादित है।

साधक उस अर्हद्भाषित धर्म को ग्रहण करके इसका आचरण करने में अपनी शक्तियों को छिपाए नही और न ही उसे छोडे। धर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा जानकर उसका आचरण करे।

दीखने वाले इष्ट-अनिष्ट रूपो से विरक्त रहे। लोकैषणा मे न भटके।

जिस मुमुक्षु को यह अहिसा धर्म ज्ञात नही है, उसे अन्य तत्त्व का ज्ञान कैसे होगा?

यह जो अहिसा धर्म कहा जा रहा है, वह दृष्ट है, श्रुत है, मत है और विशेष रूप से ज्ञात (अनुभूत) है।

हिसा मे रचे-पचे रहने वाले और उसी में लीन रहने वाले मनुष्य बार-बार जन्म लेते रहते हैं।

प्रज्ञावान, धीर साधक रात-दिन यतनापूर्वक जीते है।

उन्हे देखो जो प्रमत्त है। वे धर्म से बाहर हैं। इसलिए वह अप्रमत्त होकर सदा अहिसादि रूप धर्म मे पराक्रम करे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

134. That *ahımsa* religıon is true and real and ıs so stated by *Arhats* It is rıghtly propagated ın the words of the *Arhats*

A seeker should accept the relıgıon given by *Arhats* and should neıther restraın hımself ın following the same in hıs conduct, nor should he abandon ıt He should understand the true form of religıon and behave accordıngly.

He should remaın detached from good or bad forms. He should not get lost in mundane desires

How can a seeker, who does not know this *ahimsa* religion, can understand other fundamentals ?

The *ahimsa* religion that is being stated here has been seen, heard, acknowledged and explicitly understood (implicitly experienced)

Those persons who indulge in violence and are absorbed in that, are born again and again

Intelligent and patient seekers are alert day and night See those who are in stupor, they are always away from religion Therefore one should always pursue the *ahimsa* religion with alertness

—So I say

विवेचन–भगवान महावीर ने किसी पर अहिंसा धर्म के विचार थोपे नही, यह नहीं कहा कि "मैं कहता हूँ, इसलिए स्वीकार कर लो।" बल्कि कहा है–भूत, भविष्य, वर्तमान के सभी तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित है, इसलिए यह अहिसा धर्म सार्वभौमिक है, सर्वजन-ग्राह्य है, व्यवहार्य है। सर्वज्ञो ने केवलज्ञान के प्रकाश मे इसे देखा है, अनुभव किया है, लघुकर्मी भव्य जीवो ने इसे सुना है, अभीष्ट माना है। जीवन मे आचरण किया है, इसके शुभ-परिणाम भी जाने-देखे गए है, इस प्रकार अहिसा धर्म की महत्ता एव उपयोगिता बतायी गई है।

'दिट्ठेहि णिव्वेय गच्छेज्जा' का आशय यह है कि इष्ट या अनिष्ट या अनिष्ट रूप जोकि दृष्ट है–शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श है, उनमे निर्वेद–वैराग्य धारण करे। इष्ट के प्रति राग और अनिष्ट के प्रति द्वेष/घृणा न करे।

'लोकैषणा' से तात्पर्य है–इष्ट विषयो के सयोग और अनिष्ट के वियोग की लालसा। लोक जैसा करते हैं, उसी प्रवाह में बहने की भावना लोकैषणा है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने ज्ञानी का अर्थ लोकैषणा से जोडकर कहा है–"जिसे लोकैषणा या अन्य आसक्ति नही है, उसके अन्य सावद्य प्रवृत्ति कैसे होगी ?"

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Bhagavan Mahavir never forced his *ahimsa* religion on any body He did not say that "accept it because he said so" Instead, he says—It is propagated by *Tirthankars* of past, present and future, therefore it is universal, acceptable to all and practical

The omniscients have seen it in the light of omniscience, experienced it, the worthies with minute *karmas* have listened to it and accepted it as beneficent. They have followed it in their conduct They have seen and known its benefits This way the importance and usefulness of *ahimsa* religion has been conveyed

Ditthehim nivveyam gacchejja—to be detached from the good and bad, or their evident forms—sound, form, taste, smell and touch. One should not have liking for good and hatred for bad

Lokaishana—the desire of affiliation with pleasant experiences and dissociation from the unpleasant The attitude of following what masses do is *lokaishana* or worldly pursuits Acharya Shri Atmaram ji M has used *lokaishana* to define a sage—One who is free of worldly desires (*lokaishana*) and any other attachment, has no scope of any other sinful indulgences

● **END OF LESSON ONE** ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

[प्रथम उद्देशक मे सम्यक् श्रद्धा का विवेचन करने के बाद इस द्वितीय उद्देशक मे सम्यग्ज्ञान का वर्णन करके बताया है–ससार से मुक्त होने का कारण सवर और निर्जरा है। अत. साधक इस बात का ज्ञान करे कि किस भावना से आस्रव–कर्मबध होता है और किस भावना से निर्जरा–कर्ममुक्ति।]

[After discussing right faith (perception) in the first lesson, right knowledge (*samyak-jnana*) has been detailed in this second lesson The means of liberation from this world are *samvar* (blocking the inflow of *karmas*) and *nirjara* (shedding the already acquired *karmas*) Therefore the seeker should know that what is it that causes the inflow of *karmas* (bondage of *karmas*) and what results in liberation from *karmas*]

आस्रव-परिस्रव चर्चा

१३५ (१) जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा।

जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा।

एए पए संबुज्झमाणे लोगं च आणाए अभिसमेच्चा पुढो पवेइयं।

(२) आघाइ णाणी इह माणवाणं संसारपडिवण्णाण संबुज्झमाणाणं विण्णाणपत्ताण।

अट्टा वि संता अदुवा पमत्ता।

अहासच्चमिण ति बेमि नाऽणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि।

इच्छापणीता वंकाणिकेया। कालग्गहीया णिचये णिविट्ठा।

पुढो जाइं पकप्पयति।

१३५. (१) जो आस्रव (कर्मबन्ध के स्थान) हैं, वे ही परिस्रव (कर्मनिर्जरा के स्थान बन जाते) हैं। जो परिस्रव है, वे आस्रव हो जाते है।

जो अनास्रव (व्रत विशेष) हैं, वे भी (अशुभ अध्यवसाय वाले के लिए) अपरिस्रव (कर्म के कारण हो जाते) हैं। (इसी प्रकार) जो अपरिस्रव–पाप के कारण हैं, वे भी (कदाचित्) अनास्रव (कर्मबध के कारण नही) होते है।

इन पदो (भंगो–विकल्पों) को सम्यक् प्रकार से समझकर तीर्थंकरों की आज्ञा के अनुसार लोक का (कर्मबंध एव निर्जरा का) पृथक्-पृथक् कथन किया है।

(२) जो ससार में स्थित, सम्यक् बोध पाने के लिए उत्सुक एवं विवेकवान हैं (हित की प्राप्ति और अहित से निवृत्ति के निश्चय पर पहुँचे हुए है) ऐसे मनुष्यों को ज्ञानी पुरुष धर्म का बोध देते हैं।

जो मानव आर्त्त अथवा प्रमत्त (विषयासक्त) होते है, वे भी (कर्मों का क्षयोपशम होने पर) धर्म का आचरण कर सकते हैं।

मै कहता हूँ–यह यथातथ्यसत्य है कि ऐसा सभव नही है–यह जीव मृत्यु के मुख में (कभी) नही जायेगा।

फिर भी कुछ लोग विषय-सुखो की इच्छा द्वारा प्रेरित और वक्रता (कुटिलता) के केन्द्र बने रहते है। वे मृत्यु की पकड़ मे आ जाने पर भी (अथवा धर्माचरण का अवसर हाथ मे आ जाने पर भी भविष्य मे धर्म करने की बात सोचकर) कर्म-संचय करने या धन-सग्रह मे रचे-पचे रहते है।

ऐसे लोग विभिन्न योनियो मे बारम्बार जन्म ग्रहण करते रहते हैं।

INFLOW AND OUTFLOW

135. (1) The *asravas* (sources of inflow of *karmas*) are also *parısrava* (means of outflow or sheddıng of *karmas*). The *parısravas* are also *asravas*

The *anasrava* (not sources of ınflow, specıfic vows) are also (for a person wıth evıl attıtude) *aparısrava* (not means of outflow of *karmas*, cause of bondage of *karma*) The *aparısrava* (source of sın) are also (possıbly) *anasrava* (not cause of bondage of *karmas*)

After properly understandıng these phrases (combınatıons or alternatıves), the mundane world (bondage and shedding of *karmas*) has been detaıled ın varıous ways accordıng to the tenets of *Tırthankars*.

(2) The sages impart knowledge (of relıgion) to persons who lıve in this world, are desirous of gettıng enlightened and are endowed with dıscerning attıtude (who are determined to acquire good and reject bad)

Persons who are tormented and negligent (attached to mundane pleasures) can also follow the religious conduct (after extınction-cum-pacification of *karmas*)

I say—This is an evident reality that it is not possible that a being will never die.

Still some persons, driven by the desire for mundane pleasures, continue to be the nucleus of perversion Even when they are in the jaws of death (or procrastinating when they get an opportunity to follow the religious path) they continue to be engrossed in accumulating wealth and *karmas*

Such persons are reborn again and again in numerous genuses

विवेचन–आस्रव का सामान्य अर्थ है–"**काय-वाङ् मन कर्मयोग स आस्रव ।**"–काया, वचन और मन की शुभाशुभ क्रिया–प्रवृत्ति योग कहलाती है, वही आस्रव है।

हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य एवं परिग्रह मे प्रवृत्ति अशुभ कायास्रव है और इनसे विपरीत शुभ आशय से की जाने वाली प्रवृत्ति शुभ कायास्रव है।

आस्रव के पाँच भेद हैं–(१) हिंसा, (२) असत्य, (३) चोरी, (४) मैथुन, और (५) परिग्रह।

दूसरी दृष्टि से पाँच भेद इस प्रकार है–(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग।

अत आस्रव की परिभाषा है–आठ प्रकार के शुभाशुभ कर्म जिन मिथ्यात्वादि स्रोतो से आते हैं–आत्म-प्रदेशो के साथ एकमेक हो जाते है, उन स्रोतो को आस्रव कहते हैं।

आस्रव और बन्ध के कारणों में कोई अन्तर नही है। कर्म-स्कन्धो का आगमन आस्रव कहलाता है और कर्म-स्कन्धों के आगमन के बाद उन कर्म-स्कन्धो का जीव (आत्म) प्रदेशो मे स्थित हो जाना बन्ध है। इस दृष्टि से आस्रव को बन्ध का कारण कहा जा सकता है।

जिन क्रियाओं से कर्म चारो ओर से गल या बह जाता है, उसे परिस्रव कहते है। नव-तत्त्व की भाषा में इसको 'निर्जरा' कह सकते है।

सामान्य पुरुष के लिए जो आस्रव के, कर्मबन्धन के स्थान हैं, वे ही ज्ञानी पुरुष के लिए परिस्रव–कर्मनिर्जरा के स्थान हो जाते हैं। इसका आशय यह है कि विषय-सुखाभिलाषी मनुष्यों के लिए जो स्त्री, वस्त्र, अलंकार, शय्या आदि पौद्गलिक सुख के साधन, कर्मबन्ध के हेतु होने से आस्रव हैं, वे ही पदार्थ विषय-सुखों के विरक्त साधकों के लिए आध्यात्मिक चिन्तन का आधार बनकर परिस्रव–कर्मनिर्जरा के स्थान बन जाते हैं। जो कर्मनिर्जरा के स्थान हैं, वे ही असम्बुद्ध–अज्ञानी प्राणियों के लिए कर्मोदयवश, अहंकार आदि अशुभ अध्यवसाय के कारण ऋद्धि-रस-साता के गर्ववश आस्रव रूप–कर्मबन्ध हो जाते हैं।

इस सूत्र के आधार पर आस्रव, परिस्रव, अनास्रव और अपरिस्रव को लेकर चतुर्भंगी बनती है, वह क्रमश इस प्रकार है–

(१) जो आस्रव है, वे परिस्रव हैं, जो परिस्रव हैं, वे आस्रव हैं।

(२) जो आस्रव हैं, वे अपरिस्रव है, जो अपरिस्रव है, वे आस्रव है।

(३) जो अनास्रव है, वे परिस्रव हैं, जो परिस्रव है, वे अनास्रव हैं।

(४) जो अनास्रव है, वे अपरिस्रव है, जो अपरिस्रव हैं, वे अनास्रव हैं।

इस सूत्र मे पहले और चौथे भग का निर्देश है। दूसरा भग शून्य है। जिसको आस्रव हो उसे निर्जरा न हो–ऐसा कभी नही होता है। तृतीय भग शैलेशी अवस्था प्राप्त (निष्प्रकम्प-अयोगी) मुनि की अपेक्षा से कहा गया है, उनको आस्रव नही होता, केवल परिस्रव (सचित कर्मों का क्षय) होता है। चौथा भग मुक्त आत्माओ की अपेक्षा से है। उनके आस्रव और परिसव दोनो ही नहीं होते। वे कर्म के बन्ध और कर्मक्षय दोनो से रहित होते है।

'अट्टा वि सता अदुवा पमत्ता'–इस सूत्र का आशय इस प्रकार है–कई लोग अशुभ आस्रव–पापकर्म मे पडे हुए या विषय-सुखो मे लिप्त प्रमत्त लोगो को देखकर यह कह देते है कि "ये क्या धर्माचरण करेगे, ये क्या पापकर्मो का क्षय करने के लिए उद्यत होंगे?" किन्तु शास्त्रकार का कथन है कि किसी निमित्त को पाकर कोई व्यक्ति अर्जुनमाली, चिलातीपुत्र आदि की तरह–राग-द्वेष के उदयवश पीडित (आर्त्त) भी हो जाएँ अथवा शालिभद्र, स्थूलभद्र आदि की तरह विषय-सुखो में आसक्त–प्रमत्त भी हो तो भी उन कर्मो का क्षयोपशम होने पर धर्म-बोध प्राप्त होते ही जाग्रत होकर कर्मबन्धन के स्थान मे धर्ममार्ग अपनाकर कर्मनिर्जरा करने लगते हैं। यह बात सर्वथा सत्य है–'अहासच्चमिण त्ति बेमि।'

आर्त्त दो प्रकार के होते है–(१) द्रव्य आर्त्त–अभाव व रोगादि से ग्रस्त। (२) भाव आर्त्त–हिसा, क्रोध आदि से अभिभूत। प्रमत्त का अर्थ है–विषय मद्य आदि से अभिभूत।

Elaboration—The simple meaning of *asrava* (inflow of *karmas*) is—the unified good and bad attitude or activity of body, speech and mind is called *yoga* (combination), and that is *asrava*

Violence, falsity, stealing, debauchery and inclination for possessions are sources of inflow of bad *karmas* The activities inspired by good purpose are sources of inflow of good *karmas*

There are five categories of *asrava*—

(1) Violence, (2) Falsity, (3) Stealing, (4) Cohabitation, and (5) Acquisition

In another context the five categories are—(1) *Mithyatva* (false perception or belief), (2) *Avirati* (attachment), (3) *Pramad* (stupor or inaction), (4) *Kashaya* (passions), and (5) *Yoga* (affiliation with mundane activities)

Thus *asrava* is defined as—the sources from which eight types of good and bad *karmas* come and get fused with soul-sections are called *asrava*

There is no difference between the causes of inflow of *karmas* and bondage of *karmas* The inflow of the *karma* particles is *asrava* After the inflow the fixing of those *karma* particles with soul-sections is called bondage From this angle *asrava* is called the cause of bondage

The activities that cause the melting and outflow of *karmas* from all sides are called *parisrava* (outflow) With reference to nine fundamentals this may be called *nirjara* (shedding of *karmas*)

The sources of inflow and bondage of *karmas* for ordinary persons turn into means of outflow or shedding of *karmas* for a sage This indicates that women, dresses, ornaments, bed and other such things are means of earthly pleasures for persons seeking such pleasure The very same things, for seekers detached from mundane indulgences, become the basis of spiritual contemplation and turn into means of outflow or shedding of *karmas* The means of shedding of *karmas* turn into sources of inflow and bondage of *karmas* for the ignorant due to their pride of wealth, enjoyments and pleasures, and other such bad attitudes caused by fruition of past *karmas*

On the basis of this aphorism four alternative combinations (*bhanga*) of the terms *asrava*, *anasrava*, *parisrava* and *aparisrava* have been made. They are as follows—

(1) The *asravas* (sources of inflow of *karmas*) are also *parisravas* (means of outflow or shedding of *karmas*), the *parisravas* are also *asravas*

(2) The *asravas* are also *aparisravas* (not means of outflow of *karmas*, cause of bondage of *karma*), the *aparisravas* are also *asravas*

(3) The *anasravas* (not sources of inflow, specific vows) are also *parisravas*, the *parisravas* are also *anasravas*

(4) The *anasravas* are also *aparisravas*, the *aparisravas* are also *anasravas*

This aphorism mentions the first and fourth combination The second combination is invalid because it is impossible that one who has inflow of *karmas* does not shed *karmas* The third alternative relates only to an ascetic who has attained rock-still state (*Shaileshi avastha*) and is free of any affiliation Such an ascetic has no inflow of *karmas*, he only sheds already accumulated *karmas* The fourth alternative relates to the liberated souls They have neither inflow nor outflow of *karmas* They are free of any bondage or shedding of *karmas*

Atta vi santa aduva pamatta—This aphorism conveys that some people pass comment about persons involved in sinful activities or attached to mundane pleasure—"They cannot accept religious conduct, or they cannot prepare themselves to shedding of *karmas* " But the author says that forced by some circumstances, attachment and aversion may surface and some people may get tormented (*artt*) like Arjunamali and Chilatiputra In the same way some people may get absorbed in mundane pleasure However, on destruction-cum-pacification of the causal *karmas*, as soon as they get enlightened they become alert and shifting from the path of bondage of *karmas* they take to the path of shedding of *karmas* This is absolutely true

The tormented are of two types—(1) *Dravya artt* (physically tormented)—destitute or sick (2) *Bhava artt* (mentally tormented)—consumed by violence, anger and other such feelings *Pramatta* means intoxicated or stupefied by mundane pleasure, alcohol, etc

१३६. इहमेगेसिं तत्थ तत्थ संथवो भवइ। अहोववाइए फासे पडिसंवेदयंति।

चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं चिट्ठं परिचिट्ठंति। अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं णो चिट्ठं परिचिट्ठति।

एगे वयंति अदुवा वि णाणी, णाणी वयंति अदुवा वि एगे।

१३६. इस संसार में कुछ लोगो को (मिथ्यात्व-कषाय-विषयादि से युक्त) विभिन्न मतो का सम्पर्क अथवा परिचय होता है। फलस्वरूप आस्रव का सेवन कर कर्मबध करते हैं और तब वे अधोलोक में (नरक-तिर्यंच गतियो मे) दु ख भोगते है।

जो पुरुष अत्यन्त तीव्र अध्यवसायो के कारण क्रूर कर्मों में प्रवृत्ति करता है, वह उनके फलस्वरूप अत्यन्त प्रगाढ वेदना वाले स्थान मे उत्पन्न होता है। जो तीव्र अध्यवसाय वाला न होकर क्रूर कर्मों में प्रवृत्ति नहीं करता वह प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान मे उत्पन्न नही होता।

यह बात (चौदह पूर्वो के धारक) श्रुतकेवली आदि कहते है या केवलज्ञानी भी कहते हैं। जो बात केवलज्ञानी कहते है वही श्रुतकेवली भी कहते है।

136. In this world some people come in contact or get acquainted with various schools of thought (adulterated with false perception, passions, attachment, etc) As a result of this they acquire *karmas* and their bondage and consequently suffer miseries in the lower worlds (as hell beings or animals)

A person who, driven by intense feelings, indulges in cruel deeds, is born at places of intense agony A person who is not driven by intense feelings and does not indulge in cruel deeds is not born at such places of intense agony as a consequence.

Shrut-kevalis (having knowledge of fourteen subtle canons), other accomplished sages and even omniscients say so.

हिंसा का समर्थन अनार्य वचन है

१३७. आवंती केआवंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयति "से दिट्ठं च णे, सुयं च णे, मयं च णे, विण्णायं च णे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं च णे–सव्वे पाणा सव्वे जीवा सव्वे भूया सव्वे सत्ता, हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परिघेतव्वा, परियावेयव्वा, उद्दवेयव्वा। एत्थ वि जाणह नत्थित्थ दोसो"

अणारियवयणमेयं।

१३७. इस लोक में जितने भी, जो भी श्रमण या ब्राह्मण हैं, वे परस्पर विरोधी विवाद (मतवाद) का प्रतिपादन करते हुए इस प्रकार कहते हैं-"हमने यह देखा है, सुना है, मनन किया है और विशेष रूप से जाना है, ऊँची, नीची और तिरछी सभी दिशाओं में सब तरह से भलीभाँति इसका निरीक्षण भी कर लिया है कि सभी प्राणी, सभी जीव, सभी भूत और सभी सत्त्वो का हनन करना चाहिए, उन पर शासन करना चाहिए, उन्हें परिताप देना चाहिए, उन्हें दास बनाकर रखना चाहिए, उन्हें प्राणहीन करना चाहिए। इस विषय में तुम जान लो कि हिंसा मे कोई दोष नही है।"

यह अनार्य लोगों का वचन है।

VINDICATING VIOLENCE IS *ANARYA*

137. In this world all those who are *Shramans* or Brahmins propagating contradictory theories (arguments) state thus—"We have seen this, heard this, contemplated this, profoundly understood this, and also properly examined this in upper, lower and transverse directions from all angles, that everything which breathes, which exists, which lives and which has any essence or potential of life, should be destroyed or ruled over, or subjugated, or harmed, or deprived of its essence or potential In this context, know that there lies no fault in violence "

These are the words of *Anarya* (not noble) people

विवेचन—हिसा के समर्थन में कुछ श्रमण ब्राह्मणो का उक्त वचन आज के प्रसंग मे आश्चर्यकारक लगता है कि क्या प्राचीन समय में कुछ श्रमण ब्राह्मण हिंसा का खुल्लमखुल्ला समर्थन करते थे? वास्तव मे भगवान महावीर के युग में ब्राह्मण संप्रदाय में यज्ञ आदि के लिए की गई हिसा को हिंसा ही नही माना जाता था। संभव है उसी को लक्ष्य कर उक्त बात कही गई है।

हिसा को 'अनार्य वचन' कहने का अभिप्राय जाति विशेष पर दोषारोपण नहीं है। 'आर्य' केवल कोई जाति से नहीं होता, किन्तु जिसका आचरण श्रेष्ठ है वह 'आर्य' है। और इसका प्रतिपक्ष अनार्य। इसी कारण हिंसा को अनार्य कर्म बताया गया है।

Elaboration—This statement, attesting violence, attributed to some *Shraman* and Brahmins appears surprising in modern context. Did *Shramans* and Brahmins openly support violence in ancient times ? This is an accepted fact that during the period of Mahavir,

any violence related to *yajna* was not considered violence by the Brahminic sects. Most probably this statement has been given keeping that idea in view

The statement that violence is an *anarya* (not *arya*) concept is not aimed at blaming some particular social or ethnic group *Arya* is not just a name of a caste or a race of people, a man of noble conduct is also called *arya* Its opposite or one not having noble conduct is called *anarya* With this view violence is termed as 'not a noble (*anarya*) act'

१३८. तत्थ जे आरिया ते एव वयासी–"से दुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुय च भे, दुम्मय च भे, दुव्विण्णायं च भे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहियं च भे, ज णं तुब्भे एवं आइक्खह, एव भासह, एवं परूवेह, एव पण्णवेह, सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परिघेत्तव्वा, परियावेयव्वा, उद्दवेयव्वा। एत्थ वि जाणह नत्थित्थ दोसो।"

१३८ इस जगत् में (हिंसा से दूर रहने वाले) जो आर्य है उन्होने ऐसा कहा है–"ओ हिंसावादियो ! आपने दोषपूर्ण देखा है, दोषपूर्ण सुना है, दोषपूर्ण माना है, आपने दोषपूर्ण ही समझा है, ऊँची-नीची-तिरछी सभी दिशाओ मे जो पर्यालोचन किया है वह भी दोषपूर्ण है। जोकि आप ऐसा कहते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसी प्रज्ञापना करते है, ऐसी प्ररूपणा करते है कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का हनन करना चाहिए, उन पर शासन करना चाहिए, उन्हे बलात् पकडकर दास बनाना चाहिए, उन्हे परिताप देना चाहिए, उनको प्राणहीन बनाना चाहिए। तथा इस विषय मे यह निश्चित समझ लो कि हिसा मे कोई दोष नही है।"

138. The *aryas* (who avoid violence) in this world have said—"O supporters of violence ! You have seen this wrongly, heard this wrongly, contemplated this wrongly, understood this wrongly and also wrongly examined this in upper, lower and transverse directions from all angles That is why you state, speak, propagate and elaborate that everything which breathes, which exists, which lives and which has any essence or potential of life, could be destroyed or ruled over, or subjugated, or harmed, or deprived of its essence or potential And, in this context, know this for sure that there is no fault in violence."

आर्य वचन की यथार्थ कसौटी

१३९. वय पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं पण्णवेमो, एवं परूवेमो–'सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेयव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा। एत्थ वि जाणह नत्थित्थ दोसो।'–आरियवयणमेयं।

१३९. हम (अहिसावादी) इस प्रकार कहते है, ऐसा ही भाषण करते हैं, ऐसी ही प्रज्ञापना करते है, ऐसी ही प्ररूपणा करते है–सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसा नही करना, उनको जबरन शासित नही करना, उन्हें पकडकर दास नहीं बनाना, न ही परिताप देना और न उन्हें भयभीत करके प्राणरहित करना। इस विषय में यह निश्चित जान लो कि अहिसा का पालन सर्वथा दोषरहित है।"–यह आर्यवचन है।

THE TRUE YARDSTICK

139. We (the followers of *ahımsa*) state, speak, propagate, and elaborate—"Nothıng whıch breathes, whıch exısts, which lıves, and whıch has any essence or potentıal of life, should be destroyed or ruled over, or subȷugated, or harmed, or deprived of ıts essence or potentıal In this context, know thıs for sure that there ıs no fault ın followıng the code of *Ahımsa* " This ıs the word of nobles

१४०. पुव्वं निकाय समय पत्तेयं पुच्छिस्सामो–हं भो पावाइया ! किं भे सायं दुक्खं उदाहु असाय ?

समिया पडिवण्णे या वि एवं बूया–सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिणिव्वाण महब्भयं दुक्खं।

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१४० पहले हम उनमे से प्रत्येक दार्शनिक को (जो-जो उसका सिद्धान्त है, उसमे स्थापित कर) पूछेगे–"हे प्रखरवादियो ! आपको दु ख साताकारी (मन को प्रसन्न करने वाला) है ? या नहीं ?

यदि आप कहें कि "हमें दु ख साताकारी नहीं है," तो आपका कथन सम्यक् है। हम आपसे यह कहना चाहते है कि "जैसे आपको दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही सभी प्राणी,

भूत, जीव और सत्त्वो को दु ख असाताकारक है, अशान्ति (अपरिनिर्वाण) जनक है और महाभयंकर है।"

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

140. First we will ask each of those philosophers (after establishing him in the principle he follows)—"O propagators of violence ! Does misery please you ? or not ?"

When you say—"No, misery does not please us," you will be stating the truth We will simply add—"As misery is unpleasant to you, likewise it is unpleasant, disturbing and terrible to everything which breathes, which exists, which lives and which has any essence or potential of life "

—So I say

● **END OF LESSON TWO** ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

[दूसरे उद्देशक मे आस्रव, सवर तथा निर्जरा के विषय मे बताने के पश्चात् पूर्व में बँधे हुए कर्मों की निर्जरा रूप तप का उपदेश प्रस्तुत उद्देशक में दिया गया है।]

[After describing *asrava*, *samvar* and *nirjara* in the second lesson, this third lesson mentions austerities as means of shedding already acquired *karmas*]

सम्यक् तप कर्मक्षय-विधि

१४१. उवेह एणं बहिया य लोगं। से सव्वलोगंसि जे केइ विण्णू।
अणुवीइ पास णिक्खित्तदडा, जे केइ सत्ता पलियं चयंति।
नरा मुयच्चा धम्मविउ त्ति अंजू।
आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा। एवमाहु सम्मत्तदसिणो।
ते सव्वे पावाइया दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति। इइ कम्मं परिण्णाय सव्वसो।

१४१. ये जो अहिसा से विमुख है या धर्म से बाहर हैं, तू उनकी उपेक्षा कर मध्यस्थ भाव रख। (जो ऐसा करता है) वह समस्त लोक मे विद्वानो मे अग्रणी है।

तू चिन्तन करके देख, जिन्होने दड–हिंसा या आरभ का त्याग कर दिया है, वे ही कर्मो को क्षीण (पलित) करते है।

जो पुरुष मृतार्च अर्थात् देह की आसक्ति से मुक्त है, वह धर्म को जानता है, जो धर्म को जानता है वह ऋजु–सरल होता है।

ससार मे जो भी दु ख है, वह हिसा से उत्पन्न है, ऐसा समत्वदर्शी प्रवचनकारो ने कहा है–यह जानकर (हिसा का त्याग करे।)

वे सभी प्रवचनकार दु ख की परिज्ञा–विवेक का प्रतिपादन करने में कुशल होते हैं, इसलिए वे कर्म को सब प्रकार से जानकर उसका त्याग करते है।

RIGHT AUSTERITIES : THE PROCESS OF SHEDDING KARMAS

141. You should ignore them who are against *ahimsa* or do not conform to religion and remain in different towards them. He (who does this) is the leader of all the scholars in this world.

Think and realize that only those who abstain from cruelty (violence or sinful acts) weaken the *karmas*

The person who is free of attachment for his body knows religion He who knows religion is simple

All the miseries in this world are born out of violence, so say the equanimous preceptors Know this (and avoid violence)

All those preceptors are accomplished in propagating discerning attitude about sorrow. Therefore they fully understand *karma* and cast it off

विवेचन–'**उवेह एण**'–पद मे अहिसादि धर्म से विमुख लोगो की उपेक्षा करने का सकेत है। अर्थात् उनके धर्म-विरुद्ध उपदेश को यथार्थ मत मानो।

'**से सव्वलोगसि जे केइ विण्णू**'–इस पद का तात्पर्य समस्त दार्शनिक जगत् से है। जो अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से चिन्तन-मनन करता है, सारे ससार के प्राणियों के दु ख-सुख का आत्मौपम्य दृष्टि से विचार करता है, उसे दार्शनिक जगत् मे श्रेष्ठ विद्वान् कहा गया है।

मन, वचन और काया से प्राणियों का विघात करने वाली प्रवृत्ति को '**दण्ड**' कहा है।

'**मुअच्चा**' शब्द का सस्कृत रूप होता है–'**मृतार्चा**'। '**अर्चा**' शब्द यहाँ दो अर्थो मे प्रयुक्त है–शरीर और क्रोध (तेज)। इसलिए '**मृतार्चा**' का अर्थ हुआ–(१) जिसकी बुद्धि देह की साज-सज्जा के प्रति मृतवत् है–जो शरीर के प्रति अत्यन्त उदासीन या अनासक्त है, तथा (२) क्रोध तेज से युक्त होता है, इसलिए क्रोध को अर्चा–अग्नि कहा गया है। जिसकी कषायरूप अर्चा मृत–विनष्ट हो गई है, वह भी 'मृतार्च' कहलाता है।

टीकाकार ने '**सम्मत्तदसिणो**'–पद के तीन रूप बताये हैं–'**समत्वदर्शिन** ', '**सम्यक्त्वदर्शिन** ' और '**समस्तदर्शिन** '। वे प्राणिमात्र को आत्मवत् जानते-देखते है, इसलिए '**समत्वदर्शी**' होते है। वे प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, विचारधारा, घटना आदि के गहराई मे पहुँचकर उसकी वास्तविकता को यथार्थ रूप से जानते है, इसलिए वे '**सम्यक्त्वदर्शी**' है और केवलज्ञान के द्वारा समस्त त्रैकालिक वस्तुओ को जानते-देखते हैं, इसलिए वे '**समस्तदर्शी**' (सर्वज्ञ-सर्वदर्शी) भी हैं। (*आचा टीका* पत्र १७१)

Elaboration—***Uveha enam...***—this phrase has indications to ignore those who are against *ahimsa* religion This means that preaching against religion should not be considered right

Se savvalogamsi je kei vinnu—this points at the whole philosophical world One who is an independent thinker and looks at

happiness and misery of all beings in this world from the angle of universal equality (equality with one's own self) is called the best among scholars in the world of philosophy

Dand—attitude of causing harm to beings with mind, speech and body.

Muachcha (mritarcha)—*mrit + archa Mrit* means dead Here *archa* conveys two meanings—body and anger (radiance) Therefore the two meanings of *mritarcha* are—(1) whose mind is dead to embellishment of body, in other words, who is extremely apathetic or detached towards his body (2) Anger has radiance or heat, therefore it is called *archa* (fire) Therefore, one whose fire-like passions have become extinct is also called *mritarcha*

Sammattadamsino—the commentator has proposed three alternative transliterations of this term—*samatvadarshinah, samyaktvadarshinah* and *samastadarshinah* They perceive and accept all beings self-like therefore they are *samatvadarshi.* They deeply observe every thing, person, thought, incident, etc , and understand precisely its true form, therefore they are *samyaktvadarshi* Through their omniscience they see and know about every thing in the past, present and future, therefore they are *samastadarshi* as well (*Acharanga Tika,* leaf 171)

१४२. इह आणाकंखी पंडिए। अणिहे एगमप्पाणं सपेहाए धुणे सरीरं। कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं।

जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो पमत्थइ एवं अत्तसमाहिए अणिहे।

१४२. आज्ञा का आकांक्षी (आज्ञा के अनुसार चलने वाला) पण्डित है। वह अनासक्त होकर एकमात्र आत्मा को देखता हुआ, शरीर व कषायो को प्रकम्पित कर डाले। तपस्या द्वारा अपनी कषाय-आत्मा को कृश करे, जीर्ण करे।

जैसे—अग्नि पुराने काष्ठ को शीघ्र जला डालती है, वैसे ही समाधिस्थ आत्मा वाला रागरहित पुरुष प्रकम्पित कर्मशरीर को (तप एव ध्यानरूपी अग्नि से) शीघ्र जला डालता है।

142. One who is a seeker (follower) of order (tenets) is a scholar He should become detached and, concentrating only on soul, he should vibrate or shake loose his body and passions. By

means of austerities he should emaciate and weaken the passions infesting his soul.

As fire soon reduces old wood to ashes, likewise a detached person having a soul engrossed in meditation soon burns the vibrated *karmic* body (in the fire of austerities and meditation). (*Karmic* body means the *karmic* component of the constitution of a being or the aggregate of *karmas* responsible for the mundane existence).

विवेचन–'आणाकंखी' का अर्थ किया गया है–'आज्ञा का आकाक्षी–सर्वज्ञ वचनो के अनुसार अनुष्ठान करने वाला।

चूर्णिकार ने 'एगमप्पाण सपेहाए'–वाक्य की एकत्वानुप्रेक्षा और अन्यत्वानुप्रेक्षा के सन्दर्भ मे व्याख्या की है। एकाकी आत्मा की संप्रेक्षा (अनुप्रेक्षा) इस प्रकार की जा सकती है–

एकत्वानुप्रेक्षा– *"एक प्रकुरुते कर्म, भुनक्त्येकश्च तत्फलम्।*
जायते म्रियते चैक, एको याति भवान्तरम्॥"

–आत्मा अकेला ही कर्म करता है, अकेला ही उसका फल भोगता है, अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मरता है, अकेला ही जन्मान्तर मे जाता है।

अन्यत्वानुप्रेक्षा– *"ससार एवाऽयमनर्थसार , क कस्य, कोऽत्र स्वजन परो वा।*
सर्वे भ्रमन्त. स्वजना. परे च, भवन्ति भूत्वा, न भवन्ति भूय ॥"

–इस संसार मे अनर्थ की ही प्रधानता है। यहाँ कौन किसका है? कौन स्व-जन या पर-जन है? ये सभी स्व-जन और पर-जन तो ससार चक्र मे भ्रमण करते हुए किसी समय (जन्म मे) स्व-जन और फिर पर-जन हो जाते है। एक समय ऐसा आता है, जब न कोई स्व-जन रहता है, न कोई पर-जन।

ध्यान एवं तप-साधना के समय आने वाले उपसर्गो, कष्टो और परीषहो को समभावपूर्वक सहन करते हुए कर्मशरीर को कृश, जीर्ण एवं दग्ध करने हेतु पुराने काष्ठ और अग्नि की उपमा दी है। और साथ ही साधक में दो प्रकार की योग्यता का सूचन भी किया है–(१) वह आत्म-समाधि मे स्थित हो, एवं (२) अस्नेह–अनासक्त हो। इस प्रकरण में 'आत्मा' से कषायात्मारूप कर्मशरीर अभिप्रेत है। 'धुणे सरीरं' वाक्य से इसी अर्थ का उद्घोष मिलता है। अत· स्थूल शरीर को नहीं, अपितु आठ प्रकार के कर्मशरीर को कृश, प्रकम्पित एवं जीर्ण करना यहाँ अपेक्षित है। इसके लिए निशीथ भाष्य की यह गाथा देखनी चाहिए–

"इंदियाणि कसाए य, गारवे य किसे कुरु।
णो वयं ते पससामो, किस साहु सरीरगं॥"–३८५८

कर्म दहन
3
13

चित्र परिचय १३

Illustration No. 13

कर्म दहन

१ जहा जुन्नाइ कट्ठाइ—जैसे सूखे काठ के ढेर को अग्नि शीघ्र ही जला डालती है, वैसे तप एवं ध्यान समाधि में लीन आत्मा राग-द्वेष की स्निग्धता कम हो जाने पर कषायों का शमन करके शुभ ध्यान अग्नि द्वारा आठ कर्मरूपी लकड़ियों को शीघ्र जलाकर भस्म कर डालता है।

अ. ४ उ. ३ सू. १४२

आत्म-युद्ध

२ इमेण चेव जुज्झाहि—हे साधक ! तू अन्य किसी के साथ युद्ध मत कर। अष्ट कर्म तथा पाँच प्रमादरूपी शत्रु जो तुझे पराजित करने के लिए विविध विचित्र रूपों में घेरे हुए हैं, तू उन शत्रुओं को जीत ! तेरे हाथ में विजय शस्त्र होगा पण्णा-विवेग—अर्थात् संयम और विवेक। संयम तथा विवेक के द्वारा इन शत्रुओं को जीतने का कुशल पुरुषों ने उपदेश किया है। इसे ही आत्म-युद्ध कहा जाता है।

अ. ५ उ. ३ सू. १३५

BURNING *KARMAS*

1 As fire soon reduces a heap of dry wood to ashes, likewise a person absorbed in austerities and meditation, once the dampness of attachment and aversion is reduced, pacifies passions and with the help of the fire of sublime meditation burns the wood of eight *karmas* to ashes

—4/3/142

THE INNER WAR

2 O ascetic ! Do not fight with any enemy other than the eight *karmas* and five types of stupor that have laid siege on you in numerous strange ways to subjugate you You should win over those enemies In your hands will be the victory-weapon that is discipline and sagacity The wise have advised to win over these enemies with the help of discipline and sagacity This is called the inner war

—5/3/135

–एक तपस्वी साधु ने दीर्घकालीन उपवास करके शरीर को कृश पर डाला। परन्तु उसका अहंकार, क्रोध आदि कृश नही हुआ था। वह जगह-जगह अपने तप का प्रदर्शन और बखान किया करता था। एक अनुभवी मुनि ने उसकी यह प्रवृत्ति देखकर कहा–"हे साधु ! तुम इन्द्रियों, विषयो, कषायो और गौरव-अहंकार को कृश करो। इस शरीर को कृश कर डाला तो क्या हुआ ? कृश शरीर के कारण तुम प्रशंसा के योग्य नहीं हो।" (*वृत्ति*, पत्राक १७३)

Elaboration—*Anakankhi*—seeker of order, one who acts according to the tenets of an omniscient

Egamappanam sapehaye—the commentator has elaborated this phrase in context of *ekatvanupreksha* (subjective thinking) and *anyatvanupreksha* (objective thinking) The thought process of a solitary soul can be presented as—

Ekatvanupreksha (subjective thinking)—a soul acts (acquires *karma*) alone, suffers the consequences alone, takes birth alone, dies alone and gets reborn alone

Anyatvanupreksha (objective thinking)—there is a preponderance of misery in this world Who belongs to whom here ? Who is a kin or a stranger ? All these relatives and strangers while drifting in the cycles of rebirth sometimes (in some birth) become relatives and at others (in another birth) become strangers A time comes when there remains neither a kin nor a stranger

The metaphor of old wood and fire has been used to vivify the process of emaciating, weakening and incinerating the body of *karmas* by equanimously tolerating afflictions, torments and inflictions faced while practicing meditation and austerities Two qualifications of the seeker have also been indicated—(1) He should be engrossed in meditation of the self, and (2) He should be non-loving or detached In this context the term *atma* is indicative of the *karmic* body or the body of *karmas* that manifest as passions The phrase *dhune sariram* echoes this meaning only Therefore, here it is desired to vibrate and weaken not the gross physical body but the subtle *karmic* body The very same idea can be found in an incident mentioned in *Nisheeth Bhashya*—

After observing fasts for a long period an ascetic made his body very weak But his ego, anger and other such vices were not reduced He used to move around and take pride in describing and displaying his austerities. Seeing this attitude, an experienced ascetic told him—"O ascetic ! What have you attained if you have emaciated this body of yours? You are not worthy of any praise just because you have an emaciated body You should, instead, weaken your senses (appetite for sensual pleasures), passions, and pride '

१४३. विगिंच कोह अविकंपमाणे इमं निरुद्धाउयं संपेहाए। दुक्खं च जाण अदुवाऽऽगमेस्सं। पुढो फासाइं च फासे। लोय च पास विप्फदमाणं।

जे णिव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं अणियाणा ते वियाहिया।

तम्हा अतिविज्जो णो पडिसजलेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१४३ जो यह सम्प्रेक्षा करता है कि मनुष्य का यह जीवन अल्पकालिक है, वह अकम्पित रहकर क्रोध को छोड दे। क्रोध के कारण वर्तमान मे अथवा भविष्य मे होने वाले दुःखो को जाने। क्रोधी पुरुष अनेक प्रकार के दु खो का अनुभव करता है। यह लोक क्रोध के कारण (जो दु ख उत्पन्न होता है उससे) प्रकम्पित हो रहा है।

जो पापकर्मों से निवृत्त हो गये है, वे अनिदान (बन्ध के कारणों से मुक्त) कहे गये है।

इसलिए हे परम ज्ञानी साधक ! तू क्रोध का निमित्त मिलने पर भी (प्रतिसज्वलित न हो) क्रोध न कर।

–ऐसा मै कहता हूँ।

143. One who senses (visualizes) that this human life is ephemeral should remain unshaken (compose himself) and abandon anger He should know about the miseries caused by anger in the present and the future A man with anger experiences a variety of miseries This world is trembling due to (the grief caused by) anger

Those who are free of sinful activities are said to have become free of the causes of bondage

Therefore, O great sage ! You should not be angry even when you have cause to be

—So I say.

विवेचन–'**विगिंच कोह**'–इस पद का तात्पर्य यह है कि क्रोध आने पर मनुष्य का हृदय, मस्तिष्क व शरीर कम्पायमान हो जाता है, इसलिए अन्तर मे क्रुद्ध–कम्पायमान व्यक्ति क्रोध को नहीं छोड़ सकता। अत अकंपित रहकर क्रोध को दूर करे।

क्रोध से होने वाले वर्तमान और भविष्य के दु खो को **दुक्खं च जाण**–आदि वाक्यों द्वारा छोडने की प्रेरणा दी गयी है। साथ ही यह भी कहा है कि क्रोधादि के परिणामस्वरूप केवल अपनी आत्मा ही दु खों का अनुभव नही करती, अपितु समूचा संसार क्रोधादि के कारण शारीरिक-मानसिक दु खो से आक्रान्त होकर इधर-उधर दौड-धूप करता रहता है।

'निव्वुडा' का अर्थ है–तीर्थंकरो के उपदेश से जिनका अन्त करण विषय-कषाय की अग्नि से शान्त तथा शीतल हो गया है।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—***Vigincha kohan***—in anger the heart, mind and body of a person tremble It is not possible for such shaken and trembling man to get rid of anger Therefore he should compose himself and remain unshaken in order to be free of anger

Dukkham cha jana...—Inspiration of abandoning anger has been given by revealing the miseries caused by anger now and in future It has been added that it is not only one's own soul that experiences the grief, whole world is oppressed by the physical and mental agony caused by anger, and it runs around to seek solace

Nivvuda—those within whose mind the fire of mundane desires and passions has been pacified by the preaching of *Tirthankars*

● END OF LESSON THREE ●

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

[तृतीय उद्देशक में सम्यक् तप का वर्णन करके अब सम्यक् चारित्र का वर्णन किया जा रहा है।]

[After describing right austerities in the third lesson, right conduct is detailed here]

सम्यक् चारित्र

१४४. आवीलए पवीलए णिप्पीलए जहित्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं।

तम्हा अविमणे वीरे सारए समिए सहिये सया जये।

दुरणुचरो मग्गो वीराणं अणियट्टगामीण।

विगिंच मंस-सोणिय।

एस पुरिसे दविए वीरे आयाणिज्जे वियाहिए। जे धुणाइ समुस्सय वसित्ता बंभचेरंसि।

१४४ मुनि पहले पूर्व सयोगो को छोडकर विषय एव कषायो को उपशम–शान्त करे। फिर कर्मशरीर का आपीडन करे, फिर प्रपीडन तथा निष्पीडन करे।

इसलिए मुनि सदा मन को प्रसन्न रखे, इन्द्रियो को सयत रखे और कष्टो को सहन करता हुआ सयम मे यतनाशील रहे।

जीवन पर्यन्त सयम-साधना करने वाले, अनिवृत्तगामी–मोक्षमार्गगामी मुनियो का मार्ग चलने में अत्यन्त कठिन है।

तप के द्वारा मॉस और रक्त को अल्प करे।

ऐसा सयमी वीर पुरुष द्रविक–राग-द्वेष से मुक्त और दूसरो के लिए अनुकरणीय कहा गया है। जो ब्रह्मचर्य मे स्थित होकर कर्मशरीर को धुनता है–कृश करता है।

RIGHT CONDUCT

144. Leaving earlier affiliations, first an ascetic should pacify passions and mundane desires After this he should restrain (*aapidan*), subdue (*prapidan*) and crush (*nishpidan*) the *karmic* body

For this, the ascetic should always be in a happy frame of mind, keep his senses in control and, tolerating pain, pursue the path of discipline

The path of the liberation—seeking ascetic, who indulges in ascetic practices throughout his life, is highly exacting.

He should tone down his flesh and blood through austerities.

Such disciplined and heroic person is free of attachment and aversion and is an ideal to be emulated by others Observing abstinence he vibrates and weakens the *karmic* body

विवेचन—सम्यक् चारित्र की साधना करते हुए आत्मा के साथ शरीर और शरीर से सम्बद्ध बाह्य पदार्थों के सयोगों, मोहबन्धनो, आसक्तियों, राग-द्वेषों एवं उनसे होने वाले कर्मबन्धो का त्याग करने की प्रेरणा इस उद्देशक मे दी गयी है।

मुनि जीवन की प्राथमिक तैयारी के लिए दो बाते आवश्यक हैं—

'जहित्ता पुव्वसजोग, हिच्चा उवसम'—(१) मुनि जीवन को अंगीकार करने से पूर्व के कुटुम्ब-परिवार, धन-धान्य आदि के साथ बँधे हुए ममत्व सम्बन्धों—संयोगों का त्याग करना, तथा (२) आत्मा के साथ लगे अनादिकालीन राग-द्वेष आदि संयोगों को छोडकर उपशम धारण करना।

'आवीलए पवीलए णिप्पीलए'—ये तीन शब्द साधना के उत्तरोत्तर क्रम को सूचित करते हैं।

प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद मुनि साधना की तीन भूमिकाओं से गुजरता है—

(१) दीक्षित होने से लेकर शास्त्रो का अध्ययन काल तक की प्रथम भूमिका है। उसमे वह सयम-रक्षा एव शास्त्र-अध्ययन के हेतु आवश्यक तप आयबिल-उपवास आदि करता है। यह **'आपीड़न'** है, इसका कालमान—१२ वर्ष तक सूत्र का ग्रहण तथा १२ वर्ष तक अर्थ का ग्रहण करते हुए कुल २४ वर्ष का है।

(२) दूसरी भूमिका है—शिष्यो या लघु मुनियो के अध्यापन एवं धर्म प्रचार-प्रसार की। इस काल मे वह सयम की उत्कृष्ट साधना और दीर्घ तप करता है। यह **'प्रपीड़न'** है। इसका कालमान १२ वर्ष का है।

(३) तीसरी भूमिका आती है—शरीरत्याग की। जब मुनि आत्म-कल्याण के साथ लोक-कल्याण की साधना भी कर चुकता है और शरीर भी जीर्ण-शीर्ण एव वृद्ध हो जाता है, तब वह **समाधिमरण की तैयारी में संलग्न हो जाता है। इस समय दीर्घकालीन तप, कायोत्सर्ग, उत्कृष्ट त्याग आदि की साधना करता है। यह 'निष्पीडन' है। इसका भी कालमान १२ वर्ष का है।**

साधना की इन तीनो भूमिकाओं मे बाह्य-आभ्यन्तर तप एव शरीर तथा आत्मा का भेद-विज्ञान करके तदनुरूप स्थूल शरीर के आपीडन, प्रपीडन और निष्पीडन की प्रेरणा दी गयी है। [आचारांग भाष्य (आचार्य महाप्रज्ञ), पृ २२६]

आचार्य श्री आत्माराम जी म ने गुणस्थान क्रम से भी इन तीनों भूमिकाओं का सम्बन्ध बताया है। अपूर्वकरणादि गुणस्थानो मे कर्मों का आपीडन हो (चौथे से सातवे गुणस्थान तक), अपूर्वकरण एव अनिवृत्तिबादर गुणस्थानो (आठवें, नवे गुणस्थान तक) मे प्रपीडन हो। तथा सूक्ष्म-सम्पराय गुणस्थान (दसवे गुणस्थान) मे निष्पीडन हो। अथवा उपशम श्रेणी मे आपीडन, क्षपक श्रेणी मे प्रपीडन एव शैलेशी अवस्था मे निष्पीडन हो। [आचाराग हिन्दी टीका, पृ ३९८]

'विगिच मस-सोणिय–पद से ब्रह्मचर्य के साधक को मॉस-शोणित घटाने का निर्देश दिया गया है। क्योंकि मॉस-शोणित की वृद्धि से काम-वासना प्रबल होती है, उससे ब्रह्मचर्य की साधना में विघ्न आने की सम्भावना बढ़ जाती है।

ब्रह्मचर्य के चार अर्थ किये जाते हैं–(१) ब्रह्म (आत्मा) मे विचरण करना, (२) मैथुन-विरति या सर्वेन्द्रिय-सयम, (३) गुरुकुलवास, तथा (४) सदाचार। यहाँ मैथुन विरति का प्रसग समझना चाहिए।

Elaboration—This lesson offers guidance to renounce affiliation of soul with body and things related to body, bonds of fondness, mundane desires, attachment and aversion and the consequent bondage of *karmas* while practicing right conduct

There are two essentials of primary preparations for an ascetic life—***Jahitta puvvasanjogam, hichcha uvasamam***—(1) To renounce the fond affiliation with the family, wealth and other possessions before accepting the ascetic way (2) To embrace inner discipline after renouncing attachment, aversion and other such eternal primary affiliations of the soul

Aavilaye, pavilaye, nippilaye—these three words inform about the gradual progress of ascetic practices

After getting initiated an ascetic progresses through three stages of practices—

(1) From the point of initiation to the study of scriptures is the first stage Here he observes *ayambil* (eating, once in a day, food cooked with a single ingredient and even without any cooking-fat, salt or other condiments), *upavas* (fasting), and other austerities for

the purpose of securing discipline and helping study of scriptures This is restraining or *aapidan* of the *karmic* body, and its duration is twenty four years, twelve for study of text, and twelve for absorbing meaning

(2) The second stage is of teaching the disciples and junior ascetics and popularizing religion In this stage he indulges in practices of higher ascetic discipline and observes prolonged austerities This is subduing or *prapidan* of the *karmic* body, and its duration is twelve years

(3) After this comes the third stage, that of abandoning the earthly body When an ascetic has successfully concluded the practices leading to well being of the self as well as others and his body has become weak and emaciated, he starts preparing for a meditational death During this period he indulges in extremely prolonged austerities, perfecting detachment from the body, high degree of sacrifice or renunciation, etc This is crushing or *nishpidan* of the *karmic* body Its duration is also twelve years

In these three stages of ascetic practices outer and inner austerities, discerning between body and soul, and accordingly restraining, subduing and crushing the *karmic* body has been advised

Acharya Shri Atmaram ji M has also shown an inter-link between these three stages and the *Gunasthan* (levels of purity of soul) *Aapidan* is advised at fourth to seventh levels (*Apoorvakaran*, etc), *prapidan* is advised at eighth and ninth level (*Anivritti Badar*, etc), and *nishpidan* is advised at the tenth level (*Sukshma Samparaya*) In other words in *Upasham-shreni* (at levels connected with pacification of *karmas*) *aapidan* is advised, in *Kshapak-shreni* (at levels connected with destruction of *karmas*) *prapidan* is advised, and in *Shaileshi-avastha* (in the rock-stable state) *nishpidan* is advised

Vigimcha mans-soniya—this is the direction of toning down flesh and blood for the ascetic practicing celibacy Excessive flesh

and blood enhances lust and, possibilities of distractions in practice of celibacy increase

There are four interpretations of the term *brahmacharya*—(1) To dwell in the *Brahma* (soul) (2) Absolute abstinence from copulation or absolute discipline of senses (3) Living in residential school or the discipline of student life (4) Good conduct Here it has been used to convey the meaning of abstinence from copulation

१४५. णेत्तेहिं पलिछिण्णेहि आयाणसोयगढिए बाले। अव्वोच्छिन्नबंधणे अणभिक्कंतसजोए। तमसि अविजाणओ आणाए लभो णत्थि।

त्ति बेमि।

१४५. नेत्र आदि इन्द्रियो पर सयम का अभ्यास करते हुए भी जो अज्ञानी मोहवश पुन इन्द्रिय-विषयादि मे गृद्ध हो जाता है, तथा जो कर्मबन्धनो को तोड नही पाता, सयोगो को छोड नही सकता, मोह अज्ञान के अधकार मे निमग्न वह बाल–अज्ञानी अपना आत्महित एव मोक्षमार्ग को नही जान पाता। ऐसा पुरुष तीर्थकरो की आज्ञा का लाभ प्राप्त नही करता।

–ऐसा मै कहता हूँ।

145. Even while practicing discipline of eyes and other senses, an ignorant, who out of fondness, gets infatuated once again with pleasures of the senses, who is unable to break the *karmic* bonds and who cannot terminate affiliations, overwhelmed by the darkness of ignorance, that fool fails to recognize the good of his soul and the path of liberation Such person fails to be benefitted by the tenets of the *Tirthankars*

—So I say

विवेचन–'**नेत्तेहि पलिच्छिन्नेहि**' इस पद से नेत्र से यहाँ सभी इन्द्रियाँ ग्रहण की गई हैं।

'**आयाणसोयगढिए**' का अर्थ है–'**आदान के स्रोतो मे गृद्ध**'। 'आदान' का अर्थ कर्म है, जोकि संसार का बीज होता है। उसके स्रोत–आने के द्वार है–इन्द्रिय-विषय, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इन आदान-स्रोतों मे रात-दिन गृद्ध रहने वाले अज्ञानी का अन्त करण राग, द्वेष और मोहरूप अंधकार से ढका रहता है, उसे अरिहंत भाषित प्रवचनों का लाभ नहीं मिल पाता, न उसे धर्मश्रवण मे रुचि जागती है, इसलिए कहा है उसे–'**आणाए लभो णत्थि।**'–आज्ञा का लाभ नहीं मिलता।

Elaboration—***Nettehim palicchinnehim***—in this phrase the term eyes is inclusive of all the sense organs.

Aayaanasouagadhiye—infatuated with the sources of taking (*aadaan*) Taking indicates the inflow of *karmas* that are the seeds of the worldly life The sources are pleasures of senses, false perception, attachment, stupor, passions and affiliations The mind of the ignorant who is all the time infatuated with these sources is always enveloped in the darkness of attachment, aversion and passions He is unable to be benefitted by the tenets of the *Arihant* as he has no interest in religious discourse Therefore it is said—he fails to be benefitted by the tenets

१४६. जस्स णत्थि पुरे पच्छा मज्झे तस्स कुओ सिया ?
से हु पन्नाणमते बुद्धे आरंभोवरए। सम्ममेयं ति पासहा।
जेण बंधं वहं घोरं परितावं च दारुणं।
पलिछिंदिय बाहिरगं च सोय णिक्कम्मदंमी इह मच्चिएहिं।
कम्मुणा सफल दट्ठु तओ णिज्जाइ वेयवी।

१४६ जिस आत्मा को पूर्वकाल में सम्यक्त्व लाभ नही मिला और भविष्य में भी मिलने की सभावना नही, उसको मध्यकाल मे सम्यक्त्व का लाभ कैसे होगा ?

जो आरम्भ से विरत है वही प्रज्ञानवान् है, प्रबुद्ध है। यह सम्यक् (सत्य) है, ऐसा तुम समझो।

भोगेच्छा के कारण ही मनुष्य बन्ध, वध, घोर परिताप और दारुण दु ख पाता है।

(अत) पापकर्मों के परिग्रह आदि बाह्य एव राग, द्वेष, मोह आदि अन्तरग स्रोतो को बन्द करके मरणधर्मा प्राणियो के बीच तुम निष्कर्मदर्शी (मोक्षदर्शी) बन जाओ।

कर्म अपना फल अवश्य देते है, यह देखकर ज्ञानी पुरुष उनसे निवृत्त होता है।

146. How the soul that has not gained *samyaktva* (a specific state of righteousness where right perception and right knowledge start translating into right conduct) in the past and no possibility of gaining it in the future, will gain it in the intervening time (the present) ?

He who is detached since the beginning is wise and enlightened This is true, you should know

Because of the desire for mundane pleasures a man suffers bondage, extreme torment, acute misery or death.

(Therefore) stop accumulation of material things and other such outer sources of sinful *karmas*, attachment, aversion, fondness and other such inner sources of sinful *karmas*, and become, among mortals, a seer of the *karma-free* state or liberation

Karmas inevitably bear fruits, seeing this a sage avoids them or casts them away

१४७ जे खलु भो वीरा समिआ सहिआ सदा जया संघडदसिणो आओवरया अहा तह लोग उवेहमाणा; पाईण पडीणं दाहिण उदीण इति सच्चसि परिचिट्ठिंसु। साहिस्सामो नाण वीराण समियाण सहियाण सया जयाण संघडदंसिण आओवरयाण अहा तहं लोगमुवेहमाणाण।

किमत्थि उवाही पासगस्स, ण विज्जति ? णत्थि।

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ सम्मत्त चउत्थ अज्झयण सम्मत्त ॥

१४७ हे आर्यो ! जो (साधक) वीर है, (पॉच समितियो से) समित (सम्पन्न) है, ज्ञानादि से सहित है, सदा सयत है, जो पापकर्मों से उपरत है, लोक जैसा है उसे वैसा ही देखते है, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर–सभी दिशाओ मे भली प्रकार सत्य मे स्थित हो चुके है, उन वीर, समित, सहित, सदा यतनाशील, शुभाशुभदर्शी, उपरत, लोक के यथार्थ द्रष्टा ज्ञानियों के सम्यग्ज्ञान का हम कथन करेगे, उसका उपदेश करेगे।

क्या (ऐसे) सत्यद्रष्टा के कोई उपाधि होती है या नही होती ? नही होती।

–ऐसा मै कहता हूँ।

147. O noble ones ! There are brave (seekers) accomplished in five types of self-regulation, endowed with knowledge (etc), always composed, free from sinful activities, able to see the world as it is, firmly established in truth in east, west, north, south, all directions I will say about and preach about the

right knowledge of these brave, self-regulated, wise, composed, sin-free and reality seeing sages.

Do such seers of truth have some appellation or not ? No, they do not have

—So I say

विवेचन–'जस्स णत्थि पुरे पच्छा ' '–इसका मुख्य अर्थ तो पहले किया जा चुका है। वैकल्पिक अर्थ है–जिसकी भोगेच्छा के पूर्व सस्कार नष्ट हो चुके हैं, तब भला बीच मे, वर्तमानकाल मे वह भोगेच्छा कहाँ से आयेगी ? साधना के द्वारा भोगेच्छा की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है, तब न अतीत का संस्कार रहता है, न भविष्य की वाञ्छा/कल्पना, ऐसी स्थिति मे तो उसका चिन्तन भी कैसे हो सकता है ?

निष्कर्म के तीन अर्थ प्रसिद्ध है–(१) मोक्ष, (२) संवर, तथा (३) कर्मरहित शुद्ध आत्मा। जिसकी समस्त इन्द्रियो का प्रवाह विषयो या सासारिक पदार्थों की ओर से हटकर आत्मा या मोक्ष की ओर उन्मुख हो जाता है, वही अन्तर्मुखी साधक निष्कर्मदर्शी है।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

॥ सम्यक्त्व चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—***Jassa natthi pure paccha...***—The basic meaning of this has already been given An alternative interpretation is—where remains the scope of his having such mundane desires for one whose past (from earlier births) inspiring causes of desire for mundane pleasures have already been destroyed ? Spiritual practice leads to absolute apathy for mundane desires and then their remains neither any inspiring cause from the past nor any desire for the future In this situation where remains even the scope of thinking about it ?

There are three popular meanings of the word *nishkarma*—(1) liberation, (2) *samvar* or blocking of inflow of *karmas,* and (3) a pure soul free of *karmas* Only that introvert seeker is a *nishkarmadarshi* (seer without *karmas*), whose sense organs have been turned from mundane indulgences or material things in the direction of (pure) soul or liberation

● END OF LESSON FOUR ●

● SAMYAKTVA : END OF FOURTH CHAPTER ●

लोगसारो : पंचमं अज्झयणं
लोकसार : पंचम अध्ययन

आमुख

✦ आचाराग सूत्र के पंचम अध्ययन का नाम है–'लोकसार'।

✦ नाम, स्थापना आदि के भेद से 'लोक शब्द' के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। यहाँ पर लोक शब्द चौदह रज्जु प्रमाण लोक (क्षेत्र) तथा इस लोक मे रहने वाले प्राणियो के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

✦ 'सार' शब्द के भी अनेक अर्थ होते है–निष्कर्ष, निचोड, तत्त्व, सर्वस्व, ठोस, प्रकर्ष, सार्थक आदि।

✦ निर्युक्तिकार ने लोक के सार के सम्बन्ध में प्रश्न किया है कि–"लोगस्स उ को सारो, तस्स य सारस्स को हवइ सारो।"–गुरुदेव ! इस लोक का सार क्या है और उस सार का भी सारतत्त्व क्या है?

उत्तर मे आचार्य कहते हैं–

लोगस्स सार धम्मो, धम्म पि य नाणसारिय बिति।
नाण सजमसार, सजमसार च निव्वाणं॥२२४॥

लोक का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान है, ज्ञान का सार सयम है और सयम का सार निर्वाण–मोक्ष है।

✦ उक्त व्याख्या के अनुसार लोकसार अध्ययन का अर्थ हुआ–समस्त जीव लोक के सारभूत मोक्षादि तत्त्वो के सम्बन्ध मे विचारणा व प्ररूपणा। लोक मे सारभूत परमपद (परमात्मा, आत्मा और मोक्ष) के सम्बन्ध में साधक प्रेरणा प्राप्त करे। मोक्ष से विपरीत आस्रव, बन्ध, असयम और मिथ्यादर्शन आदि का स्वरूप समझे। इनके परिणामों को भलीभॉति जानकर इनका त्याग करे यही इस अध्ययन का उद्देश्य है।

✦ लोकसार अध्ययन के ६ उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक मे मोक्ष के विपरीतगामी पुरुषार्थ, काम और उसके मूल कारणो–अज्ञान, मोह, राग-द्वेष आदि का विचार तथा उनके निवारण का उपाय निरूपित किया है।

✦ दूसरे उद्देशक में अप्रमाद और परिग्रह-त्यागी को मुनि कहा है।

- मुनिधर्म के सन्दर्भ में अपरिग्रह और काम-भोगों से उदासीन रहने का संदेश तीसरे उद्देशक में है।
- अपरिपक्व (अव्यक्त) साधु की एकचर्या में होने वाली हानियों का एवं दोषों का निर्देश चौथे उद्देशक में किया है।
- आचार्य की महिमा, सत्य श्रद्धा, सम्यक्-असम्यक्-विवेक, अहिंसा और आत्मा के स्वरूप का वर्णन पाँचवें उद्देशक में है।
- मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि के परित्याग का तथा आज्ञा-निर्देश एव सिद्ध आत्मा के स्वरूप का निरूपण छठे उद्देशक में किया है।

LOGASARO : PANCHAMAM AJJHAYANAM
LOKASARA : FIFTH CHAPTER
THE ESSENCE OF THE WORLD

INTRODUCTION

✦ The name of the fifth chapter of *Acharanga Sutra* is **Lokasara**

✦ In context of nomenclature, structure, and other such parameters there are various different meanings of the word *Loka* Here it refers to the specific area measuring fourteen *Rajju* (a linear unit defined as the distance covered by a god flying non-stop for six months at a speed of 20,57,152 *yojans* per second) and the beings living there

✦ The word *'sara'* also has many meanings—result, essence, fundamental, entire or whole, solid, pre-eminence, meaningful, etc

✦ The commentator (*Niryukti*) has raised a question about the essence of the *loka*—"Sir, what is the essence of this world and what again is the ultimate essence of that essence?"

In answer the *acharya* says—"The essence of the world is *dharma*, the essence of *dharma* is knowledge, the essence of knowledge is discipline, and the essence of discipline is *nirvana* or liberation "

✦ According to the said elaboration the meaning of the title of the chapter *Lokasara* is—contemplation and elaboration of liberation and other core-fundamentals of the world of beings A seeker may be inspired towards the essence of this world (ultimate soul, soul and liberation) He may properly understand the true form of the contradictory factors like inflow of *karmas*, bondage of *karmas*, indiscipline and false perception Fully understanding the consequences of these contradictory factors he may avoid them This is the theme of this chapter

- This chapter has six lessons. The first lesson contains discussion about libido or the pursuit going against liberation, and its root causes like ignorance, fondness, attachment and aversion, and means of prevention thereof

- In the second lesson a *muni* (ascetic) has been defined as alert and devoid of attachments.

- In the third lesson is the message of being detached and apathetic towards carnal pleasures in context of ascetic conduct.

- The fourth lesson contains the faults and harm related to solitary living of an immature ascetic

- The fifth lesson contains the description of the greatness of an *acharya*, true faith, attitude of separating right from wrong, *ahimsa* and soul

- The sixth lesson contains the directions about abandoning false perception, attachment, aversion, etc and the description of the form of a liberated soul

● ●

पढमो उद्देसओ	प्रथम उद्देशक	LESSON ONE

काम · कारण और निवारण

१४८. आवंती केआवंती लोयसि विप्परामुसंति। अट्ठाए अणट्ठाए वा एएसु चेव विप्परामुसंति।

गुरू से कामा।

तओ से मारस्स अंतो। जओ से मारस्स अतो तओ से दूरे।

णेव से अतो णेव से दूरे।

१४८ लोक में जितने भी मनुष्य है वे किसी प्रयोजन से या बिना प्रयोजन के ही जीवो की हिसा करते है। वे उन्हीं षड्जीवनिकायो में विविध रूप मे उत्पन्न होते रहते है।

उनकी कामनाएँ–विषयो की अभिलाषा विशाल होती है।

विशाल काम-भोगेच्छाओं के कारण वे मृत्यु के निकट रहते है। जब वे मृत्यु या काम के निकट रहते है तो वे मोक्ष या विरक्ति से दूर रहते हैं।

अथवा कामना का त्याग नही करने पर वह न तो विषय-सुख के निकट है और न ही दूर है।

LIBIDO : CAUSES AND PREVENTION

148. Many of the humans in this world kill beings for or without purpose. They keep on getting reborn in various species of those same six life forms

Their mundane desires are lofty

Because of these lofty desires they remain in proximity of death When they are near death or desire they are away from liberation or detachment

As he is not free of desires he is neither near the mundane pleasures nor far from them

विवेचन–इस उद्देशक मे काम-भोगो और उनकी पूर्ति के लिए किए जाने वाले हिंसादि पापकर्मों की नि सारता बताकर अज्ञान एवं मोह से होने वाले पापकर्मों से दूर रहने की प्रेरणा दी गयी है।

इस सूत्र में 'विप्परामुसंति' क्रियापद दो बार प्रयुक्त हुआ है। पहली बार इसका अर्थ किया गया है–जो विविध प्रकार से विषयाभिलाषा या कषायोत्तेजना के वश छह काय के जीवों का उपघात करते हैं। दूसरी बार के प्रसंगवश अर्थ किया गया है–उन एकेन्द्रियादि प्राणियों का अनेक प्रकार से विघात करने वाले, उन्हें पीड़ा देकर पुन उन्हीं षड्जीवनिकायों में अनेक बार उत्पन्न होते हैं।

'अट्ठाए अणट्ठाए'–'अर्थ' का भाव है प्रयोजन या कारण। जीव-हिसा के तीन प्रयोजन होते है–काम, अर्थ और धर्म। विषय-भोगों के साधनों को प्राप्त करने के लिए जो दूसरो का वध या उत्पीडन किया जाता है, वह **कामार्थक** **हिंसा** है। व्यापार कृषि आदि के लिए जो हिंसा की जाती है, वह **अर्थार्थक** हिसा है और धर्म के नाम से या धर्म निमित्त पशुबलि आदि देना **धर्मार्थक** **हिंसा** कही जाती है। ये तीनो प्रकार की हिंसाएँ अर्थ के लिए और शेष हिंसा अनर्थक कहलाती हैं।

'**गुरू से कामा**' पद का रहस्य बताते हुए कहा है कि काम-भोग दुस्त्याज्य है अर्थात् उनको छोडना सहज नहीं है। इसलिए कामो को 'गुरु' कहा गया है।

'**जओ से मारस्स अतो**' आदि पदो का भावार्थ यह है कि सुख का कामी मानव काम-भोगो का परित्याग नही कर सकता। अत कामी मानव मृत्यु की पकड के भीतर रहता है और मृत्यु की पकड के भीतर होने से वह जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक आदि से घिरा रहता है, इस कारण वह सुख से दूर रहता है।

Elaboration—Showing the worthless nature of worldly pleasures and violence and other sinful activities performed in order to avail those, this lesson inspires one to refrain from sinful activity done out of ignorance and fondness

In this aphorism the term *vippuramusanti* has been used twice In the first instance the meaning is—driven by mundane desires or inflamed passions, who destroys beings belonging to six life forms In the second instance, in varied a context, the meaning is—those who destroy those six life forms in many ways are reborn, after tormenting them, many a times in those same six life forms

Atthaye anatthaye **(arthaya anarthayay)**—*Arth* means purpose or reason There are three reasons for destroying beings—carnal desires, wealth and religion Killing or tormenting others for obtaining means of carnal pleasures is *kamarthak himsa* (violence

for the sake of carnal pleasures) Killing or tormenting others for trading, agriculture and other business activities is *artharthak himsa* (violence for the sake of wealth). Killing or tormenting others in name of religion is *dharmarthak himsa* (violence for the sake of religion) These three types of violence are called 'with purpose' and others 'without any purpose'

Guru se kama—Explaining this it is said that mundane or carnal pleasures are difficult to renounce Therefore, such desires are called *guru* (heavy or enormous)

Jao se marassa anto —A pleasure seeking man cannot rid himself of carnal desires Thus he is within the grip of death. As a result he is always haunted by things like birth, aging, death, disease, grief, etc and, therefore, he is far removed from happiness

१४९. से पासइ फुसियमिव कुसग्गे पणुन्न णिवइय वाएरियं।
एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अवियाणओ।
कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ।
मोहेण गब्भं मरणाइ एइ। एत्थ मोहे पुणो पुणो।

१४९. (जिसने कामना का त्याग कर दिया है) वह पुरुष कुश के अग्र भाग पर टिके हुए और वायु के झोके से कम्पित होकर गिरते हुए जल-बिन्दु की तरह जीवन को अस्थिर जानता-देखता है।

बाल-(अज्ञानी), मन्द-(अल्प बुद्धि) और धर्म से अनभिज्ञ पुरुष का जीवन भी इसी तरह अस्थिर है, परन्तु वह (मोहवश) इसको नही जान पाता।

वह बाल अपने अज्ञान के कारण या हिसादि क्रूर कर्म करने के कारण दु:ख को उत्पन्न करता है (-तथा) दु:ख से मूढ़-उद्विग्न होकर वह सुख के स्थान पर दु:ख को प्राप्त होता है।

प्राणी मोह के वश हुआ कर्मबन्धन करता है, फलस्वरूप बार-बार जन्म-मरण करता है। मिथ्यात्वादि के कारण उसे बारम्बार मोह उत्पन्न होता है।

149. He (who has rid himself of desires) perceives and knows that life is as ephemeral as a drop of water falling from the tip of a grass-leaf shaken by a whiff of wind

Life of an ignorant and dumb person who is unaware of religion is also fleeting but he fails to know this (due to attachment).

That fool, out of ignorance, indulges in violence and other cruel activities and invites grief Disturbed by this grief he ends up in misery instead of happiness

Under the influence of attachment a being invites bondage of *karmas* and as a consequence embraces birth and death again and again Because of *mithyatva* (false perception) he is infested with fondness time and again.

विवेचन–इस सूत्र में अज्ञानी की मोह दशा को दर्शाने के लिए तीन विशेषण दिये हैं–(१) बाल, (२) मन्द, और (३) अविजान। बालक में यथार्थ का ज्ञान नहीं होता, उसी तरह वह कामासक्त पुरुष भी अस्थिर व क्षणभगुर जीवन को अजर-अमर मानता है, यह उसका बचपन (बालत्व) है। बुद्धि का अभाव होने से 'मन्द' कहा गया है। तथा मोक्ष का ज्ञान नही होने से उसे 'अविजान' कहा है।

Elaboration—In this aphorism three adjectives are used to show the state of mind of a person under influence of fondness—(1) *Baal* (child-like), a child does not have knowledge of the reality Same is the condition of a man driven by carnal desires He also takes the fleeting life to be non-aging and eternal This is his childish ignorance (2) *Mand* (dumb), because of absence of wisdom he is called dumb (3) *Avijaan* (unaware), as he is ignorant about liberation he is called unaware

संशय से स्वरूप का परिज्ञान

१५०. संसयं परिजाणतो संसारे परिण्णाते भवति।

संसय अपरिजाणतो संसारे अपरिण्णाते भवति।

जे छेए से सागारिय ण सेवए। कट्टु एवं अविजाणओ बिइया मंदस्स बालया।

लद्धा हुरत्था पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए। त्ति बेमि।

पासह, एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे। एत्थ फासे पुणो पुणो।

१५०. जो सशय को जानता है वह संसार के स्वरूप को जानता है।

जो संशय को नहीं जानता, वह ससार को भी नही जान पाता।

जो व्यक्ति कुशल या इन्द्रियविजेता है, वह विषय सेवन नहीं करता। जो विषय का सेवन करके भी 'मै नही जानता' यह कहकर उसे छिपाता है, यह उस पुरुष की दूसरी मूर्खता है।

काम-भोगो की प्राप्ति होने पर यह 'बाह्य भाव है' ऐसा विचार करके उनका सेवन नही करना चाहिए। और दूसरों को भी उनका सेवन नहीं करने की आज्ञा (प्रेरणा) देवे। ऐसा मै कहता हूँ।

हे साधक ! जो रूप आदि मे आसक्त है, उनको देखो, वे विषयो की ओर खिचे जा रहे है। वे बार-बार दु:खो को प्राप्त होते हैं।

DOUBT LEADING TO TRUTH

150. One who knows doubt also knows the form of the world

One who does not know doubt also does not know the form of the world

A person who is accomplished or who has conquered senses does not indulge in mundane pleasures He who indulges in mundane pleasures commits another foolishness when he still conceals that by stating, 'I do not know'

When one gets an opportunity to enjoy carnal pleasures, he should avoid it by thinking that this is an alien feeling And he should also inspire others to avoid such indulgence So I say

O aspirant ! Observe those who are infatuated with form and other such attributes They are drawn towards mundane pleasures They end up in miseries over and over.

विवेचन–इस सूत्र मे सशय को ज्ञान का प्रेरक कारण बताया है। यो तो अज्ञान के कारण संशय उत्पन्न होता है किन्तु जब उसमे ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा रहती है तो वह सशय ज्ञान का कारण भी हो जाता है। जिज्ञासामूलक सशय मनुष्य के ज्ञान की अभिवृद्धि करता है। भगवतीसूत्र में ऐसे जिज्ञासा मूलक छत्तीस हजार सशयों का समाधान अकित है।

जब सशयपूर्वक जिज्ञासा पैदा होती है तभी ज्ञपरिज्ञा से ससार की असारता का यथार्थ ज्ञान होता है और प्रत्याख्यान परिज्ञा से उससे निवृत्ति। जिसे ससार के प्रति या पुनर्जन्म के प्रति संशयात्मक जिज्ञासा नहीं होती, उसे ससार की असारता तथा जीवन की क्षणभगुरता का ज्ञान नहीं होता, फलत संसार से उसकी निवृत्ति नहीं होती।

'बिइया मदस्स बालया'–इस पद मे बताया है कि साधक की पहली मूर्खता तो यह है कि उसने गुप्त रूप से मैथुन-सेवन किया, उस पर दूसरी मूढ़ता यह है कि गुरु आदि द्वारा पूछने पर वह छिपाने के लिए अनजान बनता है। यह दोहरा दोष-सेवन है–एक अब्रह्मचर्य का, दूसरा असत्य का। इस सूत्र का संकेत है कि प्रमाद या अज्ञानवश भूल हो जाने पर उसे सरलतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए।

एत्थ फासे पुणो पुणो–सूत्र द्वारा यह बताया है कि आसक्ति के कारण बार-बार दु:खो का अनुभव करना पड़ता है। जैसे–आसक्तिवश मनुष्य वस्तुओ का सग्रह करता है, फिर संग्रहीत वस्तु के संरक्षण की चिन्ता करता है। उसके वियोग का दु ख अनुभवता है। भोग से अतृप्ति की वेदना और अतृप्ति से आकुलता, आकुलतावश पुन पदार्थ का संग्रह या दूसरो की चोरी करता है। इस प्रकार दु ख का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है।

Elaboration—This aphorism shows doubt to be the inspiring cause of knowledge Normally doubt is born out of ignorance but when it is accompanied by the desire to gain knowledge, it also becomes inspiring cause of knowledge A doubt that becomes root of curiosity enhances knowledge of man *Bhagavati Sutra* contains answers to thirty six thousand such curiosity inspiring doubts

When curiosity arises out of doubt then only, through *jnaparijna* (awareness of or receptivity for knowledge), one acquires true knowledge of the ephemeral nature of this world and through *pratyakhyan-parijna* (awareness and efforts of discarding) one proceeds to renounce it He who does not have this doubt-filled curiosity about the world or rebirth, does not become aware of the ephemeral nature of the world and fleeting nature of life Consequently he does not get liberated from this world

Bi-iya mandassa balaya—This phrase shows that the first foolishness of a seeker is that he is furtively engaged in carnal activity, and the second that he pretends to be innocent when asked by the teacher or other seniors This is compounding the fault of libido by a lie The insinuation is that if one commits a fault due to stupor or ignorance he should accept it with honesty

Ettha phase puno puno—This aphorism indicates that due to attachment one has to suffer misery time and again For example—

driven by attachment a man accumulates things and starts worrying about protecting them He is aggrieved when he looses them He suffers pain of unsatiated desires, this pain turns into craving and then to further acquisition or grabbing Thus he is caught into a vicious circle of miseries

आरंभ-कषाय निवृत्ति

१५१. आवंती केआवंती लोयंसि आरंभजीवी एतेसु चेव आरंभजीवी।

एत्थ वि बाले परिपच्चमाणे रमति पावेहिं कम्मेहिं असरणं सरणं ति मण्णमाणे।

१५१ इस लोक मे जितने जो मनुष्य आरम्भजीवी है, वे इन विषयो मे आसक्त होने के कारण ही आरम्भजीवी है।

अज्ञानी साधक इस संयमी (साधु) जीवन मे भी कामाग्नि प्रदीप्त होने के कारण विषय-पिपासा से अकुलाता हुआ अशरण को ही शरण मानकर पापकर्मों मे रमण करता है।

AVOIDING PASSIONS

151. All the people in this world who indulge in sinful activities do so only because they are infatuated with these mundane pleasures

Even while following this ascetic way of life, an ignorant seeker, agitated by the craving for mundane pleasures due to an upsurge of lust, considers unfavourable as favourable and indulges in sinful activities

१५२. इहमेगेसिं एगचरिया भवइ। से बहुकोहे बहुमाणे बहुमाए बहुलोभे बहुरये बहुनडे बहुसढे बहुसकप्पे आसवसक्की पलिउच्छन्ने उट्ठियवायं पवयमाणे, 'मा मे केइ अदक्खु' अण्णाण-पमायदोसेण सयय मूढे धम्मं णाभिजाणति।

अट्टा पया माणव! कम्मकोविया जे अणुवरया; अविज्जाए पलिमोक्खमाहु, आवट्टं अणुपरियट्टंति।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१५२. इस संसार में कुछ साधक अकेले विचरने लगते हैं। यदि वह अति क्रोधी है, अति अभिमानी है, अति माया वाला है, अधिक लोभी है, भोगो मे अधिक आसक्त है, नट

की तरह बहुरूपिया है, अनेक प्रकार की धूर्तता करता है, अनेक प्रकार के संकल्प करने वाला है, आस्रवों में आसक्त रहता है, कर्मों से आच्छन्न होता है 'मैं भी धर्माचरण के लिए उद्यत हुआ हूँ' इस प्रकार की घोषणा करता है। 'मुझे पाप करते कोई देख न ले' इस भय से छिप-छिपकर अनाचार का सेवन करता है, वह अज्ञान और प्रमाद के दोष से मूढ़ बना हुआ धर्म को नहीं जान पाता।

हे मानव ! जो पुरुष (विषय-कषायों से) आर्त्त–पीडित हैं, कर्मबन्धन करने में ही कुशल हैं, जो आस्रवो (हिंसादि) से उपरत नहीं हैं, जो अविद्या (अज्ञान) से मोक्ष की प्राप्ति होना बतलाते हैं, वे ससार के भँवर जाल मे पुन -पुन. चक्कर लगाते रहते हैं।

ऐसा मैं कहता हूँ।

152. In this world some aspirants start living in solitude. Such a person is made dumb by ignorance and stupor and he fails to know religion if he is very irritable, proud, deceitful, greedy, attached with mundane pleasures, an impostor, cunning, conspiring, involved with inflow of *karmas* and enveloped in *karmas*, declares—'I have also resolved to follow the religious conduct', and furtively indulges in misconduct with the apprehension—'Some one could see me sinning'.

O man ! Professing that ignorance leads to liberation, persons who are tormented (by mundane pleasures and passions), good at accumulating *karmic* bondage, not free of *karmic* inflow, continue to whirl around in the whirlpool that is this world

—So I say

विवेचन–साधक के लिए एकचर्या (एकाकी विचरण करना) प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार का है। एकचर्या के भी दो भेद हैं–द्रव्य-एकचर्या और भाव-एकचर्या। द्रव्यत· प्रशस्त एकचर्या तब होती है, जब प्रतिमाधारी, जिनकल्पी या संघादि के किसी महत्त्वपूर्ण कार्य या साधना के लिए एकाकी विचरण स्वीकार किया जाए। जिस एकचर्या के पीछे विषय-लोलुपता हो, अतिस्वार्थ हो, कषायो की उत्तेजना हो वह अप्रशस्त एकचर्या है।

जब राग-द्वेष न रहे तभी भाव से एकचर्या हो सकती है। यह प्रशस्त एकचर्या तीर्थंकरों आदि को होती है।

'उत्थितवाद' का भावार्थ है कुछ साधक कहते हैं-"मै इसलिए एकाकी विहार करता हूँ कि अन्य साधु शिथिलाचारी हैं, मैं उग्र आचारी हूँ, मैं उनके साथ कैसे रह सकता हूँ?" उसका ऐसा कथन विश्वसनीय नहीं होता।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—For an aspirant solitary way of life is good as well as bad Solitude is also of two types, physical and mental Physical solitude is good when solitary way of life is accepted for some important mission or practices assigned by an ascetic indulging in higher practices (*pratimadhari*), *Jina-kalpi* ascetic (who indulges in loftiest practices), or the *Sangh* (religious organization). Solitary life accepted under the influence of mundane cravings, extreme selfishness, or inflamed passions, is bad solitude

Mental solitude is accomplished only when one is devoid of any attachment and aversion This is the way of solitary life of the *Tirthankars* and other such pure souls

Utthitavad—To pretend, some seekers pretend—"I have accepted the solitary way because other ascetics are lax in their conduct and I am very strict. How can I live with them ?" Such statements are not reliable

● END OF LESSON ONE ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

अप्रमाद का मार्ग

१५३ आवंती केआवंती लोगंसि अणारभजीवी एतेसु चेव अणारंभजीवी।

एत्थोवरए तं झोसमाणे अयं सधी ति अदक्खु।

जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणे त्ति मन्नेसी।

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए।–उट्ठिए णो पमायए।

जाणित्तु दुक्खं पत्तेय सायं।

पुढो छदा इह माणवा। पुढो दुक्ख पवेइय।

से अविहिंसमाणे अणवयमाणे पुट्ठो फासे विप्पणोल्लए। एस समया-परियाए वियाहिये।

१५३ इस लोक मे जितने मनुष्य अनारम्भजीवी (–अहिसा के आराधक) है वे विषयो से दूर अप्रमत्त रहते है, अत वे अनारभजीवी कहलाते है।

जो इस आरम्भ से उपरत है, आरभ त्याग की साधना करते हुए 'यह सन्धि है' ऐसा उसने देख लिया।

इस शरीर का 'यह वर्तमान क्षण है', इस प्रकार जो अन्वेषण (चिन्तन) करता है वह सदा अप्रमत्त रहता है।

आर्यों ने यह (अप्रमाद का–) मार्ग बताया है। मोक्ष साधना मे उत्थित होकर प्रमाद न करे।

दु ख और सुख प्रत्येक प्राणी का अपना-अपना होता है यह जानकर प्रमाद न करे।

इस जगत् मे मनुष्य पृथक्-पृथक् अभिप्राय वाले होते है, (इसलिए) उनका दु ख भी पृथक्-पृथक् होता है। ऐसा तीर्थंकरो ने कहा है।

वह साधक किसी भी जीव की हिंसा न करे। जीवों के स्वरूप को अन्यथा न कहे (मृषावाद न बोले)। परीषहो एवं उपसर्गों के आने पर चंचल न बने, उन्हे समभावपूर्वक सहन करे। वह समता का पारगामी कहलाता है।

THE PATH OF ALERTNESS

153. In this world people who are *anarambh-jivi* (who do not indulge in sinful activities) remain away from mundane

pleasure and are alert; that is why they are called *anarambh-jivi* (followers of *ahimsa*).

One who is free of this *arambh* has realized, while practising avoidance of *arambh*, that it is a *sandhi* (opportunity)

'This is the present (right) moment for the body', he who contemplates thus, always remains alert

The noble have shown this path (of alertness) After launching the practices for liberation one should avoid stupor

Every being has its own happiness and sorrow, knowing this one should avoid stupor.

In this world different people have different purposes, (therefore) their miseries are also different So say the *Tirthankars*

That aspirant should not harm any being Should not call the beings otherwise (refrain from telling a lie) He should not waver in face of afflictions and torments, and should tolerate them with equanimity He is called pre-eminent in equanimity

विवेचन—आरभ से उपरत रहने वाला साधक साधना करते हुए उस साधना काल को 'यह संधि है' ऐसा देखे। 'सधि' शब्द के अनेक अर्थ किये जाते है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने संधि का अर्थ अवसर किया है। आचार्य महाप्रज्ञ जी ने यहाँ पर सधि का अर्थ शरीर के चैतन्य केन्द्र सूचित किया है। आचार्य मल्लिषेण के अनुसार शरीर मे जहाँ आत्म-प्रदेशो की सघनता और बहुलता होती है वे अवयव 'मर्मस्थान' कहलाते है। चैतन्य केन्द्र इन मर्मस्थानो के भीतर होते हैं। चैतन्य केन्द्रो पर ध्यान स्थिर करने से अप्रमाद की साधना सुदृढ़ होती है। (देखे **चित्र चैतन्य केन्द्र**)

(*आचाराग भाष्य*, पृ २४७)

'अय खणे त्ति' इस पद को भी ध्यान सूत्र माना जाता है। शरीर के वर्तमान क्षण पर चिन्तन करने वाला शरीर के भीतर प्रतिक्षण होने वाले परिवर्तनो पर ध्यान केन्द्रित करता है, जिससे शरीर की नश्वरता का बोध दृढ़ होता है। शरीर की आसक्ति कम होती है।

Elaboration—An aspirant avoiding sinful activities should consider the period of practices to be a *sandhi* (opportunity) There are numerous meanings of the word *sandhi* Acharya Shri Atmaram

ji M translates *sandhi* as an opportunity. Acharya Mahaprajna indicates that here *sandhi* means the centres of consciousness in the body According to Acharya Mallishen the parts of the body where there is a higher density of soul-sections (*atmapradesh*) are known as vital spots The centres of consciousness are within these vital spots Focusing attention on these spots boosts the practice of alertness (see **Illustration of the centre of consciousness**)

(*Acharanga Bhashya* p 247)

Ayam khane tti—This is the present moment. This phrase is also believed to be related to meditation One who contemplates about the body at the present moment, is in fact focusing his attention on the changes the body undergoes every moment This strengthens the realization about the transitory nature of the body and consequently the attachment for it gets weak

१५४. जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं उदाहु ते आयका फुसंति। इति उदाहु वीरे ते फासे पुट्ठो हियासए।

से पुव्वं पेयं पच्छा पेयं भेउरधम्म विद्धंसणधम्मं अधुवं अणितिय असासयं चयोवचइयं विपरिणामधम्मं। पासह एयं रूवं।

समुपेहमाणस्स एगायतणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स। णत्थि मग्गे विरयस्स।

त्ति बेमि।

१५४. जो साधक पापकर्मों में आसक्त नही है, उन्हें कदाचित् आतंक–(शीघ्रघाती व्याधि आदि) पीडित करे, वीर तीर्थकर महावीर ने कहा कि ऐसे प्रसग पर उन दुःख स्पर्शों को (समभावपूर्वक) सहन करें।

यह प्रिय लगने वाला शरीर पहले या पीछे अवश्य छूट जाएगा। अस्थाई तथा विध्वसवान होना इस शरीर का स्वभाव है–यह अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, इसमें उपचय-अपचय (बढ़-घट) होता रहता है, विविध परिवर्तन होते रहना इसका स्वभाव है। इस रूप-सन्धि (देह के इस स्वभाव) को देखो।

जो इस शरीर के स्वरूप की सम्यक्प्रेक्षा करता है, और जो आत्मा रूप एक आयतन में लीन है, ममता से मुक्त है, हिंसादि से विरत वह संसार मैं नहीं भटकता।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

154. The seeker who is apathetic towards sinful activities can possibly be tormented by terror (like a fatal disease) The composed (*Tirthankar* Mahavir) said that under such circumstances he should tolerate (with equanimity) those afflictions.

It is certain that this enchanting body will be abandoned sooner or later This body is of transitory and destructible nature It is impermanent, unstable, non-eternal. It continues to wax and wane To undergo a variety of transformations is its nature Observe this form (nature) of the body.

He who properly visualizes this form (nature) of this body, who dwells in the dimension that is soul, who is free of any fondness, and refrains from violence (etc), does not wander in the world (cycles of rebirth)

—So I say

विवेचन–'णत्थि मग्गे विरयस्स' इस पद मे बताया है, हिसादि आस्रव द्वारो से निवृत्त मुनि के लिए कोई अन्य मार्ग नही है। इस कथन के तीन अर्थ होते है–

(१) इस जन्म मे अनेक प्रकार की शुभ भावनाओ के अनुप्रेक्षण के कारण शरीरादि की आसक्ति से मुक्त साधक के लिए नरक-तिर्यचादि गति का मार्ग नही है–वह बन्द हो जाता है।

(२) उसी जन्म में समस्त कर्मक्षय हो जाने के कारण उसके लिए चतुर्गति रूप कोई मार्ग नही है।

(३) जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु, ये चार दु:ख के मुख्य मार्ग है। विरत और विप्रमुक्त के लिए ये मार्ग बन्द हो जाते हैं।

यहाँ पर छद्मस्थ श्रमण के लिए प्रथम और तृतीय अर्थ घटित होता है। समस्त कर्मक्षय करने वाले केवली के लिए द्वितीय अर्थ समझना चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त साधक ससार-भ्रमण से मुक्त हो जाता है।

(*आचारागवृत्ति*, पत्राक १८७)

Elaboration—***Natthi magge virayass***—The detached have no path This phrase conveys that an ascetic who has blocked the sources of inflow of *karmas*, such as violence, have no other path. This can be interpreted three ways—

(1) As a result of deep contemplation on various types of pious or good feelings, for an aspirant who is free of any attachment for the

body and other mundane things, the path leading to hell or birth as an animal is closed.

(2) As he sheds all the *karmas* during that specific birth, for him all the paths leading to four types of rebirth are closed

(3) Birth, aging, ailment and death are the four main paths leading to misery. For a detached and alert seeker these paths are closed

Here the first and the third meanings refer to an ordinary or *chhadmasth* (one who has a finite cognition, not omniscience) ascetic For an omniscient who has shed all the *karmas* the second meaning holds true Thus a detached and alert aspirant gets liberated from the cycles of rebirth

परिग्रह-त्याग की प्रेरणा

१५५. आवंती केआवंती लोगंसि परिग्गहावंती से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा, एतेसु चेव परिग्गहावंती।

एतदेवेगेसिं महब्भयं भवति।

लोगवित्तं च णं उवेहाए। एते संगे अविजाणतो।

१५५. लोक मे जितने मनुष्य परिग्रहवान् हैं, वे अल्प, या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त वस्तु का सग्रह करते हैं। वे इन (वस्तुओं) में (मूर्च्छा-ममता के कारण) परिग्रहवान् है।

यह परिग्रह ही उनके लिए महाभय का कारण होता है।

साधको ! असयमी–परिग्रही लोगों के वित्त–(धन या वृत्त) को देखो। जो इन आसक्तियों को नहीं जानता, वह महाभय को पाता है।

INSPIRATION TO RENOUNCE POSSESSIONS

155. In this world all those who are acquisitive collect little or more, minute or gross, and living or non-living things They are acquisitive (due to their fondness) for these (things). This avarice is the cause of great fear for them.

Aspirants, observe the wealth (field) of these indisciplined (acquisitive). He who does not know these attachments suffers great fear.

विवेचन–'एतेसु चेव परिग्गहावती' पद का वृत्तिकार ने रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा है–परिग्रह चाहे थोड़ा-सा भी हो या अधिक हो, सचित्त–(शिष्य-शिष्या का) हो या अचित्त–(शास्त्र, पुस्तक, वस्त्र, पात्र, क्षेत्र, यश, प्रसिद्धि आदि का) हो, अल्प मूल्यवान् हो या बहुमूल्य हो, यदि साधक की मूर्च्छा, ममता या आसक्ति इनमे से किसी भी पदार्थ पर थोडी या अधिक रहती है तो महाव्रतधारी होते हुए भी उसकी गणना परिग्रहवान् गृहस्थो में होती है।

'एतदेवेगेसि महब्भयं भवति'–इस वाक्य में आये 'एगेसिं' से तात्पर्य उन कतिपय साधकों से हैं, जो अपरिग्रहव्रत धारण कर लेने के बावजूद भी अपने उपकरणों या शिष्यों आदि पर मूर्च्छा-ममता रखते हैं। अथवा किसी भी रूप में पदार्थों के सग्रह से सम्बद्ध रहते हैं। जैसे गृहस्थ के मन मे परिग्रह की सुरक्षा का भय बना रहता है, वैसे ही मूर्च्छा रखने वाले साधक के मन में भी सुरक्षा का भय बना रहता है। इसलिए परिग्रह को महाभय रूप कहा है। यदि इस कथन का साक्षात् अनुभव करना हो तो महापरिग्रही लोगों के वृत्त (चरित्र/आचरण) अथवा वित्त (मन की स्थिति) को देखो कि उन्हें अहर्निश कितनी चिन्ता व भय बना रहता है।

'लोगवित्त'–लोक वृत्त का एक अर्थ–लोगो का व्यावहारिक कष्टमय जीवन है तथा दूसरा अर्थ–लोक-सज्ञा से है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप लोक-सज्ञा को भय रूप जानकर उसकी उपेक्षा कर दे। *(आचार्य श्री आत्माराम जी कृत टीका,* पृ ४५)

Elaboration—***Etesu cheva pariggahavanti***—They are acquisitive of these Explaining this phrase the commentator (*Vritti*) says—Irrespective of the possession being little or more, living (disciples) or non-living (scriptures, books, dresses, pots, area, glory and fame), and cheap or costly, if the aspirant has a little or excessive fondness or attachment for any of the said things, he is counted among the householders having acquisitiveness even when he is an ascetic observing great vows

Etadevegesim mahabbhayam bhavati—This is the cause of great fear for them In this phrase the word *egesim* points at those few seekers who nurture fondness for their equipment and disciples, or are in any way connected with acquisition of things even after accepting the vow of non-possession A householder is always apprehensive of security, so is an aspirant having fondness for things Therefore possession is called a great fear If you want to experience this, observe the conduct or mental state of the avaricious people and see how they are constantly haunted by worries and fears

Logavittam—Worldly circle or field. One meaning of this term is painful social life of the masses. Another meaning is mundane awareness Food, fear, copulation and acquisitiveness are manifestations of mundane awareness This should be considered as fear and avoided (*Tika by Acharya Shri Atmaram ji*, p 45)

१५६. से सुपडिबुद्धं सूवणीयं त्ति णच्चा। पुरिसा ! परमचक्खू ! विपरिक्कमा।

एतेसु चेव बंभचेरं त्ति बेमि।

से सुयं च मे अज्झत्थं च मे–बंधपमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव।

१५७. एत्थ विरए अणगारे दीहरायं तितिक्खए।

पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्तो परिव्वए।

एयं मोणं सम्मं अणुवासेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१५६ वह (परिग्रह महाभय का कारण है) सम्यक् प्रकार से प्रतिबुद्ध (ज्ञात) है और सम्यक् रूप मे उपदिष्ट है, यह जानकर, हे परम चक्षुष्मान् (–मोक्षदृष्टि-सम्पन्न) पुरुष ! तू (–परिग्रह का त्याग करने के लिए) पराक्रम कर।

(जो परिग्रह के त्यागी हैं–) उनमें ही ब्रह्मचर्य होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

मैंने सुना है, मैने अनुभव किया है कि बन्ध और मोक्ष तुम्हारी आत्मा में ही स्थित है।

१५७. (इस परिग्रह से) विरत अनगार परीषहों को दीर्घ रात्रि/मृत्युपर्यन्त–जीवनभर सहन करे।

जो प्रमत्त हैं, उन्हे निर्ग्रन्थ धर्म से बाहर जानो। अप्रमत्त होकर परिव्रजन (मोक्ष की ओर विचरण) कर।

इस मुनिधर्म का सम्यक् प्रकार से परिपालन कर।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

156. It (avarice is the cause of great fear) is properly known, and has been properly explained. Knowing this, O ultimate visionary (endowed with vision of liberation) ! You should make endeavour (to renounce possessions).

Only they (who renounce possessions) are celibate. So I say.

I have heard, I have experienced, that bondage and liberation exist only in your soul.

157. The detached (from possessions) ascetic should tolerate afflictions till the long-night (death)

Those who are not alert (under stupor) should be considered as out of the ascetic religion. Be alert and move around (progress towards liberation)

Properly (steadfastly) follow this ascetic religion (conduct)

—So I say

विवेचन–'सूवणीय ति णच्चा' के स्थान पर चूर्णि में पाठ है–'सुत अणुविचितेति णच्चा'। अर्थ किया गया है–"सुतेण अणुविचिंतित्ता गणधरेहिं णच्चा"–अर्थात् सूत्र से तदनुरूप चिन्तन करके गणधरो द्वारा प्रस्तुत है, इसे जानकर । 'अज्झत्थ' के बदले चूर्णि मे पाठ है–'अज्झत्थितं।' अर्थ किया है–"ऊहित गुणित चिन्तितं ति।" 'अध्यात्मितं' का अर्थ होता है–ऊहित, गुणित या चिन्तित। यानी (मन मे) ऊहापोह कर लिया है, चिन्तन कर लिया है, या गुणन कर लिया है।

'एतेसु चेव बंभचेरं' इस पद का भाव यह है कि जो परिग्रह का त्यागी होता है, वही ब्रह्मचर्य की साधना कर सकता है। आचार्यों ने ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ किये हैं–(१) आत्म-रमण, (२) जननेन्द्रिय-संयम–मैथुन-त्याग, तथा (३) गुरुकुल वास। पदार्थों के प्रति मूर्च्छा व आसक्ति रखने वाला आत्म-रमण नहीं कर सकता। वैसा आसक्त व्यक्ति इन्द्रियों पर संयम भी नही कर सकता और न ही वह गुरुजनों के अनुशासन मे रह सकता है। इसलिए यहाँ परिग्रह का त्याग करने पर ही ब्रह्मचर्य की साधना की शक्यता बताई है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि भगवान पार्श्वनाथ के शासन मे ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को सम्मिलित कर चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा की गई थी। अत अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का परस्पर अटूट सम्बन्ध माना गया है।

'परम चक्खु' के दो अर्थ हैं–जिसके पास परम ज्ञानरूपी नेत्र है, अथवा परम मोक्ष पर ही जिसकी दृष्टि टिकी है वह परम चक्षुष्मान्। (*आचारांग वृत्ति*, पत्र १८२)

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—***Suvaniyam ti nachcha***—In the commentary (*Churni*) there is an alternative reading—*'suta anuvichinteti nachcha'* The meaning given is—'It has been presented by the

Ganadhars after contemplation according to the original text, knowing this ' In the commentary (*Churni*) we find *ajjhatthitam* in place of *ajjhattham* and the meaning given is pondered, thought, or contemplated In other words—it has been thought over, pondered over or contemplated over

Etesu cheva bambhachare—only they are celibate. Only he who renounces possessions is able to practice celibacy The *acharyas* have given three meanings of the term *brahmacharya*—(1) To dwell in the self, (2) celibacy, and (3) living in *gurukul* (a type of boarding school) One who has liking or attachment for things cannot dwell in the self Such person can neither exercise control over sense organs nor can he live under the discipline of a teacher Therefore it is indicated here that the capability of observing *brahmacharya* only comes by renouncing possessions Another reason for this concept could be that in the order established by *Bhagavan* Parshvanath a four fold path, combining *aparigrah* (non-possession) with *brahmacharya* (celibacy) was propagated Therefore it is believed that there is an essential relationship between the two

Param chakkhu—ultimate eyes This has two meanings He who has the ultimate knowledge He who only sees the ultimate state or liberation (*Acharanga Vritti*, leaf 182)

● **END OF LESSON TWO** ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

मुनि धर्म की प्रेरणा

१५८. आवंती केआवंती लोगंसि अपरिग्गहावंती, एएसु चेव अपरिग्गहावंती।

सोच्चा वई मेहावी पडियाणं निसामिया। समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।

जहेत्थ मए संधी झोसिए एवमण्णत्थ संधी दुज्झोसिए भवति। तम्हा बेमि णो णिहेज्ज वीरियं।

१५८ इस लोक मे जितने जो अपरिग्रही साधक हैं, वे इन पदार्थों में (मूर्च्छा न रखने के कारण) ही अपरिग्रही कहे जाते हैं।

"आर्यों (तीर्थंकरो) ने समता मे धर्म कहा है"–पंडितों (आचार्यों) की यह वाणी सुनकर बुद्धिमान पुरुष उस पर मनन करें।

(भगवान महावीर ने कहा–) जैसे मैने ज्ञान-दर्शन-चारित्र धर्म की सन्धि (सयुक्त रूप में) आराधना की है, वैसी आराधना दूसरों के लिए दु साध्य–कठिन है। इसलिए मै कहता हूँ (मोक्ष मार्ग की साधना में), अपनी शक्ति को छिपाओ मत।

INSPIRATION FOR ASCETIC RELIGION

158. All the detached aspirants in this world are called detached because of the absence of fondness for these things

"The *Aryas* (*Tirthankars*) have said that religion exists in equanimity", hearing these words from the Pundits (*acharyas*) the wise should ponder over that

(*Bhagavan* Mahavir said—) The combined practice of knowledge, perception and conduct, I did is difficult for others to follow Therefore I say, do not conceal (impede) your energy (in practices leading to liberation).

विवेचन–वृत्तिकार ने 'समियाए धम्मे आरिएहि पवेइए' इस पद के दो अर्थ किये हैं–

(१) आर्यों–तीर्थंकरो ने समता में धर्म बताया है।

(२) देशार्य, भाषार्य, चारित्रार्य आदि आर्यों मे भगवान ने समता से तटस्थ भावपूर्वक धर्म का कथन किया है।

Elaboration—The commentary (*Vrıttı*) has given two meanıngs of the phrase—*samıyae dhamme arıehım paveıye*—

(1) The *Aryas* (*Tırthankars*) have saıd the religıon to be ın equanimity

(2) *Bhagavan* has propagated religion wıth equanimıty (ımpartıality) among the nobles lıke *desharya* (from a noble country), *bhasharya* (havıng noble language) and *charıtarya* (noble ın conduct)

तीन प्रकार के साधक

१५९. जे पुव्वुट्ठाई णो पच्छाऽणिवाई। जे पुव्वुट्ठाई पच्छाणिवाइ। जे णो पुव्वुट्ठाई णो पच्छाणिवाई।

से वि तारिसए सिया जे परिण्णाय लोगमणुस्सिओ।

एयं नियाय मुणिणा पवेइयं इह आणाकंखी पंडिए अणिहे पुव्वावररायं जयमाणे सया सीलं संपेहाए सुणिया भवे अकामे अझंझे।

१५९ (साधक तीन प्रकार के होते हैं)–(१) कोई एक साधक पहले साधना मार्ग के लिए उद्यत होता है जीवन पर्यन्त उत्थित ही रहता है, कभी नही गिरता। (२) कोई साधक साधना के लिए पहले उठता है, किन्तु बाद में गिर जाता है। (३) कुछ एक साधक ऐसे होते है जो न तो पहले उठते है और न ही बाद मे गिरते है।

जो मुनि ससार को त्यागकर पुन उसी का आश्रय लेता है, वह भी वैसा ही (गृहस्थ तुल्य) हो जाता है।

भावो के इस उत्थान-पतन को जानकर मुनीन्द्र (भगवान) ने कहा है–वह पंडित आज्ञा मे रुचि रखे। स्नेह–आसक्ति से दूर रहे। रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर मे (स्वाध्याय और ध्यान में) यतनावान् रहे। शील आचार का सतत सम्प्रेक्षण–अनुशीलन करे। शील का फल सुनकर काम और लोभेच्छा का त्याग कर दे।

THREE TYPES OF ASPIRANTS

159. (Seekers are of three types—) (1) Some seeker first prepares himself for the path of religious practices and then all the life he continues to rise and never falls. (2) Some seeker first rises and then falls. (3) Some seekers are such that neither thev rise first nor do they fall afterwards.

The ascetic who renounces the world and then again takes refuge in it becomes likewise (like a householder).

Knowing this rise and fall of attitudes the king of ascetics (*Bhagavan*) has said—That *pundit* (ascetic) should have affinity for the order (tenets) He should be away from fondness (attachment) During the first and the last quarters of the night he should be careful (in studies and meditation) He should be ever steadfast in following the codes of conduct. Hearing about the fruits of good conduct he should abandon carnal desires and greed

विवेचन–सभी जीवो मे परिणामों की भिन्नता, तरतमता रहती है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर यहाँ साधना करने वालो के तीन विकल्प बताये हैं–

(१) कोई साधक सिहवृत्ति से वैराग्यभाव के साथ गृह-त्याग करता है और उसी वैराग्यभावपूर्वक जीवन पर्यन्त स्थिर रहता है, वह 'पूर्वोत्थायी पश्चात् अनिपाती है।' इस भंग के उदाहरण के रूप मे गणधरों तथा धन्ना एव शालिभद्र आदि मुनियो को लिया जा सकता है।

(२) कोई सिंहवृत्ति से निष्क्रमण करता है, किन्तु बाद मे शृगालवृत्ति वाला हो जाता है। यह 'पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती' नामक द्वितीय भंग है। इस भग के उदाहरण रूप मे नन्दिषेण, कुण्डरीक आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है, जो पहले तो बहुत ही उत्साह एवं वैराग्य के साथ दीक्षा के लिए उत्थित हुए, लेकिन मोहकर्म के उदय से बाद में सयमी जीवन में शिथिल और पतित हो गये थे।

वृत्तिकार ने इसके दो भंग और बताये है–

(३) जो पूर्व में प्रव्रजित तो न हो, और बाद मे श्रद्धा से भी गिर जाय। इस भग के दृष्टान्त रूप मे किसी श्रमणोपासक गृहस्थ को ले सकते है, जो मुनिधर्म के लिए तो तैयार नही हुआ, किन्तु जीवन के संकटापन्न क्षणों में सम्यग्दर्शन से भी गिर गया।

(४) चौथा भग है–जो न तो पूर्व उत्थित होता है और न ही पश्चान्निपाती। इसके उदाहरण के रूप में बालतापसो को ले सकते है, जो न तो मुनिधर्म मे दीक्षित होने के लिए तैयार हुए और जब उठे ही नहीं तो गिरने का प्रश्न ही नहीं।

मुनिधर्म में स्थिरता धारण करने के लिए निम्न सूत्रो का संकेत किया गया है–

(१) साधक आज्ञाकाक्षी हो। तीर्थंकरों का उपदेश और तीर्थंकर प्रतिपादित आगम ज्ञान के प्रति श्रद्धाशील हो।

(२) पण्डित हो–सद्-असद् विवेकी हो।

(३) आसक्ति से रहित हो।

(४) पूर्व रात्रि (प्रथम प्रहर) और अपर रात्रि (अंतिम प्रहर) में स्वाध्याय, ध्यान में अप्रमत्त रहकर धर्म जागरणा करे।

(५) शील-सम्प्रेक्षा करे। शील-सम्प्रेक्षा के चार भेद हैं–(१) महाव्रतों की आराधना, (२) मन-वचन-काया के योगों की रक्षा, (३) पञ्चेन्द्रिय संयम, और (४) क्रोधादि चार कषायों का निग्रह।

(६) लोक में सारभूत परमतत्त्व का श्रवण करके कामनारहित, इच्छा एवं लोभ से मुक्त रहे।

(७) झंझा (माया या कलह) से रहित हो जाय।

इन विविध उपायों का सहारा लेकर मुनि अपने मार्ग मे सतत आगे बढ़ता रहे।

Elaboration—There are differences or grades in the attitudes of all beings Keeping this fact in mind three types of aspirants have been shown here—

(1) Some aspirant renounces mundane life with a strong lion-like attitude and all his life remains stable with the same attitude of detachment He rises first and does not fall later Examples of this type are—Ganadhars, Dhanna and Shalibhadra

(2) Some aspirant renounces mundane life with a strong lion-like attitude but later acquires a weak jackal-like attitude This is the second type—rises first and falls later Some examples of this type are—Nandishen and Kundareek who accepted initiation with great enthusiasm and detachment but later, due to influence of *Mohaniya karma*, became lax in discipline and fell from grace

The commentator has given two more types—

(3) Some aspirant, in the first instance, does not get initiated and later looses right faith also As an example one can take an indoctrinated shravak who does not advance enough to get initiated as an ascetic and looses right faith also, when in trouble

(4) The fourth type is of a person who neither rises at first nor falls later. Examples of this type are ignorant hermits who are not

ready to get initiated in the ascetic order. Where is the question of a fall when they did not rise at all

The following points have been indicated for gaining stability in ascetic conduct—

(1) The seeker should strive for the tenets He should have faith in the tenets of the *Tirthankars* and the knowledge contained in the *Agams* propagated by them

(2) He should be a pundit or should have the capacity to discern between right and wrong

(3) He should be free of any attachments

(4) He should devote the first and the last quarters of night to religious activities and be alert in studies and meditation

(5) He should be sincere in right conduct This has four categories—(1) Observing great vows, (2) Maintaining stability in discipline of mind, speech and body, (3) Disciplining the five sense organs, and (4) Controlling four passions including anger

(6) He should listen to the ultimate fundamental which is the essence of this world and be free of lust desires and greed

(7) He should become free of any inner agitations (deceit and quarrel)

With the help of all these various methods an ascetic should continue to progress on his path

अंतर युद्ध

१६०. इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ?

जुद्धारिहं खलु दुल्लहं। जहेत्थ कुसलेहिं परिण्णाविवेगे भासिए।

चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ। अस्सिं चेयं पवुच्चइ रूवंसि वा छणंसि वा।

से हु एगे संविद्धपहे मुणी अण्णहा लोगमुवेहमाणे।

१६०. इसी (कर्म-शरीर) के साथ युद्ध कर, दूसरो के साथ युद्ध करने मे तुझे क्या मिलेगा ?

युद्ध के योग्य (साधन) निश्चित ही दुर्लभ है।

युद्ध के विषय में भगवान ने परिज्ञा ज्ञान और विवेक का कथन किया है।

धर्म-साधना से च्युत होने वाला अज्ञानी गर्भ आदि में भ्रमण करता है। इस जिनशासन मे यह कहा जाता है–रूप (तथा रसादि) में एवं हिंसा (असत्यादि) में (आसक्त होने वाला) धर्म से पतित हो जाता है। जो लोक को अन्यथा देखता है, वही मुनि मोक्ष पथ पर आरूढ़ रहता है।

INNER STRUGGLE

160. You should fight with this (the *karmic* body) only, what will you gain by fighting others ?

The means to fight are certainly scarce.

Bhagavan has told about the knowledge and discerning attitude related to a fight

An ignorant who has drifted away from the religious path wanders in wombs (cycles of rebirth). Here (in this order of the *Jina*) it is said—He who is infatuated with form (and taste, etc) and violence (and falsity, etc) drifts away from the religious path The ascetic who looks at the world otherwise, remains steadfast on the path of liberation

विवेचन–इन सूत्रो मे बाह्य युद्धों से विरत होकर आन्तरिक आत्म-युद्ध की प्रेरणा दी गई है। भगवान कहते हैं–वत्स ! तुम्हें बाह्य युद्ध नहीं, आन्तरिक युद्ध करना है। स्थूल शरीर के साथ तथा कर्मो के साथ लडना है। यह औदारिक शरीर विषय-सुखपिपासु है और स्वेच्छाचारी बनकर तुम्हे नचा रहा है, इसके साथ भी युद्ध करो और उस कर्म-शरीर के साथ भी लड़ो, जो काम आदि वृत्तियो के माध्यम से तुम्हे अपना दास बना रहा है। कर्म-शरीर और स्थूल-शरीर के साथ आन्तरिक युद्ध करके कर्मों को क्षीण कर देना है।

'**जुद्धारिह**' के बदले कहीं '**जुद्धारिय च दुल्लहं**' पाठ भी है। इसका वृत्तिकार ने अर्थ किया है–युद्ध दो प्रकार के होते हैं–अनार्य युद्ध और आर्य युद्ध। **तत्रानार्यं संग्रामयुद्धं, परीषहादि रिपुयुद्धं त्वार्यं, तद् दुर्लभमेव तेन युद्ध्यस्व।** अनार्य युद्ध है शस्त्रास्त्रों से संग्राम करना। परीषहादि शत्रुओं के साथ आन्तरिक युद्ध करना आर्य युद्ध है, वह दुर्लभ है। अत· परीषहादि के साथ आर्य युद्ध करो।

क्षुधा, पिपासा, सुख-शीलता आदि को जीतना शरीर के साथ युद्ध है तथा मोह, कषाय आदि पर विजय पाना कर्म के साथ युद्ध है।

परिज्ञा और विवेक आन्तरिक युद्ध के दो शस्त्र हैं। परिज्ञा से वस्तु का ज्ञान और विवेक से उसके पृथक्करण की दृढ़ भावना की जाती है। मुनि ज्ञान एव विवेक के द्वारा राग-द्वेष को जीतता है। विवेक कई प्रकार का होता है जैसे—धन, परिवार, शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि से पृथक्त्व/भिन्नता का चिन्तन करना—परिग्रह-विवेक है। कर्म से आत्मा के पृथक्त्व की दृढ़ भावना करना कर्म-विवेक है और विभावों से आत्मा को पृथक् समझना भाव-विवेक है।

Elaboration—These aphorisms contain advise to shift from outer fights to inner fights *Bhagavan* says—Son ! You have to indulge in inner struggle and not the outer one You have to fight with the gross body and the *karmas* This *audarik-sharir* (physical body) craves for pleasure It has become reckless and makes you dance to its tunes Fight with it Also fight with the *karmic* body that enslaves you with the help of lust and other such attitudes You have to weaken the *karmas* through inner struggle with the *karmic* body and the gross body

At some places we find *juddhariyam cha dullaham* instead of *juddhariham* According to the commentator (*Vritti*) this means—Fight is of two types—not noble and noble To fight with weapons and other such equipment is not noble To fight against inner enemies like afflictions (passions, etc) is noble and it is difficult Therefore, have a noble fight with afflictions

To try to win over hunger, thirst, pleasure, comfort, etc is struggle with the body To try to win over fondness, passions, etc is struggle with the *karmas*

Awareness or knowledge and *vivek* (discerning attitude or ability to discern) are the two weapons for inner struggle Awareness leads to knowledge about a thing and *vivek* leads to a strong desire of separation or riddance from it An ascetic wins over attachment and aversion with the help of knowledge and *vivek* *Vivek* is of many types, for example, to think about variance or distinct existence with respect to wealth, family, body, sense organs, mind, etc is called *parigraha-vivek* (discerning attitude about attachment) To have a strong feeling about the distinct existence of soul with respect to *karmas* is *karma-vivek* (discerning attitude about *karma*), and to

consider soul separate from feelings is *bhava-vivek* (discerning attitude about feelings).

१६१. इति कम्मं परिण्णाय सव्वसो से ण हिंसति, संजमति, णो पगब्भति।

उवेहमाणे पत्तेयं सायं।

वण्णाएसी णारभे कंचणं सव्वलोए।

एगप्पमुहे विदिसप्पइण्णे निव्विण्णचारी अरए पयासु।

से वसुमं सव्वसमन्नागय-पण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं तं णो अन्नेसिं।

१६१. इस प्रकार कर्मस्वरूप को भलीभाँति जानकर वह हिंसा नही करता है। संयम का आचरण करता है, तथा धृष्टता–अविवेकपूर्ण आचरण नही करता।

साधक यह विचार करे कि प्रत्येक प्राणी का सुख अपना-अपना होता है।

लोक मे यश-कीर्ति की अभिलाषा से किसी की हिसा न करे।

मुनि अपने एक मात्र लक्ष्य मोक्ष की ओर मुख करके चले तथा विरोधी दिशाओ को पार कर जाए, (शरीरादि के प्रति) विरक्त होकर विचरे, स्त्रियों के प्रति अनासक्त रहे।

सयमधनी मुनि सर्व समन्वागत प्रज्ञारूप (सत्यनिष्ठ बुद्धि) अन्त करण से पापकर्म को अकरणीय समझकर उसका अन्वेषण न करे।

161. Thus, perfectly knowing the form of *karma*, he does not indulge in violence He follows the conduct of discipline and avoids insolence or a conduct devoid of *vivek*

An aspirant should think that every being has its own pleasures

He should not commit violence against anything with the desire of fame in this world

An ascetic should progress singularly looking at the goal of liberation; he should cross over all diverse directions (pathways) He should move with detachment (for body, etc.), and he should have no attraction for women.

A disciplined ascetic should refrain from exploring sinful activities considering them, with his all enveloping sagacity, to be proscribed.

सम्यक्त्व-मुनित्व की एकता

१६२. जं सम्म ति पासहा त मोणं ति पासहा। ज मोणं ति पासहा तं सम्मं ति पासहा। ण इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं वंकसमायारेहिं पमत्तेहिं गारमावसंतेहिं।

मुणी मोणं समादाय धुणे सरीरग।

पत लूहं सेवति वीरा सम्मत्तदंसिणो।

एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए।

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१६२ जो सम्यक्त्व को देखता है, वह मुनित्व को देखता है। जो मुनित्व को देखता है, वह सम्यक्त्व को देखता है। उनके लिए इस मुनित्व की आराधना शक्य नही है, जो शिथिल (कायर) है, स्नेहयुक्त है, इन्द्रिय-विषयो के लोलुप है, वक्र आचार (कपटवृत्ति) वाले है, जो प्रमादी है और गृहवासी है।

मुनि मौन (ज्ञान) को ग्रहण कर कर्म-शरीर को प्रकम्पित करे–क्षीण करे।

समत्वदर्शी वीर पंत–(बासी) और रूक्ष (रसरहित) आहार का सेवन करते है।

जो जन्म-मृत्यु के ओघ (प्रवाह) को तैरने वाला है, वह मुनि तीर्ण, मुक्त और विरत कहा जाता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

ONENESS OF *SAMYAKTVA* AND ASCETICISM

162. He who sees *samyaktva* (a specific state of righteousness where right perception and right knowledge start translating into right conduct), sees asceticism He who sees asceticism also sees *samyaktva* The practice of this asceticism is not possible for those who are lax (cowardly), soft or timid, infatuated with the sensual pleasures, deceitful, lethargic and householders

An ascetic should acquire silence (knowledge) and vibrate (weaken) his *karmic* body

The brave who are aware of equanimity eat stale and dry (tasteless) food

The ascetic who crosses the flow of life and death is called *teern* (one who has crossed), liberated and uninvolved.

—So I say.

विवेचन—इस सूत्र मे 'सम्यक्' और 'मौन' दो शब्द विशेष मननीय हैं। सम्यक् शब्द से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र इन तीनों ग्रहण किया गया है। मौन का अर्थ है मुनित्व। वास्तव में जहाँ सम्यग्दर्शनादि होंगे, वहाँ मुनित्व का होना अवश्यम्भावी है और जहाँ मुनित्व होगा, वहाँ सम्यग्दर्शन आदि का होना अनिवार्य है।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In this aphorism two words need special attention The word *samyak* (right) includes right perception, right knowledge and right conduct *Maun* means asceticism or the state of being an ascetic In fact where there is right perception (etc), asceticism is inevitable and vice versa

● END OF LESSON THREE ●

चउत्थो उद्देसओ | चतुर्थ उद्देशक | LESSON FOUR

एकाकी चर्या-विवेक

१६३. गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स दुज्जातं दुप्परक्कतं भवति अवियत्तस्स भिक्खुणो।

वयसा वि एगे बुइआ कुप्पंति माणवा।

उन्नयमाणे य णरे महया मोहेण मुज्झति।

सबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो दुरतिक्कमा अजाणतो अपासतो।

एयं ते मा होउ। एयं कुसलस्स दसणं।

तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे।

जयं विहारी चित्तणिवाती पंथणिज्झाई पलिबाहरे पासिय पाणे गच्छेज्जा।

से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे संकुचेमाणे पसारेमाणे विणियट्टमाणे संपलिमज्जमाणे।

१६३ जो भिक्षु अव्यक्त (–अपरिपक्व) अवस्था मे ही अकेला ग्रामानुग्राम विहार करता है (उसका एकाकी विहार) दुर्यात (–उपद्रवो सहित) और दुष्पराक्रम (–साधना मार्ग के प्रतिकूल) है।

अव्यक्त मानव (अल्पमात्र प्रतिकूल–) वचन सुनने पर भी कुपित हो जाते है।

एकाकी विचरण करता हुआ वह स्वय को उत्कृष्ट मानने के अहकार से मोह मूढ़ हो जाता है। उपसर्गो एवं रोग-आतक आदि सबाधाओ–पीडाओ से बार-बार पीडित हो जाता है। अज्ञानी और अतत्त्वदर्शी उन बाधाओ को पार नही पा सकता है, वे बाधाएँ उसके लिए दुर्लघ्य होती है।

मै अव्यक्त अवस्था मे अकेला विहार करूँ, ऐसा विचार तुम्हारे मन मे कदापि न आवे।

यह कुशल (महावीर) का दर्शन/उपदेश है।

परिपक्व साधक उस (–वीतराग महावीर के दर्शन) मे ही एक मात्र दृष्टि रखे, उनके द्वारा प्ररूपित मार्ग मे तन्मय हो जाय, उसी को सम्मुख रखकर विचरण करे, उसी की स्मृति सतत रखे, उसी के सान्निध्य मे तल्लीन होकर रहे।

मुनि यतनापूर्वक विहार करे, चित्त को गति में ही एकाग्र रखे, पथ का सतत अवलोकन करते हुए चले। जीव-जन्तु को देखकर पैरो को आगे बढ़ने से रोक ले और मार्ग मे आने वाले प्राणियों को देखकर गमन करे।

वह (गीतार्थ पुरुष) जाता हुआ, वापस लौटता हुआ, अंगों को सिकोड़ता हुआ, फैलाता (पसारता हुआ) समस्त अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर, सम्यक् प्रकार से परिमार्जन (रजोहरणादि से) करता हुआ संयमपूर्वक समस्त क्रियाएँ करे।

VIVEK OF LIVING IN ISOLATION

163. The solitary movement of an ascetic who furtively (prematurely) wanders from one village to another is fraught with disturbances and is foolhardy (against the codes of conduct).

An immature person gets irritated when he hears even slightly unpleasant words

Moving alone, he is deluded with the pride of considering himself to be the best He is repeatedly tormented by afflictions and disease An ignorant and apostate cannot cross those hurdles.

I will furtively lead a solitary life Such thought should never cross your mind

This is the philosophy (preaching) of the accomplished (Mahavir)

A mature aspirant should have single minded attention on that (the philosophy of the Detached Mahavir). He should get engrossed in the path propagated by him. He should move about keeping only that before him. He should always remember that. He should live completely engulfed by it.

An ascetic should be careful in his movement He should focus his attention only on movement (progress) He should move seeing the path cautiously every moment. When he sees animals and creatures, he should stop advancing his steps and while moving, avoid the beings coming in his path.

That wise person should indulge in all activities including going, returning, constricting and spreading limbs, only after composing himself, getting rid of all bad attitudes and cleansing properly (with the help of ascetic-broom).

विवेचन–अव्यक्त अगीतार्थ साधु को एकाकी विचरण का निषेध करते हुए वृत्तिकार ने अव्यक्त के दो प्रकार बताये हैं–(१) श्रुत (ज्ञान) से अव्यक्त, और (२) वय (अवस्था) से अव्यक्त।

जिस साधु ने 'आचारप्रकल्प' (निशीथ सूत्र) का अर्थ सहित अध्ययन नहीं किया है, वह श्रुत से अव्यक्त है। जो सोलह वर्ष की उम्र से कम हो वह वय से अव्यक्त है।

इस सूत्र की चतुर्भंगी इस प्रकार है–

(१) कुछ साधक श्रुत और वय दोनों से अव्यक्त होते हैं।

(२) कुछ साधक श्रुत से अव्यक्त, किन्तु वय से व्यक्त होते हैं।

(३) कुछ साधक श्रुत से व्यक्त किन्तु वय से अव्यक्त होते है।

उक्त तीनों भंग एकाकी विहार के योग्य नही हैं।

(४) कुछ साधक श्रुत और वय दोनों से व्यक्त होते हैं। वे भी प्रयोजन होने पर प्रतिमा स्वीकार करके एकाकी विहार कर सकते है, किन्तु विशेष कारण के बिना उनके लिए भी एकाकी चर्या की अनुमति नहीं है। एकाकी विचरण मे अनेक दोषो की सम्भावना रहती है। अकस्मात् अतिसार या वायु कुपित होने से कोई व्याधि हो जाय तो सयम और आत्मा की विराधना होने की सम्भावना है, प्रवचन हीलना, सघ की बदनामी भी हो सकती है।

वृत्तिकार आचार्य बताते हैं अव्यक्त साधक के एकाकी विचरण में अनेक दोषो की संभावना रहती है। किसी व्यक्ति ने उसे छेड दिया या अपशब्द कह दिया तो उसके साथ भी गाली-गलौज या मारपीट करने को उद्यत हो जाने की सम्भावना है। गाँव मे कुलटा स्त्रियों के मायाजाल मे फँस जाने का खतरा है। कुत्तों आदि के भी उपसर्ग सम्भव हैं। धर्म-विद्वेषियो द्वारा उसे बहकाकर धर्मभ्रष्ट किये जाने की भी सम्भावना रहती है। जैसा कि कहा है–

"अक्कोस-हरण-मारण-धम्मब्भंसाण बालसुलभाण।
लाभ मण्णइ धीरो जहुत्तरण्ण अभावमि॥"

अव्यक्त साधु अनुभव मे और सयम-आचार के अभ्यास में कच्चा होने से प्रतिकूल प्रसग आने पर स्थिर नहीं रह सकता। क्योकि बाधाओ व उपसर्गों को सहन करने की क्षमता और कला विनय तथा विवेक से आती है। 'बाधाओं को सहन करने से क्या लाभ है?' इस पर विचार करने के लिए ज्ञान की अपेक्षा रहती है। अव्यक्त साधु में क्रोध तथा क्षमा के दूरगामी परिणाम को देखने की क्षमता नहीं होती। अत उसे अज्ञानी व अद्रष्टा कहा है।

स्थानांगसूत्र (८/५९४) में बताया है–एकाकी विचरने वाले साधु मे निम्न आठ गुण होने चाहिए–

(१) दृढ़ श्रद्धावान, (२) सत्पुरुषार्थी, (३) मेधावी, (४) बहुश्रुत, (५) शक्तिमान्, (६) अल्प उपधि वाला, (७) धृतिमान, तथा (८) वीर्य-सम्पन्न।

अव्यक्त साधु में ये गुण नहीं होते अत· उसका एकाकी विहार नितांत अहितकर बताया है।

'तद्दिट्ठिए तम्मुत्तीए'–आदि विशेषण ईर्या-समिति के भी सूचक हैं। चलते समय चलने में ही दृष्टि रखे, पथ पर नजर टिकाये, गति में ही बुद्धि को नियोजित करके चले आदि। चूर्णिकार ने आचार्य (गुरु) तथा ईर्या दोनो के साथ इसका सम्बन्ध बताया है जबकि टीकाकार ने इन विशेषणों को आचार्य के साथ जोड़ दिया है। जैसे–

(१) 'तद्दिट्ठीए'–शिष्य अपना स्वय का आग्रह त्यागकर गुरु की दृष्टि से ही चिन्तन करे।

(२) 'तम्मुत्तीए'–गुरु की आज्ञा में ही तन्मय हो जाय।

(३) 'तप्पुरक्कारे'–गुरु के आदेश को सदा शिरोधार्य करे।

(४) 'तस्सण्णी'–गुरु द्वारा उपदिष्ट विचारो की स्मृति में रम जाय।

(५) 'तण्णिवेसणे'–गुरु के चिन्तन में ही दत्तचित्त हो जाय।

उत्तराध्ययनसूत्र २४/८ में तुम्मुत्ती तप्पुरक्कार शब्दों का अर्थ ईर्या समिति परक किया है। चूर्णिकार का यह भी संकेत है कि इसी सूत्र के आधार पर आयार चूला के ईर्या अध्ययन का विस्तार किया गया है।

Elaboration—Proscribing the solitary movement of an immature and ignorant ascetic the commentator (*Vritti*) has defined two types of *avyakta* (immature)—(1) of immature scriptural knowledge, and (2) of immature age

The ascetic who has not studied the text and the meaning of *Achar Prakalp* (*Nisheeth Sutra*) is of immature scriptural knowledge One who is under sixteen years of age is of immature age

This aphorism provides four different combinations of these two conditions—

(1) Some ascetics are of immature scriptural knowledge as well as immature age

(2) Some are of immature scriptural knowledge but of mature age

(3) Some are of mature scriptural knowledge but of immature age

All these three combinations do not qualify for solitary movement

(4) Some aspirants are mature both in scriptural knowledge and age. Even they can opt for solitary movement only for some special purpose and that too after accepting *pratima* (special codes and resolutions for an ascetic) They too are not allowed to lead a solitary life without some special purpose Solitary life is fraught with possibilities of many faults in conduct If such ascetic suddenly suffers from stomach problems or other such ailments, there are possibilities of abuse of soul, discipline and preaching, thereby inviting disgrace for the religious organization

The commentator (*Vritti*) *acharya* says that there is a very wide scope for faults in solitary movement of an immature seeker If some person irritates him or uses bad language there are chances of his getting excited to the extent of abusing or even physically confronting the adversary There are possibilities of being allured by women of doubtful character in villages He may even be assaulted by stray dogs Adversaries may even conspire to mislead him and go against ascetic-codes (As is said in the quoted verse)

An immature ascetic, being inexperienced in practices of ascetic discipline, is unable to stick to the codes in difficult situation This is because the proficiency and capacity to tolerate difficulties and afflictions are acquired through humility and *vivek* 'What are the advantages of tolerating afflictions ?' To contemplate over this, one requires knowledge An immature ascetic does not have this ability to visualize the far reaching consequences of anger or clemency That is why he is said to be ignorant or lacking vision

In the *Sthananga Sutra* (8/594) are given the following eight attributes essential for an ascetic desirous of a life of isolation—

(1) Unwavering faith, (2) endeavour in right direction, (3) intelligence, (4) wide scriptural knowledge, (5) strength, (6) minimum *upadhi* (imposture), (7) firmness, and (8) abundance of vigour

An immature ascetic does not have these virtues Therefore, solitary life is said to be extremely harmful for him

Tadditthiye tammuttiye—these adjectives also point at *irya-samiti* (careful movement) While walking, pay attention to walking

only, look only at the path, employ wisdom only in proper movement, etc. The commentator (*Churni*) indicates that these adjectives refer to both *acharya* and *irya* whereas the commentator (*Tika*) connects them only with *acharya*, for example—

(1) ***Taddithiye***—The disciple should abandon his own dogmas and think only according to the *guru's* view

(2) ***Tammuttiye***—He should be engrossed in the word of the *guru*

(3) ***Tappurakkare***—Always give priority to *guru's* order.

(4) ***Tassanni***—Get fully involved in *guru's* preaching

(5) ***Tannivesane***—Should be absorbed in the thoughts of the *guru*

In *Uttaradhyayan Sutra* the interpretation of these terms has been done with reference to *irya-samiti* The commentator (*Churni*) is also of the opinion that the Chapter on *Irya* in *Ayara Chula* has been developed on the basis of this aphorism only

कर्म का बन्ध और मुक्ति

१६४. एगया गुणसमियस्स रीयतो कायसंफासमणुचिण्णा एगतिया पाणा उद्दायंति। इहलोग-वेयण-वेज्जावडियं।

जं आउट्टिकय कम्म तं परिण्णाय विवेगमेति।

एवं से अप्पमाएण विवेगं किट्टति वेयवी।

१६४. यतनापूर्वक प्रवृत्ति करते हुए गुणसमित (गुणयुक्त) अप्रमादी मुनि के शरीर का स्पर्श पाकर कदाचित् कुछ प्राणी परिताप पाते हैं अथवा कुछ प्राणी मर जाते हैं, तो उसके इस जन्म में वेदन करने (भोगने) योग्य कर्म का बन्ध होता है।

(किन्तु प्रमत्त मुनि के द्वारा) आकुट्टि से-अविधिपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए जो कर्मबन्ध होता है, उसका विवेक-क्षय, ज्ञपरिज्ञा से प्रायश्चित्त द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार अप्रमाद से कर्मो का क्षय होता है, ऐसा आगमज्ञानी कहते है।

BONDAGE OF *KARMAS* AND LIBERATION

164. Even while being careful in all his activities, when a virtuous and alert ascetic, through mere touch of his body, causes pain or death to some beings, he attracts *karmic*

bondage, but only to the extant that he suffers the consequences durıng this birth only.

But the *karmıc* bondage acquired through careless indisciplıned actıvıty (by a complacent ascetıc) has to be broken by expıatıon and austerities with *vıvek* (awareness about sheddıng the *karmas*)

Thus, alertness is instrumental ın sheddıng of *karmas* So say the *Agam* knowıng sages.

विवेचन–'गुणसमित' का अर्थ है ईर्या-समिति आदि से युक्त। ऐसा मुनि विहार आदि करते समय यदि उसके शरीर के स्पर्श से कोई प्राणी उपद्रवग्रस्त हो जाय या मर जाय तो उस अवस्था में कर्मबंध होता है या नहीं, इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत सूत्र मे दिया गया है। टीकाकार ने पाँच प्रकार से समाधान किया है–

(१) शैलेशी (१४वें गुण स्थानवर्ती) अवस्था प्राप्त मुनि के कर्मबध नहीं होता, क्योंकि कर्मबन्ध होता है योग के कारण, वहाँ पर योग निरोध हो चुका है।

(२) सयोगी वीतराग (११ से १३वे गुणस्थानवर्ती) अनगार को केवल दो समय की स्थिति वाला 'ईर्यापथिक' बंध होता है।

(३) अप्रमत्त (७ से १0वे गुणस्थानवर्ती) अनगार को जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट आठ मुहूर्त्त की स्थिति वाला कर्मबंध होता है।

(४) प्रमत्त संयत (छठे गुणस्थानवर्ती) अनगार को आगम मर्यादा के अनुसार गमन करते हुए यदि कर्मबध होता है तो वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष की स्थिति वाला होता है जो उसी भव में क्षीण हो जाता है।

(५) प्रमत्त सयत को यदि अविधिपूर्वक गमन करते हुए कर्मबंध होता है तो वह आकुट्टीकृत कर्म कहलाता है। उस कर्म को ज्ञानपूर्वक जानकर प्रायश्चित्त द्वारा नष्ट किया जाता है। क्योंकि प्रमाद से किया हुआ कर्म अप्रमाद से ही क्षय होता है। प्रायश्चित्त के १0 भेद स्थानांगसूत्र में बताये हैं।

Elaboration—*Guna samıt*—endowed wıth vırtues lıke *ırya-samıtı* (to be careful in movement) Thıs aphorısm provıdes answer to the doubt that ıf such vırtuous ascetıc causes paın or death to beıngs by mere touch of hıs body, does he bınd *karmas* ? The commentator (*Tıka*) has gıven five alternatıves—

(1) An ascetic in the *Shaileshi* state (at the 14th *Gunasthan*) does not attract any *karma* This is because the bondage of *karmas* is caused by affiliation and that state is devoid of any affiliation

(2) An ascetic in the *Sayogi Vitaraga* state (the detached having residual affinity, from 11th to 13th *Gunasthanas)* acquires the *iryapathik* bondage (transitional bondage) lasting just two *samaya* (the smallest fraction of time).

(3) An ascetic in the *Apramatta* state (the alert, from 7th to 10th *Gunasthanas*) acquires a minimum bondage lasting just one *antarmuhurt* (less than 48 minutes) or a maximum bondage lasting *eight muhurt* (six hours and 24 minutes)

(4) An ascetic in the *Pramatta Samyat* state (a negligent but disciplined ascetic, 6th *Gunasthana*) if acquires bondage while leading life conforming to *Agams* it is for a minimum period of one *antarmuhurt* (less than 48 minutes) or a maximum period of eight years and it is shed during that incarnation only

(5) An ascetic in the *Pramatta Samyat* state (a negligent but disciplined ascetic, 6th *Gunasthana*) if acquires bondage while leading life not conforming to *Agams* it is called *Akuttikrit karma*. Such *karma* is destroyed by atonement after consciously understanding it This is because the *karma* acquired due to stupor can be destroyed only by alertness Ten types of atonements are mentioned in *Sthananga Sutra*

ब्रह्मचर्य विवेक

१६५. से पभूयदसी पभूयपरिण्णाणे उवसंते समिए सहिए सदा जए दट्ठुं विप्पडिवेदेति अप्पाणं–किमेस जणो करिस्सति ?

एस से परमारामो जाओ लोगंसि इत्थीओ।

मुणिणा हु एयं पवेइयं।

उब्बाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं

अवि णिब्बलासए, अवि ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाएज्जा, अवि गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अवि आहारं वोच्छिंदेज्जा, अवि चए इत्थीसु मणं।

पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा।

इच्चेए कलहा संगकरा भवंति।

पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए।

त्ति बेमि।

१६५ वह प्रभूतदर्शी, प्रभूत परिज्ञानी, उपशान्त, सम्यक् प्रवृत्तियुक्त, ज्ञानादि सहित, सदा यतनाशील या इन्द्रियजयी अप्रमत्त मुनि (ब्रह्मचर्य से विचलित करने के लिए उद्यत-) स्त्रीजन को देखकर अपना पर्यालोचन करता है-'यह स्त्रीजन मेरा क्या कर लेगा?'

लोक में जितनी भी स्त्रियाँ हैं, वे परम आराम (चित्त को मोहित करने वाली) हैं।

ग्रामधर्म-(इन्द्रिय-वासना) से पीडित मुनि के लिए तीर्थंकर भगवान ने यह उपदेश दिया है (इन्द्रिय-विजय का उपाय बताया है) कि-

वह सारहित-निर्बल आहार करे, ऊनोदरिका करे, ऊर्ध्व स्थान (पाँवो को ऊँचा और सिर को नीचा, अथवा सीधा खडा) होकर कायोत्सर्ग करे, ग्रामानुग्राम विहार करे, आहार का त्याग (अनशन) करे, स्त्रियो के प्रति आकृष्ट होने वाले मन को समझाये।

(स्त्री-सग के कारण-) पहले दण्ड मिलता है और पीछे स्पर्श होता है, अथवा कही-कहीं पहले स्पर्श मिलता है, बाद मे उसका दण्ड मिलता है।

ये काम-भोग कलह-(कषाय) और आसक्ति-(द्वेष और राग) उत्पन्न करने वाले है।

स्त्री-सग से होने वाले ऐहिक एव पारलौकिक दुष्परिणामो को भगवद् वचनो के द्वारा जानकर आत्मा को उनके सेवन से दूर रखे।

-ऐसा मै कहता हूँ।

KNOWING *BRAHMACHARYA*

165. When that careful and alert ascetic, endowed with mature perception, mature knowledge, calmness, right attitude and (scriptural) knowledge, sees women (bent upon seducing him) he contemplates—"What could these women do to me ?"

All the women in this world are very pleasing (enchanting).

For the ascetic under the influence of village norms (lust or carnal desires) *Tirthankar Bhagavan* has said (showing the way of conquering senses) that—

He should eat food that is not nutritious, eat less than his appetite, acquire head-stand posture and do *kayotsarg* (dissociation of mind from the body; a type of meditation), lead an itinerant life, abandon food (observe fast), and discipline his mind not to get attracted to women.

It (affiliation with women) either attracts punishment first and contact later or, sometimes, contact first and its punishment later.

These carnal pleasures are sources of quarrel (passions) and cravings (attachment and aversion) Through the words of *Bhagavan*, he should become aware of the grim consequences of affiliation with women, during this birth and later births, and keep the soul away from the same

—So I say

१६६. से णो काहिए, णो पासणिए, णो संपसारए, णो मामए, णो कयकिरिए, वइगुत्ते अज्झप्पसंवुडे परिवज्जए सदा पावं।

एयं मोणं समणुवासेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१६६ ब्रह्मचारी कामकथा–(कामोत्तेजक कथा) न करे, स्त्रियो को विकारयुक्त दृष्टि से न देखे, परस्पर कामुक भावो–सकेतों का प्रसारण न करे, उनको अपना न समझे, शरीर की साज-सज्जा से दूर रहे, वाणी का संयम रखे, कामुक आलाप न करे, मन को भी कामवासना की ओर जाते हुए नियंत्रित करे, सतत पाप का परित्याग करे।

इस मुनिभाव को जीवन मे सम्यक् प्रकार से बसा ले।

–ऐसा मै कहता हूँ।

166. The celibate should avoid indulgence in erotic talks, looking lewdly at women, using lewd gestures to communicate, having fondness for women, beautifying his body, indiscipline of speech (sexual talks), indiscipline of mind (lecherous thoughts) and sinful activities

He should perfectly assimilate this ascetic attitude in his life.

—So I say

विवेचन–प्रस्तुत दो सूत्रो में ब्रह्मचर्य की साधना के विघ्नरूप स्त्री-सग का वर्जन तथा विषयों की उग्रता कम करने के लिए तप आदि का निर्देश किया है।

कामोदय के सम्बन्ध में व्याख्या ग्रंथों मे विशेष विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है, जैसे–निशीथ भाष्य चूर्णि, गाथा ५१४ से ५१६ मे बताया है–

कामवासना का उदय दो प्रकार का होता है–(१) सनिमित्तक, तथा (२) अनिमित्तक। जो कामवासना बाह्य कारणो से उत्पन्न होती है वह सनिमित्तक है। आन्तरिक कारणो से उत्पन्न होने वाली अनिमित्तक है।

सनिमित्तक के तीन कारण है–कामवर्द्धक शब्द सुनने से, रूप देखने से तथा पूर्वभुक्त भोगो की स्मृति से। अनिमित्तक के भी तीन कारण है–कर्मोदय के कारण, आहार के कारण और शरीर के कारण। स्थानागसूत्र मे भी काम-सज्ञा की उत्पत्ति के चार कारण बताये है, उनमे एक मुख्य कारण है–शरीर म माँस और रक्त का अधिक उपचय होना।

इसी दृष्टि से सूत्र १६५ मे काम-निवारण के लिए कुछ खास उपाय बताये गये है। यथा–(१) नीरस भोजन करना–विगय-त्याग, (२) कम खाना–ऊनोदरिका अथवा आयबिल आदि करना, (३) ऊर्ध्वस्थान–शीर्षासन, वृक्षासन आदि करना, (४) कायोत्सर्ग–काया की ममता से मुक्त हो खडे, बैठे या लेटकर ध्यान करना, (५) ग्रामानुग्राम विहार–एक स्थान पर अधिक न रहना, (६) आहार-त्याग–दीर्घकालीन तपस्या करना, तथा (७) स्त्री-सग के प्रति मन को सर्वथा विमुख रखना। इन उपायों मे से जिस साधक के लिए जो उपाय अनुकूल और लाभदायी हो, उसी का अधिक अभ्यास करना चाहिए। जिस-जिस उपाय से विषयेच्छा की निवृत्ति हो, वह-वह उपाय करना चाहिए।

सूत्र १६६ मे भी काम-कथा आदि का वर्जन करने का निर्देश दिया है।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In the preceding two aphorisms direction has been given to avoid affiliation with women, the impediment to the practice of celibacy, and to practice austerities to weaken the intensity of carnal desires

The explanatory literature has discussed in details on the subject of libido For example, verses 514 to 516 of *Nisheeth Bhashya Churni* inform—

There are two types of libido—(1) *sanimittik* (causal, having an external cause), and (2) *animittik* (non-causal, without any external cause) The libido inspired by some external source or cause is *sanimittik,* and that inspired by inner sources or the inherent one is *animittik.*

There are three sources of *sanimittik*—listening to erotic speech, seeing beauty and recalling past experiences *Animittik* is also of three types—caused by fruition of *karmas*, food and body In *Sthananga Sutra* also four instrumental causes for libido have been mentioned Out of these the main cause is excess of fat and blood

From this angle, some methods of controlling sexual urge have been indicated in aphorism 165—(1) To eat tasteless or plane food, to avoid *vigaya* or food proscribed by scriptures (2) Eat less than one's appetite (*unodari*), eat once in a day food cooked with a single ingredient and even without any salt or other condiments (*ayambil*), and other such austerities (3) Practice yogic postures like head-stand, tree-pose, etc (4) Practice *kayotsarg* in standing, sitting or lying postures (dissociation of mind from body, a type of meditation) (5) Lead an itinerant life avoiding a long stay at any one place (6) Abandon food or observe fast and practice austerities for a long period (7) Avoid any affiliation or contact with women An ascetic should give stress on practice of any or all of these methods depending on individual needs and desired benefits One should specifically practice that method which disciplines his libido

In aphorism 166 also there are directions to refrain from lewd talks and other such things

● END OF LESSON FOUR ●

पंचमो उद्देसओ | पंचम उद्देशक | LESSON FIVE

आचार्य-महिमा ह्रद का द्रष्टान्त

१६७. से बेमि, तं जहा–अवि हरदे पडिपुण्णे चिट्ठति समंसि भोमे उवसंतरए सारक्खमाणे। से चिट्ठति सोयमज्झगए।

से पास सव्वओ गुत्ते। पास लोए महेसिणो जे य पण्णाणमता पबुद्धा आरंभोवरया।

सम्ममेयं ति पासहा। कालस्स कंखाए परिव्वयंति।

त्ति बेमि।

१६७ मै कहता हूँ–जैसे एक विशाल जलाशय (ह्रद) है, जो (कमल या जल से) परिपूर्ण है, सम-भूभाग मे स्थित है, उसकी रज उपशान्त (कीचड़ से रहित) है, (अनेक जलचर जीवो का)–सरक्षण करता हुआ, वह स्रोत के मध्य मे विद्यमान है।

इस मनुष्य लोक मे उन सर्वत (मन, वचन और काया से) गुप्त महर्षियो को तू देख, जो उत्कृष्ट ज्ञानवान है, प्रबुद्ध है और आरम्भ से उपरत है।

(मेरा यह कथन) सम्यक् है, इसे तुम देखो। वे महर्षि काल प्राप्त होने की काक्षा (–समाधि-मरण की अभिलाषा) से जीवन के अन्तिम क्षण तक (मार्ग मे) परिव्रजन करते है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

THE GREATNESS OF *ACHARYA* : EXAMPLE OF A LAKE

167. I give an example—There is a large lake, it is full (filled with water or lotuses), it is located on flat land, it has clear sand (not marshy), it sustains (many aquatic animals), and is located at the centre of the source (of water)

In this world see those completely (by mind, speech and body) hermetic sages who are endowed with ultimate knowledge and wisdom and are free of sinful activities

This (statement of mine) is right, you should see (ensure) this Awaiting the end of their life (with a desire for meditative death) those sages continue to be itinerant.

—So I say

विवेचन—इस सूत्र में ह्रद (जलाशय) के दृष्टान्त द्वारा आचार्य की विशिष्टता का दर्शन कराया है। वृत्तिकार ने चार प्रकार के ह्रद बताकर विषय का विशद् विवेचन इस प्रकार किया है—

(१) एक ह्रद ऐसा है, जिसमें से पानी—जल-प्रवाह निकलता है और मिलता भी है।

(२) दूसरा ह्रद ऐसा है, जिसमें से जल-स्रोत निकलता है किन्तु मिलता नहीं।

(३) तीसरा ह्रद ऐसा है, जिसमे से जल-स्रोत निकलता नहीं, मिलता है।

(४) चौथा ह्रद ऐसा है, जिसमे से न जल-स्रोत निकलता है, और न मिलता है।

प्रथम भग में स्थविरकल्पी आचार्य आते हैं, जिनमे दान और आदान (ग्रहण) दोनों होते है, वे शास्त्रज्ञान एवं आचार का उपदेश देते भी हैं तथा स्वयं भी ग्रहण एवं आचरण करते हैं। दूसरे भग में तीर्थंकर आते हैं, जो शास्त्रज्ञान एवं आचार का उपदेश देते तो हैं, किन्तु उन्हें लेने की आवश्यकता नही रहती। तृतीय भंग में विशिष्ट साधना करने वाला जिनकल्पी साधु आता है, जो उपदेश आदि देता नही किन्तु शास्त्र ज्ञान आदि लेता अवश्य है। चतुर्थ भंग में प्रत्येकबुद्ध आते है, जो न ज्ञान देते हैं, न लेते हैं।

आचार्य ३६ गुणो, पाँच आचारो, अष्ट सम्पदाओं[1] एव निर्मल ज्ञान से परिपूर्ण होते हैं। वे दोषरहित सुखविहार योग्य (सम) क्षेत्र में रहते है, अथवा ज्ञानादि रत्नत्रय रूप समता की भावभूमि में रहते हैं। उनके कषाय उपशान्त हो चुके हैं या मोह कर्मरज उपशान्त हो गया है, षड्जीवनिकाय के या सघ के सरक्षक है, अथवा दूसरों को सदुपदेश देकर नरकादि दुर्गतियों से बचाते है, श्रुतज्ञान रूप स्रोत के मध्य मे रहते हैं, शास्त्रज्ञान देते हैं, स्वयं लेते भी हैं।

चूर्णिकार ने **पण्णाणमता**—प्रज्ञावान का अर्थ चौदह पूर्वधारी और **पबुद्धा**—प्रबुद्ध का अर्थ मन पर्यवज्ञानी किया है। शास्त्रज्ञान मे पारगत विद्वान् को भी प्रबुद्ध कहते हैं।

शास्त्रकार कहते है—'**सम्ममेय ति पासहा**' मेरे कहने से तू मत मान, अपनी मध्यस्थ व कुशाग्र बुद्धि से स्वतन्त्र, निष्पक्ष चिन्तन द्वारा इसे देख कि जो इन्द्रियों से गुप्त, प्रज्ञावान, प्रबुद्ध और आरम्भ से उपरत महर्षि हैं वे ही आचार्य होते है।

Elaboration—In this aphorism the qualities of an *acharya* have been explained with the metaphor of a lake. The commentator (*Vritti*) has elaborated the subject by mentioning four types of lake—

(1) One type of lake is that where there is outflow as well as inflow of water

(2) Second type is that where there is only outflow and no inflow

---

१ आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोग और संग्रहपरिज्ञा, ये आचार्य की आठ गणि-सम्पदाएँ हैं।
—*आयारदसा ४, पृ २१*

(3) Third type is that where there is only inflow and no outflow

(4) Fourth type is that where there is neither outflow nor inflow

The first category represents *sthavir-kalpi* (senior and non-itinerant) *acharyas* who give as well as take They give discourses of scriptural knowledge and code of conduct and also absorb and follow the same The second category represents *Tirthankars* who give discourses of scriptural knowledge and code of conduct but have no need of acquiring it from others. The third category represents *Jinakalpi* ascetics indulging in special practices in isolation who do not give discourses but continue to acquire scriptural knowledge and perfection in following the code of conduct The fourth category represents *Pratyek-buddhas* (those who get enlightened and liberated without the benefit of any discourse or guidance) who neither give nor take knowledge.

An *acharya* is endowed with thirty six virtues, five codes of conduct, eight types of attainments and pure knowledge The eight types of attainments of an *acharya* are—*achar* (conduct), *shrut* (scriptural knowledge), *sharir* (well-built body), *vachan* (speech), *vaachana* (discourse), *mati* (judgment), *prayoga* (translating thought into action), and *sangraha-parijna* (awareness of acquisition) He lives in a faultless and pleasant area His passions have been pacified due to suppression of *mohaniya-karma* (*karma* that tempts soul towards fondness for things) He is the protector of the six forms of life or the religious organization In other words through his preaching he saves beings from a lowly birth like that in hell He is at the centre of the source that is scriptural knowledge He gives as well as acquires knowledge

Pannanamanta—intelligent The commentator (*Churni*) has interpreted this as knower of the fourteen *purvas* (subtle canon) *Prabuddha* (having wisdom) according to him is a *manah-paryav-jnani* (one who possesses extrasensory perception and knowledge of thought process and thought-forms of other beings). A proficient scholar of scriptures is also called *prabuddha*

Sammameyam ti pasaha—I have said, you should see. The author here conveys that you should not believe just because he has stated. You should independently and impartially observe with the help of your sharp and unbiased intellect that only those sages can be *acharyas* who are hermetic in terms of sense organs, intelligent, wise and free of sinful activities

सत्य में दृढ़ श्रद्धा

१६८. वितिगिच्छसमावन्नेणं अप्पाणेणं णो लहइ समाहिं।

सिया वेगे अणुगच्छंति, असिया वेगे अणुगच्छंति।

अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे कहं ण णिव्विज्जे ?

१६८ विचिकित्सायुक्त (शकाशील) आत्मा को समाधि प्राप्त नहीं होती।

कुछ सित–तत्त्व के ज्ञाता आचार्य का अनुगमन करते है (उनके कथन को समझ लेते हैं), कुछ असित–(तत्त्वज्ञान से रहित) भी आचार्य का अनुगमन करते हैं।

इन अनुगमन करने वालो के बीच में रहता हुआ जो (आचार्य का) अनुगमन नहीं करने वाला है वह संयम के प्रति खेदखिन्न कैसे नहीं होगा ?

STRONG FAITH IN TRUTH

168. A skeptic soul does not attain the state of *samadhi* (profound meditation)

Some accomplished (in knowledge of fundamentals) follow the *acharya* (they understand what he says); some non-accomplished (devoid of knowledge of fundamentals) also follow the *acharya*.

Living amidst these followers, how is it possible that one who does not follow the *acharya* will not feel disturbed-and disappointed in context of discipline ?

१६९. तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।

१६९. वही सत्य है और शकारहित है जो तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित है।

169. Only that is truth and without any doubt which has been propagated by *Tirthankars*.

विवेचन–जिस तत्त्व का ज्ञान सरलतापूर्वक होता है, वह सुखाधिगम कहलाता है। जिसका ज्ञान कठिन होता है, वह दुरधिगम है। शिष्य के मन मे दुरधिगम अर्थ के प्रति विचिकित्सा या शका उत्पन्न होती है। यहाँ बताया है कि विचिकित्सा से जिसका चित्त डाँवाडोल या कलुषित रहता है, वह आचार्यादि द्वारा समझाए जाने पर भी सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्रादि के विषय मे समाधान नही पाता। उसका मन चंचल बना रहता है।

विचिकित्सा के सम्बन्ध मे टीकाकार ने विवेचन करते हुए बताया है–ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनो विषयो मे विचिकित्सा हो सकती है। जैसे–शास्त्र में बताया ज्ञान सच्चा है या झूठा? मै भव्य हूँ या नही? जो नौ तत्त्व या षड्द्रव्य बताए है, क्या ये सत्य हैं? अर्हन्त और सिद्ध कोई होते हैं या यो ही हमे डराने के लिए इनकी कल्पना की गई है? इतने कठोर तप, सयम और महाव्रतरूप चारित्र का कुछ फल मिलेगा या यो ही व्यर्थ का कष्ट सहना है? ये और इस प्रकार की शकाएँ साधक के चित्त को अस्थिर और असमाधियुक्त बना देती हैं। इस विचिकित्सा जनित खिन्नता को मिटाकर मन समाधि प्राप्त करने का आधार सूत्र है–'तमेव सच्च.' आदि।

'समाधि'–समाधि के चार अर्थ होते है–(१) मन का समाधान या सतुष्टि, (२) शंका का निराकरण, (३) चित्त की एकाग्रता, और (४) ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप सम्यक् भाव।

भिन्न-भिन्न सूत्रों के अनुसार समाधि के अनेक अर्थ होते है। जैसे–

(१) मोक्ष-मार्ग मे स्थित होना[१], (२) राग-द्वेष-परित्याग रूप धर्मध्यान[२], (३) अच्छा स्वास्थ्य[३], (४) चित्त की प्रसन्नता व स्वस्थता[४], (५) नीरोगता[५], (६) योग[६], (७) सम्यग्दर्शन मोक्ष आदि विधि[७], (८) चित्त की एकाग्रता[८], (९) प्रशस्त भावना[९], अभिधान राजेन्द्र कोष मे भाग ७, पृ ४१९-२० मे

दशवैकालिक[१०] मे चार प्रकार की समाधि का विस्तृत वर्णन है।

Elaboration—That knowledge of fundamentals which is easily acquired is called *sukhadhigam* (easy to acquire) That which is acquired with difficulty is *duradhigam* (difficult to acquire) A doubt arises in the mind of a disciple about difficult to understand concepts It is explained here that a disciple whose mind is poisoned by doubt and who wavers due to skepticism, does not attain clarity with respect to righteousness, knowledge and conduct in spite of explanations by the *acharya* His mind remains wavering

१ सम २०
२ सूत्रकृत १/२/२
३ आव मल २
४ सम ३२
५ व्यव उ १
६ उत्तरा २
७ सूत्रकृत १/१३
८ द्वात्रि द्वा ११
९ स्थानांग २/३
१० अध्ययन ९ में विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तप समाधि, आचारसमाधि का वर्णन है।

Elaborating *vichikitsa* (doubt) the commentator (*Tika*) says—Doubt can be with regard to all the three subjects namely knowledge, perception and conduct For example—Is the knowledge compiled in the scriptures true or false ? Am I worthy or not ? Are the nine fundamentals or the six substances true ? Are the *Arihants* and *Siddhas* real or imaginary just for the purpose of invoking fear in our mind ? Would all these harsh austerities discipline, and conduct of five great vows bear any fruits, or it is just a worthless suffering ? These and other such doubts make an aspirant's mind unstable and incapable of profound meditation This aphorism is the foundation on which the edifice of profound meditation can be raised by removing the despondency born out of skepticism

Samadhi—profound meditation This word has four meanings—(1) Satisfaction or contentment of the mind, (2) Removal of doubt, (3) Mental concentration, (4) The right or perfect state of mind represented by right perception-knowledge-conduct

There are numerous interpretation of *samadhi* found in various *Agams* Some are—

(1) To remain stable on the path to liberation, (2) Religious meditation in the form of abandoning attachment and aversion, (3) Good health, (4) Happiness and health of mind, (5) Freedom from diseases, (6) Yoga, (7) The process of acquiring right perception (etc) and getting liberated, (8) Mental concentration, (9) Pious attitude In the ninth chapter of *Dashavaikalika Sutra* detailed description of four types of *Samadhi* is available (*vinaya samadhi*, *shrut samadhi*, *tapah samadhi*, and *achar samadhi*)

सम्यक्-असम्यक् का विवेक

१७०. सड्ढिस्स णं समणुण्णस्स सपव्वयमाणस्स–समियं ति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ (१) समियं ति मण्णमाणस्स एगया असमिया होइ (२) असमियं ति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ (३) असमियं ति मण्णमाणस्स एगया असमिया होइ (४) समियं ति मण्णमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ उवेहाए, असमियं ति मण्णमाणस्स समिया वा असमिया वा असमिया होइ उवेहाए।

उवेहमाणो अणुवेहमाणं बूया–उवेहाहि समियाए।

इच्चेवं तत्थ संधी झोसिआ भवति।

से उट्ठियस्स ठियस्स गइं समणुपासह।

एत्थ वि बालभावे अप्पाणं णो उवदंसेज्जा।

१७० जिनवचन के प्रति श्रद्धा रखने वाला, सम्यक् आचारशील तथा सम्यक् प्रव्रज्या (संयम) वाला मुनि किसी आचार व्यवहार या तत्त्व विषय को सम्यक् मानता है और वास्तव में वह सम्यक् ही है। (१) वह किसी व्यवहार या तत्त्व को सम्यक् मानता है, किन्तु वास्तव मे वह असम्यक् है। (२) वह किसी व्यवहार को असम्यक् मानता है किन्तु वास्तव में वह सम्यक् है। (३) तथा किसी व्यवहार को असम्यक् मानता है और वास्तव में वह असम्यक् है। (४) जो सम्यक् मानता है किन्तु व्यवहार वास्तव में सम्यक् हो या असम्यक् हो, परन्तु उत्प्रेक्षा (राग-द्वेषरहित तटस्थ भाव) के कारण वह सम्यक् होता है। जो असम्यक् मानता है, किन्तु वास्तव में वह सम्यक् हो या असम्यक्, किन्तु उत्प्रेक्षा (राग-द्वेष के कारण) वह असम्यक् ही होता है।

उत्प्रेक्षा (मध्यस्थभाव) रखने वाला, उत्प्रेक्षा नहीं रखने वाले से कहे–सम्यक् भाव की प्राप्ति के. लिए उत्प्रेक्षा करो।

इस प्रकार (मध्यस्थभाव के आलम्बन से) सधि (सम्यक्–असम्यक् की समस्या) का समाधान होता है।

तुम उत्थित–संयम मे पुरुषार्थवान और अनुत्थित (सयम मे शिथिल) की गति को देखो।

तुम स्वय को बालभाव (अज्ञान दशा) में प्रदर्शित मत करो (सतत ज्ञानवान बने रहो)।

JUDGMENT OF RIGHT AND WRONG

170. An ascetic having faith in the tenets of the *Jina,* following right conduct and observing right discipline believes about some behaviour or concept that—(1) it is right and in reality also it is right, (2) it is right but in reality it is not right; (3) it is not right but in reality it is right, (4) it is not right and in reality also it is not right He who believes it to be right, whether in reality it is right or wrong, (effectively) due to his impartial attitude (absence of attachment and aversion) it is

right. But for him who believes it to be wrong, whether in reality it is right or wrong, (effectively) due to his biased attitude (influenced by attachment and aversion) it is wrong.

A man with impartial attitude should tell to one having biased attitude—to attain rightness be impartial.

This way (through practice of impartiality) the ambiguity (of right and wrong) is removed.

You should observe the progress of the active (in discipline) and dull (in discipline)

You should never join the ranks of the ignorant (always be sagacious).

विवेचन–सब श्रमण प्रत्यक्षज्ञानी नही होते और न ही सबका ज्ञान एक समान होता है। परिणामों/अध्यवसायो की धारा भी सबकी एक समान नही होती है। अतीन्द्रिय (अमूर्त) पदार्थों के विषय मे तो वह '**तमेव सच्च**' सूत्र का आलम्बन लेकर सम्यक् (सत्य) का ग्रहण और निश्चय कर सकता है, किन्तु जो पदार्थ इन्द्रिय-प्रत्यक्ष है, या जो व्यवहार-प्रत्यक्ष हैं, उनके विषय मे सम्यक्-असम्यक् का निर्णय कैसे किया जाय? इसके सम्बन्ध में सूत्र १६ मे बताया है।

पहले तो साधक के दीक्षाकाल और पश्चात्काल को लेकर सम्यक्-असम्यक् की विवेचना की है कि कुछ श्रमण दीक्षाकाल मे तो सम्यक् श्रद्धायुक्त होते हैं किन्तु उत्तरकाल में किसी कारण उनकी श्रद्धा मे शिथिलता आने से असम्यक् हो जाते हैं। इसकी चौभंगी बताई गई है। फिर उसे व्यवहार एव निश्चय की दृष्टि से बताया है कि कोई तत्त्व तथा आचार व्यवहार में सम्यक् प्रतीत होता है, किन्तु निश्चय मे वह असम्यक् होता है, इसकी भी चौभगी बनती है। इन चारों प्रकारो के सम्बन्ध में शास्त्रकारो ने एक कसौटी बताई है कि जिसका अध्यवसाय शुद्ध है, जिसकी दृष्टि मध्यस्थ एवं निष्पक्ष है, जिसका हृदय शुद्ध व सत्यग्राही है, वह व्यवहारनय से किसी भी वस्तु, व्यक्ति या व्यवहार के विषय को सम्यक् मान लेता है, तो वह सम्यक् ही है और असम्यक् मान लेता है तो असम्यक् ही है, फिर चाहे प्रत्यक्षज्ञानियों की दृष्टि में वास्तव मे वह सम्यक् हो या असम्यक्।

'**उवेहाए**' शब्द का सस्कृत रूप होता है–**उत्प्रेक्षया**। जिसका अभिप्राय शुद्ध अध्यवसाय या मध्यस्थ दृष्टि, निष्पक्ष सत्यग्राही बुद्धि, शुद्ध सरल हृदय से पर्यालोचन करना है।

गति के दो अर्थ हैं–'दशा' या '**स्वर्ग मोक्षादिगति**'। यहाँ संधि का अर्थ–सम्यग्दर्शन की आराधना है।

Elaboration—All the *Shramans* cannot be endowed with the capacity of direct perception (knowledge acquired by soul without the help of sense organs) neither are they at the same level of knowledge The direction of attitudes and thoughts is also not same for all. In case of concepts that are beyond the grasp of sense organs they can rely on the aphorism ***'tameva sachcham.*** .... ' (162) while understanding and accepting truth But how to decide what is right or wrong with regard to tangible things and concepts ? This is explained in aphorism 163

First of all right and wrong has been discussed with reference to the time of initiation and the later period Some ascetics are full of right faith at the time of initiation but later due to various reasons they become lax and lose right faith There are four combinations of this After that it is discussed from the ultimate and mundane viewpoints Some fundamentals and conduct may appear to be right from mundane viewpoint but could be wrong from the ultimate viewpoint This also has four combinations The sages have given a yardstick of judgment for these four combinations When an ascetic endowed with purity of attitude, impartiality, and equanimity and who is committed to seek purity and truth, accepts a thing, person, or behaviour as right or wrong from mundane viewpoint, it indeed is right or wrong irrespective of the fact that it is otherwise in the eyes of those endowed with direct perception

Uvehaye—utprekshaya—to observe with a sincere attitude, impartiality, truth seeking intellect, and purity and simplicity of mind.

Gati has two meanings—condition or state and place or genus of rebirth Here *sandhi* means pursuit of right perception or faith

अहिंसा की व्यापक दृष्टि

१७१. तुमं सि णाम सच्चेव जं हंतव्व ति मण्णसि,

तुमं सि णाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मण्णसि,

तुमं सि णाम सच्चेव जं परियावेयव्वं ति मण्णसि,

तुमं सि णाम सच्चेव जं परिघेयव्वं ति मण्णसि,

एवं सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मण्णसि।

अंजू चेयं पडिबुद्धजीवी। तम्हा ण हंता, ण विघायए।

अणुसंवेयणमप्पाणेणं, जं हंतव्वं ति णाभिपत्थए।

१७१ आत्मन् ! जिसे हनन योग्य मानता है; वह तू ही है।

जिसे अपनी आज्ञा मे रखने योग्य मानता है; वह तू ही है।

जिसे परिताप देने योग्य मानता है; वह तू ही है।

जिसे दास बनाने योग्य मानता है; वह तू ही है।

जिसे मारने योग्य मानता है, वह तू ही है।

ज्ञानी पुरुष ऋजु (सरलात्मा) होता है, वह प्रतिबोधयुक्त जागरूक जीवन जीता है। इस कारण वह स्वय हनन नहीं करता और न दूसरो से करवाता है।

अपना कृत-कर्म स्वय को ही भोगना पड़ता है, इसलिए किसी का हनन करने की इच्छा मत करो।

THE BROAD SCOPE OF *AHIMSA*

171. O Soul ! That which you consider worth destroying is your ownself

That which you consider worth disciplining is your ownself.

That which you consider worth harming is your ownself.

That which you consider worth subjugating is your ownself.

That which you consider worth killing is your ownself

A sagacious man is simple-minded, he leads an enlightened and alert life

That is why he neither destroys something himself nor causes others to do so

The consequences of one's actions have to be suffered by his ownself, therefore do not nurture desire to destroy anything

विवेचन–'तुमं सि णाम सच्चेव' इस पद में दो भिन्न आत्माओं के सुख या दुःख की अनुभूति (संवेदन) की समानता सिद्ध करना ही इस सूत्र का उद्देश्य है। इस वाक्य से आत्मा का अद्वैतवाद प्रतिपादित होता है अर्थात् सभी आत्मा एक समान है। 'दूसरे के द्वारा तुम्हारी हिंसा किये जाने पर जैसी अनुभूति तुम्हें होती है, वैसी ही अनुभूति उस प्राणी को होगी, जिसकी तू किसी भी रूप में हिंसा करना चाहता है। इसका एक भाव यह भी है कि तू किसी अन्य की हिंसा करना चाहता है, पर वास्तव में यह उसकी (अन्य की) हिंसा नहीं, किन्तु तेरी शुभ वृत्तियों की हिसा है, अत· तेरी यह हिंसा-वृत्ति एक प्रकार से आत्म-हिंसा (स्व-हिंसा) ही है।

चूर्णि के अनुसार 'अणुसवेयणमप्पाणेण'–मे अनुसंवेदन का अर्थ यह है कि तुमने दूसरे जीव को जिस रूप में वेदना दी है, तुम्हारी आत्मा को भी उसी रूप में वेदना की अनुभूति होगी, वेदना भोगनी होगी।

Elaboration—***Tumam si nama sachcheva***—It is (like) your ownself. The purpose of using this phrase is to convey the sameness of experience of pleasure or pain in two different souls. This phrase propagates the non-duality of soul. In other words—all souls are equal It conveys—the being that you want to hurt in any way will feel the same way as you feel when someone hurts you It has another insinuation—when you want to cause damage to someone, you are not, in fact, causing damage to him but to your own good attitudes, thus this tendency to hurt is in a way hurting the self

Anusamveyanamappanenam—You will have to suffer yourself Here *anusamvedan* means similar experience The way you have caused the other being to experience pain, likewise your soul will experience pain or suffer pain

आत्मा ही विज्ञाता

१७२. जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया।

जेण विजाणइ से आया।

तं पडुच्च पडिसंखाए।

एस आयावादी समियाए परियाए वियाहिये।

त्ति बेमि।

॥ पंचमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१६५. जो आत्मा है, वह विज्ञाता है, जो विज्ञाता है, वह आत्मा है।

जिसके द्वारा जाना जाता है वह आत्मा है।

उस ज्ञान पर्याय की अपेक्षा से आत्मा की प्रतीति-(पहचान) होती है।

यह आत्मवादी सम्यक् पर्याय वाला या सम्यक् भाव से दीक्षा पर्याय वाला सत्य का पारगामी कहा गया है।

-ऐसा मैं कहता हूँ।

SOUL : THE KNOWER

172. That which is soul is the knower, that which is knower is soul That through which one knows is soul

Through the activity of knowing or cognition comes the awareness or recognition of soul

This believer in soul, having right activity or belief or properly following the ascetic conduct, is said to be a profound knower of truth

—So I say

विवेचन-'जे आया से विण्णाया' पदों द्वारा द्रव्य और गुण दोनो अपेक्षाओं से आत्मा का लक्षण बताया गया है। चेतन ज्ञाता है, द्रव्य है, चैतन्य (ज्ञान) उसका गुण है। यहाँ ज्ञान से आत्मा की अभिन्नता बताई है तथा ज्ञान आत्मा का गुण है, इसलिए आत्मा से ज्ञान की भिन्नता भी बता दी है। द्रव्य और गुण न सर्वथा भिन्न होते हैं, न सर्वथा अभिन्न। इस दृष्टि से आत्मा (द्रव्य) और ज्ञान (गुण) दोनों न सर्वथा अभिन्न हैं, न भिन्न। गुण द्रव्य मे ही रहता है और द्रव्य का ही अंश है इस कारण दोनों अभिन्न भी हैं और आधार एवं आधेय की दृष्टि से दोनों भिन्न भी हैं।

॥ पचम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—*Je aya se vinnaya. . .*—that which is soul is the knower. These phrases present the substance and attributes of soul Soul is the knower or substance and knowledge is its attribute Here the non-duality of knowledge and soul has been shown. As knowledge is the attribute of soul therefore the duality of soul and knowledge has also been shown Substance and attributes are neither absolutely separate nor absolutely one Attribute resides in substance and is its part, thus they are inseparable In terms of container and contained they are separate also

● END OF LESSON FIVE ●

छट्ठो उद्देसओ	षष्ठ उद्देशक	LESSON SIX

आज्ञा-निर्देश

१७३. अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे निरुवट्ठाणा।

एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसण।

तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे।

अभिभूय अदक्खू। अणभिभूए पभू णिरालंबणयाए।

जे महं अबहिमणे।

पवाएण पवायं जाणेज्जा।

सहसम्मइयाए परवागरणेण अण्णेसि वा सोच्चा।

१७३ कुछ पुरुष आज्ञा के विपरीतगामी होते है और कुछ साधक आज्ञा के परिपालन मे आलसी होते है।

यह (कुमार्ग में उद्यम और सुमार्ग मे आलस्य) तुम्हारे जीवन मे न आये, यह कुशल-तीर्थंकर का दर्शन (आदेश) है।

साधक पुरुष (वीतराग तीर्थकर के दर्शन मे) अपनी दृष्टि नियोजित करे, उनके दर्शनानुसार मुक्ति मे अपनी मुक्ति माने, उसी मे तन्मय हो जाये, सब कार्यो मे उसे आगे करके प्रवृत्त हो, उसी के सज्ञान-स्मरण मे संलग्न रहे, उसी में चित्त को स्थिर कर दे, उसी का अनुसरण करे।

जिसने (परीषह-उपसर्गों—घातिकर्मों को) पराजित कर दिया है, उसी ने तत्त्व का साक्षात्कार किया है, जो (विघ्न-बाधाओं से) अभिभूत नही होता, वह निरालम्बी (स्वाश्रयी) होता है।

जो महान् (लघुकर्मा) होता है, उसका मन (सयम से) बाहर नहीं जाता।

प्रवाद (अर्थात् सर्वज्ञ तीर्थंकरों के वचन) से, प्रवाद (अर्थात् विभिन्न दार्शनिको या अन्यतीर्थिको) के वाद को जानना, परीक्षण करना चाहिए।

(अथवा) पूर्वजन्म की स्मृति से, तीर्थंकरो से प्रश्न का उत्तर पाकर या किसी अतिशय ज्ञानी या निर्मल श्रुतज्ञानी आचार्यादि से सुनकर (प्रवाद के यथार्थ तत्त्व को जाना जा सकता है)।

THE DIRECTIONS

173. Some people go against order (tenets) and some are lazy in following the order.

The philosophy of the accomplished (*Tirthankar*) is that this (activity on wrong path and inactivity on right path) should not happen in your life

An aspirant should employ his vision (on the philosophy of the *Tirthankar*), accept liberation as defined in His philosophy, get fully absorbed in it, indulge in all activities keeping Him as ideal, draw inspiration from His remembrance, focus attention on Him, and follow Him only.

Only he has embraced truth (fundamentals) who has subdued (afflictions or vitiating *karmas*). Only he is independent who is not overwhelmed (by hurdles).

He who is great (having only few *karmas*), his mind does not wander away (from discipline)

Theories (of various other philosophers or religions) should be understood (examined) on the basis of the tenets (of the omniscient *Tirthankars*)

(Also the essence of the tenets can be understood with the help of—) memories from last birth, seeking answer from *Tirthankars* or listening to some great and sublime and sagacious *acharya*

विवेचन–'सोवट्ठाणा णिरुवट्ठाणा'–ये दोनों पद आगम के पारिभाषिक शब्द हैं। वृत्तिकार इनका स्पष्टीकरण करते है कि साधक दो प्रकार के होते हैं–(१) आज्ञा के बाहर चलने वाले, और (२) आज्ञा मे प्रमाद करने वाले।

'उपस्थान' शब्द का अर्थ है–उद्यत रहना या उद्यम/पुरुषार्थ प्रवृत्ति करना। अनाज्ञा का अर्थ तीर्थंकरादि के उपदेश से विरुद्ध, अपनी स्वच्छन्द बुद्धि से कल्पित मार्ग का अनुसरण करना या कल्पित अनाचार का सेवन करना है। जो इन्द्रिय विषयो के वशवर्ती होते हैं वे अनाज्ञा में उद्यमी होते हैं तथा आज्ञा मे अनुद्यमी प्रमादी वे होते है, जो आज्ञा का प्रयोजन, महत्त्व और उसके लाभ को तो समझते हैं, किन्तु आलस्य, प्रमाद, सशय, भ्रान्ति, व्याधि, बुद्धिमन्दता, आत्म-शक्ति के प्रति अविश्वास आदि कारणों से तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट धर्माचरण के प्रति उद्यमवान् नहीं

होते है। कुमार्ग का आचरण और सन्मार्ग में प्रमाद दोनों ही त्याज्य है। तीर्थंकर का दर्शन है–'अनाज्ञा में निरुद्यम और आज्ञा मे उद्यम करना।'

'**अभिभूय**' शब्द की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार कहते है–'परीषह, उपसर्ग या चार घातिकर्म को पराजित करे। साधना के बाधक तत्त्वो मे भौतिक सिद्धियाँ, यौगिक उपलब्धियाँ या लब्धियाँ भी गिनी गई है, उनका सहारा लेना आत्मा को पगु और परावलम्बी बनाना है। इसी प्रकार दूसरे लोगो से अधिक सहायता की अपेक्षा रखना भी पर-मुखापेक्षिता है, इससे भी आत्मा पराश्रित और निर्बल होता है। श्रेष्ठ साधक दूसरो पर या दूसरो से मिली हुई सहायता, प्रशसा या प्रतिष्ठा पर निर्भर नही रहता।

भगवान महावीर ने प्रत्येक साधक को धर्म और दर्शन के क्षेत्र मे स्वतन्त्र चिन्तन करने की प्रेरणा दी है। उन्होने अपने तथा दूसरे प्रवादो की परीक्षा करने को कहा है–'मुनि अपने प्रवाद (दर्शन या वाद) को जानकर फिर दूसरे प्रवादो को जाने-परखे। शर्त इतनी ही है कि परीक्षा के समय पूर्ण मध्यस्थता-निष्पक्षता एव समत्व-भावना रहनी चाहिए। स्व-पर-वाद का निष्पक्षता के साथ परीक्षण करने पर वीतराग के दर्शन की श्रेष्ठता उसे स्वय ज्ञात हो जायेगी।

Elaboration—*Sovatthana* and *niruvatthana*—to make an effort and not to make an effort These are technical terms from *Agams* Explaining these the commentator (*Vritti*) says that aspirants are of two types—(1) Those not following order (tenets), and (2) those who procrastinate in following order

The word *upasthan* (*uvatthana*) means to be ready to act or to make an effort *Anajna* means to go against the tenets of *Tirthankars* and follow one's own discretion or indulge in misconduct assuming it to be right conduct Those who are slaves of carnal desires pursue the opposite path (*anajna*) Procrastinators are those who understand the purpose, importance and benefits of tenets but do not pursue the religious path shown by *Tirthankars* because of lethargy, stupor, doubt, misunderstanding, ailing condition, dumbness, and lack of self confidence Pursuing the wrong path and stupor in pursuing the right path both are to be avoided The philosophy of *Tirthankars* is—'Lethargy in wrong path and action in right path '

Abhibhuya—to be overwhelmed The commentator (*Vritti*) elaborates—He should overcome afflictions, torments or four *ghati-karmas* (*karmas* that have a vitiating effect upon the qualities of soul) Special powers of the physical dimension, yogic attainments,

or special abilities are also counted among the impeding factors in spiritual practices To depend on these is to make a soul weak and dependent In the same way to expect continued help from others also makes a soul dependent and weak A sincere aspirant does not depend on others or help, praise, or prestige coming from others

Bhagavan Mahavir has advised every seeker in the fields of religion and philosophy to pursue independent thinking He has asked to examine his tenets as well as those of others--an ascetic should first understand the tenets he follows and then examine tenets of others The precondition is that while examining he should be completely impartial, balanced and eqanimous When he examines with impartiality the schools of thought of others and his own, the superiority of the philosophy of the Detached will automatically be revealed on him

१७४. णिद्देसं णाइवट्टेज्जा मेहावी।

सुपडिलेहिय सव्वओ सव्वयाए सम्ममेव समभिजाणिया।

इह आरामं परिण्णाय अल्लीणगुत्तो परिव्वए।

निट्ठियट्ठी वीरे आगमेणं सदा परक्कमेज्जासि।

त्ति बेमि।

१७४ मेधावी पुरुष निर्देश (तीर्थंकरादि के आदेश-उपदेश) का अतिक्रमण न करे।

वह सब प्रकार से भलीभाँति विचार करके सम्पूर्ण रूप से साम्य (सम्यक्त्व/सत्य) को जाने।

इस (साम्य भाव) के परिशीलन मे आत्म-रमण की परिज्ञा करके आत्मलीन होकर विचरण करे।

मोक्षार्थी अथवा सयम-साधना द्वारा निष्ठितार्थ (कृतार्थ) वीर मुनि आगम में निर्दिष्ट मार्ग के अनुसार पराक्रम करे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

174. An accomplished person should not transgress the directions (the preaching or order of *Tirthankars*, etc).

He should understand the truth (righteousness) after proper contemplation

He should move about, employing the process of exploration of the self to his contemplation about this (righteousness).

A brave ascetic, perfected through practice of discipline (liberation seeker), should pursue the path shown in *Agams*.

—So I say.

आसक्ति-त्याग के उपाय

१७५. उड्ढं सोया अहे सोया तिरियं सोया वियाहिया।
एए सोया वियक्खाया जेहिं संगं ति पासहा॥

आवट्टं तु पेहाए एत्थ विरमेज्ज वेयवी।

१७५. ऊपर (ऊँची दिशा मे) स्रोत हैं, नीचे (नीची दिशा में) स्रोत है, मध्य (तिर्यक् दिशा में) स्रोत हैं। ये स्रोत कर्मों के आस्रवद्वार कहे गये है। इन स्रोतो के द्वारा प्राणियो को (सग–) आसक्ति पैदा होती है, ऐसा तुम देखो।

भाव स्रोत (जो राग-द्वेष-कषाय-विषयरूप है) का चिन्तन करके आगमज्ञाता पुरुष उससे निवृत्त हो जाए।

METHODS OF RENOUNCING ATTACHMENT

175. There are source above, there are sources below and there are sources in the middle These sources are said to be the sources of inflow of *karmas* Know this that through these sources is born the desire of affiliation (attachment) in beings

Contemplating on the mental sources (in the form of attachment, aversion, passions and mundane pleasures) the scholar (follower) of *Agams* should be rid of them

१७६. विणइत्तु सोय निक्खम्म एस महं अकम्मा जाणइ, पासइ।

पडिलेहाए णावकखइ। इह आगइं गइ परिण्णाय।

१७६. जो (विषयासक्तियो के या–) आस्रवो के स्रोत को दूर करने के लिये ही निष्क्रमण करता है वह साधक अकर्मा (घातिकर्मों से रहित) होकर लोक को प्रत्यक्ष जानता, देखता है।

विषयासक्ति के कारण ही जीव ससार मे गति (मरण) आगति (जन्म) करता है। परिज्ञा द्वारा जानकर ज्ञानी पुरुष विषयों की आकाक्षा नही करता।

176. The aspirant who renounces the world specifically for the purpose of removıng the sources of inflow of *karmas* (or attachment for mundane pleasures) becomes free of *karmas* (the vitiatıng *karmas*) and has dırect perception and knowledge of the world

It is because of the attachment for mundane pleasures that a beıng takes bırth or dıes ın this world Knowıng through awareness, a sage does not desıre mundane pleasures.

विवेचन–'**उड्ढं सोया** '–इत्यादि सूत्र मे जो तीनों दिशाओं या लोकों में स्रोत बताए है, वे क्या है? इस पर वृत्तिकार ने प्रकाश डाला है–"स्रोत है–कर्म आगमन के (आस्रव) द्वार, जो तीनो दिशाओ या तीनो लोको मे स्थित है। ऊर्ध्व लोक के स्रोत है–वैमानिक देवागनाओं या देवलोक के विषय-सुखो की आसक्ति। इसी प्रकार अधोदिशा के स्रोत हैं–भवनपति देवों के विषय-सुखो में आसक्ति, तिर्यक् लोक के स्रोत व्यन्तर देव, मनुष्य एव तिर्यंच-सुख सम्बन्धी विषय-सुखासक्ति। इन स्रोतो से साधक को सदा सावधान रहना चाहिए।" इन स्रोतो को ही आसक्ति (संग) समझना चाहिए तथा चिन्तन की गहराई मे उतरकर इन्हें देखते रहना चाहिए। इन स्रोतों को बन्द कर देने पर ही कर्मबन्धन रुक जाता है। कर्मबन्धन सर्वथा छिन्न हो जाने पर अकर्म स्थिति आती है, जिसे शास्त्रकार ने–"**अकम्मा जाणति, पासति**" पद से सूचित किया है।

प्रस्तुत 'स्रोत' शब्द के अर्थ विस्तार पर चिन्तन करने से स्पष्ट होता है 'स्रोत' शब्द शरीर के अगो के सम्बन्ध मे भी प्रयुक्त हुआ है। आचार्य महाप्रज्ञ जी ने सुश्रुत सहिता का सन्दर्भ देते हुए बताया है कि वहाँ शरीर के १२ स्रोतो का उल्लेख है, जैसे–एक मुख, दो कान, दो नेत्र, दो नासिकाएँ–ये सात ऊर्ध्व भाग मे स्थित ऊर्ध्व स्रोत है। दो स्तन मध्य स्रोत तथा अधोभाग में तीन स्रोत है–लिग, रक्तवहा (योनि) एवं गुदा। शरीर के ये सभी अग विषयाभिमुख होने से 'स्रोत' कर्मबन्धन के कारण बन जाते है। (*आचाराग भाष्य*, पृ २८८)

Elaboration—What are the sources ın three dırectıons as conveyed by the phrase ***uddham sota*.......?' The commentator (*Vrıttı*) explaıns—*Srota* means the sources of ınflow of *karmas* These are located ın three dırectıons or the three worlds. The sources above are—the cravıngs for the carnal pleasures provıded by dıvıne damsels or dıvıne pleasures ın the celestıal vehıcles (the *Vaımanık* dımensıon of gods) In the same way the sources below are—craving for carnal pleasures avaılable wıth the *Bhavanpatı* (dwellıng in abodes) gods The sources ın the mıddle are the carnal pleasures related to *Vyantar* (ınterstıtıal) gods, humans and animals An aspırant should always

be careful of these sources These sources should be considered as attachment ıtself and should always be observed carefully wıth the help of deep contemplatıon The process of bondage of *karmas* ıs termınated when these sources are closed The *karma-less* state ıs attaıned when the bondage of *karmas* ıs completely shattered The author of thıs scrıpture has ındıcated—when free of *karmas* he has dırect perceptıon and knowledge of the world

When we ponder over the wıder scope of the word *srota* ıt becomes clear that thıs word has also been used for 'parts of the body' *Acharya* Mahaprajna, gıvıng reference of *Susruta Samhıta,* has saıd that ıt mentıons about twelve sources ın the human body—the sources above are seven ın number, and they are one mouth, two ears, two eyes and two holes of the nose, the sources ın the mıddle are two breasts, and the sources below are penıs, vagına and anus Beıng ınstruments of pleasure, all these parts of the human body become sources of ınflow of *karmas* (*Acharanga Bhashya*, p 288)

मुक्तात्मा का स्वरूप

१७७. अच्चेइ जाइ-मरणस्स वट्टमग्ग वक्खायरए।

सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का जत्थ ण विज्जइ।

मई तत्थ ण गाहिया।

ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयण्णे।

से ण दीहे, ण हस्से। ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरसे, ण परिमंडले। ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिए, ण हालिद्दे, ण सुक्किले। ण सुब्भिगधे, ण दुरभिगंधे। ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अबिले, ण महुरे। ण कक्खडे, ण मउए। ण गरुए, ण लहुए। ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे। ण काऊ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अण्णहा।

परिण्णे, सण्णे। उवमा ण विज्जति। अरूवी सत्ता।

अपयस्स पयं णत्थि।

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गधे, ण रसे, ण फासे, इच्चेतावंति।

त्ति बेमि।

॥ पचमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ लोगसारो पंचमं अज्झयण सम्मत्तो ॥

१७७. (व्याख्यात-रत–) मोक्ष-मार्ग में स्थित मुनि जन्म-मरण के वृत्त (चक्राकार) मार्ग को पार कर जाता है।

(उस मुक्तात्मा का स्वरूप या सुख बताने के लिए) सभी स्वर समाप्त हो जाते है–(मुक्त आत्मा का स्वरूप शब्दों के द्वारा बताया नही जा सकता), तर्क द्वारा भी समझाया नहीं जा सकता है।

मति (मनन रूप) भी उसे पकड नहीं पाती।

वहाँ वह कर्ममल से रहित ओजरूप (ज्योति स्वरूप है) शरीर रूप प्रतिष्ठान आधार से रहित (अशरीरी) और क्षेत्रज्ञ–चैतन्य स्वरूप है।

वह (शुद्ध सिद्ध आत्मा) न दीर्घ है, न ह्रस्व है। न वृत्त है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, और न परिमण्डल (गोल चूडी आकार) है। वह न कृष्ण (काला) है, न नीला है, न लाल है, न पीला है और न शुक्ल है। न वह सुगन्धयुक्त है और न दुर्गन्धयुक्त। वह न तिक्त है, न कड़वा है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है। वह न कर्कश है, न मृदु (कोमल) है। न गुरु (भारी) है, न लघु (हलका) है। न ठण्डा है, न गर्म है, न चिकना है, और न रूखा है। वह (मुक्तात्मा) कायवान् (शरीरयुक्त) नही है, वह जन्मधर्मा नही है, वह संगरहित है, वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है।

वह परिज्ञ (सम्पूर्ण ज्ञाता) है, सज्ञा–(सभी पदार्थो को सम्यक् जानता) है। (अर्थात् सर्वत· चैतन्यमय है) (उसका बोध कराने के लिए) कोई उपमा नही है। वह अरूपी (अमूर्त्त) सत्ता है।

वह पदातीत (अपद) है, उसका बोध कराने के लिए कोई पद नही है।

वह न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है। बस, इतना ही है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

THE FORM OF LIBERATED SOUL

177. The ascetic stable (engrossed) in the path of liberation crosses the vicious circle of life and death (rebirth)

All vowels (and consonants) fail (to explain the form or bliss of that liberated soul)

It cannot be explained by logic

Even intellect cannot grasp it. There it is in the form of aura not tarnished by the dirt of *karmas*. It is devoid of any foundation in the form of body And it is knower of every field, in other words the embodiment of pure knowledge.

It (the pure *Siddha* soul) is neither long nor short. It is neither a circle, nor a triangle, or a quadrilateral or a sphere. It is neither black, nor blue, or red, or yellow, or white. It neither has fragrance nor stink. It is neither hot nor bitter, or pungent, or sour, or sweet. It is neither harsh nor soft, neither heavy nor light, neither cold nor hot, and neither smooth nor rough It has nobody. It does not take birth and is free of affiliation. It is neither female nor male, or a neuter

It is knowledge personified (all knowing) and awareness personified (a pulsating spirit) There is no metaphor that can explain it It has a formless existence

It is beyond status There is no status that can explain it

It is neither sound, nor form, or aroma, or taste or touch It is just that

—So I say

विवेचन–आचारांग का मुख्य प्रतिपाद्य आत्म-अस्तित्व का सिद्धान्त है। आत्मा के दो भेद है–कर्म उपाधि से युक्त सशरीरी तथा कर्ममुक्त अशरीरी। कर्म सहित आत्मा शरीर मे स्थित होने से दीखता है, तर्क एव बुद्धि से ग्राह्य है, जन्म-मरण भी करता है और स्त्री, पुरुष आदि चिह्नो से पहचाना जाता है।

पिछले सूत्रो मे आस्रव का निरोध अथवा सवर एव तप के द्वारा कर्मास्रवों का क्षय करने का मार्ग बताया है। कर्ममुक्त होने पर आत्मा शरीर से मुक्त अमूर्त्त रूप होता है। सूत्र १७७ मे अमूर्त्त आत्मा अर्थात् सिद्ध आत्मा का स्वरूप बताया गया है।

आचार्य श्री आत्माराम जी म ने उपनिषदो के सदर्भ देते हुए बताया है–उपनिषदो मे **अशब्दमस्पर्श्यमरूपमव्यय** (कठोपनिषद १/३/१५) आदि वाक्यों द्वारा आत्मा को अशब्द, अस्पर्श्य, अरूप एव अव्यय बताया है।

'ओज' शब्द का अर्थ टीका में ज्योति स्वरूप ज्ञानमय भी किया है तथा कर्ममल से रहित शुद्ध निर्मल एवं एकाकी भी किया है। भाव दोनो का एक ही है।

'असग' का अर्थ है–आसक्ति का लेशमात्र भी नही होना। स्त्री-पुरुष-नपुसक रूप लिंग (चिह्न) मोहकर्म के कारण होते हैं, वहाँ मोहकर्म का सर्वथा अभाव होने से न तो स्त्री है, न पुरुष है।

परिज्ञ का अर्थ है सपूर्ण भाव से जानना और 'सज्ञ' का अर्थ है सम्यक्रूप मे जानना।

॥ पंचम उद्देशक समाप्त ॥

॥ लोकसार पंचम अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—The central theme of *Acharanga* is the principle of existence of soul There are two categories of soul—with a body and having imposture of *karmas*, and without a body and free of *karmas* A soul infested with *karmas* resides in a body that is visible Therefore it is logically and rationally acceptable. It takes birth and dies also It can be recognized as male, female and has other attributes as well

In the preceding aphorisms the method of shedding *karmas* through blocking the inflow of *karmas* and austerities has been explained On being free of *karmas* and body a soul becomes formless Aphorism 177 describes this formless soul

Giving reference of *Upanishads Acharya* Atmaram ji M. says that in *Kathopanishad* a soul is said to be without sound, without touch, without form and without decay

In the commentary (*Tika*) the word *oj* has been interpreted as aura-like or radiant or knowledge personified and also as pure and devoid of the dirt of *karma* and solitary Both the interpretations convey the same idea—

Asanga means—'not a trace of attachment' The genders, female, male and neuter are caused by fondness In that state there is total absence of *Mohaniya karma* therefore it is neither male nor female

Parijna means to know completely and *sanjna* means to know rightly

● END OF LESSON SIX ●

● LOKASARA : END OF FIFTH CHAPTER ●

● ●

धुयं : छट्ठमं अज्झयणं
धुत : छठा अध्ययन

आमुख

✦ छठे अध्ययन का नाम है–'धुत अध्ययन'।

✦ 'धुत' शब्द का सामान्य अर्थ है धुला हुआ, शुद्ध तथा निर्मल। वस्त्रादि पर से धूल आदि झाडकर उसे निर्मल कर देना द्रव्यधुत कहलाता है। भावधुत वह है, जिसने सयम एवं ध्यान द्वारा अष्टविध कर्मों को धुन डाला हो अथवा कर्मरज से रहित हो गया हो।

✦ धुत अध्ययन का उद्देश्य है–साधक ससारवृक्ष के बीजरूप कर्मों के विभिन्न कारणों को जानकर उनका परित्याग करे और कर्मों से सर्वथा मुक्त–(अवधूत) बने।

✦ प्राचीन काल में निर्ग्रन्थ परम्परा की भाँति बौद्ध परम्परा मे भी 'धुत्त' शब्द प्रचलित था। वहा तेरह धुतों का वर्णन मिलता है। *(विशुद्धि मग्गो)*

✦ इस अध्ययन के पाँच उद्देशको मे पाँच प्रकार के धुतो का वर्णन है।

✦ प्रथम उद्देशक मे **निजकधुत** अर्थात् स्वजनो के ममत्व भाव त्याग का वर्णन है।

✦ द्वितीय उद्देशक मे **कर्मधुत**–आठ प्रकार के कर्मो मे प्रकम्पन करने का कथन है।

✦ तृतीय उद्देशक मे उपकरण–**शरीरधुत**–अर्थात् उपकरणो एव शरीर के प्रति ममत्व-त्याग का प्रतिपादन है।

✦ चौथे उद्देशक में **गौरवधुत**–ऋद्धि, रस तथा साता-गौरव के त्याग का तथा

✦ पंचम उद्देशक में **उपसर्गधुत**–अनुकूल-प्रतिकूल परीषहों में तितिक्षा रखने का कथन है।

✦ इस अध्ययन में अनेक प्रचलित शब्दों का नवीन अर्थों में प्रयोग हुआ है। जैसे **'वेयवी'** वेदविद्–वेदों को जानने वाला। उस युग के इस प्रतिष्ठित शब्द को इस अध्ययन मे ज्ञानी और दूसरो की पीडा को जानने के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार 'स्थितात्मा', 'दृष्टिमान' आदि अनेक प्रकाशित शब्द नये अर्थों में लक्षित होते हैं।

DHUYAM : CHHATHAMAM AJJHAYANAM
DHUT : SIXTH CHAPTER
THE CLEANSED

INTRODUCTION

- The name of the sixth chapter is—*Dhut Adhyayan* or The chapter on 'the cleansed'
- The simple meaning of the word *dhut* is washed, cleansed, or purified To shake out dust from a piece of cloth or other such thing and make it dust free is called *dravya-dhut* or physically cleansed One who has shaken off eight types of *karmas* with the help of discipline and meditation is called *bhava-dhut* or spiritually cleansed
- The theme of this chapter is—an aspirant should know about various root-causes of *karmas* that are seeds of the tree of mundane life After this he should cast these off and become absolutely free of *karmas* (*avadhoot* or completely cleansed, purified)
- In ancient times the word *dhut* was also in popular use in the Buddhist tradition as it was in the *Nirgranth* (Jain) tradition One can find a description of thirteen types of *dhut* there (*Vishuddhi Maggo Me*)
- In the five lessons of this chapter are described five types of *dhut*
- First Lesson contains details about *Nijak Dhut* or abandoning the fondness for kin-folk
- Second Lesson contains details about *Karma Dhut* or vibrating the eight types of *karmas*
- Third Lesson contains details about *Sharira Dhut* or abandoning the attachment for body and equipment

- Fourth Lesson contains details about *Gaurava Dhut* or abandoning the pride of achievements, taste and comforts
- Fifth Lesson contains details about *Upasarg Dhut* or tolerating various favourable and unfavourable afflictions
- In this chapter many common words have been used to convey new meanings For example *veyavi* or *Vedavid*, was conventionally interpreted as an expert of *Vedas* A popular and established term of that era, *Vedavid*, in this chapter, carries the meaning of sagacious and aware of the pain of others In the same way many other terms, such as *sthitatma* and *drishtiman* can be seen conveying new meanings

पढमो उद्देसओ	प्रथम उद्देशक	LESSON ONE

सम्यग्ज्ञान का कथन

१७८. ओबुज्झमाणे इह माणवेसु आघाइ से णरे।

जस्स इमाओ जाइओ सव्वओ सुपडिलेहिआओ भवंति आघाइ से णाणमणेलिसं।

से किट्टति तेसिं समुट्ठियाणं निक्खित्तदंडाणं समाहियाणं पण्णाणमंताणं इह मुत्तिमग्गं।

१७८ इस संसार मे सम्बुद्ध पुरुष दूसरे मनुष्यों को धर्म का आख्यान (कथन) करता है।

जिसको ये समग्र जीव-जातियाँ सब प्रकार से भलीभाँति ज्ञात होती हैं, वही विशिष्ट (असाधारण) ज्ञान का सम्यक् रूप मे उपदेश करता है।

वह (सम्बुद्ध पुरुष) इस लोक में उन सब के लिए मुक्ति मार्ग का उपदेश करता है, जो धर्माचरण के लिए उद्यत है, मन, वचन और काया से जिन्होंने दण्डरूप हिंसा का त्याग कर दिया है, जो समाहित (एकाग्रचित्त या तप-सयम मे उद्यत) है तथा सम्यक् ज्ञानवान् हैं।

DEFINING RIGHT KNOWLEDGE

178. In this world it is the enlightened man who preaches religion to other people

Only he who perfectly knows in every way all these life forms, rightly preaches special (uncommon) knowledge.

He (the enlightened one) shows the path of liberation for all those in this world who are prepared to follow the religious conduct, have renounced violence in the form of torture through mind, speech and body, who are self contained (engrossed in austerities and discipline); and endowed with right knowledge.

विवेचन–'आघाइ से नरे' इस पद के द्वारा शास्त्रकार ने यह संकेत किया है कि धर्म का, ज्ञान का, या मोक्ष-मार्ग विषयक तत्त्व-ज्ञान का प्ररूपण ज्ञानी पुरुष के द्वारा ही किया जाता है, वह अपौरुषेय नही होता। चार घातिकर्मों के क्षय हो जाने पर केवलज्ञान से सम्पन्न होकर वे अन्य प्राणियों के हित के लिए धर्म या ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं।

अतीन्द्रिय ज्ञानी या श्रुतकेवली भी धर्म या असाधारण ज्ञान का व्याख्यान कर सकते हैं, जिनके विशिष्ट ज्ञान के प्रकाश में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक की प्राणिजातियाँ सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक, अपर्याप्तक आदि रूपों मे स्पष्ट रूप से जानी-समझी जाती हैं।

आघाति से णाणमणेलिसं-वह अनीदृश-अनुपम या विशिष्ट ज्ञान का कथन करते हैं। समुट्ठियाणं इस आलापक में ज्ञान-श्रवण के पिपासु श्रोता की योग्यता के चार आधार बताये हैं-(१) जो मुक्ति-मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हो, (२) निक्षिप्तदण्ड-हिंसा-परित्यागी हो, (३) इन्द्रिय और मन की समाधि से सम्पन्न हो, और (४) प्रज्ञावान अर्थात् बुद्धि-सम्पन्न हों।

Elaboration—***Aghai se nare***—man states that The author has used this phrase to emphasize that propagation of religion is not a supernatural phenomenon It is an enlightened person who propagates religion, knowledge and fundamentals related to the path of liberation After destroying the four *ghati-karmas*, he attains omniscience and propagates religion or knowledge for the benefit of other beings

Even the *Shrut Kevalis* or those endowed with paranormal or super-sensory knowledge can teach religion or higher knowledge In the light of their profound knowledge all the six life forms, from one-sensed to five sensed species in their various states, such as gross as well as minute and fully developed and under-developed, can be clearly known and understood

Aghati se nanamanelisam—they state hitherto unknown or superior knowledge ***Samutthiyanam...***—this phrase defines the four qualities of a listener who has thirst for knowledge—(1) He should be prepared to tread the path of liberation (2) He should have renounced violence (3) He should be accomplished in discipline of mind and senses (4) He should be intelligent and wise

मोहाच्छन्न जीव की दशा

१७९. एवं पेगे महावीरा विप्परक्कमंति।

पासह एगेऽवसीयमाणे अणत्तपण्णे-

से बेमि-से जहा वि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छण्णपलासे, उम्मग्गं से णो लहइ।

भंजगा इव संन्निवेसं नो चयंति। एवं पेगे–अणेगरूवेहिं कुलेहिं जाया, रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, णियाणओ ते ण लभंति मोक्खं।

१७९. कई एक महान् वीर पुरुष मुक्ति-मार्ग का आख्यान (–उपदेश) सुनकर (संयम मे) पराक्रम करते हैं।

(किन्तु) तुम उन्हें भी देखो, जो आत्म-हित की प्रज्ञा से रहित हैं, वे संयम में विषाद पाते हैं (उनकी दशा को निम्न उदाहरण से समझो)–

मैं कहता हूँ–जैसे एक कछुआ है, उसका चित्त (एक) महाह्रद (सरोवर) में लगा हुआ है। वह सरोवर शैवाल और पलाश पत्तों से ढका हुआ है। वह कछुआ खुले आकाश को देखने के लिए (कहीं) छिद्र को भी नहीं पा रहा है।

जैसे भजग–वृक्ष (अनेक प्रहारो को सहते हुए भी) अपने स्थान को नहीं छोड़ते, वैसे ही कुछ लोग हैं–जो अनेक प्रकार–(दरिद्र, सम्पन्न, मध्यवित्त आदि) कुलों मे जन्म लेते हैं तथा रूप आदि इन्द्रिय विषयो में आसक्त होकर विलाप करते हैं, (लेकिन गृहवास को नहीं छोडते) ऐसे व्यक्ति दुःखों के हेतुभूत कर्मों से मुक्त नहीं हो सकते।

CONDITION OF A DELUDED BEING

179. After listening to a discourse about the path of liberation, many great and brave individuals commence efforts (on the path of discipline)

(However), you should also see those who are devoid of the awareness of the benefits of the self and find ascetic discipline filled with misery. (try to understand their condition with the help of the following example)

I give an example—There is a tortoise His mind is fully engrossed in a great lake That lake is fully covered with plankton and leaves. That tortoise is unable to find even a small gap anywhere just to peep at the open sky.

As a tree does not move from its place (in spite of suffering numerous blows), likewise there are some people who are born in various types of families (poor, middle or upper class, etc.). Caught in the trap of mundane attachments they just wail (but are unable to renounce a householder's life). Such people cannot get liberated from *karmas*, the root causes of miseries.

विवेचन--इस सूत्र में बताया है–कुछ एक महान् वीर पुरुष मुक्ति-मार्ग का उपदेश सुनकर साधना के लिए विशेष पराक्रम करते हैं। 'अपि' शब्द के द्वारा चूर्णिकार यह सूचित करते हैं कि कुछ एक बिना सुने ही, जाति-स्मृति आदि ज्ञान से जानकर भी संयम आराधना करते हैं, जैसे–प्रत्येकबुद्ध।

साथ ही जिन्हें आत्म-प्रज्ञा–आत्मा के हित-अहित का ज्ञान नही है, वे अपने अज्ञान के कारण, मोहोदय के कारण तथा पूर्वाग्रहों के कारण विषाद को प्राप्त होते हैं। इस सत्य को समझाने के लिए सरोवर तथा वृक्ष का दृष्टान्त दिया गया है।

(१) सरोवर--एक सघन शैवाल और कमल-पत्रो (जल-वनस्पतियो) से आच्छादित सरोवर था। उसमे अनेक प्रकार के छोटे-बडे जलचर जीव निवास करते थे। एक दिन उस शैवाल मे एक छोटा-सा छिद्र हो गया। एक कछुआ भटकता हुआ उसी छिद्र (विवर) के पास आ पहुँचा। उसने छिद्र से बाहर गर्दन निकाली, नील आकाश मे तारों के बीच चन्द्रमा को चमकते देखकर वह एक विचित्र आनन्द मे मग्न हो उठा। उसने सोचा–'मै अपने पारिवारिक जनो को भी ऐसा अनुपम दृश्य दिखलाऊँ।' उन्हे बुलाने के लिए चल पड़ा। परिवार जनो को साथ लेकर छिद्र को खोजता हुआ आया। किन्तु इतने विशाल सरोवर मे उस लघु छिद्र का कोई पता नही चला, वह विवर उसे पुन प्राप्त नहीं हुआ।

दृष्टान्त का भाव इस प्रकार है–कछुए की भाँति जीव है, महाह्रद के समान ससार है जो कर्मरूप अज्ञान शैवाल से आवृत है। पूर्व पुण्योदय के कारण सम्यक्त्वरूपी छिद्र (विवर) या धर्म को प्राप्त हो गया। किन्तु परिवार के मोहवश वह उन्हे यह बताने के लिए वापस घर जाता है, गृहवासी बनता है, और आसक्त होकर भटक जाता है। मोह की सघनता के कारण पुन वह अवसर प्राप्त नहीं होता।

(२) वृक्ष--सर्दी, गर्मी आदि प्राकृतिक आपत्तियो तथा फल-फूल तोडने के इच्छुक लोगो द्वारा पीडा, प्रहार आदि को सहते हुए अपने स्थान पर स्थित रहता है, वैसे ही गृहवास मे स्थित मनुष्य दरिद्रता, अपमान आदि दु खो, पीडाओ तथा महारोगो से आक्रान्त होने पर भी गृहवास का त्याग नही कर पाते।

एक बार सत्य का दर्शन कर पुन मोह मे मूढ़ होकर भ्रष्ट आत्मा का प्रथम उदाहरण है। दूसरा उदाहरण गृहवास मे आसक्त आत्मा का है।

Elaboration—This aphorism informs that some very brave individuals make sincere efforts towards spiritual practices after listening to preaching about the path of liberation According to the commentator (*Churni*), the use of the word *api* (also) indicates that there are also some individuals who practice discipline of their own

1

2

3
वृक्ष दृष्टान्त
14

चित्र परिचय १४	Illustration No. 14

कूर्म दृष्टान्त

१-२ से जहा वि कुम्मे–

एक कछुआ अपने परिवार के साथ किसी विशाल सरोवर में रहता था। वह सरोवर गहरी शैवाल और कमल पत्रों से ढंका था। एक दिन अचानक उस शैवाल में एक छेद हो गया और कछुए को आकाश में चमकता हुआ चन्द्रमा दिखाई दिया। उस दृश्य को देखकर वह मुग्ध हो गया। अपने परिवार को वह सुरम्य दृश्य दिखाने के लिए बुलाने गया। परिवार को लेकर आया परन्तु तब तक हवा चलने से शैवाल से पुन छिद्र ढंक गया और वह खोजता ही रह गया।

उपनय–कछुए की भाँति जीव है। सरोवर की भाँति संसार। शैवाल की भाँति कर्म। छिद्र की भाँति संयम ग्रहण करने का दुर्लभ अवसर। परिवार आदि की मूर्च्छा के कारण यह जीव एक बार संयम साधना का अवसर पाकर भी खो देता है। *-अ ६ उ १ सूत्र १७९*

वृक्ष दृष्टान्त

३ 'भजगा इव सण्णिवेसं नो चयति।'

जैसे रास्ते के किनारे खड़े वृक्ष पर लोग फल आदि के लिए लाठी व पत्थरों से प्रहार करते हैं वृक्ष उन सब के प्रहार सहकर भी अपना स्थान नहीं छोड़ता। इसी प्रकार कुछ मनुष्य संसार में अनेक कष्ट व यातनाएं पाकर भी जहां पड़े हैं उस स्थान को छोड़ नहीं पाते। *-अ ६ उ १ सूत्र १७९*

THE EXAMPLE OF TORTOISE

1-2 A tortoise lived with its family in a lake densely covered with lotus leaves, water weeds and plankton One day there appeared a small gap in the plant cover and the tortoise had an enchanting view of the sky filled with stars and a glowing full moon The fascinated tortoise proceeded to call the family to share this experience By the time it returned to that area, the blowing wind had again covered the gap with weeds The small tortoise failed to find the gap

The message—A human being is like that tortoise This world or mundane life is the lake and the ignorance in the form of *karmas* is the plant cover Ascetic conduct is the gap The attachment with his family makes him loose the opportunity of practicing ascetic conduct he accepted once *—6/1/179*

THE EXAMPLE OF TREE

3 A tree on the side of a path is unable to move from its place in spite of suffering blows inflicted by people standing on the path In the same way some people, in spite of suffering miseries and torments, are unable to move from the place they are in *—6/1/179*

accord after acquiring knowledge through *Jati-smaran-jnana* (knowledge of earlier births) or otherwise, and not by listening to preaching Examples of this are the *Pratyek Buddhas* (without listening to any discourse who get inspired by some outside factor or incident and get liberated)

Those who have no awareness to the benefit or harm to the self end up in misery due to their ignorance, attachment and dogmas To explain this are given examples of lake and tree

(1) Lake—There was a lake densely covered with lotus leaves, water weeds and plankton Various small and large aquatic animals dwelt in the lake One day there appeared a small opening in the plant cover and a tortoise came under it. It put out its neck through the gap and had an enchanting view of the sky filled with stars and a glowing full moon The fascinated tortoise thought—'Let me show this fantastic scene to other members of my family' It proceeded to call the family Sometime later it collected a few other tortoises and returned to that area in search of the opening In such large water body the small tortoise found it impossible to find the small opening again

The message this example conveys is—A human being is like that very tortoise. This world or mundane life is the lake and the ignorance in the form of *karmas* is the plant cover Because of the precipitation of meritorious *karmas* it finds the gap that is *samyaktva* or ascetic conduct The attachment with his family inspires him to tell them about his attainment and he returns to the mundane life He is once again entrapped in fondness and is lost He fails to get another opportunity due to the intensity of attachment

(2) The Tree—A tree is unable to move from its place in spite of suffering blows of nature such as cold, heat and rain, and pain when people pluck flowers and fruits In the same way a man as a householder, in spite of suffering poverty, insult, miseries, disease and various other torments, is unable to renounce a householder's

life. Such people cannot get liberated from *karmas*, the root causes of miseries.

The first example is about the fallen ones who once had a vision of the truth The second example is about the common householder entrapped in mundane attachments

स्वकृत कर्म-जनित कष्ट

१८०. अह पास तेहिं कुलेहिं आयत्ताए जाया–
गंडी[१] अदुवा कोढी[२] रायंसी[३] अवमारियं[४]।
काणियं[५] झिमियं[६] चेव कुणियं[७] खुज्जियं[८] तहा॥
उदरिं[९] च पास मूयं[१०] च सूणियं[११] च गिलासिणिं[१२]।
वेवइं[१३] पीढसप्पिं[१४] च सिलिवयं[१५] महुमेहणिं[१६]॥
सोलस एते रोगा अक्खाया अणुपुव्वसो।
अह णं फुसंति आयंका फासा य असमंजसा॥
मरणं तेसिं सपेहाए उववायं चयणं च णच्चा
परिपागं च सपेहाए तं सुणेह जहा तहा।

१८० अब तुम देखो, वे (मनुष्य) उन कुलो मे आत्म-भाव–अपने-अपने कृत कर्मो के फलस्वरूप निम्नोक्त रोगों से ग्रस्त हो जाते है–

(१) गण्डमाला, (२) कोढ़, (३) राजयक्ष्मा (तपेदिक), (४) अपस्मार (मृगी या मूर्च्छा), (५) काणत्व (कानापन), (६) जडता (अगोपागो में शून्यता), (७) कुणित्व (टूँटापन, एक हाथ या पैर छोटा और एक बडा विकलागता), (८) कुबडापन, (९) उदररोग (जलोदर, अफारा, उदरशूल आदि), (१०) मूकरोग (गूँगापन), (११) शोथरोग–सूजन, (१२) गिलासिनी–भस्मकरोग, (१३) वेपकी–कम्पनवात, (१४) पीठसर्पी–पंगुता, (१५) श्लीपदरोग (हाथीपगा), और (१६) मधुमेह; ये सोलह रोग क्रमश कहे गये हैं। इसके अनन्तर (शूल आदि मरणान्तक) आतक। (दु:साध्य रोग) और अनिष्टकारी स्पर्श प्राप्त होते है।

उन मनुष्यों की मृत्यु का विचार कर, उपपात (जन्म) और च्यवन (मरण) को जानकर तथा कर्मो के विपाक का भलीभाँति चिन्तन करके उसके (यथार्थ) स्वरूप को सुनो।

PAIN CAUSED BY ONE'S OWN DEEDS

180. Now you should observe—those people in those clans, due to their own attitudes (as a consequence of their deeds) suffer from the following ailments—

(1) *Gandamala* (goitre), (2) *Kodh* (leprosy), (3) *Rajayakshma* (tuberculosis), (4) *Apasmaar* (epilepsy), (5) *Kanatva* (blindness in one eye), (6) *Jadata* (paralysis), (7) *Kunitva* (deformity of limbs), (8). *Kubadapan* (kyphosis or hunchbacked), (9) *Udar-rog* (gastrointestinal disorders or gastropathy), (10) *Mook-rog* (dumbness, aphasia, aphonia), (11) *Shoth-rog* (oedema; inflammation; distention, turgidity), (12) *Gilasini* or *Bhasmak rog* (over-digestion, hyperphagia), (13) *Vepaki* or *kampan-vaat* (ague, malaria), (14) *Peeth-sarpi* (polio), (15) *Shleepad-rog* (elephantiasis), and (16) *Madhumeha* (diabetes). These sixteen ailments have been stated in due order. After this he suffers contagious, non-treatable and fatal diseases

Think about the death, rebirth and fall (cycles of rebirth in higher and lower states) of those people, sincerely contemplate on the fruition of *karmas* and then listen (about its true form).

१८१. संति पाणा अंधा तमसि वियाहिआ। तामेव सइं असइं अतिअच्च उच्चावयफासे पडिसंवेदेंति।

बुद्धेहि एयं पवेइयं। संति पाणा वासगा रसगा उदए उदयचरा आगासगामिणो।

पाणा पाणे किलेसंति। पास लोए महब्भयं।

बहुदुक्खा हु जंतवो।

सत्ता कामेहिं माणवा। अबलेण वहं गच्छंति सरीरेण पभंगुरेण।

अट्टे से बहुदुक्खे इति बाले पकुव्वइ।

एए रोगे बहू णच्चा आउरा परितावए।

णालं पास। अलं तव एहिं।

एयं पास मुणी ! महब्भयं। णातिवाएज्ज कंचणं।

१८१. जो प्राणी अंधकार मे रहते हैं व अन्धे कहे जाते हैं, वे प्राणी उसी (विविध दु.खपूर्ण अवस्था) को एक या अनेक बार भोगकर तीव्र और मन्द (ऊँचे-नीचे) स्पर्शों का अनुभव करते रहते है।

बुद्धो (तीर्थंकरो) ने इसका प्रतिपादन किया है। (कर्मों की विविधता के कारण–) अनेक प्रकार के प्राणी होते हैं। जैसे–वर्षज–(वर्षा ऋतु मे उत्पन्न होने वाले मेढक आदि), रसज–(रस) मे उत्पन्न होने वाले (कृमि आदि जन्तु), उदक रूप–एकेन्द्रिय अप्कायिक जीव, या जल मे उत्पन्न होने वाले जलचर जीव, आकाशगामी–नभचर पक्षी आदि।

वे प्राणी (अपनी जीवन-रक्षा आदि के लिए) अन्य प्राणियो को कष्ट देते है। तू देख, लोक मे महान् भय है।

ससार मे जीवो को बहुत दु.ख है।

बहुत से मनुष्य काम-भोगो मे आसक्त रहते है। वे इस निर्बल एवं क्षणभगुर शरीर को सुख देने के लिए अन्य अनेक प्रकार की व्यथाओ/पीडाओ को प्राप्त होते हैं।

वेदना से पीडित वह मनुष्य बहुत दु खी रहता है। इसलिए वह अज्ञानी दूसरे प्राणियो को कष्ट देता है।

(इन पूर्वोक्त प्रकार के) अनेक रोगो के उत्पन्न होने से आतुर मनुष्य (उनकी चिकित्सा के लिए) दूसरे प्राणियो को परिताप देते हैं।

तू देख ! ये (प्राणिघातक-चिकित्साविधियाँ कर्मोदय-जनित रोगो का शमन करने मे) समर्थ नहीं है। (अत जीवो को परिताप देने वाली) इन (चिकित्साविधियो) से तुमको दूर रहना चाहिए।

मुनिवर ! तू देख। यह जीव-हिसा महान् भयरूप है। इसलिए भी किसी प्राणी का वध न करे।

181. The beings who live in darkness and are blind, they continue to experience sharp and mild touch (of pain) through suffering in the same (miserable) state once or frequently.

The Enlightened ones (*Tirthankars*) have propagated this. There are various types of beings (due to varieties of *karmas*) For example—*varshaj* or beings born due to rain, such as frogs; *rasaj* or beings born in liquids, such as *bacteria* and *worms*, *udak* or water-bodied one-sensed beings, *udak-char* or aquatic beings, *akash-gami* or birds, etc.

These beings torment other beings (for their survival). You should see that the world is filled with great fear.

Beings in this world suffer great misery.

Many a people are infatuated with carnal pleasures. They suffer numerous types of pain and miseries in order to provide pleasure to this weak and ephemeral body

Tormented by pain, that man continues to be extremely miserable. Therefore, that ignorant one tortures other beings.

Attacked by numerous ailments (above mentioned), a disturbed man torments other beings (presumably for the treatment of those ailments).

See that these (cures based on killing beings) are not effective (in curing the diseases caused by precipitation of *karmas*). Therefore you should avoid these. (Cures based on causing harm to other beings.)

O ascetic ! Observe that this violence against beings is the source of great fear Therefore do not kill any being.

विवेचन–सति पाणा अधा–इस पद की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार कहते हैं–अधे दो प्रकार के होते हैं–द्रव्य-अन्ध (नेत्रहीन) और भाव-अन्ध–सद्-असद्-विवेकरूप भाव चक्षु से रहित। अन्धकार भी दो प्रकार का होता है–द्रव्यान्धकार–जैसे नरक आदि स्थानों में प्रकाश के अभाव मे घोर अंधेरा रहता है और भावान्धकार–कर्मविपाकजन्य मिथ्यात्व, कषाय आदि के रूप में होता है।

बहुदुक्खा–इस पद द्वारा ससार मे दु.खों की बहुलता सूचित की है। यहाँ कुछ दु ख स्वाभाविक हैं जैसे–जन्म, जरा, रोग, मृत्यु आदि। कुछ दु ख प्राकृतिक कारणो से, तथा कुछ मानसिक आसक्ति के कारण होते है। सबसे बडा मानसिक दु ख आसक्ति के कारण है। शरीर की, धन की, काम-भोगों की आसक्ति। आसक्तिजन्य दु खों के विषय में बताया है कि वह आसक्त हुआ व्यक्ति व्यथा से पीडित होता है तथा अनेक प्रकार के रोगों से आक्रात हो जाता है। फिर उन रोगों के शमन के लिए हिंसाजन्य चिकित्सा हेतु अनेक प्राणियों का वध आदि भी करता है। शास्त्रकार का कहना है–रोगो का मूल कारण तुम्हारे पूर्व संचित कर्म ही है। इसका विचार कर। यह चिकित्सा विधि रोगोपशमन में पूर्ण समर्थ नहीं है। इसलिए कर्म-मुक्ति का प्रयत्न करो और हिंसा से निवृत्त हो। इस प्रसंग में उत्तराध्ययन-सूत्र का १९वाँ मृगापुत्रीय अध्ययन विशेष मननीय है।

Elaboration—*Santi pana andha*—elaborating this phrase the commentator (*Vritti*) mentions—There are two types of blind—*dravya-andha* or physically blind and *bhava-andha* or mentally blind Physically blind is devoid of the capacity to see. Mentally blind is devoid of the capacity to differentiate right from wrong Darkness is also of two types Absence of light is physical darkness, such as that prevailing in hell and places on earth where light does not reach The passions, false perception, and other such vices caused by precipitation of *karmas* are forms of the mental darkness

Bahudukkha—great miseries This points at the superabundance of grief in this world Some of these miseries are natural, such as birth, ageing, ailments and death Some sorrows are caused by natural calamities and some others are caused by mental cravings or attachment The gravest misery is said to be caused by attachment, the attachment with the body, wealth, carnal pleasures, etc It is said about the miseries caused by attachment that the afflicted one suffers pain and is plagued by various ailments After this, he kills and tortures many beings to get treatment requiring violence towards animals (such as biological medicines) The author says that the basic cause of disease is *karmas* accumulated in the past Ponder over this The normal system of medicine is insufficient in the complete cure of diseases Therefore try to get free of the bondage of *karmas* and abandon violence In this context the 19th chapter, titled Mrigaputriya, of *Uttaradhyayan Sutra* is worth studying

'धुत' बनने की क्रमिक प्रक्रिया

१८२. आयाण भो ! सुस्सूस भो ! धुयवादं पवेदइस्सामि।

इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूता अभिसंजाता अभिणिव्वट्टा अभिसवुड्ढा अभिसंबुद्धा अभिणिक्खंता अणुपुव्वेण महामुणी।

१८२. हे मुने ! तुम जानो, सुनने की इच्छा करो, मै (अब) धुतवाद का प्ररूपण करूँगा।

इस संसार में प्राणी आत्मत्व (अपने कृत कर्म के उदय) से उन-उन कुलों में (शुक्र-शोणित के–) अभिषेक–अभिसिंचन से (माता के गर्भ में कललरूप होते हैं) फिर अर्बुद (माँस) और पेशी रूप बनते हैं, तदनन्तर अंगोपांग–स्नायु, नस, रोम आदि के क्रम से अभिनिष्पन्न (विकसित) होते हैं, फिर प्रसव होकर (जन्म लेकर) संवर्द्धित होते हैं, तत्पश्चात् अभिसम्बुद्ध (सम्बोधि को प्राप्त) होते हैं, फिर धर्म-श्रवण करके विरक्त होकर अभिनिष्क्रमण करते हैं। इस प्रकार क्रमश महामुनि बनते है।

THE GRADUAL PROCESS OF BECOMING CLEANSED

182. O ascetic ! Know this and desire to listen, I will (now) state the theory of becoming cleansed

In this world, beings, forced by their individuality (precipitation of their *karmas*), come to those various clans (are conceived in mother's womb) by impregnation (of semen or blood). After this they acquire a form with flesh and muscles and gradually develop tendons, nerves, hair (and other organs) Then they are born and continue to grow In due course they acquire wisdom, listen to preaching, get detached and renounce the world This way they gradually become great sages

विवेचन–इस अध्ययन में 'धुत' की चर्चा है। पिछले सूत्रों मे 'धुत' बनने के सन्दर्भ मे बताया है–प्राणी दु खों से भयभीत है, दु ख के रूप हैं–जन्म, मृत्यु, जरा और रोग। इनका कारण है कर्म। कर्मबन्धन का मूल हेतु है आसक्ति। इसलिए आसक्ति त्याग पर ही पूरा बल दिया गया है।

वृत्तिकार ने 'धुत' की परिभाषा की है–"**धुत अष्टप्रकार कर्म धुनने, ज्ञाति परित्यागो वा।**" –जिसने तप एव संयम द्वारा आठ प्रकार के कर्मों को झाडने, धुनने का प्रयास प्रारभ कर दिया है तथा जाति, परिवार का त्याग कर दिया है वह है धुत । चूर्णिकार का कथन है–"**धुनन्ति जेण कम्मं तवसा त धुत भणितं।**"–जिसने तप के द्वारा कर्मों को प्रकम्पित कर दिया है वह धुत है। इस सूत्र में धुत बनने का क्रम बताया है–"**इह खलु अत्तत्ताए।**"–प्राणी अपने कृत कर्मों के कारण विविध कुलों में जन्म लेता है। जन्म से धुत बनने तक की छह अवस्थाओं का वर्णन इस सूत्र में धुत बनने की यात्रा के रूप में किया गया है वे छह सोपान इस प्रकार हैं–

अपने किये हुए कर्मों के अनुसार जीव जब मानव कुल में आता है तो सर्वप्रथम सात दिन तक कलल (पिता के शुक्र और माता के रज) के **अभिषेक** के रूप मे बने रहता है। इसे अभिसम्भूत कहते हैं।

फिर ७ दिन तक अर्बुद के रूप में बनना, तब अर्बुद से पेशी बनना और पेशी से घन मॉंसपेशी तक बनना अभिसंजात कहलाता है। उसके पश्चात् क्रमशः अंग, प्रत्यंग, स्नायु, सिरा, रोम आदि का निष्पन्न होना अभिनिर्वृत्त कहलाता है।

उसके पश्चात् माता-पिता के गर्भ से उसका प्रसव (जन्म) होने से लेकर समझदार होने (आठ वर्ष) तक संवर्धन होना अभिसंवृद्ध कहलाता है।

इसके अनन्तर धर्म-श्रवण करने योग्य अवस्था पाकर पूर्व पुण्य के फलस्वरूप धर्मकथा सुनकर पुण्य-पापादि तत्त्वों को भलीभाँति जानना, ससार के स्वरूप का बोध प्राप्त करना अभिसम्बुद्ध बनना कहलाता है। आठ वर्ष से सौ वर्ष तक की अवस्था अभिसम्बुद्ध अवस्था हो सकती है। तीर्थंकर अभिषेक काल से ही अभिसम्बुद्ध होते हैं।

अभिनिष्क्रान्त–इसके पश्चात् घर-परिवार आदि सब का परित्याग करके मुनि धर्म पालन के लिए अभिनिष्क्रमण करना अभिनिष्क्रान्त कहलाता है। दीक्षा लेने के बाद गुरु के सान्निध्य में शास्त्रो का गहन अध्ययन, रत्नत्रय की साधना आदि के द्वारा चारित्र के परिणामो मे वृद्धि करना और क्रमश गीतार्थ, स्थविर, क्षपक, श्रेणी परिहार-विशुद्धि आदि उत्तम अवस्थाओं को प्राप्त करना भी अभिनिष्क्रान्त कोटि मे आता है। यही धुत बनने की यात्रा है।

Elaboration—The topic of this chapter is the cleansed In preceding aphorisms it has been mentioned, in context of becoming cleansed, that a being is terrified by grief in the form of birth, death, ageing and ailment The cause of these is *karma* The root cause of bond of *karmas* is attachment. Therefore all emphasis has been laid on abandoning attachment

The commentator (*Vritti*) defines *dhut* (cleansed) as—he who has commenced his efforts to shake off eight types of *karma* with the help of austerities and discipline, and has renounced his clan and family The commentator (*Churni*) says—one who has vibrated the *karmas* with the help of austerities is *dhut* The process of becoming cleansed has been described in this aphorism in stages of development A being is born in various clans depending upon his *karmas* From this point six stages of development, before one becomes cleansed, have been mentioned in this aphorism These six stages are as follows—

According to his *karmas* when a soul descends in a womb, after impregnation of ovum by sperm it remains in the fertilized state for

seven days This is called *abhisambhoot* For next seven days it develops into an embryo In the third week the mesoderm is formed which is the precursor of all the muscles, bones and blood vessels This is called *abhisamjaat* Now this turns into the fetus and gradually various parts of the human body take shape, this includes muscles, tendons, blood, hair, etc This is called *abhinirvritta*

After that comes the stage of delivery or birth as a child and growth till adolescence (eight years of age) This is called *abhisamvriddha*

Then there is gradual acquiring of knowledge As a result of past meritorious *karmas* the individual absorbs religious knowledge, properly understands fundamentals like meritorious and sinful *karmas* and becomes aware of the true form of the world This is called *abhisambuddha* This stage could be anywhere between eight to one hundred years of age A *Tirthankar* is in this stage right from the point of conception

Now comes the last stage when the individual renounces the mundane life including his home and family and accepts the ascetic way This is called *abhinishkrant* It includes initiation as an ascetic, profound study of scriptures under a *guru,* progress in practices of *Ratnatraya* (three gems—right perception-knowledge-conduct), and progressive attaining of higher levels of purity (scholar, non-itinerant ascetic, *karma*-destroyer, and extremely pure) This is the path of becoming *dhut* or cleansed

स्वजन परित्यागी धुत

१८३. तं परक्कमंतं परिदेवमाणा 'मा णे चयाहि' इति ते वदंति। छंदोवणीया अज्झोववन्ना अक्कदकारी जणगा रुवंति।

"अतारिसे मुणी णो ओहंतरए। जणगा जेण विप्पजढा।"

सरणं तत्थ णो समेति। किह णाम से तत्थ रमति ?

एयं णाणं सया समणुवासेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१८३. (सम्बुद्ध होने पर) संयम मे पराक्रम करते हुए उस मुनि के माता-पिता आदि विलाप करते हुए यों कहते है–"तुम हमे मत छोडो, हम तुम्हारी इच्छा के अनुसार चलेगे। तुम पर हमें ममत्व है।" इस प्रकार आक्रन्द करते हुए वे रुदन करते हैं।

स्वजन विलाप करते हुए कहते हैं–"ऐसा व्यक्ति न तो मुनि हो सकता और न ही संसार-सागर को पार कर सकता है 'जिसने माता-पिता को छोड दिया है।'

(स्वजनों का क्रन्दन सुनकर) वह मुनि उनकी शरण में नही जाता। वह तत्त्वज्ञ भला कैसे उस (गृहवास) मे रमण कर सकता है?

इस (पूर्वोक्त) ज्ञान का मुनि सदा अनुपालन करे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

ABANDONING THE FAMILY

183. While pursuing the path of discipline (when he gets enlightened), his parents (and other members of the family) cry and beseech, "Do not abandon us. We will do as you say We love you" They wail and cry again

The family members also cry and warn, "A person who abandons his parents can neither become an ascetic nor cross the ocean of the world"

That ascetic (on hearing the wailing of his kin) does not seek refuge with them How can that sage (who has understood fundamentals) live with them (as a householder)?

An ascetic should always abide by this (preceding) knowledge

—So I say.

विवेचन–स्वजनो का परित्याग करते हुए मुनि को वापस गृहवास मे खीचने के लिए स्वजन जो करुण-विलाप करते हैं उसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–ज्ञानी पुरुष, जिसने आत्म-अनुसंधान व आत्म-रमण का संकल्प कर लिया है, वह उन स्वजनों के करुण-रुदन से चलित नहीं होता–"सरण तत्थ नो समेति।"–वह वापस उनका आश्रय नहीं लेता।

शास्त्रकार स्वजन-परित्याग रूप धूतवाद में अविचल रहने वाले महामुनि के विषय में कहते हैं–वह 'अतारिसे मुणी ओहं तरए 'अनन्य सदृश–(अद्वितीय) मुनि संसार-सागर से उत्तीर्ण हो

जाता है। यहाँ 'अतारिसे' शब्द के दो अर्थ चूर्णिकार ने किये हैं-(१) जो संसार के प्रवाह को पार कर जाता है। (२) उस मुनि के जैसा कोई दूसरा नहीं है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Describing the pathetic wailing of the members of his family, with the intent of dissuading an ascetic who is renouncing the mundane life, the author says—an enlightened person, who has resolved to explore and dwell in the self, is not moved by the pathetic wailing of his family members He does not turn back to seek refuge with them

About the great sage who remains stable at that level of cleansing, where he has abandoned his family, the author says that he crosses the ocean that is this world

Atarise—unparalleled The commentator (*Churni*) has given two meanings of this word—who crosses the stream of mundane life, and who has no parallel

● END OF LESSON ONE ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

सर्वसंग-परित्यागी धुत का स्वरूप

१८४. आतुरं लोगमायाए चइत्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि। वसु वा अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं अहा तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला।

वत्थं पडिग्गहं कबल पायपुंछणं विउसिज्ज। अणुपुव्वेण अणहियासेमाणा परीसहे दुरहियासए।

कामे ममायमाणस्स इयाणिं वा मुहुत्ते वा अपरिमाणाए भेदे।

एवं से अंतराइएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं, अवितिण्णा चेए।

१८४ आतुर लोक को भलीभाँति जानकर, पूर्व सयोग को त्यागकर, उपशम को प्राप्त कर, ब्रह्मचर्य मे वास करके, वसु-(वीतराग धर्म) अथवा अनवसु-(सराग संयम धर्म श्रावकधर्म) धर्म को यथार्थ रूप से जानकर भी कुछ कुशील (मलि चारित्र वाले) व्यक्ति उस धर्म का पालन करने में समर्थ नहीं होते।

वे वस्त्र, पात्र, कम्बल एव पाद-प्रोंछन को छोड़कर, दु सह परीषहो को नही सह सकने के कारण (मुनिधर्म का त्याग कर देते हैं)।

विविध प्रकार के काम-भोगों से ममत्व रखने वाला व्यक्ति मुनिधर्म से भ्रष्ट हो जाता है। फिर तत्काल (प्रव्रज्या परित्याग के बाद ही) अन्तर्मुहूर्त मे या किसी भी समय मे उसका शरीर छूट सकता है-(आत्मा और शरीर का भेद न चाहते हुए भी भेद हो सकता है)।

इस प्रकार वे विघ्नो और द्वन्द्वों से युक्त काम-भोगो से अतृप्त ही रहते है (अथवा उनका पार नहीं पा सकते, बीच मे ही समाप्त हो जाते है)।

THE FORM OF ALL RENOUNCING *DHUT*

184. In spite of knowing well this distressed world, abandoning earlier affiliations, acquiring the capacity to pacify *karmas*, accepting the ascetic way of living, truly knowing the conduct of the detatched (ascetic) as well as the attached (partially detatched or shravak), some ascetics, having tainted conduct, are unable to follow that ascetic discipline

Unable to endure intolerable afflictions, they give up (their ascetic equipment like—) garb, pots, blankets and ascetic-broom (abandoning the ascetic way).

A person having fondness for various carnal pleasures drifts away from the ascetic path. Then he may embrace death at once, within a *muhurt* (48 minutes) or any time (the separation of soul and body may occur in spite of not desiring so).

Thus their carnal desires, fraught with obstacles and contradictions, remain ever insatiated (before seeing the end of these desires their life is terminated).

विवेचन–प्रथम उद्देशक में स्वजन-सग परित्यागी धुत का वर्णन किया गया है। इस उद्देशक में काम-भोग परित्यागी तथा संयम मे पराक्रमशील धुत का वर्णन है। जब वह स्वजनों का त्यागकर दीक्षा लेता है तो रागातुर स्वजन आक्रन्दन करते हैं। उपशम भाव धारण कर वह संयम में तथा ब्रह्मचर्य में रमण करता है। वह वसु अर्थात् वीतराग धर्म तथा अनुवसु अर्थात् सराग-संयम, दोनों को ही यथार्थ रूप मे जानता है। वृत्तिकार ने वसु से महाव्रती साधु तथा अनुवसु से अणुव्रतधारी श्रावक; ऐसा भी अर्थ किया है।

जो सभी पदार्थों का संयोग छोडकर, उपशम प्राप्त करके, ब्रह्मचर्य में रहकर अथवा आत्मा मे विचरण करके, धर्म को यथार्थ रूप से जानकर भी मोहोदयवश धर्म-पालन में अशक्त बन जाते हैं उनके लिए कहा है–'**अहेगे तमचाइ कुसीला**' धर्म-पालन में अशक्त होने के कारण ही वे कुशील (कुचारित्री) होते है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस साधक ने बाहर से पदार्थ को छोड़ दिया, कषायो का उपशम भी किया, ब्रह्मचर्य भी पालन किया, शास्त्र पढ़कर धर्मज्ञाता भी बन गया, परन्तु अन्दर से यह सब नहीं हुआ। अन्तर में पदार्थों को पाने की ललक है, निमित्त मिलते ही कषाय भडक उठते हैं, ब्रह्मचर्य भी केवल शारीरिक है या गुरुकुलवास भी औपचारिक है, धर्म के अन्तरग को स्पर्श नहीं किया, इसलिए बाहर से धूतवादी एवं त्यागी प्रतीत होने पर भी अन्तर से अधूतवादी एवं अत्यागी 'अचाइ' है।

'**वत्थ पडिग्गहं अवितिण्णा**'–वृत्तिकार इस पद का आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं–करोडों भवों में दुष्प्राप्य मनुष्य-जन्म को पाकर, संसार-सागर को पार करने में समर्थ बोधि-नौका को अपना कर, मोक्ष-तरु के बीज रूप सर्व विरति-चारित्र को अंगीकार करके भी, काम की दुर्निवारता, इन्द्रिय-विषयों की लोलुपता और अनेक जन्मों के कुसंस्कारों के कारण साध्वाचार से पतित होकर कई व्यक्ति मुनिधर्म (धूतवाद) को छोड बैठते हैं। उनमें से कई तो वस्त्र, पात्र आदि धर्मोपकरणों को छोड देते हैं और देशविरति धर्म, श्रावकधर्म अंगीकार कर लेते हैं, कुछ केवल सम्यक्त्व का आलम्बन लेकर दर्शन-श्रावक बन जाते हैं और कोई गृहस्थ या अन्यलिंगी बन जाते हैं।

मुनिधर्म को छोडने के तीन मुख्य कारण यहाँ शास्त्रकार ने बताये हैं–

(१) असहिष्णुता–दु सह परीषहों को सहन न कर सकना।

(२) काम-आसक्ति–विविध काम-भोगों की उत्कट लालसा।

(३) अतृप्ति–अनेक विघ्नो, विरोधो (द्वन्द्वो) एव अपूर्णताओं से भरे कामों से अतृप्ति।

इसके साथ ही इनका परिणाम भी यहाँ बता दिया गया है कि वह दीक्षा-त्यागी दुर्गति को न्यौता दे देता है, प्रव्रज्या-त्याग के बाद तत्काल, मुहूर्त भर में या लम्बी अवधि में भी शरीर छूट सकता है और भावों में अतृप्ति बनी रहती है।

Elaboration—The family-renouncing—*dhut* has been described in the first lesson. The cleansed ascetic who renounces carnal pleasures and pursues ascetic discipline is being described in this lesson When he renounces his family and gets initiated, the family members wail due to their attachment for him Adopting the pacifying attitude he treads the path of discipline and celibacy. He properly understands both *vasu* (conduct of the detached) and *anuvasu* (the conduct of the partially attached) The commentator (*Vritti*) has also interpreted *vasu* as ascetic who has accepted the great vows and *anuvasu* as a *shravak* who has accepted minor-vows

There are *Shramans* who, in spite of abandoning all affiliations, acquiring pacifying attitude, accepting celibacy or dwelling in the self and truly knowing their religion, become lax in following ascetic discipline For them it is said that because of this laxity their conduct becomes tainted This indicates that the aspirant has renounced material things, pacified passions, observed celibacy, and also become a scholar of religion, but only outwardly, internally all this has not happened In his mind there still remains the desire to acquire things The moment there is an opportunity, his passions get inflamed His celibacy is only physical and living with the *guru* is also just formal. He has not touched the true spirit of religion Therefore, although in appearance he is cleansed or a renouncer, in reality or internally he is neither cleansed nor a renouncer. He is *achai* (non-renouncer).

Vattham padiggaham avitinna—explaining this phrase the commentator (*Vritti*) says—In spite of being born as a human being (the occurrence of which is as rare as one in a billion), availing a ride in the boat of enlightenment which is capable of crossing the ocean that is this world, and accepting the all renouncing conduct that is the seed of the tree of liberation, some individuals give up the ascetic conduct and drift away from the ascetic path This is due to the overpowering nature of libido, infatuation with carnal pleasures, and evil influence of *karmas* inherited from the chain of earlier incarnations Many of these give up their ascetic equipment like dress and pots to accept partial detachment or the *shravak* conduct Some pursue righteousness by becoming philosopher-*shravaks* and some return to ordinary householder's life or take to other religion

Here the author has indicated three main reasons for giving up ascetic conduct—

(1) Absence of endurance or inability to tolerate acute afflictions

(2) Carnality or intense desire for a variety of carnal pleasures

(3) Absence of satiation of carnal desires, fraught with numerous obstacles and contradictions, remaining ever non-satiated

With this the consequences have also been indicated That fallen ascetic invites the worst On giving up the ascetic conduct he may embrace death at once, within a *muhurt* (48 minutes) or after a longer period. And the feeling of non-satiation still remains

विषय-विरतिरूप उत्तरवाद

१८५. अहेगे धम्ममादाय आदाणप्पभिइं सुपणिहिए चरे।

अप्पलीयमाणे दढे। सव्वं गेहिं परिण्णाय एस पणए महामुणी।

अइअच्च सव्वओ सगं 'ण महं अत्थि' त्ति, इति एगो अहमंसि। जयमाणे, एत्थ विरए अणगारे सव्वओ मुंडे रीयंते।

जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए।

से अकुट्ठे व हए व लूसिए वा पलियं पगंथं अदुवा पगंथं। अतहेहिं सद्द-फासेहिं इति संखाए।

एगयरे अण्णयरे अभिण्णाय तितिक्खमाणे परिव्वए। जे य हिरी जे य अहिरीमणा।

१८५. कई एक मुनिधर्म को स्वीकार करके, वस्त्र-पात्र आदि मे ममत्वरहित होकर, इन्द्रिय और मन को समाहित करके विचरण करते हैं।

वह (काम-भोगो मे) अलिप्त/अनासक्त और (तप, संयम आदि में) सुदृढ़ रहकर (धर्माचरण करते है)। ममग्र (गृद्धि) आसक्ति को छोडकर वह (धर्म के प्रति) प्रणत–समर्पित महामुनि होता है।

(वह महामुनि) सर्वथा संग (आसक्ति) का त्याग करके (यह भावना करे कि–) 'मेरा कोई नही है', इसलिए 'मै अकेला हूँ'। वह यतनाशील अनगार विरत तथा सब प्रकार से मुण्डित होकर पैदल विहार करता है।

जो अल्पवस्त्र या निर्वस्त्र (जिनकल्पी) है, वह अनियतवासी रहता है या अन्त-प्रान्तभोजी होता है, वह ऊनोदरी तप का भी सम्यक् प्रकार से अनुशीलन करता है।

(कदाचित्) कोई मनुष्य (अचेल अवस्था मे देखकर) उस मुनि को गाली देता है, मारता-पीटता है, उसके केश उखाडता या खीचता है (अथवा अग-भग करता है) पहले किये हुए किसी दुष्कर्म की याद दिलाकर कोई बक-झक करता है (या घृणित व असभ्य शब्द-प्रयोग करके उसकी निन्दा करता है)। कोई व्यक्ति तथ्यहीन शब्दो द्वारा (सम्बोधित करता है), या झूठा दोषारोपण करता है, ऐसी स्थिति मे मुनि सम्यक् चिन्तन द्वारा समभाव से सहन करे।

उन एक जातीय (अनुकूल) और भिन्न जातीय (प्रतिकूल) परीषहो को उत्पन्न हुआ जानकर समभाव से सहन करता हुआ मुनि सयम मे विचरण करे। लज्जाकारी (याचना, अचेल आदि) और अलज्जाकारी (शीत, उष्ण आदि) परीषहो को सम्यक् प्रकार से सहन करता हुआ विचरण करे।

PRINCIPLE OF DETACHMENT

185. After accepting the ascetic path, many individuals get free of any attachment or fondness for garb and utensils (ascetic equipment) and move about exercising discipline over senses and mind

He remains uninvolved or detached (with carnal pleasures) and steadfast (in austerities and discipline). Free of all

attachments and desires, he becomes a dedicated (to religion) and great sage

Forswearing all affiliation (that great sage should ruminate—) "Noone or nothing is mine, therefore I am on my own." Getting detached and shorn in every way this careful ascetic becomes itinerant. One who pursues ascetic discipline scantily clad or unclad (*Jinakalpi*) also properly practices gradual restriction of movement and food (this refers to special practices like *unodari* or eating less than appetite).

(Seeing him naked—) Someone may abuse or manhandle him; pull his hair (or maim him), slander him reminding him of some past deeds (using abusive and derogatory terms); put baseless and false allegations against him with scathing remarks In such condition the ascetic should tolerate all this with equanimity with the help of right contemplation.

Knowing that favourable and unfavourable afflictions have commenced, he should continue to pursue ascetic path tolerating the afflictions with equanimity. He should continue to pursue the ascetic path tolerating the awkward (begging alms, remaining unclad, etc.) and non-awkward (cold, heat, etc.) afflictions with equanimity

१८६. चिच्चा सव्वं विसोत्तियं फासे फासे समियदंसणे।

एए भो णगिणा वुत्ता जे लोगंसि अणागमणधम्मिणो।

आणाए मामगं धम्मं। एस उत्तरवादे इह माणवाणं वियाहिए।

एत्थोवरए तं झोसमाणे आयाणिज्जं परिण्णाय परियाएण विगिंचइ।

१८६. सम्यग्दर्शन-सम्पन्न मुनि सब प्रकार की शकाएँ छोड़कर दुःख-स्पर्शों को समभावपूर्वक सहन करे।

हे मानवो ! धर्मक्षेत्र में उन्हें ही नग्न (निर्ग्रन्थ) कहा गया है, जो मुनिधर्म में दीक्षित होकर पुनः गृहवास में नही जाते।

आज्ञा में मेरा धर्म है। यह उत्तरवाद/सिद्धान्त मनुष्यो के लिए प्रतिपादित किया है।

विषयों से उपरत साधक ही इस उत्तरवाद का आचरण करता है। आदानीयों–वह कर्मों का परिज्ञान करके, पर्याय (संयमी जीवन) से उनका क्षय करता है।

186. An ascetic endowed with righteousness should get free of all doubts and endure every experience of grief with equanimity.

O men ! On the ascetic path only those are called nude (free of knots) who, once getting initiated, do not return to mundane life

My tenets are my religion (the path I have shown lies in following my tenets), I have propagated this lofty principle for human beings

Only the aspirant who rises above the mundane indulgences is able to follow this lofty principle.

O ascetics ! He understands the *karmas* and sheds them by adhering to the ascetic discipline.

विवेचन–सूत्र १८५-१८६ मे श्रुत-चारित्ररूप मुनि-धर्म अंगीकार करके उसके आचरण मे आजीवन उद्यत रहने वाले धुतवादी महामुनि के जो लक्षण बताये हैं, वे सक्षेप में इस प्रकार हैं–

(१) वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक ममत्वरहित होकर उपयोग करने वाला।

(२) परीषह-सहिष्णुता का अभ्यासी।

(३) समस्त प्रमादों का त्यागी।

(४) काम-भोगों में या स्वजन लोक में अलिप्त/अनासक्त।

(५) तप, संयम तथा धर्माचरण में दृढ़।

(६) समस्त गृद्धि–भोगाकांक्षा का परित्यागी।

(७) संयम या धूतवाद के प्रति प्रणत/समर्पित।

(८) एकत्वभाव के द्वारा कामासक्ति या संग का सर्वथा त्यागी।

(९) द्रव्य एवं भाव से सर्व प्रकार से मुण्डित।

(१०) अचेलक (जिनकल्पी) या अल्पचेलक (स्थविरकल्पी) साधना करने वाला।

(११) अनियत–अप्रतिबद्ध विहारी।

(१२) अन्त-प्रान्तभोजी, ऊनोदरी आदि तप करने वाला।

(१३) अनुकूल-प्रतिकूल परीषहो को सम्यक् प्रकार सहन करने वाला।

अप्पलीयमाणे–वृत्तिकार ने अप्रलीयमान का अर्थ किया है–'काम-भोगो मे या माता-पिता आदि स्वजन लोक में अनासक्त'।

'**अतिअच्च सव्वओ सग**–'सग' का अर्थ है–आसक्ति या ममत्वयुक्त सम्बन्ध। वह दो प्रकार के हैं–सजीव सम्बन्ध (माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि) और निर्जीव (सांसारिक भोगो आदि) पदार्थो के प्रति आसक्ति। धुतवादी मुनि–सग-परित्याग की प्रेरक इस भावना का आलम्वन करे–'ण मह अत्थि''–मेरा कोई नही है, मै आत्मा अकेला हूँ।' इस प्रकार से एकत्वभावना का अनुप्रेक्षण करे।

केवल सिर मुँडा लेने से ही कोई मुण्डित या श्रमण नही कहला सकता, कषायो और इन्द्रियो को भी वश मे करना आवश्यक है। इमीलिए यहाँ '**सव्वओ मुडे**' 'सर्वत मुण्ड' कहा है। स्थानांगसूत्र मे क्रोधादि चार कषायो, पाँच इन्द्रियो एव सिर से मुण्डित होने वाले को सर्वथा मुण्ड कहा गया है। *(स्थानाग* १०)

वृत्तिकार ने वध, आक्रोश आदि परीषहो के समय पाँच प्रकार से चिन्तन करके धैर्य रखने की प्रेरणा दी है–

(१) यह पुरुष किसी यक्ष (भूत-प्रेत) आदि से ग्रस्त है।

(२) यह व्यक्ति पागल है।

(३) इसका चित्त दर्प से युक्त है।

(४) किसी जन्म मे किये हुए मेरे कर्म उदय मे आये हैं, तभी तो यह पुरुष मुझको संताप देता है।

(५) उदय मे आये कष्ट समभाव से सहन किये जाने पर कर्मों की निर्जरा (क्षय) होगी।

परीषह के दो प्रकार बताये गये है–अनुकूल और प्रतिकूल। जिनके लिए '**एगतरे-अण्णतरे**' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इस पक्ति मे भी पुन परीषह के दो प्रकार बताये है–'हिरी' और 'अहिरीमणा'। हिरी का अर्थ लज्जा है। जिन परीषहो से लज्जा का अनुभव हो, जैसे–याचना, अचेल आदि वे '**हीरिजनक**' परीषह कहलाते है तथा शीत, उष्ण आदि जो परीषह अलज्जाकारी है, उन्हें '**अहिरीमना**' परीषह कहते है। वृत्तिकार ने 'हारीणा', 'अहारीणा' इन दो पाठान्तरो को मानकर इनके अर्थ क्रमश यो भी किये है–'सत्कार, पुरस्कार आदि जो परीषह मन को आह्लादित करने वाले हैं, वे 'हारी' परीषह तथा जो परीषह प्रतिकूल होने के कारण मन के लिए

अनाकर्षक–अनिष्टकर है, वे 'अहारी' परीषह कहलाते है। धूतवादी मुनि को इन चारो प्रकार के परीषहों को समभावपूर्वक सहना चाहिए।

'विसोत्तिया' शब्द प्रसगानुसार अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता रहा है। जैसे–प्रतिकूल गति, विमार्ग गमन, मन का विमार्ग मे गमन, अपध्यान, दुष्ट चिन्तन और शंका आदि। यहाँ प्रसगवश 'विसोत्तिय' शब्द के शंका, दुष्टचिन्तन, अपध्यान या मन का कुमार्गगमन–ये अर्थ हो सकते है। परीषह या उपसर्ग के आ पडने पर मन मे जो आर्त्त-रौद्रध्यान आ जाते है, या विरोधी के प्रति दुश्चिन्तन होने लगता है, अथवा मन चचल और क्षुब्ध होकर असयम मे भागने लगता है, मन मे कुशका पैदा हो जाती है कि मै जो परीषह और उपसर्ग के कष्ट सह रहा हूँ, इसका शुभ फल मिलेगा या नही? इत्यादि समस्त प्रकार के भाव–(विस्रोतसिका) को धूतवादी सम्यग्दर्शी मुनि त्याग दे।

'अणागमणधम्मिणो'–जो साधक सर्वविरति चारित्र की प्रतिज्ञा ग्रहण करके जीवन पर्यन्त उसका पालन करते है, परीषहो और उपसर्गो से हारकर पुन गृहस्थवास की ओर नही लौटते, वे–'अनागमनधर्मी' कहलाते है।

'एस उत्तरवादे ' का तात्पर्य है पूर्व मे जो चार सूत्र बताये है–(१) समस्त परीषहो और उपसर्गो के आने पर समभाव से सहना, (२) मुनिधर्म से विचलित होकर पुन स्वजनो के प्रति आसक्तिवश गृहवास मे न लौटना, (३) काम-भोगो मे जरा भी आसक्त न होना, (४) तप, सयम और तितिक्षा मे दृढ़ रहना, यह उत्तरवाद है। यही मानवो के लिए उत्कृष्ट–धूतवाद है।

Elaboration—The signs of the cleansed great sage who gets initiated as an ascetic follower of scriptural conduct and adheres to it all his life, are mentioned in this aphorism In brief they are as follows—

(1) He uses the ascetic equipment carefully and without any attachment

(2) He endures afflictions

(3) He avoids any or all stupor

(4) He remains uninvolved in and detached with carnal pleasures and kin-folk

(5) He is steadfast in austerities, discipline and ascetic conduct

(6) He is free of all mundane desires

(7) He is dedicated to the principle of cleansing or ascetic discipline

(8) He completely rejects affiliation and libido with the help of unitary attitude

(9) He is shorn in every way, physically and mentally

(10) He indulges in spiritual practices unclad (*Jinakalpi*) or scantily clad (*Sthavir-kalpi*)

(11) He leads an itinerant life

(12) He survives on residual and tasteless food and observes austerities like *unodari*

(13) He tolerates favourable and unfavourable afflictions with equanimity

Appaleeyamane—The commentator (*Vritti*) has interpreted this word as—who is not attached with carnal pleasures or kin-folk like parents and family members

Atiachch savvao sangam—Here *sang* means attachment or fond affiliation These are of two types—attachment with the living (parents, spouse, son, etc) and the non-living (mundane pleasures, etc) An ascetic following the doctrine of cleansing should derive inspiration of avoiding affiliation from this attitude—'Noone is mine, I am a unitary soul ' He should ruminate over this thought of unitary existence

In face of afflictions like physical and verbal attacks, the commentator (*Vritti*) advises to remain composed with the help of following thoughts—

(1) This person is possessed by some evil spirit

(2) This person is mentally deranged

(3) This person suffers from bloated ego

(4) Some of my past *karmas* have precipitated, that is why this person is tormenting me

(5) Only when I tolerate these afflictions with equanimity I will be able to shed the *karmas*

Two types of afflictions have been mentioned—favourable and unfavourable The words used for these are—*egatare* and *annatare* Here also, once again two types of afflictions have been mentioned *hiri* and *ahirimana* *Hiri* means shame The afflictions which inspire shame or embarrassment are called *hiri* or awkward These include begging and moving about unclad or nude Those which are not embarrassing are called *ahirimana* or not awkward These include heat and cold The commentator (*Vritti*) has also accepted the alternative reading of the text—*harina* and *aharina* He explains these terms as—the afflictions that give joy to an ascetic are called *hari* or favourable afflictions, these include honour, reward, etc The afflictions that cause pain or harm to an ascetic are called *ahari* or unfavourable afflictions An ascetic following the doctrine of cleansing should endure these four types of afflictions with equanimity

Visottiya—this word has different meanings in different context, such as—regression, following the wrong path, being driven by wrong attitude, bad thoughts, evil thinking, doubt, etc In the context here, the appropriate meaning could be—doubt, evil thinking, deprived contemplation, or following wrong path Facing affliction causes a mental turmoil resulting in depressive and angry thoughts Some of these are—evil thoughts about the oppressor, thoughts of discarding discipline due to instability and disappointment, and doubt about the expected fruits of tolerating such pain and afflictions A righteous ascetic following the doctrine of cleansing should avoid all such regressive thoughts

Anagamanadhammino—followers of the code of not retracing the path The seekers who, after getting initiated, do not retrace the path of mundane life by accepting failure in face of afflictions but stick to the conduct of complete detachment are called *anagamanadharmi*.

Esa uttaravade...—This phrase indicates that the lofty doctrine comprises of the four aphorisms stated earlier—(1) To endure all afflictions and torments with equanimity. (2) Not to return to mundane life getting disturbed by ascetic conduct or due to attachment for kin-folk (3) Not to have even slightest desire for carnal pleasures (4) To be steadfast in austerities, discipline and endurance This is the most beneficent doctrine of cleansing for human beings.

एकचर्या-निरूपण

१८७. इह एगेसिं एगचरिया होति।

तत्थियराइयरेहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए। से मेधावी परिव्वए। सुब्भिं अदुवा दुब्भिं। तत्थ भेरवा।

पाणा पाणे किलेसंति। ते फासे पुट्ठो धीरो अधियासेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१८७ कुछ लघुकर्मी साधु एकाकीचर्या (एकलविहार प्रतिमा की साधना) करते हैं।

वह एकलविहारी मेधावी साधु विभिन्न कुलो से शुद्ध-एषणा और सर्वेषणा (आहारादि की निर्दोष भिक्षा) से सयम का पालन करता हुआ (ग्राम आदि में) सतत, परिव्रजन करता रहे।

सुगन्ध से युक्त या दुर्गन्ध से युक्त आहार समभावपूर्वक ग्रहण या सेवन करे अथवा भयकर शब्दो को सुनकर या भयंकर रूपो को देखकर भयभीत न हो।

हिंस्र प्राणी प्राणो को क्लेश पहुँचाते रहते हैं। उन स्पर्शो (परीषहजनित-दु.खों) के आने पर धीर मुनि उन्हे सहन करे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

DEFINING ISOLATION

187. Some *laghukarmi* (having only traces of *karmas*) ascetics practice isolation (special ascetic-code of living in solitude).

That accomplished recluse-ascetic should move about (in villages and other places) seeking alms from numerous families assiduously and scrupulously following the ascetic discipline

He should accept with equanimity food with aroma or stink and also fearlessly face terrifying sounds and sights

Ferocious beings continue to torment Coming across such experiences (pain of afflictions) a composed ascetic should tolerate them

—So I say

विवेचन–'सुद्धेसणाए सव्वेसणाए'–ये दो शब्द धूतवादी मुनि के आहार-सम्बन्धी एषणाओ से सम्बन्धित है। 'एषणा' शब्द यहाँ निर्दोषभिक्षा का अन्वेषण-गवेषण करने के लिए प्रयुक्त है। एषणा के मुख्यत तीन प्रकार है–(१) गवेषणैषणा, (२) ग्रहणैषणा, तथा (३) ग्रासैषणा या परिभोगैषणा। गवेषणैषणा के ३२ दोष है–१६ उद्गम के, १६ उत्पादना के और ग्रहणैषणा के १० दोष है। ग्रासैषणा के ५ दोष है। इन ४७ दोषो से बचकर आहार, धर्मोपकरण, शय्या आदि वस्तुओ का अन्वेषण, ग्रहण और उपभोग (सेवन) करना शुद्ध एषणा कहलाती है। आहारादि के अन्वेषण से लेकर सेवन करने तक मुनि की समस्त एषणाएँ शुद्ध होनी चाहिए, यही इस पक्ति का आशय है। चूर्णि मे 'शुद्धैषणा' का अर्थ लेपरहित भोजन किया है तथा 'सर्वैषणा' का अर्थ है–सात प्रकार की पिण्डैषणाएँ। गच्छ से बाहर रहकर साधना करने वाले मुनियो के लिए 'शुद्धैषणा' का तथा गच्छान्तर्गत श्रमणो के लिए 'सर्वैषणा' का निर्देश किया गया है।

(*आचाराग भाष्य*, पृ ३२१)

'सुब्भि', 'दुब्भि' शब्द यहाँ गध के अर्थ मे नही होकर मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ शब्दो के अर्थ मे है। –(*चूर्णि*, पृ २१५)

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—*Suddhesanaye savvesanaye*—These two words are related to the procedure of exploration of food by an ascetic following the doctrine of cleansing The term *eshana* has been used here for exploration of faultless alms There are three main categories of *eshana*—(1) *Gaveshaneshana* (exploration), (2) *Grahaneshana* (acceptance), and (3) *Graseshana* (consumption) There are 32 faults related to *Gaveshaneshana* (exploration)—sixteen related to sources and sixteen related to preparation or production Faults related to

Grahaneshana (acceptance) are ten ın number Faults related to *Graseshana* (consumptıon) are five ın number To explore, accept, and use food, ascetıc-equıpment, bed etc avoıdıng these 47 faults ıs called pure or ımmaculate *eshana* The aım of thıs phrase ıs to convey that the complete procedure—from exploratıon to consumptıon—should ımmaculately follow the prescrıbed code In the commentary (*Churnı) shuddhaıshana* has been ınterpreted as fat-free-food *Sarvaıshana* has been ınterpreted as seven types of *pındaıshana* (exploratıon of materıal thıngs) *Sarvaıshana* ıs prescrıbed for the ascetıcs who are wıthın the ambit of a *Gachha* (relıgıous organızatıon) and *Shuddhaıshana* for those who practıce keepıng them relıgıons organısatuo (*Acharanga Bhashya* p 321)

Subbhi, dubbhi—These words have been used to ındıcate pleasant and obnoxıous feelıngs or reactıon and not just smell whıch ıs the conventıonal meanıng (*Churnı,* p 215)

● END OF LESSON TWO ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

उपकरणो की लघुता

१८८ एयं खु मुणी आयाणं सदा सुअक्खायधम्मे विधूतकप्पे णिज्झोसइत्ता।

जे अचेले परिवुसिए तस्स णं भिक्खुस्स णो एवं भवइ–परिजुण्णे मे वत्थे, वत्थं जाइस्सामि, सुत्तं जाइस्सामि, सूइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि, वोक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि पाउणिस्सामि।

अदुवा तत्थ परक्कमंत भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसति, दस-मसगफासा फुसति।

एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ अचेले। लाघवं आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागए भवति।

जहेय भगवया पवेइयं। तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

एव तेसि महावीराण चिरराइं पुव्वाइं वासाइं रीयमाणाणं दवियाण पास अहियासिय।

१८८. सदा सु-आख्यात (सम्यक् प्रकार से कथित) धर्म वाला विधूतकल्पी वह मुनि आदान (मर्यादा से अधिक वस्त्रादि) का त्याग कर देता है।

जो अचेलक रहता है, उस भिक्षु के मन मे ऐसा विकल्प उत्पन्न नही होता कि 'मेरा वस्त्र सब तरह से जीर्ण हो गया है, इसलिए मै वस्त्र की याचना करूँगा, फटे वस्त्र को सीने के लिए धागे की याचना करूँगा, फिर सुई की याचना करूँगा, फिर उस वस्त्र को साधूँगा, उसे सीऊँगा, छोटा है, इसलिए दूसरा टुकडा जोडकर बडा बनाऊँगा, बडा है, इसलिए फाडकर छोटा बनाऊँगा, फिर उसे पहनूँगा और शरीर को ढकूँगा।

अथवा अचेल साधना करते हुए मुनि को बार-बार तिनकों (घास के तृणो) का स्पर्श, सर्दी और गर्मी का स्पर्श तथा डास और मच्छरो का स्पर्श पीडित करता है।'

अचेल रहने वाला मुनि उनमे से एक प्रकार के या दूसरे नाना प्रकार के स्पर्शों (परीषहो) को सहन करता है। वह अपने आप को लाघवयुक्त (हल्का) मानता हुआ तप से सम्पन्न होता है।

भगवान ने जिस रूप में अचेल-साधना का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप मे जान-समझकर, सब प्रकार से सर्वात्मना जाने एव समत्व का सेवन करे।

जीवन के आदिकाल में ही प्रव्रजित होकर चिरकाल तक (जीवनपर्यन्त) संयम में विचरण करने वाले, चारित्र-सम्पन्न तथा संयम में प्रगति करने वाले महान् वीर साधुओं ने जो (परीषहादि) सहन किये हैं, उसे तुम देखो।

MODEST NUMBER OF EQUIPMENT

188. The ascetic upholding the profoundly postulated religion and indulging in practices of cleansing, abandons garb (and other things) that exceed the prescribed limit.

In the mind of an ascetic who lives *achelak* (unclad or scantily clad) there are no such ambiguities as—'My garb is in shreds Therefore I will beg for clothes, for thread to mend clothes and for needle After that I will darn the cloth, stitch it, join other piece of cloth if it is short, cut out a portion if it is long. At last I will wear it and cover my body'

Also, being *achela* during his practices, he time and again suffers discomfort and pain due to pricks of straw, excesses of cold and heat, and stings of mosquitoes and gad-flies.

An *achela* ascetic tolerates one or all of these numerous types of afflictions Becoming spiritually unburdened he establishes himself in austerities

He should practice equanimity after completely and thoroughly understanding the procedure of *achela*-practice in the exact form and content as expounded by *Bhagavan*.

See what all these great and brave ascetics, initiated early in their life, have endured (afflictions) throughout their disciplined life remaining steadfast and ever progressive in their ascetic conduct.

विवेचन—दूसरे उद्देशक में स्नेह-त्याग तथा सहिष्णुता का उपदेश दिया गया था। सहिष्णुता की साधना के लिए ज्ञानपूर्वक देह-दमन, इन्द्रिय-निग्रह की भाँति वस्त्र आदि उपकरणों की अल्पता भी अनिवार्य है। इसलिए तप, सयम द्वारा शरीर और कषाय को कृश करके लाघव—अल्पीकरण का अभ्यास करना चाहिए। देह-धुनन करने का उत्तम मार्ग इस उद्देशक में बताया गया है।

'एव खु मुणी आयाण'–यह वाक्य अर्थ की दृष्टि से बहुत ही गम्भीर है। वृत्तिकार ने 'आदान' शब्द के दो अर्थ किये है जो–ग्रहण किया जाय, उसे आदान कहते है, वह है कर्म या वस्त्र आदि।

'आदान' शब्द का एक अर्थ ज्ञानादि भी है, जो तीर्थकरो की ओर से विशेष रूप से सर्वतोमुखी दान है।

'आदान' शब्द का अर्थ कर्म या वस्त्रादि उपकरण करने पर अर्थ होगा विधूतकल्प मुनि-कर्म या कर्मो के उपादान रूप वस्त्रादि का सदा परित्याग करे।

णिज्झोसइत्ता का अर्थ है जो कुछ परीषहादि सहन, स्वजन-त्याग आदि के विषय मे पहले कहा है, उस उपदेश या वचन का पालन या स्पर्शन करे।

'जे अचेले परिवुसिते'–'अचेल' शब्द के दो अर्थ मुख्य होते है–अवस्त्र और अल्पवस्त्र। जैसे अज्ञ का अर्थ अल्पज्ञ होना है न कि ज्ञान-शून्य, वैसे ही यहाँ 'अचेल' का अर्थ अल्पचेल (अल्प वस्त्र वाला) समझना चाहिए। (*आचा शीला टीका,* पत्राक २२१) अप्रत्यय का अर्थ दोनो प्रकार का होता है–निषेधार्थक और अल्पार्थक। निषेधार्थक 'अचेल' शब्द निर्वस्त्र रहकर साधना करने वाले जिनकल्पी मुनि का विशेषण है और अल्पार्थक 'अचेल' शब्द स्थविरकल्पी मुनि के लिए प्रयुक्त होता है। दोनो प्रकार के मुनियो को कुछ धर्मोपकरण रखने पडते है। वनो मे निर्वस्त्र रहकर साधना करने वाले जिनकल्पी मुनियो के लिए शास्त्र मे मुखवस्त्रिका और रजोहरण ये दो उपकरण ही बताये है। स्थविरकल्पी मुनियो के लिए वस्त्र के विषय मे एक, दो या तीन की भिन्न-भिन्न मर्यादाएँ है। किन्तु दोनो कोटि के मुनियो को वस्त्रादि उपकरण रखते हुए भी उनके सम्बन्ध मे विशेष चिन्ता, आसक्ति या उनके वियोग मे आर्त्तध्यान या उद्विग्नता नही होनी चाहिए। कदाचित् वस्त्र फट जाय या समय पर शुद्ध ऐषणिक वस्त्र न मिले, तो भी उसके लिए आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान नही होना चाहिए।

'लाघव' का अर्थ है–लघु भाव। वह दो प्रकार का है–उपकरणो की अल्पता-उपकरण लाघव। कषाय अविनय आदि का त्याग भाव लाघव है।

समत्त–यह है कि उपकरण-लाघव आदि मे भी समभाव रहे, दूसरे साधको के पास अपने से न्यूनाधिक उपकरणादि देखकर उनके प्रति घृणा, द्वेष, प्रतिस्पर्धा, अवज्ञा आदि मन मे न आवे, यही समत्व को सम्यक् जानना है। शीलाक टीका मे बताया गया है–

जोऽवि दुवत्थ तिवत्थो एगेण अचेलगो व सथरइ।
म हु ते हीलति पर, सव्वेऽपि य ते जिणाणाए॥१॥

जे खलु विसरिसकप्पा संघयणधिइआदि कारण पप्प।
णऽव मन्नइ, ण य हीण अप्पाण मन्नई तेहि॥२॥

सव्वेऽवि जिणाणाए जहाविहि कम्म-खणण-अट्ठाए।
विहरति उज्जया खलु, सम्म अभिजाणई एव ॥३॥

जो साधक तीन वस्त्रयुक्त, दो वस्त्रयुक्त, एक वस्त्रयुक्त या वस्त्ररहित रहता है, वह परस्पर एक-दूसरे की अवज्ञा, निन्दा, घृणा न करे, क्योंकि ये सभी जिनाज्ञा मे हैं। वस्त्रादि के सम्बन्ध में समान आचार नही होता, उसका कारण साधको का अपना-अपना सहनन, धृति, सहन-शक्ति आदि है, इसलिए साधक अपने से विभिन्न आचार वाले साधु को देखकर उसकी अवज्ञा न करे, न ही अपने को हीन माने। ये सभी जिनाज्ञा में हैं, इस प्रकार जानना ही सम्यक् अभिज्ञात करना है।

Elaboration—Avoiding affection and practicing tolerance has been advised in the second lesson Like consciously mortifying the body and disciplining senses it is essential to limit the need for clothes and ascetic-equipment That is why after emaciating the body and passions through austerities and discipline, one should practice *laghava* or reduction of encumbrances A good process of vibrating or cleansing the body has been given in this lesson

Evam khu muni ayanam—This sentence has a profound meaning The commentator (*Vritti*) has given two meanings of the word *adan* One is—that which is accepted or acquired, and that is *karma* or garb and other such things

The other meaning is knowledge and other such virtues that are freely given, specially by *Tirthankars* Accepting the first meaning the interpretation will be that an ascetic following the doctrine of cleansing should always reject *karmas* and their causal factors like dress and equipment

Nijjhosaitta means he should touch or follow the advise given earlier with regard to enduring afflictions and renouncing kinfolk, etc

Je achele parivusite—The popular meanings of *achela* are unclad and scantily clad The prefix '*a*' is used both as negative as well as diminutive The negative *achela* is an adjective for a *Jinkalpi* ascetic who remains unclad in remote areas during his practices The diminutive *achela* is an adjective for a *sthavir-kalpi* or a senior ascetic doing specific harsh practices at his place of stay Both these types of ascetics have to have some ascetic equipment The *Jinakalpi* ascetics who do their practices in jungles and remain unclad keep only *mukhavastrika* (a piece of cloth to cover mouth) and ascetic-broom The *sthavir-kalpi* ascetics are allowed to keep one, two or

three garbs depending on their level of practices However, ascetics of both these types should have no worries and attachment for these possessions, or disappointment on losing them If by chance the dress is torn or another is not available, he should neither be disappointed nor angry

Laghavam—diminution or lightness This is of two types The diminution of the quantity of equipment is *upakaran-laghav* or having few equipment Avoiding passions, immodesty and other such vices is *bhava-laghav* or having few vices

Samatt—equanimity Here this refers to equanimity with reference to limited possessions. He should not have feelings of hatred, aversion, competition, insult, etc when he sees more equipment with other ascetics This is the real spirit of equanimity It is mentioned in the *Shilanka Tika* that ascetics who have three, two, or one dress should not insult, criticize, or hate one another because they all are following the tenets of the *Jina* There are no uniform rules about dresses (etc) as every individual ascetic has his own unique constitution, and tolerance, patience and other such capacities. Therefore a seeker should avoid feelings of superiority or inferiority when he sees another ascetic following a different code To know that they all are following the tenets of the *Jina* is the right awareness and knowledge

१८९. आगयपण्णाणाणं किसा बाहा भवंति, पयणुए य मंससोणिए। विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए।

एस तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए।

त्ति बेमि।

१८९ प्रज्ञावान् मुनियों की भुजाएँ कृश (दुर्बल) होती हैं, उनके शरीर मे रक्त-माँस बहुत कम हो जाते है।

वह मुनि राग या कषायरूप श्रेणी–सतति को प्रज्ञा से जानकर (क्षमा आदि से) छिन्न-भिन्न करके (ससार-समुद्र से) तीर्ण, मुक्त एव विरत कहलाता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

189. The arms of an accomplished sages are weak; they have very little flash and blood on their body.

That sage, through his wisdom, knows the chain of passions and causes its disintegration (with the help of clemency and other virtues). He is then called *teern* (one who has crossed the ocean of mundane life), liberated and detached

—So I say.

विवेचन–'किसा बाहा भवति'–इस वाक्य के वृत्तिकार ने दो अर्थ किये हैं–(१) तपस्या तथा परीषह-सहन से उन स्थितप्रज्ञ मुनियों की बाहें कृश–दुर्बल हो जाती हैं, (२) उनकी बाधाएँ–पीडाएँ कृश अर्थात् कम हो जाती हैं। अभिप्राय यह है कि कर्म-क्षय के लिए प्रस्तुत प्रज्ञावान् मुनि के लिए तप या परीषह-सहन केवल शरीर को ही पीडा दे सकते है, उनके मन को वे पीडा नही दे सकते।

'विस्सेणि कट्टु' का तात्पर्य है कि ससार-श्रेणी–संसार में अवतरित करने वाली राग-द्वेष-कषाय रूप सतति (शृंखला) है, उसे क्षमा आदि से विश्रेणित करके–तोडकर।

'परिण्णाए' का अर्थ है–समत्व भावना से जान कर।

Elaboration—***Kisa baha bhavanti***—The commentator (*Vritti*) has given two meanings of this sentence—(1) Arms of those *sthitprajna* (who dwell in knowledge) sages become thin and weak due to austerities and tolerating afflictions (2) The obstructions or torments they have to face are reduced This means that austerities and tolerating afflictions can cause pain only to the body and not the mind of a wise sage involved in shedding *karmas*

Vissenim kattu—to cause disintegration This points at causing disintegration of the world-chain This means to destroy, with help of clemency and other such virtues, the chain of attachment, aversion and passions, which is the cause of the chain of rebirths

Parinnaye—by understanding with the feeling of equanimity.

असंदीन-द्वीप तुल्य धर्म

१९०. विरयं भिक्खुं रीयंतं चिररातोसियं अरती तत्थ किं विधारए?

संधेमाणे समुट्ठिए।

जहा से दीवे असंदीणे एवं से धम्मे आरियपदेसिए।

ते अणवकंखमाणा अणतिवाएमाणा दइया मेहाविणो पंडिया।

एव तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दिया-पोए। एव ते सिस्सा दिया य राओ य अणु पुव्वेण वाइय।

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१९० जो चिरकाल से मुनिधर्म मे दीक्षित है, विरत है और संयम मे (उत्तरोत्तर) आगे वर्द्धमान है उस भिक्षु को क्या अरति (सयम मे उद्विग्नता) अभिभूत कर सकती है?

धर्म का प्रतिक्षण सधान करने वाले तथा सम्यक् प्रकार से उत्थित मुनि को (अरति अभिभूत नही कर सकती)।

जैसे (जल मे नही डूबा हुआ) असदीन द्वीप (समुद्र यात्रियो के लिए) आश्रय स्थान होता है, वैसे ही आर्यो द्वारा उपदिष्ट धर्म होता है।

जो मुनि (भोगो की) आकाक्षा तथा प्राणियो की हिसा नही करते वे लोकप्रिय मेधावी और पण्डित कहे जाते है।

जिस प्रकार पक्षी के बच्चे (पख आने तक अपने माता-पिता द्वारा) पाले जाते है, उसी प्रकार भगवान के धर्म मे जो अभी तक अनुत्थित है, उन शिष्यो का वे–आचार्य क्रमश वाचना आदि के द्वारा दिन-रात पालन करते है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

UN-SUBMERGED ISLAND-LIKE RELIGION

190. Can apathy (for discipline) engulf an ascetic who has been long initiated into ascetic order, who is detached and ever progressive in ascetic discipline ?

An ascetic who explores the ascetic path every moment and who is properly set on the course of spiritual uplift (can never be engulfed by such apathy)

As an unsubmerged island is refuge to seafarers, so also is the ascetic path shown by nobles.

The ascetics who have no desire (for mundane pleasures) and who do not oppress beings are called popular, accomplished and *Pundit* (sagacious)

As chicks are nursed (by their parents till they are able to fly), likewise the disciples, who are not yet firm on the path shown by *Bhagavan*, are day and night nurtured by such a*charyas* through discourses and other instructions

—So I say.

विवेचन–'दीवे असदीणे'–'दीव' शब्द के 'द्वीप' और 'दीप' दोनो रूप मानकर यहाँ व्याख्या की जाती है। द्वीप नदी-समुद्र आदि के यात्रियों को आश्रय देता है और दीप प्रकाश देता है। दोनों ही दो-दो प्रकार के होते है–(१) सदीन, और (२) असदीन। 'सदीन द्वीप' वह है–जो कभी पानी में डूबा रहता है, कभी नहीं, और 'सदीन दीप' वह है जिसका प्रकाश बुझ जाता है। 'असदीन द्वीप' वह है, जो कभी पानी मे नहीं डूबता, इसी प्रकार 'असदीन दीप' वह है जो कभी बुझता नही, जैसे–सूर्य, चन्द्र आदि का प्रकाश।

धर्मक्षेत्र मे सम्यक्त्वरूप भाव द्वीप या ज्ञानरूप दीप भी मोक्ष-यात्रियों को आश्वासनदायक एव प्रकाशदायक होता है। औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व सदीन भाव-द्वीप है और अप्रतिपाती (क्षायिक) सम्यक्त्व असदीन भाव-द्वीप है। इसी तरह श्रुतज्ञान सदीन भाव दीप है और केवलज्ञान असदीन भाव दीप है। –(*आचाराग चूर्णि*, पृ २२३-२२५, तथा वृत्ति, पत्राक २२४)

पक्षी के बच्चे से नवदीक्षित मुनि को धर्म मे दीक्षित करने के व्यवहार की तुलना **'जहा से दिय–पोए'** पद से की गई है। जैसे मादा पक्षी अपने बच्चे को अण्डे मे स्थित होने से लेकर पख आकर स्वतन्त्र रूप से उडने योग्य नही होता, तब तक उसका पालन-पोषण करती है। इसी प्रकार गुरु/आचार्य भी नवदीक्षित साधु को दीक्षा देने से लेकर समाचारी का शिक्षण-प्रशिक्षण तथा शास्त्र-अध्यापन आदि व्यवहारो मे क्रमश गीतार्थ होने तक उसका पालन-पोषण-सवर्द्धन करते है।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—***Deeve asamdeene***—The phrase is being interpreted with two alternative readings of the word *deev—dveep* (island) and *deep* (lamp) An island provides refuge to seafarers and a lamp provides light These two are of two types each—*samdeen* and *asamdeen* *Samdeen* island is that which often remains submerged, and *samdeen* lamp is that which often remains extinguished *Asamdeen* island is that which is never submerged, and *asamdeen* lamp is that which is never extinguished, such as the sun and the moon

In the spiritual field, the island that is righteousness and the lamp that is knowledge also provide refuge and light to the

travellers on the path of liberation. *Aupshamik samyaktva* (righteousness attained through pacification of *karmas*) and *kshayopashamik samyaktva* righteousness attained through extinction-cum-pacification of *karmas*) are like submergible islands and *apratipati* or *kshayik samyaktva* ((righteousness attained through extinction of *karmas*) is like non-submergible island In the same way the scriptural knowledge is like extinguishable lamp and omniscience is like inextinguishable lamp

(*Acharanga Churni*, p 223-225, *Acharanga Vritti*, leaf 224)

Jaha se diyapote—this phrase compares a neo-ascetic with chicks A bird hatches its eggs and nurses the chicks as long as they do not have mature wings and are not able to fly independently In the same way a *guru* or *acharya* nurtures, supports, and promotes a newly initiated ascetic till he gains competence to teach and impart training of codes of conduct and scriptural knowledge

● END OF LESSON THREE ●

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

गौरव-त्यागी

१९१. एव ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वाइया तेहि महावीरेहिं पण्णाणमंतेहिं।

तेसिंतिए पण्णाणमुवलब्भ हिच्चा उवसमं फारुसिय समादियंति।

वसित्ता बभचेरंसि आणं 'तं णो' त्ति मण्णमाणा–अग्घायं तु सोच्चा णिसम्म 'समणुण्णा जीविस्सामो' एगे णिक्खम्म–ते असभवंता विडज्झमाणा कामेसु गिद्धा अज्झोववण्णा समाहिमाघयमझोसयंता सत्थारमेव फरुसं वदंति।

१९१ इस प्रकार उन महान् वीर और प्रज्ञावान् (गुरुओ) द्वारा वे शिष्य दिन-रात क्रमश प्रशिक्षित होते है।

उन (आचार्यादि) के पास विशुद्ध ज्ञान को पाकर (अभिमानवश) उपशमभाव को छोडकर कुछ शिष्य परुषता–(कठोर) का आचरण करने लगते है। (गुरुजनो का अनादर करने लगते है।)

वे गुरुकुल वास मे रहते हुए भी आचार्यादि की आज्ञा को 'यह तीर्थकरों की आज्ञा नही है', ऐसा मानते है। कुछ पुरुष आख्यात–गुरुजनो का उपदेश सुनकर, समझकर 'हम उत्कृष्ट सयमी जीवन जीयेगे' इस प्रकार का सकल्प लेकर प्रव्रजित होते है, किन्तु वे अपने सकल्प के प्रति सुस्थिर नही रहते। वे (कषाय-ईर्ष्या की अग्नि से) जलते रहते है, काम-भोगो मे गृद्ध या (ऋद्धि, रस और सुख की सवृद्धि मे) लोलुप बनकर तीर्थकरो द्वारा प्ररूपित समाधिभाव को नही अपनाते, शास्ता गुरुजनों को भी वे कठोर वचन कह देते है।

ABANDONING PRIDE

191. This way those disciples are step by step taught and trained day and night by those great, brave and sagacious teachers

After acquiring authentic knowledge from them, some disciples (out of conceit) lose their composure or serenity and become rude (start showing disrespect to the seniors and teachers)

While still living in the *gurukul* (place of study or under the tutelage of the *guru*) they do not believe the commandments of the preceptor to be the commandments of *Tirthankars* Some individuals having listened to and understood the sermon, get initiated with the resolution that we shall lead an exemplary ascetic life. But they do not stay true to their resolution They continue to fume (in the fire of passions and envy). Getting infatuated with carnal pleasures and being covetous (of wealth, comforts and pleasure) they do not follow the attitude of *samadhi* (composure and serenity) propagated by *Tirthankars* They even use harsh and offensive language with preceptors and seniors

१९२. सीलमता उवसता संखाए रीयमाणा। असीला अणुवयमाणा बितिया मंदस्स बालया।

णियट्टमाणा वेगे आयारगोयरमाइक्खंति। णाणब्भट्ठा दसणलूसिणो।

नममाणा वेगे जीविय विप्परिणामेति।

पुट्ठा वेगे णियट्टति जीवितस्सेव कारणा। णिक्खत पि तेसि दुण्णिक्खंत भवति। बालवयणिज्जा हु ते णरा पुणो पुणो जाइ पकप्पेति।

अहे सभवता विद्दायमाणा, अहमसीति विउक्कसे। उदासीणे फरुस वदंति, पलिय पगथे अदुवा पगथे अतहेहि।

त मेधावी जाणेज्जा धम्म।

१९२ शीलवान, उपशान्त एव प्रज्ञापूर्वक सयम-पालन मे पराक्रम करने वाले मुनियो को वे अशीलवान् कहकर बदनाम करते है। यह उन मन्द बुद्धि लोगो की दूसरी मूढता (अज्ञानता) है।

सयम से निवृत्त हुए कुछ एक मुनि-वेश परित्याग कर देने वाले आचार-सम्पन्न मुनियो का आदर करते है। किन्तु अज्ञानी पुरुष जो ज्ञान से भ्रष्ट हो गये, वे सम्यग्दर्शन के विध्वसक होकर दूसरो को भी शकाग्रस्त करके सन्मार्ग से भ्रष्ट कर देते है।

कई साधक (आचार्यादि तीर्थकरो के प्रति) नत-(समर्पित) होते हुए भी सयमी जीवन को त्याग देते है।

कुछ साधक (परीषहो से) आक्रान्त होने पर (सुखपूर्वक) जीवन जीने के निमित्त से सयम छोड बैठते हैं। उनका गृहवास से निष्क्रमण भी दुर्निष्क्रमण हो जाता है, क्योकि साधारण (अज्ञ) जनो द्वारा भी वे निन्दनीय हो जाते हैं तथा वे पुन -पुन· जन्म धारण करते है।

वे ज्ञान-दर्शन-चारित्र में निम्न-स्तर के होते हुए भी अपने को ही विद्वान् मानकर 'मै ही सर्वाधिक विद्वान् हूँ', इस प्रकार अहकार करते हैं। जो उनसे उदासीन (तटस्थ) रहते है, उन्हे वे कठोर वचन बोलते है। वे (उन तटस्थ मुनियो के पूर्व-आचरित-गृहवास के समय किए हुए) कर्म (पलिय) को लेकर निन्द्य वचन बोलते है। अथवा असत्य आरोप लगाकर उन्हे बदनाम करते है, उन्हे अपशब्द कहते है।

बुद्धिमान् मुनि इन सब को धर्म-शून्य जनो की चेष्टा समझकर अपने धर्म को भलीभाँति जाने-पहचाने।

192. They defame those ascetıcs who are righteous, and serene, and sıncere ın followıng ascetıc conduct by calling them non-rıghteous Thıs way those fools multiply theır folly

Some of these ascetıcs who abandon ascetıc dıscıplıne offer due respect to those who remaın unclad and are uprıght ın conduct But the ıgnorant who have abandoned the path of knowledge become antagonısts of rıght perceptıon and instıgate others to abandon the rıght path by plantıng doubt ın theır mınd

Many seekers although dedıcated (to *acharyas* and *Tırthankars*) stıll abandon the ascetıc path

Some aspırants abandon the path of dıscıpline for the sake of (comforts of) lıfe when oppressed (by afflıctıon). Theır renouncıng household turns ınto ıll-renuncıatıon because they become objects of censure even to common people Also, they are born and reborn tıme and agaın

Although they are at a lower level of knowledge-perceptıon-conduct, they consıder themselves to be scholars and project theır ego—"I am the top most scholar" They use harsh language wıth those who do not recognize them They slander

them (unbiased and true ascetics) for their deeds (of their pre-ascetic life) Or defame them using harsh words and false accusations.

A wise ascetic should properly understand his religion (ascetic path) ignoring all these acts as designs of uncouth people

विवेचन–(सूत्र १९१-१९२) **'पण्णाणमुवलब्भ '**–इस पक्ति के द्वारा शास्त्रकार ने बताया है–ज्ञानी गुरुजनों द्वारा अहर्निश वात्सल्यपूर्वक प्रशिक्षित किये जाने पर भी कुछ शिष्यों को ज्ञान का गर्व हो जाता है। बहुश्रुत हो जाने के मद मे वे गुरुजनो द्वारा किए गये समस्त उपकारो को भूल जाते हैं, उनके प्रति विनय, नम्रता, आदर-सत्कार, बहुमान, भक्तिभाव आदि के बदले उपशमभाव को छोडकर उपकारी गुरुजनो के प्रति कठोरता धारण कर लेते है। उन्हे अज्ञानी, कुदृष्टि-सम्पन्न एव चारित्र-भ्रष्ट बताने लगते हैं।

ब्रह्मचर्य से यहाँ सयम तथा 'गुरुकुलवास' दोनो ही अर्थ लिए जा सकते है।

'आण तं णो त्ति मण्णमाणा'–कुछ साधक गुरुजनो के सान्निध्य मे वर्षो रहकर भी उनके द्वारा अनुशासित किये जाने पर भी उनकी आज्ञा को ठुकरा देते है। आचार्य उन्हे उत्सर्ग सूत्रानुसार चलने के लिए प्रेरित करते है तो वे कह देते हैं–''यह तीर्थकरो की आज्ञा नही है।'' वस्तुत ऐसे साधक शारीरिक सुख की तलाश मे अपवाद मार्ग का आश्रय लेते है।

'सत्थारमेव फरुस वदति'–वृत्तिकार ने इस पक्ति के दो अर्थ किये है–

(१) आचार्यादि द्वारा शास्त्राभिप्रायपूर्वक प्रेरित किये जाने पर भी अहकारपूर्वक उस शास्ता को ही कठोर वचन बोलने लगते है।

(२) अथवा शास्ता का अर्थ शासनाधीश तीर्थकर आदि भी होता है। अत यह अर्थ भी सम्भव है कि शास्ता अर्थात् तीर्थंकर आदि के लिए भी कठोर व अवज्ञामूलक वचन कह देते है।

'णियट्टमाणा '–कुछ साधक सातागौरववश सुख-सुविधावादी बनकर मुनिधर्म के सयमी वेश से भी निवृत्त हो जाते है, फिर भी वे विनय को नही छोडते, न ही किसी साधु पर दोषारोपण करते है, न कठोर बोलते हैं, अर्थात् वे अहंकारग्रस्त होकर अपने आचार में दम्भ, दिखावा नहीं करते, न ही झूठा बहाना बनाकर अपवाद का सेवन करते हैं, किन्तु सरल एव स्पष्ट हृदय से कहते है– ''मुनिधर्म का मौलिक आचार तो ऐसा है, किन्तु हम उतना पालन करने में असमर्थ है।''

'णाणब्भट्ठा दसणलूसिणो'–किन्तु ज्ञान से भ्रष्ट और सम्यग्दर्शन के विध्वंसक साधक बहुत खतरनाक होते है। वे स्वयं तो चारित्र से भ्रष्ट होते ही है, अन्य साधकों को भी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से भ्रष्ट करके सन्मार्ग से विचलित भी कर देते हैं।

'नममाणा.'–कुछ साधक ऐसे होते है, जो गुरुजनों, तीर्थंकरों तथा उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म के प्रति विनीत होते हैं, परन्तु ऋद्धि, रस तथा साता गौरव के वशीभूत होकर संयममार्ग से विमुख हो जाते है।

'पुट्ठा वेगे णियट्टति'–कुछ साधक परीषहों का अनुभव होने पर सुख-सुविधापूर्ण जीवन के लिए संयमी वेश भी छोड बैठते हैं।

'अहे सभवता विद्दायमाणा'–कुछ साधक स्वयं अल्पज्ञ होते हुए भी 'हम विद्वान् हैं' इस प्रकार से अपनी मिथ्या श्लाघा (प्रशंसा) करते रहते हैं। ऐसा साधक गर्वोन्नत होकर अपनी डींग हाँकता रहता है कि 'मै बहुश्रुत हूँ, आचार्य को जितना शास्त्र ज्ञान है, उतना तो मैंने अल्प समय मे ही पढ़ लिया था।' उसकी अभिमान भरी बात सुनकर जो मध्यस्थ या मौन बने रहते हैं, उसकी हाँ में हाँ नही मिलाते, अथवा जो राग-द्वेष और अशान्ति से दूर रहते हैं, उन्हें भी वे कठोर शब्द बोलते हैं।

'पलिय पगथे अदुवा पगथे अतहेहि'–पलिय का अर्थ है, कर्म और पगंथे का अर्थ है गाली-गलौज करना। इस पद की व्याख्या करते हुए टीकाकार कहते हैं–गर्वस्फीत साधक उद्धत होकर उन सुविहित मध्यस्थ साधकों को लोगो की दृष्टि मे नीचे गिराने के लिए–उस साधु के पूर्वाश्रम के किसी कर्म-धन्धे या दुश्चरण को लेकर कहता है–तू तो वही लकडहारा है न? अथवा तू वही चोर है न?

इसलिए बुद्धिमान् धर्म को जाने कि अहकार आदि के त्याग से ही धर्म का ज्ञान होता है।

Elaboration (191-192)—*Pannanamuvalabbh...*—in this line the author informs—In spite of being affectionately taught and trained by the accomplished teachers all along, some disciples become proud of their knowledge This conceit makes them forget all the favours done by their teachers Instead of the normal modest, humble, reverential, respectful and devout behaviour they lose their composure and become harsh towards the obliging teachers They start calling them ignorant, misguided and fallen (from the right conduct)

Brahmacharya can be interpreted both as ascetic discipline and living in *gurukul* (with the teacher)

Anam tam notti mannamana—In spite of spending years with their *gurus,* some aspirants when disciplined by their *gurus,* refute their order When the *acharya* asks them to abide by the code of

discipline, they reply—"This is not the order of *Tirthankars* " In fact such aspirants, in their search for carnal pleasures, accept an abnormal path

Sattharmeva Farusam vadanti—The commentator (*Vritti*) has given two interpretations of this phrase—

(1) In spite of being given advise based on scriptures they start refuting that *shasta* (preceptor or *acharya*) in harsh words

(2) *Shasta* also means *Tirthankar* or other propagator of that level Therefore the other interpretation is that they use harsh and derogatory remarks for *Tirthankars*, etc

Niyatthamana—Some comfort loving aspirants revert to a life of worldly pleasures and comfort, leaving the ascetic discipline and garb Even then they do not leave their modesty and do not slander any ascetic using harsh language In other words they neither project their ego or show off nor do they accept unusual ways on some pretext They simply and sincerely say—"The true ascetic conduct is like that (rigorous) but I am not capable of adhering to it strictly"

Nanabbhattha damsanalusino—The ignorant who have abandoned the path of knowledge and become antagonists of right perception are very dangerous Not content to fall from grace themselves, they start instigating others to abandon the path of right perception and right knowledge

Namamana—Many seekers are dedicated to *acharyas* and *Tirthankars* and their tenets, but still abandon the ascetic path due to attraction for wealth, comforts and pleasure

Puttha vege niyattanti—When oppressed by affliction and hardship, some aspirants abandon the path of discipline for life of comfort

Ahe sambhavata viddayamana—Although they know very little, they consider themselves to be scholars and indulge in self

praise—"I am the top most scholar" Such aspirants become vainglorious and boast about—"I have acquired enormous knowledge It took me very little time to acquire all the scriptural knowledge the *acharya* had" They use harsh language even with those who are impartial and offer no comments or those who do not take their side and remain away from attachment, aversion and dispute

Paliyam paganthe aduva paganthe atahehim—*Paliyam* means action or deed and *paganthe* means to abuse or call names Explaining this phrase the commentator (*Tika*) says—In order to slander the unbiased and true ascetics, such aspirants with bloated ego choose some activity, profession, or fault of their pre-ascetic life and say—"You are the same wood-cutter ? Or you are the same thief ?

Therefore a wise ascetic should properly understand his religion (ascetic path) that it is through avoiding ego and other such vices that one acquires knowledge of the right path

अज्ञानी का निन्दित आचरण

१९३. अहम्मट्ठी तुम सि णाम बाले आरंभट्ठी, अणुवयमाणे, हणमाणे, घायमाणे, हणओ यावि समणुजाणमाणे।

घोरे धम्मे उदीरिए। उवेहइ ण अणाणाए।

एस विसण्णे वियद्दे वियाहिए।

त्ति बेमि।

१९३ (सयमच्युत अहकारी साधक को आचार्य कहते है–) तू अधर्मार्थी है, बाल है, आरम्भ मे प्रवृत्त हो रहा है, आरम्भ करने वालो का अनुसरण करता हुआ तू कहता है–प्राणियो का हनन करो तथा दूसरो से प्राणिवध कराता है और प्राणियो का वध करने वालो का भी अनुमोदन करता है।

(भगवान ने) घोर धर्म का प्रतिपादन किया है, तू धर्म की उपेक्षा करता हुआ आज्ञा का अतिक्रमण कर रहा है।

इस कारण तुझे विषण्ण (काम-भोगरूप कीचड मे लिप्त) और वितर्द (हिसक) कहा गया है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

EVIL CONDUCT OF AN IGNORANT

193. (The *acharya* admonishes the aspirant who is proud and has drifted from the ascetic path—) You seek the opposite (non-righteous) path You are ignorant You indulge in sinful activity Emulating those who indulge in sinful activities you say—'Kill beings', and instigate others to kill beings. You also approve of others who kill beings

Bhagavan has propagated the religion of austerities but you neglect that religion and violate his tenets.

That is why you are called *vishanna* (engulfed by the slime of carnal pleasures) and *vitard* (killer)

—So I say

१९४ किमणेण भो जणेण करिस्सामि त्ति मण्णमाणा–एव पेगे वइत्ता मायर पियरं हिच्चा णायओ य परिग्गहं। वीरायमाणा समुट्ठाए अविहिंसा सुव्वया दता।

अहेगे पस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे। वसट्टा कायरा जणा लूसगा भवंति।

१९५ अहमेगिसि सिलोए पावए भवइ–से समणविब्भते समणविब्भंते।

पासहेगे समण्णागएहिं असमण्णागए नममाणेहि अनममाणे, विरएहि अविरए दविएहि अदविए।

१९६. अभिसमेच्चा पडिए मेहावी णिट्ठियट्ठे वीरे आगमेण सदा परिक्कमेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१९४ कुछ लोग यह मानते और कहते है कि इन स्वार्थी स्वजनो का मै क्या करूँगा? माता-पिता, ज्ञातिजन और परिग्रह को छोडकर वीर पुरुष की भॉति मुनिधर्म मे सम्यक् प्रकार से प्रव्रजित होते है, अहिसक, सुव्रती और इन्द्रिय-दमन करने वाले होते है।

हे शिष्य ! इन कुछ दीन पतित होकर गिरते साधको को तू देख ! वे कायर-जन विषयो से पीडित हो व्रतो के विध्वसक हो जाते है।

१९५ उनमे से कुछ श्रमणो की कीर्ति पापरूप (निन्दा योग्य) हो जाती है। (लोग कहते है–) "यह श्रमण विभ्रान्त (श्रमण धर्म से भटक गया) है, यह श्रमण विभ्रान्त है।"

तुम यह भी देखो ! (सयम से च्युत होने वाले) शुद्ध आचार वालों के बीच शिथिलाचारी, सयम के प्रति समर्पित मुनियो के बीच असमर्पित, विरत मुनियों के बीच अविरत तथा चारित्र-सम्पन्न साधुओ के बीच चारित्रहीन होते है।

१९६ पण्डित, मेधावी, निष्ठितार्थ वीर मुनि सयम-भ्रष्ट होने के परिणामो को भलीभाँति जानकर आगम के अनुसार सयम में पराक्रम करे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

194. Some people believe and say what have they to do with these selfish relatives ? They abandon parents, relatives and possessions and like a brave get initiated into the ascetic order properly They become non-violent, steadfast in conduct and subjugators of senses

O disciple ! See these wretched and corrupt aspirants falling ! These cowards tormented by mundane pleasures turn into violators of their ascetic pledges

195. The fame of some of these *Shramans* becomes sinful (censurable) (People say—) "This *Shraman* is deluded, this *Shraman* is apostate "

You should also see that among those who are steadfast, there are *Shramans* who are lax in their conduct, among those who are dedicated to ascetic discipline there are *Shramans* who are not dedicated to discipline, among those who are free from mundauce indulgences These are *Shramans* who are not free from them, among those who are endowed with right conduct There are *Shramans* who are not endowed with right conduct

196. Realizing the consequences of drifting away from ascetic discipline, a learned, wise, accomplished and brave ascetic should pursue the path of discipline as defined in *Agams*

—So I say

विवेचन–'**उप्पइए पडिवयमाणे**'– जो पहले वीरतापूर्वक स्वजन, ज्ञातिजन, परिग्रह आदि को त्यागकर वैराग्य के साथ प्रव्रजित होते है, एक बार तो वे वैराग्य इन्द्रिय सयम आदि से लोगो को अत्यन्त प्रभावित कर देते हैं। परन्तु बाद मे जब उनकी प्रसिद्धि और प्रशसा अधिक होने लगती है, पूजा-प्रतिष्ठा बढ जाती है, सुख-सुविधाएँ भी अधिक मिलने लगती है, भोजन आदि भी स्वादिष्ट, गरिष्ठ मिलता है, तब वे इन्द्रिय-सुखो की ओर झुक जाते है, सयम मे पराक्रम की अपेक्षा से दीन-हीन और तीनो गौरवो के दास बन जाते है।

'**दविएहि**'–जिसके पास द्रव्य–धन हो वह द्रव्यिक है। साधु के पास ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप धन है। अथवा द्रव्य का अर्थ है–मुक्तिगमन योग्य। 'द्रविक' का एक अर्थ दयालु भी होता है।

'**णिट्ठियट्ठे**'–जिसकी विषय-सुखो की पिपासा सर्वथा बुझ गयी हो '**विषयसुख-निष्पिपास· निष्ठितार्थ**' उसे निष्ठितार्थ कहते है।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—***Uppaie padivayamane***—There are those who renounce parents, relatives, possessions, and other mundane things bravely and get initiated with detachment Initially they effectively influence people with their detachment and discipline over senses But later, when they get a lot of fame and praise, they are revered and worshiped, provided excessive comforts, and tasty and rich food, they lean towards mundane pleasures, become poor in perseverance of ascetic discipline and slaves of three types of glory

Daviehim—One who has abundance of things or wealth, an ascetic has the wealth of knowledge-perception-conduct Another meaning of *dravya* is *bhavya* or worthy of getting liberated *Dravik* also means clement

Nitthiyatthe—One whose thirst for mundane pleasures has been absolutely quenched

● END OF LESSON FOUR ●

पंचम उद्देसओ | पंचम उद्देशक | LESSON FIVE

[पिछले उद्देशक में भिक्षुओं को तीन प्रकार के गौरव त्यागकर विषय-पिपासा से मुक्त रहते हुए साधना करने का कथन किया गया है। इस उद्देशक मे ग्राम-नगरों मे विहार करते हुए धर्म सुनने के इच्छुक जनो को तटस्थभावपूर्वक धर्म-कथन का निरूपण है।]

[The precedıng lesson talks about doıng ascetıc practıces after abandonıng three types of glory and remaınıng free of mundane desıres Thıs lesson talks about gıvıng relıgıous dıscourses wıth equanımıty to the eager people whıle movıng around from one vıllage or cıty to another]

तितिक्षु-धुत का धर्म-कथन

१९७. से गिहेसु वा गिहंतरेसु वा गामेसु वा गामतरेसु वा णगरेसु वा णगरंतरेसु वा जणवएसु वा जणवयतरेसु वा सतेगतिया जणा लूसगा भवति अदुवा फासा फुसंति। ते फासे पुट्ठो धीरो अहियासए ओए समियदसणे।

दय लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिण उदीणं आइक्खे विभए किट्टे वेदवी।

से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुस्सूसमाणेसु पवेदए–संति विरतिं उवसमं णिव्वाण सोयविय अज्जवियं मद्दवियं लाघविय अणइवत्तियं।

सव्वेसि पाणाणं सव्वेसि भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं, अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा।

अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे णो अत्ताण आसाएज्जा णो परं आसाएज्जा णो अण्णाइ पाणाइं भूयाइ जीवाइं सत्ताइ आसाएज्जा।

१९७ वह (श्रमण जब विहार करता है तो–) घरो मे, गृहान्तरो मे (घरो के बीच), ग्रामो में ग्रामान्तरो (ग्रामों के बीच) नगरों मे, नगरान्तरो मे, जनपदों में या जनपदान्तरों मे कुछ विद्वेषी जन हिसक–(उपद्रवी) हो जाते है। (उपसर्ग करते है)। अथवा (सर्दी, गर्मी, डास, मच्छर आदि परीषहो के) स्पर्श (कष्ट) प्राप्त होते है। उनसे स्पृष्ट होने पर धीर मुनि उन सबको समभाव से सहन करे।

जो मुनि राग और द्वेष से रहित एव सम्यग्दर्शी है वह लोक पर दया/अनुकम्पा भाव के साथ पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण आदि दिशाओ और विदिशाओ मे धर्म का उपदेश करे। तत्त्व का विभाग करके, धर्माचरण के सुफल का निरूपण करे।

वह मुनिधर्म सुनने के उत्सुक जनो को फिर चाहे वे उत्थित हो या अनुत्थित, शान्ति, विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव, लाघव एव अहिंसा का उपदेश करे।

वह भिक्षु सभी प्राणियो, सभी भूतों, सभी जीवो और सभी सत्त्वों के कल्याण का विचार करके धर्म का व्याख्यान करे।

DISCOURSE BY AN ENDURING DHUT

197. In houses and areas between houses, vıllages and areas between vıllages, cıtıes and areas between cıtıes, states and areas between states, some antagonısts become vıolent to (and ınflict paın on) hım (the *Shraman* durıng his itinerant lıfe) Also he ıs brushed (tormented by cold, heat, gadflies, mosquitoes, etc) When experıencıng these, a composed ascetıc should tolerate them wıth equanımıty

The rıghteous and detached ascetıc should preach relıgıon ın all directıons and sub-dırectıons includıng east, west, north and south Categorızıng the fundamentals, he should reveal the benefits of followıng the relıgıous conduct

That ascetic should expound peace, detachment, pacıficatıon, nirvana, cleansıng, sımplıcıty, humbleness, lıghtness and *ahımsa* for those who are eager to lısten to the sermon ırrespectıve of their being spırıtually high or low

That ascetıc should give relıgıous dıscourse wıth awareness of well being of everythıng that breathes, exısts, lıves and has any essence or potentıal of lıfe

विवेचन–'लूसगा भवंति –'लूषक' शब्द आगमो मे प्रसगो के अनुसार अनेक अर्थो मे प्रयुक्त होता रहा है, जैसे–हिसक, उत्पीडक, विनाशक, क्रूर, हत्यारा, हैरान करने वाला, दूषित करने वाला, आज्ञा न मानने वाला, विराधक आदि। पादविहारी साधुओ को भी ऐसे लूषक जगलो, छोटे से गाँवों, जनशून्य-स्थानो या कभी-कभी घरो में भी मिल जाते हैं।

साधु प्राय विचरणशील होता है, विहार करते हुए किसी भी स्थान मे साधु को ऐसे उपद्रवी तत्त्व मिल सकते हैं, और वे साधु को तरह-तरह से हैरान-परेशान कर सकते हैं। वे उपद्रवी या हिंसक तत्त्व मनुष्य ही हो, ऐसी बात नहीं है, देवता भी हो सकते है, तिर्यंच भी हो सकते हैं। जनशून्य स्थान में कायोत्सर्ग या स्वाध्याय, ध्यान, प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण आदि करते समय

धुतवादी (कर्मक्षयार्थी) मुनि को, समाधि और संयमनिष्ठा भंग न करते हुए समभावपूर्वक उन्हे सहना चाहिए; क्योंकि शान्ति आदि दशविध, मुनिधर्म में सुस्थिर रहने वाला मुनि ही दूसरो को धर्मोपदेश द्वारा सन्मार्ग बता सकता है।

'फासा' शब्द सर्दी-गर्मी दश-मशक आदि परीषह सूचित किये है।

'ओए समियदसणे'–ओज का अर्थ वृत्तिकार ने किया है–अकेला, राग-द्वेषरहित होने से अकेला। समित-दर्शन पद के तीन अर्थ होते है–(१) जिसका दर्शन समित–सम्यक् हो वह सम्यग्दृष्टि, (२) जिसका दर्शन (दृष्टि) शमित–उपशान्त हो गया हो वह शमित-दर्शन, और (३) जिसकी दृष्टि समता को प्राप्त कर चुकी है वह समित-दर्शन–समदृष्टि।

आगम के पाठानुसार वृत्तिकार धर्म श्रोता के लक्षण बताते है। सिद्धान्त का ज्ञाता मुनि यह देखे कि जो भाव से उत्थित, सयम-पालन के लिए उद्यत हैं, उन्हे, अथवा अनुत्थित–श्रावको आदि को, धर्म-श्रवण के जिज्ञासुओ को धर्म का व्याख्यान करे।

'सति' आदि आठ पदो से जिस धर्म का कथन करना है उसका स्वरूप बताया है। (१) शान्ति–अहिंसा, (२) विरति–आस्रवों से विरमण, (३) उपशम–क्रोधादि कषायो के निग्रह का मार्ग, (४) निर्वाण–आत्मा के सहज आनन्द की प्राप्ति का उपाय अथवा चित्त की स्थिरता का उपाय, (५) शौच–निर्लोभता, (६) आर्जव–सरलता, (७) मार्दव–अहकार-त्याग और (८) लाघव–वस्त्र आदि उपकरणो की अल्पता व मन की नम्रता।

'अणइवत्तिय' शब्द से अभिप्राय है–जिस धर्म-कथन से भगवद् आज्ञा का अति व्रजन–अतिक्रमण न हो, अर्थात् आगमानुसार सम्यक् कथन करे।

इस सूत्र मे 'अणुवीई' शब्द दो बार आया है। इसका अभिप्राय है, धर्म-कथन करने से पूर्व बार-बार विचार व विवेक करे।

'विभए', 'विचारपूर्वक' या 'विभागपूर्वक' का पहला अभिप्राय है आक्षेपणी, विक्षेपणी आदि कथा शैली से धर्म-तत्त्व को अलग-अलग प्रकार से समझाए। दूसरी बार 'अणुवीइ' के प्रयोग के साथ दूसरो की व अपनी आशातना नही करने का भी सकेत है। आशातना का अर्थ है, किसी को बाधा, हानि या कष्ट पहुँचाना। द्रव्य आशातना–शरीर, उपकरण अन्न-पानी की है। भाव आशातना का अर्थ है ज्ञान-दर्शन-चारित्र की हानि न हो।

धर्म का कथन करते समय, देश, काल की परिस्थिति, श्रोता की पात्रता व उसकी श्रद्धा आदि सभी बातों का विचार कर ले। कही श्रोता का मन दु खी न हो तथा वह खिन्न व क्रुद्ध होकर उल्टा धर्म-कथन करने वाले को हानि नही पहुँचाए।

Elaboration—*Loosaga bhavanti*—The word *looshak* has been used ın *Agams* ın dıfferent contexts meanıng—vıolent, tormentor, destroyer, cruel, killer, annoyer, adulterer, dısobedıent, antagonıst,

etc The ascetics who move around on foot come across such *looshaks* in jungles, small villages, forlorn places and sometimes even in dwellings

An ascetic is basically itinerant While moving from one place to another he may come across such disturbing elements anywhere and they may annoy or torment him in many ways It is not necessary that these disturbing elements are humans only, they may be beings of the divine or animal world While indulging in *kayotsarg* (dissociation of mind from the body), self-study, meditation, introspection, critical review and other such spiritual practices in remote places, an ascetic, following the doctrine of cleansing (shedding *karmas*), should tolerate all such afflictions with equanimity and not allow his composure and dedication for discipline to be disturbed This is because only an ascetic who is steadfast in the ten limbed ascetic conduct (including tranquility) is capable of showing the right path to others through his discourse

Fasa—includes torments of touch, such as heat-cold, mosquito-bite etc

Oe samiyadamsane—The commentator (*Vritti*) has interpreted *oj* as solitary, as he is free of attachment and aversion he is alone *Samit-darshan* has three meanings—(1) he whose perception is *samit* or right, having right perception (2) he whose perception is *shamit* or pacified, having pacified or tranquil perception (3) he whose perception has gained *samata* or equanimity, having equanimous perception

Based on the text of *Agams* the commentator (*Vritti*) explains the signs of a listener of religion An ascetic who knows the principles should realize that he has to expound religion for those who are at a higher spiritual level and ready to follow the ascetic discipline or for those who are at a lower spiritual level, like *shravaks* who are just curious to listen

Terms like *santi* indicate the form of religion to be expounded (1) *Shanti*—peace or *ahimsa*, (2) *virati*—detachment or avoiding the

sources of inflow of *karmas*, (3) *upasham*—pacification of passions like anger, (4) *nirvana*—the means of attaining the state of natural bliss of the soul, or the method of gaining stability of mind, (5) *shauch*—cleansing or absence of greed, (6) *arjav*—simplicity or sincerity, (7) *mardav*—freedom from conceit, humbleness, (8) *laghava*—modesty and limitation of ascetic equipment, or lightness

Anai vattiyam—that statement which does not transgress the tenets of *Tirthankars* They should properly expound religion conforming to the *Agams*

In this aphorism *anuvi-i* has been used twice This conveys that one should indulge in repeated and careful deliberation and analysis before giving a religious discourse

Vibhaye—after categorization or due consideration First step of this process is to explain the basics of religion in antithetical, analytical and other such styles of oration The direction about the second thought by using *anuvi-i* points at avoiding *ashatana* (neglect or insolence) of others as well as the self *Ashatana* means to cause obstruction, harm or pain to someone *Dravya* (physical) *ashatana* is related to body, equipment and food *Bhava* (mental) *ashatana* is related to knowledge, perception and conduct

While preaching he should consider conditions of place and time, worthiness and dedication of the listener, and various other factors He should be aware of the fact that if the listener is in a disturbed state of mind he may get annoyed or angry and harm the preacher.

१९८. से अणासादए अणासादमाणे वज्झमाणाणं पाणाणं भूताणं जीवाणं सत्ताणं, जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ सरण महामुणी।

एव से उट्ठिए ठियप्पा अणिहे अचले चले अबहिलेस्से परिव्वए।

सखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे।

१९८ (वह धर्मकथी) किसी भी प्राणी को बाधा न पहुँचाने वाला तथा जिससे प्राण, भूत, जीव और सत्व का वध न हो, ऐसा धर्म व्याख्यान दे। वह महामुनि असदीन द्वीप की तरह संसार-प्रवाह मे डूबते हुए प्राणों, भूतो, जीवो और सत्वो के लिए शरणभूत होता है।

इस प्रकार वह सयम मे उत्थित रागरहित, अनासक्त, अचल–(परीषहो और उपसर्गों आदि से अप्रकम्पित), चल–(विहारचर्या करने वाला), लेश्याओ–भावो को सयम से बाहर न ले जाने वाला मुनि (अप्रतिबद्ध–) भावपूर्वक परिव्रजन करे।

वह सम्यग्दृष्टिमान् मुनि उत्तम धर्म को जानकर विषय कषायो को सर्वथा उपशान्त कर देते है।

198. (That preacher) should deliver such religious discourse that does not cause any obstruction to any being and may not become the cause of violence to anything that breathes, exists, lives, and has any essence or potential of life Like an unsubmerged island, that great sage is a refuge for beings drowning in the worldly-flow

This way that ascetic, who is established in ascetic discipline, detached, free of infatuation, unwavering (in face of afflictions and torments), itinerant, and who does not allow his feelings to transgress discipline, should sincerely lead an itinerant life

That ascetic, endowed with right perception, should understand the lofty religion and completely pacify mundane desires and passions

विवेचन–पिछले सूत्र मे धर्म व्याख्यान करने की प्रेरणा थी। इसमे बताया है कि निम्न पॉच कारण हो तो धर्म व्याख्यान न करे–(१) यदि स्वय को बाधा पहुँचती हो तो, (२) दूसरे को बाधा पहुँचती हो तो, (३) प्राण, भूत, जीव, सत्व को बाधा पहुँचती हो तो, (४) किसी जीव की हिसा होती हो तो, (५) आहारादि की प्राप्ति के लिए भी धर्मकथा न करे।

धर्मव्याख्यानकर्ता की योग्यताएँ–इसी सूत्र मे बताया है कि धर्माख्यान करने वाले मे ये सात योग्यताएँ होनी चाहिए–जैसे–(१) निष्पक्षता, (२) सम्यग्दर्शन, (३) सर्वभूत दया, (४) पृथक्-पृथक् विश्लेषण करने की क्षमता, (५) आगमो का ज्ञान, (६) चिन्तन करने की क्षमता, और (७) आशातना का परिहार।

Elaboration—The preceding aphorism contained advise about religious discourse Here it is explained that such discourse should not be delivered if the following five reasons exist—(1) If it causes some obstruction to the self (2) If it causes some obstruction to others (3) If it causes some obstruction to beings. (4) If it causes

violence to some being (5) If it is delivered only for the sake of obtaining alms.

The qualities of a preacher—This aphorism states seven qualities of a preacher—(1) Impartiality, (2) Right perception, (3) All enveloping compassion, (4) Capacity of independent analysis, (5) Knowledge of the *Agams*, (6) Ability to contemplate, and (7) Avoidance of insolence

१९९. तम्हा संगं ति पासहा।

गथेहिं गढिआ णरा विसण्णा कामविप्पिया।

तम्हा लूहाओ णो परिवित्तसेज्जा।

जस्सिमे आरंभा सव्वओ सव्वताए सुपरिण्णाय भवंति, जस्सिमे लूसिणो णो परिवित्तसति, से वता कोहं च माणं च मायं च लोभं च। एस तिउट्टे वियाहिए।

त्ति बेमि।

कायस्स विओवाए एस संगामसीसे वियाहिए। से हु पारंगमे मुणी।

अवि हम्ममाणे फलगावयट्ठी कालोवणीए कंखेज्ज कालं जाव सरीरभेउ।

त्ति बेमि।

॥ पचमो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ धुय · छट्ठमं अज्झयण सम्मत्त ॥

१९९ विषय-कषायो को शान्त करने के लिए आसक्ति को देखो।

ग्रन्थियो (स्वजन-धन आदि) में गृद्ध और विषयो में निमग्न बने हुए मनुष्य कामो से बाधित होते हैं।

इसलिए मुनि रूक्ष–(सयम) से उद्विग्न न हो।

जिन आरम्भो से हिंसक वृत्ति वाले मनुष्य उद्विग्न नहीं होते, ज्ञानी मुनि उन सब आरम्भो को सब प्रकार से त्याग देते हैं। वे ही मुनि क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन करने वाले हैं। ऐसा मुनि त्रोटक–ससार-शृंखला को तोडने वाला कहलाता है।

–ऐसा मै कहता हूँ।

शरीर के व्यापात को (मृत्यु के समय की पीडा को) ही संग्रामशीर्ष (युद्ध का अग्रिम मोर्चा) कहा गया है। जो मुनि उसमें पराजित नहीं होता, वही ससार का पारगामी होता है।

आहत होने पर भी मुनि उद्विग्न नहीं होता, अपितु फलक की भाँति रहता है। मृत्युकाल निकट आने पर (विधिवत् सलेखना से शरीर और कषाय को कृश बनाकर

समाधिमरण स्वीकार करके मृत्यु की आकाक्षा न करते हुए) जब तक शरीर का (आत्मा से) भेद (वियोग) न हो, तब तक वह मरणकाल (आयुष्य क्षय) की प्रतीक्षा करे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

199 To pacify mundane desires and passions examine attachment

Persons infatuated with knots (family and wealth) and engulfed in mundane pleasures are overwhelmed by lust

Therefore an ascetic should not be disturbed by starkness (discipline)

A sagacious ascetic should in every way renounce all those sinful activities that do not disturb people having violent attitude. Only these ascetics are capable of vomiting (renouncing) anger, conceit, delusion and greed. Such a sage is called *trotak* or he who shatters the worldly chain (cycles of rebirth)

—So I say

The pain at the time of death is called a war front The ascetic who is not defeated there is called *paar-gaami* (one who has crossed the worldly-ocean)

Even when injured the ascetic does not get disturbed, instead he behaves like a sheet (smooth from both sides) When the time of death approaches he should (emaciate the body and passions by properly observing the ultimate vow, accepting the meditational end without desiring death) await the moment of death (end of the span of life) till the body is separated (from the soul)

—So I say

विवेचन–वृत्तिकार के 'लूहाओ' का अर्थ किया है–आसक्तिरहित–लूखा–रूक्ष अर्थात्–सयम।

'सगामसीसे'–शरीर का विनाशकाल (मृत्यु का समय)–वस्तुत· साधक के लिए सग्राम का अग्रिम मोर्चा है। इसलिए मृत्यु निकट आने पर या मारणान्तिक वेदना होने पर शान्त, अविचल रहना–मृत्यु के मोर्चे को जीतना है। उस समय शरीर के प्रति मोह-ममत्व या आसक्ति से बचने के लिए पहले से ही कषाय और शरीर की सलेखना करनी होती है। इसके लिए फलक की उपमा

देकर बताया है–जैसे काष्ठ को दोनों ओर से छीलकर उसका पाटिया–फलक बनाया जाता है, वैसे ही साधक शरीर और कषाय से कृश–दुबला हो जाता है। ऐसे साधक को '**फलगावतट्ठी**' की उपमा दी गयी है।

चूर्णिकार ने '**कालोवणीए**' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है–काल (मृत्यु) प्राप्त न हो तो मरण का उद्यम नहीं करना चाहिए। इसलिए "**कंखेज्ज कालं जाव सरीरभेउ**"–जब तक शरीर छूटे नही, तब तक काल (मृत्यु) की प्रतीक्षा करे। मृत्युकाल ने परवश कर दिया, इसलिए १२ वर्ष तक संलेखना द्वारा अपने आपको कृश करके पर्वत की गुफा आदि स्थण्डिल भूमि मे पादपोपगमन, इंगित-मरण या भक्तपरिज्ञा, इनमें से किसी अनशन में स्थित होकर आयुष्य क्षय तक यानी आत्मा से शरीर पृथक् होने तक, काल की आकांक्षा–प्रतीक्षा करे।

॥ पचम उद्देशक समाप्त ॥

॥ धुत षष्ठ अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—The commentator (*Vritti*) has interpreted *luha-a* as free of attachment *Luha* means dry or stark or discipline.

Sangamasise—war front The moment of destruction of the body, time of death is, in fact, war-front for an aspirant Therefore to remain serene and undisturbed in the face of death or deathly agony is to embrace victory in the war of death In order to avoid fondness or attachment for the body one has to emaciate the body and passions through ultimate vow (*samlekhana*) To explain this is given the example of a sheet or thin plank of wood which is made by planning both the sides Like a sheet an aspirant becomes thin and smooth from both sides—body and passions Such a seeker is called *falagavatatthi* or sheet-like

The commentator (*Vritti*) elaborates *kalovanite* as—One should not seek untimely death One should just wait for death till the last moment When the approaching death incapacitates he should take the ultimate vow (*sallekhana*) and observing fasts such as *Padopagaman*, *Ingit-maran* and *Bhakta-parijna*, for twelve years, emaciate himself, and retire to some cave on a mountain or any other clean place to await death till the end of life-span or the separation of soul from the body

● END OF LESSON FIVE ●

● DHUT : END OF SIXTH CHAPTER ●

महापरिण्णा : सत्तमं अज्झयणं
महापरिज्ञा : सप्तम अध्ययन

आमुख

- आचाराग सूत्र का सातवॉ अध्ययन 'महापरिज्ञा' नाम से विश्रुत है, जो वर्तमान मे विच्छिन्न माना जाता है। इसका विच्छेद–लोप कब, क्यो हुआ, इस विषय मे अनुमान ही किया जा सकता है, कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है।
- 'महापरिज्ञा' का अर्थ है महान्–विशिष्ट ज्ञान के द्वारा मोहजनित दोषो को जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा के द्वारा उनका त्याग करना।
- इस पर लिखी हुई आचाराग निर्युक्ति छिन्न-भिन्न रूप मे आज उपलब्ध है। निर्युक्तिकार ने 'महापरिन्ना' शब्द के 'महा' और 'परिन्ना' इन दो पदो का निरूपण करने के साथ-साथ 'परिन्ना' के प्रकारो का भी वर्णन किया है एव अन्तिम गाथा मे बताया है कि साधक को देवांगना, नरागना आदि के मोहजनित परीषहों तथा उपसर्गों को सहन करके मन, वचन, काया से उनका त्याग करना चाहिए। इस परित्याग का नाम 'महापरिज्ञा' है।
- सात उद्देशको वाले इस अध्ययन मे निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु के अनुसार मोहजन्य परीषहो या उपसर्गो का वर्णन था। वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है–"सयमादि गुणो से युक्त साधक की साधना मे कदाचित् मोहजन्य परीषह या उपसर्ग विघ्न रूप मे आ पडे तो उन्हे समभावपूर्वक सहना चाहिए।"
- सभी साधको की दृढता, धृति, मति, विरक्ति, कष्ट-सहन करने की क्षमता, संहनन, प्रज्ञा, एक सरीखी नही होती, इसलिए निर्बल मन आदि से युक्त साधक सयम से सर्वथा भ्रष्ट न हो जाये, क्योकि सयम मे स्थिर रहेगा तो आत्म-शुद्धि करके दृढ हो जायेगा, इस दृष्टि से सम्भव है, इस अध्ययन में कुछ मत्र, तत्र, यत्र विद्या आदि के प्रयोग साधक को सयम मे स्थिर रखने के लिए दिये गये हो जैसा कि कहा है–

  "जेणुद्धरिया विज्जा आगाससमा महापरिन्नाओ।
  वदामि अज्जवइर अपच्छिमो जो सुयधराण॥"

  इस गाथा से प्रतीत होता है, आर्य वज्रस्वामी ने महापरिज्ञा अध्ययन से कई विद्याएँ उद्धृत की थी। प्रभावक चरित्र वज्रप्रबन्ध (१४८) में भी कहा है–वज्रस्वामी ने आचारांग के महापरिज्ञाध्ययन से 'आकाशगामिनी' विद्या उद्धृत की। परन्तु आगे चलकर इनका दुरुपयोग होता देखकर इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया हो और सम्भव है, एक दिन इस अध्ययन को आचाराग से सर्वथा पृथक् कर दिया गया हो।

MAHAPARINNA : SATTAMAM AJJHAYANAM
MAHAPARIJNA : SEVENTH CHAPTER
ULTIMATE KNOWLEDGE

INTRODUCTION

- The seventh chapter of *Acharanga Sutra* is popularly known as *'Mahaparijna'* and it is believed to be extinct When and why it became extinct or was lost can only be surmised as no written proof is available

- *'Mahaparijna'* means, to know the faults caused by fondness or attachment with the help of ultimate knowledge or specialized knowledge, and to get rid of them with the help of *Pratyakhyan parijna* or process of critical self-review

- The commentary *(Niryukti)* on *Acharanga Sutra,* which has scattered mentions about this chapter, is available The commentator *(Niryukti)* has defined the two parts—*'maha'* and *'parinna'*—of the word *'Mahaparinna'* At the same time he has also listed the types of *'parinna'* In conclusion he states that an aspirant should tolerate the afflictions and torments caused by attachment with divine damsels, women, etc and renounce this with mind, speech and body This renunciation is called *'Mahaparijna'*

- According to Acharya Bhadrabahu, the commentator *(Niryukti),* this chapter having seven lessons contained details about afflictions and torments caused by attachment or fondness Elaborating this the commentator *(Vritti)* says—"During the spiritual practices of a virtuous and disciplined seeker, if and when there is some obstruction in the form of afflictions and torments caused by attachment, that should be endured with equanimity

✦ The resolve, tolerance, intellect, detachment, capacity to tolerate pain, biological structure and wisdom of all aspirants is not same Therefore, a weak aspirant, deficient in any way, should not get disheartened and completely abandon the path of discipline Because if he remains on that path he may gain strength by enhancing inner purity It is probable that with this view, this chapter could have contained mantra, tantra, yantra and other such esoteric procedures and methods to help an aspirant continue his pursuit This is evident from the quoted verse that Arya Vajra Swami mentioned about many special skills from the chapter—*Mahaparijna, Prabhavak Charitra Vajra Prabandh* also informs that Vajra Swami had quoted about power of levitation from this chapter of *Acharanga* With increasing misuse of such procedures, restrictions could have been imposed on this chapter and at some later period it could have been completely deleted from *Acharanga Sutra*

● MAHAPARIJNA : END OF SEVENTH CHAPTER ●

विमोक्खो : अट्ठमं अज्झयणं
विमोक्ष : अष्टम अध्ययन

आमुख

✦ आचाराग सूत्र के अष्टम अध्ययन का नाम 'विमोक्ष' है।

✦ 'विमोक्ष' का अर्थ है–परित्याग करना, विसर्जन करना। निक्षेप दृष्टि से विमोक्ष–द्रव्य और भाव दो प्रकार का है। बेडी आदि किसी बन्धन रूप द्रव्य से छूट जाना–'द्रव्य-विमोक्ष' है और आत्मा को बन्धन मे डालने वाले कषायो अथवा कर्मों के बन्धन रूप संयोग से मुक्त हो जाना 'भाव-विमोक्ष' है।

✦ इस अध्ययन मे भाव-विमोक्ष का प्रतिपादन है। भाव-विमोक्ष भी दो प्रकार का है–देश-विमोक्ष और सर्व-विमोक्ष। सशरीर दशा मे मिथ्यात्व, कषाय, अविरत आदि से क्रमश मुक्त होना देश-विमोक्ष है तथा सर्वथा विमुक्त सिद्धो का 'सर्व-विमोक्ष' होता है।

✦ प्रथम उद्देशक मे असमनोज्ञ-विमोक्ष का, द्वितीय उद्देशक में अकल्पनीय-विमोक्ष का तथा तृतीय उद्देशक मे इन्द्रिय-विषयो से विमोक्ष का वर्णन है। चतुर्थ उद्देशक से अष्टम उद्देशक तक एक उपकरण और शरीर के परित्याग रूप विमोक्ष का प्रतिपादन है। जैसे कि चतुर्थ मे वैहानस और गृद्धपृष्ठ नामक मरण का, पचम मे भक्त-परिज्ञा का, छठे मे एकत्वभावना और इगितमरण का, सप्तम मे भिक्षु प्रतिमाओ तथा पादपोपगमन का एव अष्टम उद्देशक मे द्वादशवर्षीय सलेखनाक्रम एव भक्त-परिज्ञा, इगितमरण एव पादपोपगमन के स्वरूप का प्रतिपादन है।

✦ प्रस्तुत अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक मे उपकरण-विमोक्ष के प्रसग मे सचेल-अचेल की चर्चा है। मुनि चार प्रकार के होते हैं–(१) तीन वस्त्रधारी, (२) दो वस्त्रधारी, (३) एक वस्त्रधारी तथा (४) अचेल–अवस्त्र। ये सभी मुनि जिनेश्वर भगवान की आज्ञा के आराधक है। अनेकान्त दृष्टि का यह बीज मत्र इस अध्ययन में है।

✦ इसी अध्ययन के चौथे से अष्टम अध्ययन तक शरीर-विमोक्ष के प्रसग मे समाधिमरण की विशिष्ट साधना पद्धति का वर्णन है।

✦ निर्युक्ति एव टीकाकार ने बताया है कि भगवान महावीर के समय मे अनेक धर्मसघ थे। जिनका आचार-विचार निर्ग्रन्थों से सरल व अन्य शारीरिक सुख-सुविधाओ से युक्त था। नवदीक्षित व अल्पज्ञानी सुख-सुविधाओं की आकांक्षा रखते हुए उनकी तरफ सहज आकर्षित हो सकता है इसलिए उनका अधिक परिचय व सम्पर्क रखना अहितकर है।

VIMOKKHO : ATTHAMAM AJJHAYANAM
VIMOKSHA : EIGHTH CHAPTER
EMANCIPATION

INTRODUCTION

- The title of the eighth chapter of *Acharanga Sutra* is *Vimoksha*
- *Vimoksha* means to renounce or abandon, to throw away or shed, or the process of getting free of something From the angle of renouncing, *vimoksha* is of two types *dravya* (physical) and *bhava* (mental) To become free of physical bondage like a shackle is *dravya-vimoksha* To become free of passions that cause the bondage of *karmas,* or the affiliation with *karmas* which turns into bondage, is *bhava-vimoksha*
- This chapter deals with *bhava-vimoksha* which in turn is also of two types—*desh-vimoksha* (partial freedom) and *sarva-vimoksha* (total freedom) To gradually get free of unrighteousness, passions, attachment etc while still in the embodied state of living is partial freedom The liberated state of *Siddhas* is the state of total freedom
- The first lesson describes freedom from non-conformists, the second details freedom from unacceptable and the third deals with freedom from pleasures of senses Fourth to eighth lessons describe freedom from one ascetic equipment and abandoning the body For instance, the fourth lesson deals with death by strangulation and other types of self invited death The fifth describes *bhaktaparijna,* the sixth details isolation and *ingit-maran,* the seventh discusses special austerities *(pratima)* and *padapopagaman,* and the eighth describes the process of twelve year *samlekhana* along with the details about *bhaktaparijna, ingit-maran* and *padapopagaman*

- The fourth lesson of this chapter, while detailing freedom from equipment, also provides details about clad and unclad Ascetics are of four types—(1) clad in three clothes, (2) clad in two clothes, (3) clad in single clothe, and (4) unclad All these are followers of the tenets of the *Jina* This basic *mantra* of *Anekanta* (non-absolutism or relativity of truth) is mentioned in this lesson.

- In the last five (fourth to eighth) lessons of this chapter there is the description of the unique process of meditational death in context of freedom from body.

- The commentators (*Niryukti* and *Tika*) inform that during *Bhagavan* Mahavir's time there were many religious organizations whose philosophy and code of conduct were simpler and more convenient as compared to those of *nirgranths* (Jain ascetics) Driven by desire for pleasures and comforts, a newly initiated and less knowledgeable ascetic could easily be attracted towards those groups That is why a closer contact and association with them is detrimental Such leanings of devout ascetics could lead to nonconformity Therefore this topic has been discussed in detail in the first lesson

पढमो उद्देसओ | प्रथम उद्देशक | LESSON ONE

असमनुज्ञ-विमोक्ष

२००. से बेमि–समणुण्णस्स वा असमणुण्णस्स वा असणं वा पाण वा खाइमं वा साइमं वा वत्थ वा पडिग्गह वा कंबलं वा पायपुंछणं वा णो पाएज्जा, णो णिमंतेज्जा, णो कुज्जा वेयावडिय। परं आढायमाणे त्ति बेमि।

धुवं चेयं जाणेज्जा–असण वा जाव पायपुंछणं वा, लभिय णो लभिय, भुंजिय णो भुंजिय, पंथं विउत्ता विउक्कम्म, विभत्तं धम्म झोसेमाणे समेमाणे वलेमाणे पाएज्ज वा, णिमतेज्ज वा, कुज्जा वेयावडियं। परं अणाढायमाणे।

त्ति बेमि।

२०० मै कहता हूँ–(श्रमण–) समनुज्ञ या असमनुज्ञ श्रमण को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कबल या पादप्रोछन आदरपूर्वक न दे, न देने के लिए निमत्रित करे, और न उनका वैयावृत्य (सेवा) करे।

कदाचित् असमनुज्ञ भिक्षु (मुनि) से कहे–"(मुनिवर !) तुम इस बात को अच्छी प्रकार जान लो–(हमारे मठ आदि मे) अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन मिलता है। तुम्हे ये प्राप्त हुए हो या न हुए हो, तुमने भोजन कर लिया हो या न किया हो, मार्ग सीधा हो या टेढ़ा हो, हमसे भिन्न धर्म का पालन (आचरण) करते हुए भी तुम यहाँ अवश्य आओ और जाओ।" (यह बात) वह (उपाश्रय–धर्म-स्थान मे) आकर कहता हो या (रास्ते में) चलते हुए कहता हो, अथवा उपाश्रय मे आकर या मार्ग मे चलते हुए वह अशन, पान आदि देता हो, उनके लिए निमन्त्रित (मनुहार) करता हो, या (किसी प्रकार का) वैयावृत्य करता हो, तो मुनि उसकी बात की बिलकुल उपेक्षा (अनादर) करता हुआ मौन रहे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

AVOIDING REVISIONISTS

200. I say—(A *Shraman*—) should not give or offer to give respectfully, things like *ashan* (staple food like wheat, rice, pulses, etc.), *paan* (liquids like water, juice, etc.), *khadya* (general food such as fruits and all other eatables), *svadya* (savoury food prepared with additives like cardamom, clove,

etc.), dress, pots, blankets, or ascetic-broom, to *samanujna* (conformists) or *asamanujna* (non-conformists) *Shraman;* neither should he serve them with reverence.

If by chance a non-conformist says (to a *Shraman*)—"(O ascetic !) Know this well that things like staple food, liquids, general food, savoury food, dress, pots, blankets, or ascetic-broom are available (in our hermitage, etc). Although you follow a faith other than ours, you should frequent this place irrespective of the fact that you have got these things or not, you have eaten or not, or the path is straight or roundabout." He conveys this message, or gives or offers food (etc.), or offers some other services, coming (to *upashraya,* place of stay) or while walking, then the *Shraman* should ignore all what he says and remain silent

—So I say

विवेचन–श्रमण भगवान महावीर के धर्मशासन के साधु-साध्वियों के लिए साधनाकाल में दूसरे के साथ सम्बन्ध रखने व न रखने मे विधि-निषेध के लिए **समनुज्ञ-असमनुज्ञ** ये दोनों शब्द प्रयुक्त हैं। समनुज्ञ उसे कहते है–जिसका सिद्धान्त से, वेष से और समाचारी में आचार-विचार समान हो। और असमनुज्ञ उसे कहते हैं जिसका दर्शन से, वेष से और समाचारी से अनुमोदन न किया जा सके।

विभिन्न सूत्रो मे समनुज्ञ या असमनुज्ञ के भिन्न-भिन्न अर्थ मिलते हैं–वृत्तिकार ने इसकी चतुर्भंगी करके इस प्रकार बताया है।

(१) जिनके दर्शन–श्रद्धा-प्ररूपणा मे अल्प मात्र अन्तर हो, वेश मे भी जरा-सा अन्तर हो, समाचारी मे भी कई बातों मे अन्तर हो।

(२) जिनके दर्शन (श्रद्धा) और वेश मे अन्तर न हो, परन्तु समाचारी में अन्तर हो।

(३) जिनके दर्शन, वेश और समाचारी, तीनों में कोई अन्तर न हो, किन्तु आहारादि साभोगिक व्यवहार न हो, और

(४) जिनके दर्शन, वेष और समाचारी तीनों में कोई अन्तर न हो तथा जिनके साथ आहारादि साभोगिक व्यवहार भी हो।

इन चारों भंगों मे पूर्ण समनुज्ञ तो चौथे भंग वाला होता है। जिनका आचार लगभग समान हो, उनके साथ साभोगिक व्यवहार सम्बन्ध रखा जाता है, जिसका आचार समान न हो, उसके साथ नहीं। वृत्तिकार ने 'समणुण्ण' शब्द का संस्कृत रूपान्तर 'समनुज्ञ' करके उसका अर्थ किया है–जो

दर्शन से और वेश से सम हो, किन्तु भोजनादि व्यवहार से नहीं, वह समनुज्ञ है। यहाँ साधर्मिक मुनि ही विवक्षित है साधर्मिक गृहस्थ नहीं। (*वृत्ति*, पत्रांक २६४) मुनि अपने साधर्मिक समनोज्ञ मुनि को ही आहार, वस्त्र-उपकरण आदि ले-दे सकता है। किन्तु एक समान आचार होने पर भी जो शिथिल आचार वाले पार्श्वस्थ, कुशील, अपच्छंद, अपसन्न आदि हों, उन्हें मुनि आदरपूर्वक आहारादि नहीं ले-दे सकता। इसे स्पष्ट करने के लिए ही सांभोगिक और समनुज्ञ विशेषण जुडे हैं।

असमनुज्ञ के लिए शास्त्रों में 'अन्यतीर्थिक' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। कदाचित् ऐसा समनुज्ञ या असमनुज्ञ साधु अत्यन्त रुग्ण, असहाय, अशक्त, ग्लान या संकटग्रस्त या एकाकी आदि हो तो अपवाद रूप से ऐसे साधु को भी आहारादि दिया-लिया जा सकता है, उसे निमन्त्रित भी किया जा सकता है, और उसकी सेवा भी की जा सकती है। आचार्य श्री आत्माराम जी म के कथनानुसार–संसर्ग-जनित दोष से बचने के लिए ही ऐसा निषेध किया गया है। मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भावना को हृदय से निकाल देने के लिए नहीं।

इसी सूत्र २०० की पंक्ति में 'परं आढायमाणे' पद आया है, जिससे यह ध्वनित होता है कि अत्यन्त आदर के साथ नहीं, किन्तु कम आदर के साथ अर्थात् आपवादिक स्थिति में समनुज्ञ साधु को आहारादि दिया जा सकता है। इसमें संसर्ग या सम्पर्क बढ़ाने की दृष्टि का निषेध होते हुए, वात्सल्य एवं सेवा-भावना का अवकाश सूचित होता है।

सूत्र २०० में '**णो पाएज्जा, णो कुज्जा वेयावडिय, पर आढायमाणे त्तिबेमि**' के बदले चूर्णि में '**पाएज्ज वा णिमन्तेज्ज वा कुज्जा वा वेयावडिय परं आढायमाणा**' पाठ मिलता है। इसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है "अत्यधिक आदरपूर्वक देने के लिए निमन्त्रित करे या उनकी वैयावृत्य (सेवा) करे।" आचार्य श्री आत्माराम जी म ने '**पर आढायमाणे**' शब्द से स्पष्ट किया है कि आदर सन्मानपूर्वक न दे, किन्तु विशेष परिस्थिति मे आहारादि दिया जा सकता है। (*आचा*, पृ ५४१) आचार्य महाप्रज्ञ जी ने '**परं आढायमाणे**' का अर्थ किया है, उन्हें आदरपूर्वक कहे कि यह आहार आदि देना मेरी मर्यादा के अनुकूल नहीं है, अत आप कुपित न हों। (*आचारांग भाष्य*, पृ ३५८) शास्त्र में मिथ्यादृष्टि के साथ संस्तव, अतिपरिचय, प्रशंसा तथा प्रतिष्ठा-प्रदान को रत्नत्रय साधना को दूषित करने का कारण बताया गया है। अत '**पर आढायमाणे**' शब्द सम्पर्क-निषेध का वाचक समझना चाहिए।

Elaboration—In the religious order of *Shraman Bhagavan* Mahavir, the terms *samanujna* (conformists) and *asamanujna* (non-conformists) were used in order to define the codes of relationship between the ascetics during the period of practices *Samanujna* (conformist) is one who conforms to the principles, attire, and ascetic-routine mentally and in conduct and *asamanujna* (non-conformists) is one who does not conform to the principles, attire, and ascetic-routine mentally and in conduct

In different *Sutras samanujna* and *asamanujna* have been interpreted differently. The commentator *(Vritti)* has explained this by making four combinations—

(1) Those who have slight philosophical differences, slight difference in attire, and differences in some parts of ascetic routine

(2) Those who have no philosophical differences, no difference in attire, but differences in ascetic routine.

(3) Those who have no philosophical differences, no difference in attire, and no differences in ascetic routine but no affiliation in common indulgences like eating etc

(4) Those who have no philosophical differences, no difference in attire, and no differences in ascetic routine and also have affiliation in common indulgences like eating etc

Of these four combinations those conforming to the fourth are absolutely *samanujna* (conformists) Affiliation in common indulgences like eating etc is kept with those having almost same conduct and not with those having different conduct The commentator *(Vritti)* has transliterated *samanunna* as *samanujna* in *Sanskrit* and interpreted it as—one who is same in terms of philosophy and attire but not in terms of affiliation in common indulgences, is called *samanujna* This is only in context with co-religionist ascetic and not a householder A *Shraman* can only give to or take from a co-religionist ascetic having same attitude, things like food, attire, and ascetic-equipment However, in spite of following the same conduct such exchange cannot be effected genially with ascetics who, although in proximity, are lax, ill-mannered, pervert, degraded and having other vices In order to convey it explicitly the adjectives *sambhogik* (related to indulgences) and *samanujna* (conformist) have been added

In scriptures the term *anya-tirthak* (belonging to other religious group or school of philosophy) has also been used for non-conformists. In case such conformist or non-conformist ascetic is

extremely sick, helpless, weak, disturbed, troubled, or isolated, such exchange can be done with him as an exception, he can be invited and offered services as well According to Acharya Shri Atmaram ji M—this proscription has been done as a precaution against acquisition of faults through association and not to be devoid of attitudes like fraternity, compassion, geniality and equanimity

The very same aphorism (200) contains a phrase—***param adhayamane.*** It conveys—not with extreme respect That means, with lesser respect, or in exceptional circumstances food (etc) can be given to a conformist *Shraman* Here, along with the proscription of enhancing affiliation or association a scope for feelings of affection and service is evident

The commentary *(Churni)* has an alternative text for ***'no paejjan no kujja veyavadiyam, param adhayamane ttibemi'*** (200)—***'paejj va nimantejj va kujja va veyavadiyam param adhayamana'.*** This is interpreted as—"Should invite them for giving or serve them with extreme respect " Acharya Shri Atmaram ji M has interpreted ***param adhayamane*** as—should not give respectfully but may give food in exceptional circumstances This term has been interpreted by Acharya Mahaprajna as—they should be respectfully told that to offer food (etc) is against the code I follow, therefore please do not be annoyed with me (*Acharanga Bhashya,* p 358) According to scriptures praising, close association, and giving honour to those having false perception is said to be a cause of vitiating the practices of three-gems (*ratnatraya*—right perception-knowledge-conduct) Therefore the term ***param adhayamane*** should be considered as proscription of such affiliations

असमनुज्ञ आचार-विचार-विमोक्ष

२०१. इहमेगेसिं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवइ। ते इह आरम्भट्ठी अणुवयमाणा हणमाणा, घायमाणा, हणतो यावि समणुजाणमाणा।

अदुवा अदिन्नमाइयंति।

अदुवा वायाओ विउजंति, तं जहा–अत्थि लोए, णत्थि लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपज्जवसिए लोए, अपज्जवसिए लोए, सुकडे त्ति वा दुकडे त्ति वा, कल्लाणे त्ति वा पावए त्ति वा, साधू त्ति वा असाधू त्ति वा, सिद्धी त्ति वा असिद्धी त्ति वा, निरए त्ति वा अनिरए त्ति वा।

जमिणं विप्पडिवण्णा मामगं धम्मं पण्णवेमाणा। एत्थ वि जाणह अकस्मात्।

एवं तेसिं णो सुअक्खाए णो सुपण्णत्ते धम्मे भवति।

२०१. कुछ भिक्षुओ को आचार-गोचर सम्यक् प्रकार से ज्ञात नहीं होता। वे (पचन-पाचन आदि सावद्य क्रियाओ द्वारा) आरम्भ के इच्छुक हो जाते है, आरम्भ करने वाले के वचनो का अनुमोदन करने लगते है। वे स्वय जीव-हिसा करते हैं, दूसरों से जीव-हिसा कराते है और जीव-हिसा करने वाले का अनुमोदन करते है।

अथवा वे अदत्त (बिना दिये हुए पर-द्रव्य) का ग्रहण करते है।

अथवा वे विविध प्रकार के परस्पर विरोधी वचनो का प्रयोग करते हैं। जैसे कि–(कई अस्तित्ववादी कहते है–) लोक है, (दूसरे कहते है–) लोक नही है। (एक कहते हैं–) लोक ध्रुव है, (दूसरे कहते है–) लोक अध्रुव है। (कुछ कहते है–) लोक सादि है, (कुछ कहते हैं–) लोक अनादि है। (कई सृष्टिवादी कहते है–) लोक सान्त है, (दूसरे असृष्टिवादी कहते है–) लोक अनन्त है। (कुछ कहते है–) सुकृत है, (कुछ कहते है–) दुष्कृत है। (कुछ कहते हैं–) कल्याण है, (कुछ कहते है–) पाप है। (कुछ कहते है–) साधु (अच्छा) है, (कुछ कहते है–) असाधु (बुरा) है। (कई वादी कहते है–) सिद्धि (मुक्ति निर्वाण) है, (कई कहते है–) सिद्धि (मुक्ति) नही है। (कई दार्शनिक कहते है–) नरक है, (कई कहते है–) नरक नहीं है।

जो इस प्रकार परम्पर विरुद्ध वादो द्वारा वे अपने-अपने धर्म का प्ररूपण करते है, इनके सभी कथन हेतु–(युक्ति-तर्क) हीन है, परस्पर विरुद्ध है, ऐसा जानो।

इस प्रकार उन एकान्तवादियो का धर्म न तो युक्ति-सगत है, और न ही भली प्रकार सम्यक् प्ररूपित है।

THE ATTITUDE AND CONDUCT OF NON-CONFORMISTS

201. Some ascetics do not properly know about codes of conduct and rules of alms collection *(gochar)* They are drawn towards sinful activities (due to indulgence in eating, digesting and other such activities), and start supporting the words of those who indulge in sinful activities. They indulge in violence against beings, cause others to do so, and approve others doing so

Also, they take what is not given to them.

Further they give a variety of contradictory statements. For example—(The Realists say—) The world has an objective existence (The Idealists say—) In reality the world does not exist (The Eternalists say—) The world is unchangeable (Others say—) The world is changeable. (Some say—) The world has a beginning (The anti-Creationists say—) The world is without a beginning. (The Creationists say—) The world has an end. (The anti-Creationists say—) The world is endless (Some philosophers say—) Righteousness exists. (Some philosophers say—) Unrighteousness exists (Some philosophers say—) *Kalyan* (well being or merit, or virtue, exists (Some philosophers say—) Sin or vice exists. (Some philosophers say—) True ascetic exists (Some philosophers say—) Non-true ascetic exists. (Some philosophers say—) *Nirvana* exists. (Some philosophers say—) *Nirvana* does not exist (Some philosophers say—) Hell exists. (Some philosophers say—) Hell does not exist

They propagate their own religions through these mutually contradictory theories. Know this that all their doctrines are illogical and mutually contradictory.

Thus the religions of such absolutists are neither logically enunciated nor properly expounded.

मतिमान-माहन प्रवेदित धर्म

२०२. से जहेयं भगवया पवेइयं आसुपण्णेण जाणया पासया। अदुवा गुत्ती वइगोयरस्स।

त्ति बेमि।

२०३. सव्वत्थ सम्मयं पावं। तमेव उवाइकम्म एस महं विवेगे वियाहिए।

गामे अदुवा रण्णे? णेव गामे णेव रण्णे। धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मईमया।

जामा तिण्णि उदाहिया जेसु इमे आरिया संबुज्झमाणा समुट्ठिया।

जे णिव्वुया पावेहिं कम्मेहिं अणियाणा ते वियाहिया।

२०२ आशुप्रज्ञ (सर्वज्ञ-सर्वदर्शी) भगवान महावीर ने जिस प्रकार से ज्ञान तथा दर्शनपूर्वक इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, मुनि उसी प्रकार से उस धर्म-(सम्यग्वाद) का निरूपण करे। अथवा वाणी के विषय की गुप्ति कर मौन साधे।

-ऐसा मै कहता हूँ।

२०३. (वह मुनि उन अन्यतीर्थिको से कहे-) (आप सबके दर्शनों में) जो पाप, (हिसा करना) सर्वत्र सम्मत है, मैं उसी का अतिक्रमण करके उससे दूर रहता हूँ। यह मेरा विवेक है।

धर्म ग्राम मे होता है, अथवा अरण्य मे? वह न तो गाँव मे होता है, न अरण्य में। उसी को धर्म जानो, जो मतिमान् महामाहन भगवान ने प्रवेदित किया (बतलाया) है।

तीन याम (अवस्था) बताये है-उन (तीनो यामो) मे ये आर्य मनुष्य सम्बोधि पाकर (धर्म का आचरण करने के लिए) उत्थित होते है।

जो (क्रोध एव हिसादि से) शान्त हो गये हैं, वे (पापकर्मो के) निदान-(बन्धन) से विमुक्त कहलाते है।

THE RELIGION PROPAGATED BY THE GREAT SAGE

202. An ascetic should enunciate the right doctrine (the doctrine of righteousness) as it was propagated by Omniscient *Bhagavan* Mahavir with right knowledge and right perception. If not, he should restrain his speech and remain silent

—So I say.

203. (The ascetic should tell those other religious leaders—) Sin (violence) is permissible everywhere (in your schools). I transgress that sanction and keep a distance from that (sin or sinful acts) This is my *vivek* (ability to discern).

Does religion exist in a village or in a jungle ? It is neither in a village nor in a jungle Accept only that to be religion which has been expounded by the great sage *Bhagavan* Mahavir

There are said to be three sections of life-span. In all these three sections noble persons rise (to pursue ascetic conduct) after getting right knowledge.

Those who become serene (by pacifying anger, violence, etc.) are said to be free of bondage (of vitiating *karmas*).

विवेचन—इस सूत्र में बताया है—भगवान महावीर ने अनेकान्त रूप सम्यगवाद का प्रतिपादन किया है। जो अन्यदर्शनी साधक सरल हों, जिज्ञासु हो, उन्हें शान्तिपूर्वक समाधान दें, जिससे असत्य एवं मिथ्यात्व से मुक्त हो। यदि असमनुज्ञ साधु जिज्ञासु व सरल न हो, वक्र हो, वितण्डावादी हो और ईर्ष्यावश लोगो मे जैन साधुओ को बदनाम करना चाहता हो, वाद-विवाद और झगडा करने के लिए उद्यत हो तो मौन रहे—'अदुवा गुत्ती वइगोयरस्स' अर्थात्—ऐसी स्थिति में मुनि वाणी-विषयक गुप्ति रखे।

उस युग में कुछ लोग एकान्तत ऐसा मानते और कहते थे—गाँव, नगर आदि जनसमूह मे रहकर ही साधु-धर्म की साधना हो सकती है। इसके विपरीत कुछ साधक यह कहते थे कि अरण्यवास मे ही साधु-धर्म की सम्यक् साधना की जा सकती है, बस्ती मे रहने से मोह पैदा होता है। इन दोनो एकान्तवादो का प्रतिवाद करते हुए भगवान ने समाधान दिया है—'णेव गामे, णेव रण्णे'—धर्म न तो ग्राम मे रहने से होता है, न अरण्य मे आरण्यक बनकर रहने से। धर्म का आधार आत्मा है, आत्मा के गुण—सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे धर्म है। वास्तव मे आत्मा का स्वभाव ही धर्म है। पूज्यपाद देवनन्दी ने इसी बात का इस प्रकार समर्थन किया है—

'ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा, निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मना निवासस्तु, विविक्तात्मैव निश्चल ॥'' —*समाधि शतक* ७३

—अनात्मदर्शी साधक गाँव या अरण्य मे रहता है, किन्तु आत्मदर्शी साधक का वास्तविक निवास निश्छल विशुद्ध आत्मा मे रहता है।

'जामा तिण्णि उदाहिआ'—वृत्तिकार ने याम के तीन अर्थ किये है—

(१) याम—महाव्रत विशेष,

(२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ये तीन याम।

(३) धर्म साधना करने योग्य तीन अवस्थाएँ। पहली अवस्था आठ वर्ष से तीस वर्ष तक, पहला याम। ३१ से ६0 वर्ष तक दूसरा तथा उससे आगे जीवन पर्यन्त तीसरा याम है। ये तीन अवस्थाएँ 'त्रियाम' हैं। (स्थानाग सूत्र ३) यो तो शतवर्षीय जीवन की दस अवस्थाएँ मानी गई है किन्तु यहाँ पर दीक्षा के योग्य अवस्थाएँ बताई जा रही है। जैन परम्परा मे आठ वर्ष तीन मास से कम आयु वाले को दीक्षा नहीं दी जाती है। परिव्राजक परम्परा मे बीस वर्ष से कम अवस्था वाले को प्रव्रजित नही किया जाता था। वैदिक लोग अन्तिम अवस्था मे सन्यास ग्रहण करते थे। बुद्ध ने तीस वर्ष से कम उम्र वालो को उपसम्पदा (दीक्षा) देने का निषेध किया है।

अहिसा, सत्य और अपरिग्रह ये तीन महाव्रत तीन याम कहे जाते है—यहाँ अचौर्य महाव्रत को सत्य में तथा ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह महाव्रत में समाविष्ट कर लिया है। इन्हे पातजल योगदर्शन मे 'यम' कहा है। भगवान पार्श्वनाथ के शासन मे चार महाव्रतो को 'चातुर्याम' कहा जाता था।

मनुस्मृति और महाभारत आदि ग्रन्थो में एक प्रहर को 'याम' कहा है, जो दिन का और रात्रि का चतुर्थ भाग होता है। दिन और रात्रि के कुल आठ याम होते हैं।

जिनसे संसार-भ्रमणादि का विराम होता है, उन ज्ञानादि रत्नत्रय को भी 'त्रियाम' कहा गया है।

'अणियाणा' शब्द का यहाँ अर्थ है–निदान–बंधनरहित। उसके दो भेद हैं–द्रव्य-निदान–माता-पिता, धन-धान्य आदि। भाव-निदान–इन्द्रिय विषय तथा कषाय। जिनके ये निदान नहीं है वे 'अनिदान' कहे जाते हैं।

Elaboration—This aphorism informs that *Bhagavan* Mahavir has propagated the doctrine of rightness in the form of *Anekantavad* (non-absolutism or relativity of truth) Those followers of other philosophies who are simple and curious should be answered patiently to help them dispel untruth and falsity If the non-conformist is not curious and simple but argumentative and crooked, wants to slander Jain ascetics out of jealousy, and hankers to argue and pick a fight, he should be replied with silence ***Aduva gutti vaigoyarassa***—in such situation an ascetic should discipline his speech or remain silent

In that age some people strongly believed and said that the ascetic religion could only be practiced while living in a village, a town, or other such inhabited place Some others maintained that such practices could only be done in a jungle because living in inhabited areas gives rise to fondness or attachment Countering these two extremes *Bhagavan* has provided a solution—***Neva gaame, neva ranne***—religion is neither in a village nor in a *jungle*. The basis of religion is soul. Religion lies in right knowledge-perception-conduct, the virtues of a soul. In fact religion is the inherent nature of soul Pujyapada Devanandi affirms this statement by saying—An aspirant who does not seek the self (soul) lives in a village or a *jungle*, but one who sincerely seeks the self dwells only in untarnished pure soul

Jama tinni udahia—three sections of age The commentator *(Vritti)* has given three meanings of the word yaam—

(1) A specific great vow

(2) The three sections of omniscience—knowledge, perception, and conduct

(3) Three sections of life-span or age groups suitable for religious practices The first section extends from 8 years to 30 years of age, the second section from 31 years to 60 years of age, and the third is the remaining life-span beyond 60 years of age These three divisions of life span are the three sections Generally a life-span of 100 years is divided into ten sections, but here this division refers to the age groups suitable for getting initiated into the ascetic order In Jain tradition a person lesser than eight years and three months is not initiated In the *parivrajak* tradition no one below the age of 20 years was initiated In the *Vedic* tradition people became hermits in the last quarter of their average life-span The *Buddha* has proscribed initiating anyone below thirty years of age

Ahimsa, truth, and non-possession, these three great vows are called three *yaam* Here non-stealing has been merged into truth and celibacy into non-possession In *Patanjal Yoga Philosophy* the five great vows are called *yam* In the order of Bhagavan Parshvanath the four great vows were called *chaturyaam*

In *Manusmriti, Mahabharat* and other scriptures one *prahar* or one quarter of a day (three hours) is called *yaam* One day and night has eight *yaams*

The three gems (*ratnatraya*) that terminate the cycles of rebirth are also called *triyaam*

Aniyana—free of bonds The bonds are of two types *dravya* (physical) bonds such as parents, family, wealth, etc and *bhawa* (mental) bonds such as mundane pleasures and passions Those who are free of these bonds are called *anidana*

दण्ड समारभ-विमोक्ष

२०४. उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सव्वावंति च णं पडियक्कं जीवेहिं कम्मसमारंभेणं।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एएहिं काएहिं दंडं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं एएहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवण्णे एएहिं काएहिं दंडं समारभंते वि समणुजाणेज्जा।

जे वऽण्णे एएहिं काएहिं दंडं समारभंति तेसिं पि वयं लज्जामो।

तं परिण्णाय मेहावी तं वा दंडं अण्णं वा दंडं णो दंडभी दंडं समारभेज्जासि।

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

२०४. ऊँची, नीची एव तिरछी, सब दिशाओं मे सब प्रकार से एकेन्द्रियादि (षड्जीवनिकाय के) जीवों में से प्रत्येक का कर्म-समारम्भ (हिसा) किया जाता है। मेधावी साधक उस (कर्म-समारम्भ) का परिज्ञान (विवेक) करके, स्वय इन षड्जीवनिकायों के प्रति दण्ड-समारम्भ न करे, न दूसरो से दण्ड-समारम्भ करवाये और न ही दण्ड-समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे। जो अन्य (भिक्षु) इन जीवनिकायों के प्रति हिंसा का प्रयोग करते है, उनके (उस जघन्य) कार्य से भी हम लज्जित होते है।

दण्डभीरु (पापभीरु) मेधावी मुनि यह जानकर (पूर्वोक्त जीव-हिसा रूप) दण्ड का अथवा मृषावाद आदि किसी अन्य दण्ड का समारम्भ न करे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

ABANDONING VIOLENCE

204. In all directions including higher, lower, and transverse and in all ways, each of the beings including one-sensed beings (all six life-forms) suffers violence An accomplished ascetic should acquire awareness (discerning capacity) of that (violence) and should not either himself commit violence against these six life-forms, or cause others to do so, or approve others doing so We are humbled even by the (despicable) acts of violence against these life-forms committed by others (ascetics)

A sin-fearing accomplished ascetic should become aware of this (the said violence against beings) and avoid indulgence in violence (of the said kind) or sins of any other kind including falsity

—So I say.

विवेचन–प्रसंग व विषय के अनुसार 'दण्ड' शब्द विभिन्न अर्थों मे प्रयुक्त होता रहा है–जैसे (१) लकडी आदि का डण्डा (२) निग्रह या सजा, (३) अपराधी को अपराध के अनुसार शारीरिक या आर्थिक दण्ड देना, (४) दमन करना, (५) मन-वचन-काया का अशुभ व्यापार, (६) जीव-हिंसा तथा प्राणियो का उपमर्दन आदि। (*पाइअसद्दमहण्णवो,* पृ ४५१) प्रस्तुत सूत्र में 'दण्ड' शब्द प्राणियों को पीडा देने, उपमर्दन करने तथा मन, वचन और काया का दुष्प्रयोग करने के अर्थ में बार-बार प्रयुक्त हुआ है।

दण्ड के प्रकार–दण्ड तीन प्रकार का है–(१) मनोदण्ड, (२) वचनदण्ड, और (३) कायदण्ड। (*आवश्यक सूत्र*)

मनोदण्ड के तीन प्रकार हैं–(१) रागात्मक मन, (२) द्वेषात्मक मन, और (३) मोहयुक्त मन।

वचनदण्ड के सात प्रकार है–(१) झूठ बोलना, (२) वचन से कहकर किसी के ज्ञान का घात करना, (३) चुगली करना, (४) कठोर वचन कहना, (५) स्व-प्रशंसा और पर-निन्दा करना, (६) सताप पैदा करने वाला वचन कहना, तथा (७) हिसाकारी वाणी का प्रयोग करना।

कायदण्ड के भी ये सात प्रकार हैं–(१) प्राणिवध करना, (२) चोरी करना, (३) मैथुन सेवन करना, (४) परिग्रह रखना, (५) आरम्भ करना, (६) ताडन करना, (७) उग्र आवेशपूर्वक डराना-धमकाना। (*चारित्रसार ९९/५*)

दण्ड-समारम्भ का अर्थ प्राणि-हिसा है। मुनि तीन करण–(१) करना, (२) कराना, और (३) अनुमोदन करना तथा तीन योग–(१) मन, (२) वचन, और (३) काय के व्यापार से हिसादि का त्याग करता है। अत वह षट्कायिक जीवो मे से सभी के होने वाले समारभ–दण्ड-प्रयोग को भलीभाँति जान ले, तत्पश्चात् तीन करण, तीन योग से उन सभी दण्ड-प्रयोगो का परित्याग कर दे।

प्रस्तुत सूत्र मे दण्ड-समारम्भ करने वाले अन्य भिक्षुओ से लज्जित होने की बात कहकर प्राचीन परम्परा की तरफ सकेत किया है। वैदिक ऋषियो मे पचन-पाचनादि के द्वारा दण्ड-समारम्भ होता था। बौद्ध-परम्परा मे भिक्षु स्वय भोजन नही पकाते थे, दूसरों से पकवाते थे, या जो भिक्षु-संघ को भोजन के लिए आमन्त्रित करता था, उसके यहाँ से 'अपने लिए बना भोजन ले लेते थे, विहार आदि बनवाते थे। वे संघ के निमित्त होने वाली हिसा मे दोष नही मानते थे। कुछ भिक्षु वनस्पतिकाय की हिसा करते थे, कुछ औद्देशिक आहार तो नही लेते थे, किन्तु सचित्त जल पीते थे। प्रस्तुत सूत्र उन परम्पराओ की ओर सकेत करता है। (*आचाराग भाष्य,* पृ ३६५)

'दण्ड भी'–दण्ड भीरु का अर्थ है हिंसा या पाप करने में जिसे भय लगता है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The word *'dand'* has different meaning in different context. For example—(1) a stick of wood or other material, (2) punishment, (3) physical or monetary penalty imposed on a criminal depending on the severity of his crime, (4) oppression, (5) evil activities or indulgences of mind, speech, and body, (6) killing or harming or subjugating beings in any way, etc In this *Sutra* this word has been frequently used to convey evil activities or indulgences of mind-speech-body and killing or harming or subjugating beings in any way

Types of *dand*—There are three types of *dand*—(1) violence of mind, (2) violence of speech, and (3) violence of body

Violence of mind is of three types—(1) by a mind having attachment, (2) by a mind having aversion, and (3) by a mind having fondness

Violence of speech is of seven types—(1) to tell a lie, (2) to belittle someone's knowledge by derogatory remarks, (3) to backbite or to misinform, (4) to use harsh words, (5) to indulge in self praise and criticism of others, (6) to pass biting remarks, and (7) to use violence inspiring language

Violence of body or physical violence is also of seven types—(1) to kill beings, (2) to steal, (3) to copulate, (4) to have attachment in possessions, (5) to indulge in sinful activity, (6) to beat, and (7) to reprimand violently or to threaten

Dand-samarambh means violence against beings An ascetic has to avoid indulgence in violent activities done in three ways—(1) by doing, (2) by causing others to do, and (3) by approving others doing—and by three means—(1) body, (2) speech, and (3) mind Therefore he should know well about all possible types of violence against all types of beings and then avoid all those activities through three means and three ways

The statement about embarrassment due to violence committed by other ascetics points at an ancient tradition The *Vedic* sages

committed violence through preparing and digesting food Monks in *Buddhist* tradition did not cook food themselves but they got it cooked by others, accepted food prepared specially for the group of monks by a host, and asked for packed food for their travels They did not consider as fault any violence committed in name of the organization Some mendicants committed violence against plant kingdom Some others did not accept food specially prepared for them but consumed un-filtered water This aphorism points at all such traditions (*Acharanga Bhashya*, p 365)

Dandbhi—violence fearing One who is afraid of committing violence or sin

● END OF LESSON ONE ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

अकल्पनीय-विमोक्ष

२०५. से भिक्खू परक्कमेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्जा वा सुसाणंसि वा सुन्नागारंसि वा रुक्खमूलंसि वा गिरिगुहंसि वा कुंभारायतणंसि वा हुरत्था वा, कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खूं उवसंकमित्तु गाहावती बूया–आउसंतो समणा ! अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेतेमि आवसहं वा समुस्सिणोमि, से भुजह वसह आउसंतो समणा !

भिक्खू तं गाहावइं समणस सवयसं पडियाइक्खे–आउसतो गाहावइ ! णो खलु ते वयणं आढामि, णो खलु ते वयणं परिजाणामि, जो तुमं मम अट्ठाए असण वा वत्थं वा पाणाइं ४ समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएसि, आवसहं वा समुस्सिणासि। से विरतो आउसो गाहावती ! एयस्स अकरणयाए।

२०५. भिक्षु कही जा रहा हो, या श्मशान में, सूने मकान में, पर्वत की गुफा में, वृक्ष के नीचे, कुम्भारशाला मे अथवा गॉव के बाहर कही खडा हो, बैठा हो या लेटा हुआ हो अथवा कही भी विहार कर रहा हो, उस समय कोई गृहपति (गृहस्थ) उस भिक्षु के पास आकर कहे–"आयुष्मान् श्रमण ! मै आपके लिए प्राण, भूत, जीव और सत्त्वो का समारम्भ (उपमर्दन) करके अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पाद-प्रोछन बना रहा हूँ या आपके उद्देश्य से खरीदकर, उधार लेकर, किसी से छीनकर, दूसरे की वस्तु को उसकी बिना अनुमति के लाकर, या घर से लाकर आपको देना चाहता हूँ अथवा आपके लिए उपाश्रय का निर्माण करवा देता हूँ। हे आयुष्मान् श्रमण ! आप उस (अशन, पान आदि) का उपभोग करे और उस उपाश्रय मे रहे।"

उस सुमनस्–(भद्र हृदय) एव सुवयस–(भद्र वचन वाले) गृहपति को भिक्षु निषेध करता हुआ कहे–"आयुष्मान् गृहपति ! मै तुम्हारे इस वचन को आदर नहीं देता, तुम्हारे वचन को स्वीकार नही करता हूँ, तुम जो प्राणों, भूतो, जीवों और सत्वो का समारम्भ करके मेरे लिए अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पाद-प्रोछन बनाते हो, या मेरे ही लिए उसे खरीदकर, उधार लेकर, दूसरों से छीनकर, दूसरे तुम्हारे भागीदार की वस्तु उसकी अनुमति के बिना लाकर अथवा अपने घर से यहाँ लाकर मुझे देना चाहते हो, मेरे लिए उपाश्रय का निर्माण करना चाहते हो। हे आयुष्मान् गृहस्थ ! मै उससे सर्वथा विरत हो चुका हूँ। अत यह मेरे लिए अकरणीय है (मै स्वीकार नही कर सकता)।"

AVOIDING THE PROSCRIBED

205. An ascetic may be in any of the following states : he may be going some place, or he may be standing, sitting, or lying at a cremation ground, a deserted house, a mountain cave, under a tree or in a potter's lodge; or he may be wandering around anywhere While doing so a householder may come to him and say, "I am going to prepare for you staple food, liquids, general food, savoury food, dress, pots, blankets, or ascetic-broom This involves violence of things that breathe, exist, live, or have any essence or potential of life Or, specifically for you, I intend to purchase or borrow or forcibly snatch them from others or bring them without the permission of the owner, or bring them from my home Or, I desire to construct an *upashraya* (place of stay meant for ascetics) for you O long lived *Shraman* ! Please accept these things and come to stay in that *upashraya* ?"

Declining the offer, the ascetic should tell the worthy and soft-spoken householder—"O long lived householder ! I do not accept your offer, neither do I give heed to it You have a desire to prepare staple food, liquids, general food, savoury food, dress, pots, blankets, or ascetic-broom All this involves violence of things that breathe, exist, live, or have any essence or potential of life And, specifically for me you want to purchase or borrow or forcibly snatch them from others or bring them without the permission of your partner, or bring them from your home Or, you want to construct an *upashraya* for me. O long lived householder ! I am completely detached from these Therefore all that is proscribed for me (I cannot accept) "

विवेचन–सुसाणसि–श्मशान मे ठहरने के विषय मे प्राचीन परम्परा इस प्रकार है–स्थविरकल्पी मुनि के लिए श्मशान मे ठहरना, सोना आदि कल्पनीय नहीं है, प्रतिमाधारी मुनि के लिए यह नियम है कि जहाँ सूर्य अस्त हो जाये, वहीं उसे ठहर जना चाहिए। अत· यहाँ पर जिनकल्पी प्रतिमाधारक की अपेक्षा से ही श्मशान निवास का उल्लेख प्रतीत होता है।

सामान्यतया स्थविरकल्पी गच्छवासी साधु बस्ती में किसी न किसी उपाश्रय या मकान में ठहरता है। कदाचित् विहार करते हुए कहीं पर ठहरने का स्थान न मिलने या सूर्यास्त हो जाने के कारण शून्यगृह में, वृक्ष के नीचे, या जंगल में किसी स्थान में ठहरना पड़ता है।

Elaboration—***Susanamsi***—The ancient tradition about staying at a cremation ground is—for a *sthavir-kalpi* (a non-itinerant ascetic) staying and sleeping in a cremation ground is proscribed, for an ascetic observing *pratimas* (special vows) the rule is to stay wherever he arrives at nightfall Therefore the mention of staying at a cremation ground appears to be directed at a *jinakalpi* ascetic observing *pratimas.*

Generally speaking a *sthavir-kalpi* ascetic belonging to any specific group *(gaccha)* lives in an *upashraya* or some other house In exceptional conditions, like non-availability of a place of stay or nightfall when he is still on his way, he may have to stay at a desolate house, under a tree, or some other place in a jungle

२०६. से भिक्खू परक्कमेज्ज वा जाव हुरत्था वा कहिंचि विहरमाण तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावइं आयगयाए पेहाए असणं वा ४ वत्थं वा ४ पाणाइं ४[1] समारम्भ जाव आहट्टु चेएइ आवसहं वा समुस्सिणति तं भिक्खुं परिघासेउं।

त च भिक्खू जाणेज्जा सहसम्मइयाए परवागरणेणं अण्णेसिं वा सोच्चा—अयं खलु गहावइ मम अट्ठाए असणं वा ४ वत्थं वा ४ पाणाइं ४ समारंभ चेएइ आवसहं वा समुस्सिणति। तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए।

त्ति बेमि।

२०६. भिक्षु कही जा रहा हो। (श्मशान, शून्यगृह, गुफा या वृक्ष के नीचे या कुम्भार की शाला मे) खडा, बैठा या लेटा हुआ हो, अथवा कहीं भी विहार कर रहा हो। उस समय कोई गृहपति उस भिक्षु के पास आकर अपने मन के भावो को प्रकट किये बिना ही (मै साधु को दान दूँगा, इस अभिप्राय को मन मे रखे हुए) प्राणो, भूतों, जीवों और सत्त्वों के समारम्भपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र आदि बनवाता है (साधु को देने के उद्देश्य से मोल लेता है, उधार लाकर, दूसरो से छीनकर, दूसरे के अधिकार की वस्तु उसकी बिना अनुमति के लाकर, अथवा घर से लाकर देना चाहता है या उपाश्रय का

---

१ यहाँ असणं वा ४ से संकेतित चारों पाठ असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, वत्थ वा ४ से—वत्थं वा, पडिग्गह वा, कंबल वा, पायपुंछणं वा तथा पाणाइं ४ से पाणाइं, भूयाइं, जीवाइं, सत्ताइं समझना

निर्माण आदि कराता है) यह सब उस भिक्षु के उपभोग, उपयोग एव निवास के लिए करता है।

वह भिक्षु अपनी सहज बुद्धि से, अतिशय ज्ञानियों से या तीर्थंकरो की वाणी से अथवा अन्य किसी उसके परिजनादि से सुनकर यह जान जाये कि यह गृहपति मेरे लिए प्राणों, भूतो, जीवो और सत्त्वो के समारम्भ से अशनादि या वस्त्रादि बनवाकर या मेरे निमित्त मोल लेकर (उधार लेकर, दूसरो से छीनकर, दूसरे की वस्तु उसके स्वामी से अनुमति प्राप्त किए बिना लाकर दे रहा है) अथवा उपाश्रय का निर्माण करवा रहा है। भिक्षु आगम की आज्ञा को ध्यान मे रखता हुआ छान-बीन करके, आगम में कथित आदेश से जानकर उस गृहस्थ को स्पष्ट रूप से कह दे–मै इन सब का सेवन नही कर सकता (इसलिए मैं इन्हे स्वीकार नही कर सकता)।

–ऐसा मै कहता हूँ।

206. An ascetic may be in any of the following states he may be going to some place, or he may be standing, sitting, or lying at a cremation ground, a deserted house, a mountain cave, under a tree or in a potter's lodge, or he may be wandering around anywhere While doing so a householder may come and without expressing his feelings (keeping to himself his intention of giving alms to an ascetic) proceed to prepare staple food, liquids, general food, savoury food, dress, pots, blankets, or ascetic-broom, which involves violence of things that breathe, exist, live, or have any essence or potential of life Or, purchase or borrow or forcibly snatche these from others or bring these without the permission of the owner, or bring these from his home specifically for giving to an ascetic Or, construct an upashraya (place of stay meant for ascetics) He does all this for consumption, use, and stay of that ascetic

If the ascetic comes to know, either through his own common sense or through a person having supernatural wisdom or by hearing from some other person that the householder has prepared staple food, liquids, general food, savoury food, dress, pots, blankets, or ascetic-broom, which involves violence of things that breathe, exist, live, or have any essence or potential

of life And, has purchased or borrowed or forcibly snatched these from others or brought these without the permission of his partner, or brought these from his home, specifically for the ascetic. Or, he is constructing an *upashraya* for the ascetic. Then the ascetic, keeping in mind the tenets from *Agams* and examining accordingly, should frankly tell the householder that the use of all these is proscribed for him (therefore he cannot accept these)

—So I say

२०७ भिक्खु च खलु पुट्ठा वा अपुट्ठा वा जे इमे आहच्च गथा फुसंति–से हंता हणह खणह छिंदह, दहह, पचह, आलुंपह, विलुंपह, सहसाकारेह विप्परामुसह–ते फासे पुट्ठो धीरो अहियासए।

अदुवा आयार–गोयरमाइक्खे तक्कियाण मणेलिसं। अदुवा वइगुत्तीए गोयरस्स अणुपुव्वेण सम्मं पडिलेहाए आयगुत्ते।

बुद्धेहिं एयं पवेइय।

२०७ भिक्षु से पूछकर या बिना पूछे ही किसी गृहस्थ ने भिक्षु के निमित्त अशन, पान आदि बनाया हो, (किन्तु भिक्षु के द्वारा उसे अस्वीकार कर देने पर), कुपित होकर वह गृहस्थ उसे परिताप देता है, वह सम्पन्न गृहस्थ क्रोधावेश में आकर स्वय उस भिक्षु को मारता है, अथवा अपने नौकरो को आदेश देता है कि इस (–व्यर्थ ही मेरा धन व्यय कराने वाले साधु) को डण्डे आदि से पीटो, घायल कर दो, इसके हाथ-पैर आदि अग काट डालो, इसे जला दो, इसका मॉस पकाओ, इसके वस्त्रादि छीन लो या इसे नखो से नोच डालो, इसका सब कुछ लूट लो, इसके साथ जबर्दम्ती करो अथवा जल्दी ही इसे अनेक प्रकार से पीडित करो। उन उक्त प्रकार के कष्टो के आ जाने पर भिक्षु धीरतापूर्वक उन्हे समभाव के साथ सहन करे।

अथवा वह आत्मा की रक्षा करने वाला मुनि उन गृहस्थो को (समझने योग्य जाने तो उन्हें) सम्यक् प्रेक्षापूर्वक (उनके विषय मे भलीभॉति जानकर) अपना उत्तम श्रेष्ठ आचार-गोचर बताये। अथवा वे समझने योग्य न हो (या मुनि मे समझाने की क्षमता न हो), तो वह अपनी वचन गुप्ति रखे–अर्थात् मौन रहे।

ज्ञानी आचार्यो ने ऐसा कहा है।

207. Some householder prepares food, drinks, etc. for an ascetic with or without his approval and gets angry (on being

refused by the ascetic) (In this agitated state of mind) The householder torments the ascetic, driven by anger he comes and beats the ascetic himself; or instructs his servants to beat him (the ascetic who made him waste his money) with a stick, wound him, cut off his limbs and other parts of his body, reduce him to ashes, cook his flesh, deprive him of his clothes and other possessions, tear him apart with nails, snatch all he has, subjugate him and torture him in various ways When faced with such torments the ascetic should tolerate them with equanimity

Or, if that self-disciplined ascetic finds them (the householders who have prepared food) receptive, he should gradually inform them, with true awareness, about his lofty conduct and code of alms Or, if they are not receptive (or the ascetic does not have ability to explain), he should maintain his discipline of speech and remain silent The sagacious *acharyas* have said so

विवेचन–अकल्पनीय आहार आदि के विषय मे इस उद्देशक मे तीन विकल्प बताये गये है–

(१) भिक्षु को देखकर कोई भावुक हृदय भक्त उनके लिए आहार आदि बनवाकर मोल लेकर, छीनकर, घर से लाकर देने का प्रस्ताव करे, उनके लिए उपाश्रय आदि बनवाने का प्रस्ताव रखे, तो मुनि उसे मधुर वचनो से तथा भद्र हृदय से यह कहे कि ऐसा आहार आदि मेरे लिए कल्पनीय नही है।

(२) कोई भक्त हृदय मुनि से पूछे बिना ही उनके लिए उक्त अशन, पानादि तैयार करे और मुनि को किसी प्रकार पता चल जाये कि यह सब अकल्पनीय आहार आदि मेरे लिए बने है तो वह उस गृहस्थ को मधुर वचनो के साथ समझा दे कि तुम्हारा यह कृत्य मेरे लिए कल्पनीय नही है, मैं स्वीकार नहीं करता।

(३) कोई गृहस्थ मुनि को बिना कहे किसी लालचवश या प्रत्याशा से मुनि के निमित्त अशन, पानादि आरम्भ-समारम्भ करे और उसके निमंत्रण देने पर मुनि उसे अस्वीकार कर दे। तब वह कुपित हो जाय तब स्वय अथवा अपने कर्मचारियो से मुनि को कष्ट दे, पीडा आदि पहुँचाये तो मुनि उन कष्टो, परीषहो को धीरतापूर्वक सहन करे। पहले तो उनको अपनी आचार मर्यादा समझाये, वे समझ जायें तो ठीक, यदि वे नहीं समझे अथवा मुनि उनको समझाने में सफल न रहा हो तो वह उस स्थिति मे मौन धारण कर ले। परन्तु अकल्पनीय का सेवन न करे।

Elaboration—In this lesson three situations about non-acceptable food and other things have been described—

(1) Seeing an ascetic, a concerned devotee may offer to bring food after cooking, buying, snatching or from his own house He may also offer to construct a dwelling place for the ascetic In such situation the ascetic should sweetly and courteously tell him that such food is proscribed or unacceptable for him

(2) In case some devotee proceeds to arrange for food, drinks, etc in the said manner and the ascetic somehow comes to know that such proscribed things have been specifically prepared for him, he should sweetly and courteously tell the devotee that such food is proscribed or unacceptable for him

(3) With some expectations or other selfish motive, some householder prepares food, drinks, etc. for an ascetic without being asked by him and the ascetic declines on being invited This makes the devotee angry and he either himself or through his servants torments or tortures the ascetic When faced with such torments the ascetic should tolerate the afflictions with equanimity He should first inform them about his codes of conduct and if they understand and accept, well and good In case they fail to understand or the ascetic fails to explain them, he should resort to silence But in no case he should accept the proscribed things

समनुज्ञ का आहार-व्यवहार

२०८. ते समणुण्णे असमणुण्णस्स असण वा ४ वत्थ वा ४ नो पाएज्जा नो णिमंतेज्जा नो कुज्जा वेयावडिय परं आढायमाणे।

त्ति बेमि।

२०८ वह समनुज्ञ मुनि असमनुज्ञ साधु को अशन, पान तथा वस्त्र, पात्र आदि पदार्थ न दे, न उन्हे देने के लिए निमन्त्रित करे और न ही उनका वैयावृत्य करे। किन्तु वह ऐसा आदरपूर्वक करे (अनादर या उपेक्षापूर्वक नही)।

–ऐसा मै कहता हूँ।

CONDUCT OF CONFORMISTS

208. That conformist ascetic should not give food, drinks, clothes, pots, etc to a non-conformist, neither should he be invited to be given, or be offered any services But this negation should be performed with due respect (and not disrespectfully or in an indifferent way)

—So I say

२०९ धम्ममायाणह, पवेइय माहणेण मइमया–समणुण्णे समणुण्णस्स असणं वा ४ वत्थ वा ४ पाएज्जा णिमतेज्जा कुज्जा वेयावडिय पर आढायमाणे।

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो॥

२०९ मतिमान् (केवलज्ञानी) महामाहन (श्रमण भगवान महावीर) द्वारा प्ररूपित धर्म को भलीभाँति समझ लो कि समनुज्ञ साधु समनुज्ञ साधु को आदरपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोछन आदि दे, उन्हे देने के लिए मनुहार करे, उनका वैयावृत्य करे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

209. Understand properly the religion propagated by the omniscient great sage (*Shraman Bhagavan* Mahavir)—a conformist ascetic should give food, drinks, clothes, pots, etc to another conformist, beseech him to take, and should render him service with due respect

—So I say

● END OF LESSON TWO ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

गृहवास-विमोक्ष

२१०. मज्झिमेणं वयसा वि एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिआ सोच्चा मेहावी वयणं पंडियाणं णिसामिया। समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।

ते अणवकंखमाणा, अणइवाएमाणा, अपरिग्गहेमाणा, णो परिग्गहावंती सव्वावंती च णं लोगंसि।

निहाय दंडं पाणेहिं पावं कम्मं अकुव्वमाणे एस महं अगंथे वियाहिए।

ओए जुइमस्स खेयण्णे उववायं चयणं च णच्चा।

२१०. कुछ व्यक्ति भी सबोधि प्राप्त करके मध्यम वय में मुनि-धर्म मे दीक्षित होने को प्रस्तुत होते है। तीर्थंकर तथा श्रुतज्ञानी आदि पण्डितजनों की वाणी सुनकर, मेधावी साधक समता का आश्रय ले, क्योकि आर्यो ने समता मे धर्म कहा है।

वे काम-भोगो की आकांक्षा न रखने वाले, प्राणियों की हिसा से विरत हुए और परिग्रह का त्याग करते हुए समग्र लोक मे अहिंसक और अपरिग्रही होते हैं।

जो प्राणियो के लिए दण्ड (हिसा) का त्याग करके पापकर्म नहीं करता, वह महान् अग्रन्थ-(ग्रन्थ से मुक्त-निर्ग्रन्थ) कहलाता है।

जो ओज-(राग-द्वेषरहित) तथा द्युतिमान्-(सयमी) क्षेत्रज्ञ-(धर्म का ज्ञाता) है, उपपात-(जन्म) और च्यवन-(मरण) को जानकर (हिसा एव परिग्रह से) मुक्त रहे।

RENOUNCING HOUSEHOLD

210. Some persons achieve enlightenment in their middle age and proceed to get initiated into the ascetic order. Having listened to the words of lofty sages like *Tirthankars* or *Shrut-jnanis* (scholars of the canons), an intelligent seeker should resort to equanimity, because the noble have said that religion lies in equanimity

Getting free of any desires for carnal pleasures, refraining from harming any beings, and renouncing all possessions (the attitude of hankering for possessions), they practice *ahimsa* and non-possession everywhere in this world

One who does not indulge in sinful activities by avoiding acts of violence against beings is called a great *agranth* (free of *granth* or knots; *nirgranth*)

He who is free of attachment and aversion, disciplined, and well versed with religion (right path) should know about birth and death (and avoid violence and possessiveness).

विवेचन-पिछले सूत्र मे मनुष्य की तीन अवस्थाएँ बताई गई है-बाल्य, युवा और वृद्धत्व। प्रथम और अन्तिम अवस्था में भी प्रव्रज्या ली जा सकती है, परन्तु मध्यम अवस्था मुनि-दीक्षा के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। चूर्णि एव वृत्ति मे बताया है-इस वय में बुद्धि परिपक्व हो जाती है, भुक्तभोगी को भोग सम्बन्धी आकर्षण कम हो जाता है, अत उसका वैराग्य-रंग पक्का हो जाता है। साथ ही परीषहो और उपसर्गो को सहन, सयम के कष्ट, तपस्या की कठोरता आदि धर्मों का पालन भी सुखपूर्वक कर सकता है। उसका शास्त्रीय ज्ञान भी अनुभव से समृद्ध हो जाता है। गणधर भी प्राय मध्यम वय मे दीक्षित हुए थे। भगवान महावीर भी प्रथम वय को पार करके दीक्षित हुए थे।

सम्बोधि-प्राप्त तीन प्रकार से होते हैं-स्वयसम्बुद्ध, प्रत्येकबुद्ध तथा बुद्ध-बोधित। इस सूत्र मे बुद्धबोधित-किसी प्रबुद्ध से बोध पाये हुए साधक की अपेक्षा से कथन है।

Elaboration—In the preceding aphorism three divisions of human life-span have been stated—Adolescence, youth and old age One can get initiated during the first and the last periods also, but the middle period is considered more appropriate for becoming an ascetic. It is mentioned in the commentaries (*Vritti* and *Churni*) that in this period man attains mental maturity and after experiencing mundane pleasures the attraction for them is reduced, thereby strengthening the feeling of detachment Also he is able to tolerate afflictions and torments, hardships of discipline, rigours of austerities and perform other such duties and practices with comparative ease His scriptural knowledge is also enriched by experience The *Ganadhars* (principal disciples of *Tirthankars*) also

got initiated during their middle age Even *Bhagavan* Mahavir got initiated after crossing the first section of his life-span

There are three ways of getting enlightened—*Svayam-sambuddha* (those who get self-enlightened and then get initiated), *Pratyek-buddha* (those who get self enlightened by an incident, get initiated and get liberated), and *Buddha-bodhit* (those who get enlightened with the help of a *Tirthankar* or an *acharya*). This aphorism relates to the third type

२११. आहारोवचया देहा परीसहपभंगुरा। पासहेगे सव्विंदिएहिं परिगिलायमाणेहिं।

ओए दयं दयइ। जे सन्निहाणसत्थस्स खेयण्णे, से भिक्खू कालण्णे बलण्णे मायण्णे खणइण्णे विणयण्णे समयण्णे परिग्गहं अममायमाणे कालेणुट्ठाई अपडिण्णे। दुहओ छेत्ता णियाइ।

२११. शरीर आहार से उपचित-संपुष्ट होते हैं और परीषहों के आघात से भग्न हो जाते है, किन्तु तुम देखो, (आहार के अभाव में कई एक साधक) सभी इन्द्रियो से ग्लान (क्षीण) हो जाते हैं। राग-द्वेष से रहित भिक्षु (-क्षुधा-पिपासा आदि से पीड़ित होने पर भी) दया, अहिसा का पालन करता है।

जो भिक्षु सन्निधान-(आहारादि के संचय) शस्त्र का ज्ञाता है। (वह हिंसादि दोषयुक्त आहार का ग्रहण नही करता)। वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ (अवसर ज्ञाता), विनयज्ञ (भिक्षाचरी के आचार का मर्मज्ञ), समयज्ञ (सिद्धान्त का ज्ञाता) होता है। वह परिग्रह (उपकरणो) पर ममत्व न रखने वाला, उचित समय पर अनुष्ठान करने वाला, किसी प्रकार की मिथ्या आग्रहयुक्त प्रतिज्ञा से रहित एव राग और द्वेष के बन्धनों को दोनो ओर से छेदन करके निश्चिन्त होकर नियमित रूप से जीवन-यापन करता है।

211. The body becomes stout by eating and emaciated by afflictions. See that they (some aspirants) lose the strength of all their sense organs (when deprived of food). A detached ascetic observes clemency and ahimsa (despite being tormented by hunger and thirst).

The ascetic who is aware of the fault of storing (food and other things avoids taking faulty food and—) is conversant with

(the parameters of) time, strength, quantity, opportunity, etiquette (code of alms-seeking), and he is also a scholar of scriptures. He has no attachment for possessions He performs his ritual practices at the proper time He is free of any biased resolutions. He shatters the bonds of attachment and aversion from both sides and becoming free of worries he leads a regulated (disciplined) life.

विवेचन–इस सूत्र मे सव्विदिएहि परिगिलायमाणेहि–से बताया है, शरीर जन्म-मरणधर्मा है। अत· क्षण-भगुर है, अनित्य है। प्रश्न होता है, तव मुनि आहार क्यो करता है? इसके उत्तर में बताया है। आहार शरीर को पुष्ट करने के लिए ही नहीं, अपितु कर्ममुक्ति के लिए भी किया जाता है, अतएव साधक को कारणवश आहार ग्रहण करना चाहिए और अकारण आहार से विमुक्त भी हो जाना चाहिए। उत्तराध्ययनसूत्र (२६/३२-३३) मे साधु को छह कारणो से आहार करने का तथा छह कारणो से आहार नही करने का कथन है। किन्तु आहार ग्रहण करने मे यहाँ अहिसा एव अपरिग्रह का पालन आवश्यक बताया है। इसीलिए 'ओए दय दयति' वाक्य द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है कि क्षुधा-पिपासादि परीषहो से प्रताडित होने पर भी राग-द्वेषरहित साधु प्राणि-दया का पालन करता है, वह दोषयुक्त या अकारण आहार ग्रहण नही करता।

कालज्ञ आदि सभी विशेषण साधक की योग्यता प्रदर्शित करने के लिए है। लोकविजय अध्ययन दो के पंचम उद्देशक (सूत्र ८९) मे कालज्ञ आदि शब्दो की व्याख्या की गई है।

'णियाति'–का अर्थ है–'जो सयमानुष्ठान मे निश्चयपूर्वक प्रयाण करता है।'

Elaboration—***Savvindiehim parigilayamanehim***—This phrase informs that the body follows the sequence of birth and death Therefore it is momentary and transitory A question arises—why then an ascetic eats ? The answer is—Food is taken not just for nourishment but also for getting liberated from the bondage of *karmas* Therefore an aspirant should eat purposefully and avoid purposeless eating In *Uttaradhyayan Sutra* (26/32-33) there is a mention of six reasons for eating and six for not eating But here *ahimsa* and non-attachment have been prescribed as essential while accepting food This has been clarified by the phrase—***oe dayam dayati*** It conveys that despite being tormented by afflictions like hunger and thirst, a detached ascetic observes clemency and does not accept faulty food or any food without a purpose

Kalajna—one who is aware of time. All these adjectives have been used to show the abilities of an ascetic These terms have been explained in aphorism 89 of the fifth lesson of the chapter two titled *Lok Vijaya*

***Niyati*—**one who performs ritual practices resolutely

अग्नि-सेवन-विमोक्ष

२१२. तं भिक्खुं सीयफासपरीवेवमाणगयं उवसंकमित्तु गाहावइ बूया–आउसंतो समणा ! णो खलु ते गामधम्मा उव्वाहंति ?

आउसंतो गाहावती ! णो खलु मम गामधम्मा उव्वाहंति। सीयफासं णो खलु अहं संचाएमि अहियासेत्तए।

णो खलु मे कप्पति अगणिकायं उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए वा कायं आयावित्तए वा पयावित्तए वा अण्णेसिं वा वयणाओ।

२१३. सिया एव वदतस्स परो अगणिकाय उज्जालेत्ता पज्जालेत्ता कायं आयावेज्जा वा पयावेज्जा वा। त च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता अणासेवणाए।

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ समत्तो ॥

२१२ (शीत ऋतु मे) शीत-स्पर्श से काँपते हुए शरीर वाले भिक्षु को देखकर पास मे आकर कोई गृहपति इस प्रकार कहे–आयुष्मान् श्रमण ! क्या तुम्हे ग्रामधर्म (इन्द्रिय-वासना) तो व्यथित नही कर रहे हैं ?

(इस पर मुनि कहता है) आयुष्मान् गृहपति ! मुझे ग्रामधर्म पीडित नहीं कर रहे हैं, किन्तु मेरा शरीर दुर्बल होने के कारण मैं शीत-स्पर्श को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ (इसलिए मेरा शरीर शीत से प्रकम्पित हो रहा है)।

(तुम अग्नि क्यो नही जला लेते ? गृहपति के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मुनि कहता है–) अग्निकाय को उज्ज्वलित करना, प्रज्ज्वलित करना, उससे शरीर को थोडा-सा भी तपाना या दूसरो को वचन से कहकर अग्नि प्रज्ज्वलित करवाना मुझे कल्पता नहीं है।

२१३ इस प्रकार बोलने पर कदाचित् वह गृहस्थ अग्निकाय को उज्ज्वलित और प्रज्ज्वलित करके साधु के शरीर को थोड़ा तपाए या विशेष रूप से तपाए। उस अवसर पर भिक्षु अपनी बुद्धि से विचारकर आगम आज्ञा को ध्यान में रखता हुआ उस गृहस्थ से कहे कि–मै अग्नि का सेवन नही कर सकता''

–ऐसा मै कहता हूँ।

ABANDONING USE OF FIRE

212. Seeing an ascetic shivering with cold (in winter), a householder may approach him and say—"O long lived *Shraman* ! Do you suffer from the common code (sexual excitement) ?"

"No, it is the cold, not the sexual excitement, O long lived householder ! I am unable to tolerate as I am very weak, (that is why I am shivering) "

("Why don't you burn a fire ?" On being asked by the householder, the ascetic replies—) "I am not allowed to burn a fire or blaze it up or ask others to do so in order to make my body even slightly warm

213. On getting this reply the householder may burn and blaze up a fire and make the body of the ascetic a little or more warm In such situation, using his discretion and with awareness of the codes mentioned in the scriptures, the ascetic should tell the householder that he cannot make use of the fire

—So I say

विवेचन–ग्रामधर्म की शका और समाधान–इस सूत्र मे किसी भावुक गृहस्थ की शका और समाधान का प्रतिपादन है। चूर्णिकार ने एक दृष्टान्त देकर बताया है–कोई भिक्षाजीवी युवक साधु भिक्षाटन कर रहा है, उस समय शरीर पर पूरे वस्त्र न होने के कारण शीत से थर-थर काँपते देख, उसके निकट आकर ऐश्वर्य की गर्मी से युक्त, तरुण नारियो से परिवृत, शीत-स्पर्श का अनुभवी, सुगन्धित पदार्थों से शरीर को सुगन्धित बनाए हुए कोई भावुक गृहस्थ पूछने लगता है कि 'आप काँपते क्यो हैं ? क्या आपको ग्रामधर्म (विषय-वासना) उत्पीड़ित कर रहा है ?' इस प्रकार की शका प्रस्तुत किये जाने पर साधु उसका अभिप्राय जान लेता है कि इस गृहपति को अपनी गलत समझ के कारण मिथ्या शका पैदा हो गयी है। अत· मुझे इस शका का निवारण करना चाहिए। इस अभिप्राय से साधु उसका समाधान करता है–**'सीतफासं णो खलु अहियासेत्तए'** मै सर्दी नही सहन कर पा रहा हूँ।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Removing the doubt about sexual excitement—In this aphorism the doubt of some devoted householder has been

removed. The commentator *(Churni)* explains this by giving an example—Some young ascetic is moving about seeking alms As he is scantily dressed he shivers due to cold. A young man with warmth of grandeur, surrounded by young women, redolent with perfumes, and experienced in handling low temperatures, approaches and asks, "Why do you shiver ? Is it sexual excitement that is tormenting you ?" The ascetic at once realizes that the householder, out of perversion, suspects him of avidly looking at the young women In order to remove his suspicion the ascetic says that he is not being able to tolerate cold

● **END OF LESSON THREE** ●

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

वस्त्र-विमोक्ष (तीन वस्त्रधारी मुनि का कल्प)

२१४. जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिते पायचउत्थेहिं, तस्स णं णो एवं भवति–चउत्थ वत्थं जाइस्सामि।

से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा। अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा।

णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोतरत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा।

अपलिउचमाणे गामतरेसु, ओमचेलिए। एय खु वत्थधारिस्स सामग्गिय।

२१४ जिस भिक्षु ने तीन वस्त्र और चौथा (एक) पात्र रखने की प्रतिज्ञा की है। उसके मन में ऐसा विचार नहीं होता कि "मै चौथे वस्त्र की याचना करूँगा।"

वह भिक्षु (अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ग्रहण करने योग्य) यथाएषणीय वस्त्रो की याचना करे और यथापरिगृहीत (जैसा गृहस्थ से प्राप्त किया है) उन वस्त्रो को धारण करे।

वह उन वस्त्रो को न तो धोए और न रंगे, न धोए-रगे हुए वस्त्रो को धारण करे।

दूसरे ग्रामो मे जाते समय वह उन वस्त्रो को विना छिपाये हुए चले। वह (अभिग्रहधारी) मुनि स्वल्प मात्रा मे और अति साधारण अल्प मूल्य वाला वस्त्र रखे। वस्त्रधारी मुनि की यही सामग्री (उपकरण) है।

FREEDOM FROM GARB

214. An ascetic who has taken a vow of possessing only three pieces of cloth and a bowl as the fourth (possession) does not think that he will beg for fourth piece of cloth

That ascetic should beg for only those clothes that are prescribed for him and should use them as they are given to him (without any alteration or modification)

He should neither wash nor dye them He should also not use clothes which have been washed or dyed While going to other villages he should not try to hide those clothes That ascetic (who observes vows) should keep very limited and most

ordinary clothes. These are the only possessions of a clad-ascetic.

२१५. अह पुण एवं जाणेज्जा 'उवाइक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे', अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा, अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेत्ता अदुवा संतरुत्तरे, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले। लाघवियं आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्तमेव समभिजाणिज्जा।

२१५. जब भिक्षु यह जान ले कि 'हेमन्त ऋतु बीत गयी है', 'ग्रीष्म ऋतु आ गयी है', तब वह जिन-जिन वस्त्रो को जीर्ण समझे, उनका विसर्जन कर दे। उन यथा परिजीर्ण वस्त्रो का विसर्जन करके एक अन्तर पट और उत्तर पट साथ मे रखे। अथवा वह एकशाटक (एक ही चादर-पछेवडी वस्त्र) वाला होकर रहे। अथवा वह (रजोहरण और मुख-वस्त्रिका के सिवाय सब वस्त्रो को छोडकर) अचेलक (निर्वस्त्र) हो जायें।'

(इस प्रकार) लाघवता (अल्प उपधि) को अपनाता या उसका चिन्तन करता हुआ वह (वस्त्र-परित्याग करे)। उस वस्त्र-परित्यागी मुनि के परीषह सहन करने से तप सध जाता है।

भगवान ने आगम मे जिस प्रकार से इस–(उपधि-विमोक्ष) का प्रतिपादन किया है, उसे भली प्रकार सम्यक् प्रकार से जानकर सर्वात्मना (सम्पूर्ण रूप से) सम्यक् प्रकार से कार्यान्वित करे।

215. When the ascetic realizes that the winter is over and summer has set in, he should discard the clothes he considers worn out After duly discarding the worn out clothes he should keep one inner and one outer clothing. Or he should clad himself in single clothing Or he should become unclad (discarding everything except the mouth cover and the ascetic-broom).

(This way) conforming to and thinking about the concept of lightness (having minimum possessions) he (should discard clothes). That ascetic (who has minimum clothes) by tolerating afflictions perfects himself in austerities (with ease).

He should properly understand this (freedom from possessions) exactly as it has been propagated by *Bhagavan* in the *Agams* and thoroughly and immaculately follow it.

विवेचन–प्रस्तुत दोनों सूत्र वस्त्र-पात्रादि रूप उपधि से विमोक्ष की साधना की दृष्टि से प्रतिमाधारी या जिनकल्पिक श्रमण के लिए प्रतिपादित है। जो भिक्षु तीन वस्त्र और एक पात्र के सिवाय अन्य उपधि न रखने की प्रतिज्ञा लेता है, वह शीतादि का परीषह उत्पन्न होने पर भी चौथे वस्त्र को स्वीकार करने की इच्छा नहीं करे। यदि उसके पास अपनी ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा (कल्प) से कम वस्त्र हैं, तो वह दूसरा वस्त्र ले सकता है।

टीका एवं चूर्णि के अनुसार–जिनकल्पी तथा स्थविरकल्पी मुनि तीन वस्त्र रख सकते हैं। जिनकल्पी मुनि दो, एक वस्त्र भी रखता है, अथवा निर्वस्त्र भी रह सकता है।

पात्र-निर्योग–टीकाकार ने पात्र के सन्दर्भ मे पात्र से सम्बन्धित सामान भी उसी के अन्तर्गत माना है। जैसे–

"पत्ते पत्ताबंधो पायट्ठवण च पायकेसरिआ।
पडलाइ रयत्ताण च गोच्छओ पायणिज्जागो॥"

(१) पात्र, (२) पात्र बन्धन, (३) पात्र-स्थापन, (४) पात्र-केसरी (प्रमार्जनिका), (५) पटल, (६) रजस्त्राण, और (७) पात्र साफ करने का वस्त्र–गोच्छक, ये सातों मिलकर पात्र-निर्योग कहलाते हैं। ये सात उपकरण, तीन वस्त्र तथा रजोहरण और मुखवस्त्रिका, यो १२ उपकरण जिनकल्प की भूमिका पर स्थित एवं प्रतिमाधारक मुनि के होते है।

यथाप्राप्त वस्त्रधारक–भिक्षु–जैसे भी जिस रूप में एषणीय-कल्पनीय वस्त्र मिलें, उसे वह उसी रूप में धारण करे, वस्त्र के प्रति किसी विशेष प्रकार का आग्रह या ममत्व न रखे। वह उन्हे न तो फाड़कर छोटा करे, न उनमे टुकडा जोडकर बडा करे, न उसे धोए और न रंगे। यह विधान भी जिनकल्पी विशिष्ट प्रतिमाधारी मुनि के लिए है। स्थविरकल्पी मुनियो के लिए कुछ कारणो से वस्त्र धोने का विधान है, किन्तु वह भी विभूषा एवं सौन्दर्य की दृष्टि से नहीं। शृंगार और साज-सज्जा की भावना से वस्त्र ग्रहण करने, पहनने, धोने आदि की आज्ञा किसी भी प्रकार के साधक को नहीं है और रंगने का तो सर्वथा निषेध है ही। (*आत्माराम जी म* कृत टीका, पृ ५७८)

'सान्तोत्तरे' शब्द का अर्थ चूर्णिकार ने किया है–एक अन्तर पट तथा एक उत्तर पट।

ओमचेलए–का अर्थ अल्प या साधारण होता है। 'अवम' शब्द यहाँ संख्या, परिमाण (नाप) और मूल्य–तीनों दृष्टियों से अल्पता या साधारणता का सूचक है। कम से कम मूल्य के, साधारण से और थोडे से वस्त्र से निर्वाह करने वाला भिक्षु 'अवमचेलक' कहलाता है।

'अहपरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा'–इस सूत्र का भाव है भिक्षु जितने कम से कम वस्त्र से रह सकता है, रहने का अभ्यास करे। ज्यों ही ग्रीष्म ऋतु आ जाये, साधक तीन वस्त्रों में से एक वस्त्र, जो अत्यन्त जीर्ण हो जाय उसका विसर्जन कर दे। रहे दो वस्त्र, उनमें से भी कर सकता हो तो एक वस्त्र कम कर दे, सिर्फ एक वस्त्र में रहे, और यदि इससे भी आगे हिम्मत कर सके तो बिलकुल वस्त्ररहित हो जाय। किन्तु मुखवस्त्रिका तथा रजोहरण अवश्य रखे, क्योंकि ये दोनों जीव रक्षा के साधन हैं। वस्त्र परित्याग से तपस्या का लाभ तो है ही, वस्त्र सम्बन्धी चिन्ताओं से मुक्त होने, लघुभूत (हल्के-फुल्के) होने का महालाभ भी मिलेगा।

शास्त्र में बताया गया है कि पाँच कारणों से अचेलकत्व प्रशस्त होता है। जैसे कि–

(१) उसकी प्रतिलेखना कम होती है।

(२) उसका लाघव प्रशस्त होता है।

(३) उसका रूप (वेश) विश्वास योग्य होता है।

(४) उसका तप जिनेन्द्र द्वारा अनुज्ञात होता है।

(५) उसे विपुल इन्द्रिय-निग्रह होता है।

सम्मत्तमेव समभिजाणिया–इस वाक्य का अर्थ है–भगवदुक्त उपधि-विमोक्ष को सब प्रकार से सर्वात्मना जानकर सचेलक-अचेलक दोनों अवस्थाओं मे समभाव का आचरण करे। दोनों ही मार्ग आत्मा को कर्मों से मुक्त करने वाले हैं।

Elaboration—These two aphorism are meant for ascetics with special resolves *(pratima)* or *Jinakalpis* with the view of practicing freedom from possessions, like clothes and other equipment An ascetic who has taken a vow to have no more possessions than three clothing and a bowl, should not desire for having a fourth clothing even during afflictions like cold Only if he is short of the numbers he has vowed for, he can accept another clothing

According to the commentaries (*Tika* and *Churni*) *Jinakalpi* and *Sthavir-kalpi* ascetics can keep three clothing A *Jinakalpi* can reduce this number to two, one, or none

The rule about pots—The commentator *(Tika)* accepts the term pot (begging bowl) as inclusive of things essentially associated with a pot These include—(1) *Patra,* (2) *Patra-bandhan,* (3) *Patra-sthapan*, (4) *Patra-kesari,* (5) *Patal,* (6) *Rajastran,* and (7) *Gochhak* (the first of these is pot and the remaining are different shapes and sizes of pieces of cloth used for specified purposes) These seven things, three clothing, one ascetic broom and one mouth cover, make twelve pieces of ascetic-equipment prescribed for *Jinakalpi* and *Pratimadhari* (observing special vows) ascetics

Ascetic wearing unaltered clothing—An ascetic should not have some special liking or preferences concerning his dress, he

should use clothing prescribed for him in whatever form he gets. He should neither cut it smaller nor add another piece to make it larger He should also not wash or dye it This rule is also meant for *Jinakalpi* and *Pratimadhari* ascetics For the non-itinerant ascetics there is a provision for washing clothes in some specific conditions but not at all for good appearance or beauty To accept, wear, or wash with a feeling of beautification or embellishment is not allowed for ascetics at any level, and to dye clothes is completely forbidden

(*Acharanga Tika by Atmaram ji* M , p 578)

Santottare—one inner cloth and one outer cloth

Omchelaye—least or simple The word *avam* covers lower levels of all the three parameters of number, quantity, and price An ascetic who lives on simplest clothing of little price in minimum numbers is called *avamchelak*

Ahaparijunnai vatthaim paritthavejja—This aphorism conveys that an ascetic can accommodate himself in least number of clothing, and he should practice to do so As soon as summer sets in, out of the three clothing he should discard the one he considers most worn out If possible he should discard one more out of the remaining two If he has courage enough to go a step further, he may remain completely unclad However, he should keep the mouth cover and the ascetic-broom with him because these are means of avoiding harm to beings Discarding clothing gives benefits of austerities and at the same time it makes one free of any worries about the garb, giving him the extra and important benefit of attaining a state of comparative lightness

It is stated in the scriptures that there are five reasons that make the state of being unclad lofty These are—

(1) There is lesser inspection required in that state.

(2) There is advanced level of lightness in that state

(3) The appearance effuses reliability

(4) The austerity of that state is sanctioned by *Jinendra (Tirthankar).*

(5) The discipline of senses in that state is of a very high degree.

Sammattameva samabhijaniya—This phrase conveys that an ascetic should thoroughly know and sincerely follow the code of freedom from possessions or equipment established by *Tirthankars* and remain equanimous in both the states—clad and unclad Both these are paths of liberation of soul from the bondage of *karmas*

शरीर-विमोक्ष . वैहानसादिमरण

२१६ जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ 'पुट्ठो खलु अहमंसि, नालमहमंसि सीतफासं अहियासेत्तए', से वसुमं सव्व-समण्णागयपण्णाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणाए आउट्टे।

तवस्सिणो हु तं सेयं जमेगे विहमाइए।

तहाऽवि तस्स कालपरियाए। सेऽवि तत्थ वियंतिकारए।

इच्चेतं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेसं आणुगामियं।

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२१६ जिस भिक्षु को जब ऐसा प्रतीत हो कि मैं (शीतादि परीषहों) को सहन नहीं कर सकता हूँ। तो वह संयम का धनी--(वसुमान्) भिक्षु स्वयं को प्राप्त सम्पूर्ण प्रज्ञान एवं अन्त करण (स्व-विवेक) को जागृत करके उस उपसर्ग के वश न होकर संयम में स्थित रहता है।

उस तपस्वी भिक्षु के लिए यही श्रेयस्कर है कि स्त्री आदि का उपसर्ग उपस्थित होने पर मरण स्वीकार करे। ऐसा करने पर भी उसका वह मरणकाल-पर्यायमरण कहलाता है। उस मृत्यु से वह भिक्षु अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है।

इस प्रकार यह मरण विमोक्ष आयतन (प्राणों की मूर्च्छा से मुक्ति दिलाने वाला) हितकर, सुखकर, कर्मक्षय मे समर्थ, कल्याणकारी तथा परलोक में साथ चलने वाला होता है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

FREEDOM FROM THE BODY

216. An ascetic may feel—I am not being able to tolerate favourable afflictions In such condition an ascetic, completely devoted to discipline, invokes all his spiritual capacity and sagacity and instead of yielding to those afflictions stabilizes himself in discipline

For that austere ascetic it is better to accept death when faced with pleasurable afflictions like (seduction by—) a woman His death will still be considered timely (normal) death (and not suicide). He may even achieve *ant-kriya* (termination of the cycles of rebirth) through such death

Thus, such death is the cause of freedom from fondness for one's life. It is beneficent, blissful, helpful in shedding *karmas,* source of well-being, and advantageous in the next incarnations

—So I say

विवेचन–इस सूत्र मे भिक्षु को साधना करते हुए आकस्मिक रूप मे कोई विकट संकट उपस्थित हो जाये तब क्या करना चाहिए उसका संकेत रूप मे सूचन है।

'शीत-स्पर्श' का अर्थ है–शीत परीषह। २२ परीषहो मे दो शीत परीषह हैं–स्त्री-परीषह तथा सत्कार-पुरस्कार परीषह। वृत्तिकार के अनुसार यहाँ स्त्री-परीषह उपस्थित होने पर प्राण-विमोक्ष का अभिप्राय है। इसके दो रूप है–

(१) भिक्षु अपनी काम-वासना पर विजय पाने में स्वयं को असमर्थ देखे, तब शील व संयम का नाश करने की अपेक्षा प्राण-त्याग कर शील-रक्षा करे।

(२) अथवा कामुक स्त्रियाँ उसे काम-सेवन के लिए इतना विवश कर दे कि वहाँ से छूट पाना मुश्किल हो और रुकने पर धर्मसघ की बदनामी होने का भय हो तब वह इस प्रकार प्राण-विमोक्ष कर सकता है–

उस स्त्री के समक्ष श्वास बन्द कर मृतकवत् हो जाये, गले में झूठ-मूठ फाँसी लगाने का प्रयत्न करे, तब वहाँ से छुटकारा हो जाये तो ठीक, अन्यथा फिर वह गले मे फाँसी लगाकर, जीभ खींचकर, मकान से कूदकर, झंपापात करके या विष-भक्षण आदि करके किसी भी प्रकार शरीर-त्याग कर दे। किसी भी मूल्य पर मैथुन-सेवन स्वीकार न करे।

तत्था वि तस्स कालपरियाए–यहाँ शका होती है कि वैहानस आदि मरण को बाल-मरण कहा गया है। जिसे आज की भाषा में आत्म-हत्या कहा जाता है, जो महान् अहितकारी है। क्योंकि

उसमें तो अनन्तकाल तक नरक आदि गतियों में परिभ्रमण करना पड़ता है। शास्त्रकार इसका समाधान करते हैं–'तत्थावि ˙ ˙˙।' ऐसे अवसर पर इस प्रकार वैहानस या गृद्धपृष्ठ आदि मरण द्वारा शरीर-विमोक्ष करने पर भी वह काल-मृत्यु होती है। जैसे काल-पर्यायमरण गुणकारी होता है, वैसे ही ऐसे अवसर पर वैहानसादि मरण भी गुणकारी होता है।

उपसर्ग की स्थिति में अथवा असहनीय मोहोदय की स्थिति में फाँसी लगाकर मरना वैहानस मरण तथा गृद्धस्पृष्ठ मरण विशाल काय जानवर के शरीर मे प्रवेश कर शरीर त्यागना भी अनुमत है। यह आत्म-हत्या नही है। इस प्रकार की मृत्यु भी कभी-कभी 'अन्तक्रिया' अर्थात् सम्पूर्ण कर्म-मुक्ति का कारण बन जाती है।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—This aphorism points at the line of action of an ascetic who suddenly faces a grave danger while doing his spiritual practices

Sheet sparsh—cold touch, here it means pleasurable affliction In the list of twenty two afflictions two are pleasurable or favourable afflictions—affliction by women and affliction of honour and reward According to the commentator (*Vritti*) here it is advised to abandon life when faced with affliction by women. This has two alternatives—

(1) If an ascetic finds himself unable to win over his libido, instead of losing his virtuosity and discipline he should embrace death to protect these

(2) If licentious women seduce him forcefully and it becomes difficult to escape from that place, also there is a chance of the religious organization earning a bad name if he continues to be there, he can embrace death in following ways—

He should stop breathing and act to be dead before the woman, or he should pose as if he is trying to strangulate himself to commit suicide. If he still fails to escape from there he should embrace death by hanging himself, or pulling out his tongue, or jumping from the roof, or taking poison, or any other way In no case he should yield to affliction by women or copulation

Tattha vi tassa kalapariyae—A doubt arises here because death by self strangulation and other such means is called *baal-maran* or foolish death, it is called suicide in modern times It is highly damaging' in spiritual context as it causes infinite cycles of low-births like that in hell The author clarifies—under such circumstances even though he commits suicide his death is still considered timely (normal) death (and not suicide) As death after completing one's life-span or the timely death is beneficial, likewise suicide under such conditions is beneficial

In face of such afflictions or in the state of fruition of extreme fondness, death by self strangulation or by entering the body of a large animal is allowed It is not suicide Such death may even lead to *ant-kriya* (termination of the cycles of rebirth) or complete liberation from the body

● END OF LESSON FOURTH ●

पंचमो उद्देसओ	पंचम उद्देशक	LESSON FIVE

द्विवस्त्रधारी श्रमण की समाचारी

२१७. जे भिक्खू दोहिं वत्थेहिं परिवुसिए ाय तइएहिं तस्स णं णो एवं भवइ– तइयं वत्थं जाइस्सामि।

२१८. से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा जाव एवं खलु तस्स भिक्खुस्स सामग्गियं।

अह पुण एवं जाणेज्जा–'उवाइक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे', अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा, अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेत्ता अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वयाए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

२१७. जिस भिक्षु ने दो वस्त्र और तीसरा (एक) पात्र रखने की प्रतिज्ञा की है, उसके मन मे यह विकल्प नही उठता कि मैं तीसरे वस्त्र की याचना करूँ।

२१८ (यदि दो वस्त्रों से कम हो तो) भिक्षु अपनी मर्यादानुसार निर्दोष वस्त्रों की याचना करे।

जब भिक्षु यह समझे कि हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गयी है, ग्रीष्म ऋतु आ गयी है, तब वह जो वस्त्र जीर्ण हो गये हो, उनका विसर्जन कर दे। (यदि वस्त्र की आवश्यकता प्रतीत हो तो) वह एक शाटक (एक चादर) मे रहे, या वह अचेल (वस्त्ररहित) हो जाये। वह लाघवता का विचार करता हुआ (क्रमश·) वस्त्र का त्याग करे (इस प्रकार अल्पवस्त्र वाले) मुनि को उपकरण ऊनोदरी तथा कायक्लेश तप सहज ही प्राप्त हो जाता है।

भगवान ने मुनि के आचार का जिस रूप मे प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से–सर्वात्मना (सम्पूर्ण रूप में) समत्व को सम्यक् प्रकार से जाने; उसका आचरण करे।

ROUTINE OF AN ASCETIC WITH TWO CLOTHING

217. An ascetic who has taken a vow of possessing two pieces of cloth and a bowl does not desire to beg for a third piece of cloth

218. He should beg only for those pieces of cloth that are prescribed for him and are faultless (if he has less than two clothing)

When the ascetic realizes that winter is over and summer has set in he should discard the clothes he considers worn out (If he feels need of cloth) he should clad himself in single clothing Or he should become unclad Thinking about the concept of lightness (having minimum possessions) he should (gradually) discard clothes That ascetic (who has minimum clothes) perfects himself in austerities like reducing the number of equipment and mortifying the body with ease

He should properly understand the ascetic conduct exactly as it has been propagated by *Bhagavan* and thoroughly and immaculately follow it

विवेचन–प्रथम कल्प का अधिकरी जिनकल्पिक के अतिरिक्त स्थविरकल्पी भिक्षु भी हो सकता है, किन्तु इस द्वितीय कल्प का अधिकारी नियमत जिनकल्पिक, परिहारविशुद्धिक, यथालन्दिक एव प्रतिमा-प्रतिपन्न भिक्षुओ मे से कोई एक हो सकता है। (वृत्ति, पत्राक २८०)

Elaboration—Besides a *Jinakalpi* ascetic, a *Sthavir-kalpi* ascetic may also qualify for the first rule But, as a rule, only *Jinakalpi* or *Pariharavishudhik,* or *Yathalindak,* or *Pratima-dharak* could qualify for this second rule (*Vritti,* leaf 280)

ग्लान-अवस्था मे आहार-विमोक्ष

२१९. जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ–पुट्ठो अबलो अहमंसि, नालमहमसि गिहंतर-संकमण भिक्खायरिय-गमणाए। से सेवं वदतस्स परो अभिहड असण वा ४ आहट्टु दलएज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसतो गाहावइ ! णो खलु मे कप्पइ अभिहड असण वा ४ भोत्तए वा पायए वा अण्णे वा एयप्पगारे।

२१९ जिस भिक्षु को ऐसा लगता हो कि "मै रोगो से ग्रस्त होने के कारण दुर्बल हो गया हूँ। अत मै एक घर से दूसरे घर भिक्षा के लिए जाने मे असमर्थ हूँ।" भिक्षु का इस प्रकार का कथन सुनकर या भाव जानकर कोई गृहस्थ अपने घर से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर देने लगे तो वह भिक्षु पहले ही इस विषय में विचार करे। (और गृहस्थ से कहे) "आयुष्मान् गृहपति ! यह घर स सामने लाया हुआ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य

मेरे लिए ग्रहणीय नहीं है, इसी प्रकार दूसरे दोषों से दूषित आहारादि भी मेरे लिए ग्रहणीय नही है।"

[जो भिक्षु स्वय भिक्षा के लिए जा नही सकता, गृहस्थादि द्वारा लाया हुआ आहार ले नहीं सकता, ऐसा ग्लान या अभिग्रहधारी मुनि शरीर को आहार-पानी कैसे पहुँचायेगा? इस शंका का समाधान अगले सूत्र मे किया गया है।]

ABANDONING FOOD DURING SICKNESS

219. An ascetic may feel that 'he has become weak (due to ailments) and is unable to move from one house to another to seek alms' Hearing or knowing about this some householder could bring from his home and offer staple food, liquids, general food, savoury food In such situation the ascetic should first deliberate (and then convey to the householder—) "O long lived householder ! I cannot accept all this staple food, liquids, general food, savoury food In the same way I am not allowed to accept other things including food that involves other faults"

[An ascetic who is unable to go out to seek alms and is not allowed to accept food brought by a householder, how such sick an ascetic or one who is observing practice of some special resolutions would provide food and water to his body for mere sustenance ? This question is answered in the following aphorism]

२२०. जस्स ण भिक्खुस्स अय पगप्पे–अहं च खलु पडिण्णत्तो अपडिण्णत्तेहिं गिलाणो अगिलाणेहिं अभिकंख साहम्मिएहि कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि।

अहं वा वि खलु अपडिण्णत्तो पडिण्णत्तस्स अगिलाणो गिलाणस्स अभिकंख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए।

(१) आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि आहड च साइज्जिस्सामि।

(२) आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि आहड च नो साइज्जिस्सामि।

(३) आहट्टु पइण्णं नो आणक्खेस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि।

(४) आहट्टु पइण्णं णो आणक्खेस्सामि आहडं च णो साइज्जिस्सामि।

एवं से अहाकिट्टियमेव धम्मं समभिजाणमाणे संते विरते सुसमाहितलेस्से।

तत्थावि तस्स कालपरियाए। से तत्थ विअंतिकारए।

इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खम णिस्सेयसं आणुगामियं।

त्ति बेमि।

॥ पचमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२२०. जिस भिक्षु की ऐसी समाचारी या प्रकल्प (मर्यादा) होता है कि मै रोगादि से ग्रस्त हूँ तथा मेरे साधर्मिक साधु स्वस्थ हैं। उन्होंने मुझे सेवा करने का वचन दिया है। यद्यपि मैंने उनसे अपनी सेवा के लिए अनुरोध नही किया है, तथापि कर्म-निर्जरा की भावना से उन साधर्मिकों द्वारा की जाने वाली सेवा को मैं स्वीकार करूँगा।

(अथवा) मेरा साधर्मिक भिक्षु रुग्ण है, मै स्वस्थ हूँ, उसने अपनी सेवा के लिए मुझे अनुरोध नहीं किया है, (पर) मैने उसकी सेवा के लिए उसे वचन दिया है। अत कर्म-निर्जरा के उद्देश्य से तथा परस्पर उपकार करने की दृष्टि से मैं उस साधर्मिक की सेवा करूँगा। जिस भिक्षु की ऐसी आचार-मर्यादा हो, वह उसका पालन करता हुआ भले ही प्राण त्याग कर दे, (किन्तु प्रतिज्ञा भग न करे)।

(१) कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा लेता है कि मै अपने ग्लान साधर्मिक भिक्षु के लिए आहारादि लाऊँगा, तथा उनके द्वारा लाये हुए आहारादि का सेवन भी करूँगा।

(२) (अथवा) कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा लेता है कि मै अपने ग्लान साधर्मिक भिक्षु के लिए आहारादि लाऊँगा, लेकिन उनके द्वारा लाये हुए आहारादि का सेवन नही करूँगा।

(३) (अथवा) कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा लेता है कि मै साधर्मिको के लिए आहारादि नहीं लाऊँगा किन्तु उनके द्वारा लाया हुआ सेवन करूँगा।

(४) (अथवा) कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा करता है कि न तो मै साधर्मिकों के लिए आहारादि लाऊँगा और न ही मैं उनके द्वारा लाये हुए आहारादि का सेवन करूँगा।

(यो उक्त चार प्रकार की प्रतिज्ञाओ मे से किसी प्रतिज्ञा को ग्रहण करने के बाद अत्यन्त ग्लान होने पर या संकट आने पर भी प्रतिज्ञा भग न करे, भले ही वह जीवन का उत्सर्ग कर दे।)

इस प्रकार वह भिक्षु भगवान द्वारा कथित धर्म को जानता हुआ, यथाविधि पालन करता हुआ, शान्त, विरत और अपने अन्तःकरण की प्रशस्त वृत्तियों (लेश्याओं) में अपनी आत्मा को सुसमाहित करने वाला होता है।

(इस प्रकार वह ग्लान भिक्षु अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए भक्त-प्रत्याख्यान आदि के द्वारा शरीर विसर्जन करता है तो) उसकी वह मृत्यु काल-मृत्यु है। उस समाधि-मरण से वह भिक्षु अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है।

इस प्रकार यह मरण शरीर मोह से मुक्त होने की साधना का आयतन है, और परलोक में भी साथ चलने वाला है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

220. An ascetic may have resolved—"I suffer from ailments (or other such problems) and my fellow ascetics are healthy. They have offered me their services. Although I did not seek such services, I will accept the services offered by co-religionists with the intention of effecting shedding of their *karmas.*"

(or) "My co-religionist is sick and I am healthy; he has not requested me for any service, (but) I have promised to serve him. Therefore, with the purpose of shedding *karmas* and mutual help I will serve that co-religionist." An ascetic who has accepted such code of conduct should follow it even if he looses his life (but should not break his vow).

(1) An ascetic may have resolved—"I will bring food (etc) for a sick co-religionist ascetic and also accept food (etc.) brought by them."

(2) (or) An ascetic may have resolved—"I will bring food (etc.) for a sick co-religionist ascetic but will not accept food (etc.) brought by them."

(3) (or) An ascetic may have resolved—"I will not bring food (etc.) for co-religionist ascetics but will accept food (etc.) brought by them."

(4) (or) An ascetic may have resolved—"Neither I will bring food (etc.) for co-religionist ascetics nor I will accept food (etc) brought by them "

(Once an ascetic takes any of these four vows he should not break it even if he is very sick or in a grave predicament and he looses his life doing so)

This way, knowing the path shown by *Bhagavan,* properly following the codes laid down, that ascetic becomes serene, detached, and spiritually absorbed in lofty *leshyas* (the colour-code indicator of purity of soul, pious attitude, here)

(Thus, if that ailing ascetic abandons his body by fasting or other austerities while observing his vow) it is his normal death As a result of this meditational death he may achieve the final termination of the cycles of rebirth *(ant-kriya)*

Thus this death is part of the process of getting liberated from the attachment for one's body and is advantageous in the next incarnations

—So I say

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित प्रकल्प परिहार-विशद्धि चारित्र वाले अथवा यथालदक मुनियो का है।

चूर्णि तथा वृत्ति के अनुसार इनकी समाचारी इस प्रकार होती है–परिहार-विशुद्धि चारित्र वाला मुनि ग्लान हो जाता है तो उसकी सेवा दूसरा परिहार-विशुद्धि वाला मुनि करता है। अथवा कोई कल्पस्थित–जिनकल्पी मुनि करता है। यदि वे भी ग्लान हो जाये तो उनके समान कल्प वाला दूसरा मुनि सेवा करता है। किन्तु स्थविरकल्पी अथवा गृहस्थो द्वारा की जाने वाली सेवा वह स्वीकार नही करता।

प्रकल्प का अर्थ है–आचार। **अभिकाक्षा**–अर्थात् निर्जरा के उद्देश्य से। **आहट्टु**–अर्थात् प्रतिज्ञा को स्वीकार करके।

आचार्य श्री आत्माराम जी म ने बताया है कि वह अभिग्रहधारी मुनि अपनी आचार-मर्यादा मे दृढ़ रहता है, किसी भी स्थिति मे उसका भग नही करता। अन्त में वह भक्तपरिज्ञा अनशन

द्वारा पण्डितमरण को प्राप्त करता है। वह कम से कम ६ मास, मध्यम ४ वर्ष तथा अधिक से अधिक १२ वर्ष तक तप करके समाधिमरण द्वारा शरीर-त्याग कर देता है।

(*आचाराग टीका,* पृ ५९२)

॥ पचम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The code defined ın thıs aphorısm ıs meant for the ascetıcs who follow *Parıhar Vıshuddhı Charıtra* (a specıfic practıce of austerıtıes where mutual servıce to other ascetıcs of the group ıs an essentıal part) or who are *Yathalandak* (a specıfic practıce of austerıtıes where an ascetıc trıes to emulate a *Jınakalpı* ascetıc)

Accordıng to the commentarıes (*Churnı* and *Vrıttı*) theır routıne ıs as follows—If an ascetıc who follows *Parıhar Vıshuddhı Charıtra* gets sıck he ıs looked after by another ascetıc followıng the same *kalp* (specıfic austerıtıes) or some *Jınakalpı* When even the servıng ascetıc becomes sıck they accept help from others followıng the same *kalp* Such ascetıcs do not accept any servıce from a *Sthavır-kalpı* ascetıc or a householder

Prakalpa means conduct *Abhıkanksha* means wıth the purpose of sheddıng *karmas* *Ahattu* means after takıng a vow

Acharya Shrı Atmaram jı M explaıns that an ascetıc who has taken some specıal resolve remaıns steadfast ın the dıscıplıne of hıs conduct, ın no condıtıon he breaks the vow In the end he embraces medıtatıonal death by fastıng He practıces austerıtıes for a mınımum perıod of sıx months, a medıum perıod of four years, or a maxımum perıod of twelve years before embracıng medıtatıonal death (*Acharanga Tıka,* p 592)

● END OF LESSON FIVE ●

छट्ठो उद्देसओ	षष्ठ उद्देशक	LESSON SIX

एकवस्त्रधारी श्रमण की समाचारी

२२१. जे भिक्खु एगेण वत्थेण परिवुसिते पायबिइएण, तस्स णो एवं भवइ–बिइयं वत्थं जाइस्सामि।

२२२. से अहेसणिज्जं वत्थं जाएज्जा, अहापरिग्गहियं वत्थं धारेज्जा जाव गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुण्णं वत्थं परिट्ठवेज्जा, अहापरिजुण्णं वत्थं परिट्ठवेत्ता अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे जाव सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

२२१ जो भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा ले चुका है कि एक वस्त्र और दूसरा (एक) पात्र से अधिक नहीं रखूँगा, उसके मन मे ऐसा विकल्प नही उठता कि मै दूसरे वस्त्र की याचना करूँगा।

२२२. (यदि उसका वस्त्र अत्यन्त फट गया हो तो) वह अपनी कल्प मर्यादा के अनुसार ग्रहणीय वस्त्र की याचना करे। यहॉ से लेकर आगे 'ग्रीष्म ऋतु आ गई है', तक का वर्णन (चतुर्थ उद्देशक के सूत्र २१४ की तरह) समझ लेना चाहिए।

भिक्षु यह जाने कि अब ग्रीष्म ऋतु आ गयी है, तब वह उन फटे वस्त्रो का परित्याग करे। (परित्याग करके वह) या तो एक शाटक मे ही रहे, अथवा अचेल (वस्त्ररहित) हो जाये।

श्रमण के लिए लाघवता श्रेष्ठ है, इस तरह से विचार करे। वस्त्र-विमोक्ष करने वाले मुनि को सहज ही तप–(उपकरण ऊनोदरी एव कायक्लेश) प्राप्त होता है।

भगवान ने जिस प्रकार से वस्त्र-विमोक्ष का निरूपण किया है उसी रूप मे गहराई से जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना समत्व का आचरण करे।

THE ROUTINE OF MONO-CLAD ASCETICS

221. An ascetic who has taken a vow of possessing only one piece of cloth and a bowl as the second (possession) does not think that he will beg for a second piece of cloth.

222. (If his cloth is torn) that ascetic should beg for a piece of cloth that is prescribed for him. (from this point to 'summer has set in' the text should be taken same as in aphorism 214).

When the ascetic realizes that the summer has set in he should discard the clothes he considers worn out. After duly discarding the worn out clothe he should either remain clad in just one piece of cloth or become unclad.

He should contemplate that following the concept of lightness (having minimum possessions) is best for an ascetic. An ascetic who has accomplished freedom from clothes perfects himself in austerities (like reduction of equipment and mortification of the body) with ease.

He should properly understand this (freedom from possessions) exactly as it has been propagated by *Bhagavan* in the *Agams* and thoroughly and immaculately practice equanimity

पर-सहाय-विमोक्ष · एकत्व अनुप्रेक्षा के रूप में

२२३. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ–एगो अहमंसि, ण मे अत्थि कोइ, ण याहमवि कस्सइ। एवं से एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणेज्जा। लाघवियं आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

२२३ जिस भिक्षु के मन मे ऐसा सकल्प जाग उठे कि 'मै अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, और न मै किसी का हूँ', इस प्रकार वह अपनी आत्मा को एकाकी ही समझने लगता है तथा लाघव का सर्वतोमुखी विचार करता है। ऐसी एकत्व-अनुप्रेक्षा करने वाले उस भिक्षु को तप सहज मे ही प्राप्त हो जाता है।

भगवान ने (सहाय-विमोक्ष के रूप मे) एकत्वानुप्रेक्षा का जिस रूप में प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से, सर्वात्मना सम्यक् रूप में क्रियान्वित करे।

FREEDOM FROM ASSISTANCE : CONTEMPLATION OF SOLITARINESS

223. An ascetic who resolves—'I am alone, neither someone belongs to me nor I belong to someone'—realizes that his soul is solitary or stands alone by itself, and contemplates about lightness from all angles. This contemplation of solitariness makes it easy for that ascetic to attain perfection in austerities.

He should properly understand this contemplation of solitariness exactly as it has been propagated by *Bhagavan* in the *Agams* and thoroughly and immaculately practice it

स्वाद-परित्याग-प्रकल्प

२२४. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा पाण वा खाइम वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं सचारेज्जा आसाएमाणे, दाहिणाओ व हणुयाओ वामं हणुयं णो संचारेज्जा आसाएमाणे।

से अणासाएमाणे लाघविय आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वयाए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

२२४ भिक्षु या भिक्षुणी अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का आहार करते समय वाएँ जबडे से दाहिने जबडे मे न ले जाये, इसी प्रकार आस्वाद लेते हुए दाहिने जबडे से वाएँ जबडे मे न ले जाए।

वह म्वाद वृत्ति का वर्जन करता हुआ इस विषय मे लाघव का समग्र चिन्तन करे। स्वाद विवर्जन से उसे अवमौदर्य, वृत्तिसंक्षेप एव कायक्लेश रूप तप का सहज लाभ प्राप्त हो जाता है।

भगवान ने जिस रूप मे (म्वाद विवर्जन) का निरूपण किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना समत्व का आसेवन करे।

ESCHEWING TASTE

224. A male or female ascetic consuming staple food, liquids, general food, savoury food, should not shift (the morsel) from the left jaw to the right jaw, nor from the right jaw to the left jaw, enjoying its taste

Eschewing the desire for taste he should contemplate about lightness in this context This contemplation of eschewing taste makes it easy for that ascetic to attain perfection in austerities like (eschewing taste, shrinking of desires, and mortification of the body)

He should properly understand this (eschewing of taste) exactly as it has been propagated by *Bhagavan* in the *Agams* and thoroughly and immaculately practice equanimity

विवेचन–भिक्षु शरीर से धर्माचरण एव तप-सयम की आराधना के लिए आहार करता है, शरीर को पुष्ट बनाने या जिह्वा का स्वाद लेने के लिए नही।

उक्त कथन का अभिप्राय यह है कि वह मनोज्ञ वस्तु हो तो आदर–रुचिपूर्वक और अमनोज्ञ दुर्गन्धयुक्त वस्तु हो तो अनादर–अरुचिपूर्वक बाएँ जबडे से दाहिने जबडे मे या दाहिने जबड़े से बाएँ जबडे में न ले जाय।

इस संदर्भ मे उत्तराध्ययनसूत्र (३५/१७) मे भी बताया गया है कि 'जिह्वा को वश मे करने वाला अनासक्त मुनि सरस आहार मे या स्वाद मे लोलुप और गृद्ध न हो। महामुनि स्वाद के लिए नही, अपितु सयमी जीवन-यापन करने के लिए भोजन करे।'

Elaboration—An ascetic eats food to help the body in following the religious conduct and practicing austerities and discipline. He does not do it to make his body robust or to enjoy taste

The above statement means that he should not shift the morsel from one end of the mouth to the other with pleasure if it is tasty and with distaste if it is unsavoury

In this context it is mentioned in *Uttaradhyayan Sutra* (35/17) that 'An ascetic who exercises control over his taste should not be a slave of savoury food or taste-instinct A great sage should eat not to satiate his taste-instinct but to sustain his disciplined life '

सलेखना एव इगिनीमरण

२२५. जस्स ण भिक्खुस्स एवं भवइ–'से गिलामि च खलु अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए' से आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेज्जा। आणुपुव्वेण आहारं संवट्टेत्ता कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्खू अभिणिव्वुडच्चे।

अणुपविसित्ता गामं वा णगरं वा खेडं वा कब्बडं वा मडंब वा पट्टणं व दोणमुहं वा आगरं वा आसम वा सन्निवेस वा णिगमं वा रायहाणिं वा तणाइं जाएज्जा, तणाइं जाएत्ता से त्तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा, एगतमवक्कमित्ता अप्पंडे अप्पपाणे अप्पबीए अप्पहरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिंग-पणग-दगमट्टिय-मक्कडासंताणए पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तणाइं संथरेज्जा, तणाइं संथरेत्ता एत्थ वि समए इत्तरियं कुज्जा।

तं सच्चं सच्चवादी ओए तिण्णे छिण्णकहंकहे आतीतट्ठे अणातीते चिच्चाण भेउरं कायं संविधुणिय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे अस्सिं विस्संभणयाए भेरवमणुचिण्णे।

तत्थावि तस्स कालपरियाए। से वि तत्थ वियंतिकारए।

इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेसं आणुगामियं।

त्ति बेमि।

॥ छट्ठो उद्देसओ समत्तो॥

२२५. जिस भिक्षु के मन मे इस प्रकार का सकल्प उठता है कि मै इस समय आवश्यक क्रियाएँ करने के लिए इस शरीर को वहन करने में क्रमश· असमर्थ हो रहा हूँ, तब वह भिक्षु क्रमश· तप के द्वारा आहार का सवर्तन (सक्षेप) करे और आहार का संक्षेप करता हुआ वह कषायों को स्वल्प करे। कषायो को स्वल्प करके अन्त·करण को समाधियुक्त करे, तथा शरीर और कषाय दोनों ओर से फलक की तरह कृश बना हुआ वह भिक्षु समाधिमरण के लिए उद्यत होकर शरीर को स्थिर-सतापरहित करे।

उस भिक्षु के शरीर मे चलने की शक्ति हो, तो क्रमश· ग्राम मे, नगर में, खेडे में, कर्बट मे, मडब में, पत्तन में, द्रोणमुख मे, आकर मे, आश्रम मे, सन्निवेश में, निगम मे या राजधानी में (किसी भी बस्ती मे) जाकर सूखे तृण-पलाल घास की याचना करे। घास की याचना करके प्राप्त होने पर उसे लेकर ग्राम आदि के बाहर एकान्त में जाये। वहाँ एकान्त स्थान में जाकर जहाँ कीड़े आदि के अण्डे, जीव-जन्तु, बीज, हरियाली, ओस, उदक, चींटियो के बिल (कीड़ीनगरा), फफूँदी, काई, पानी का दलदल या मकडी के जाले न हों, वैसे जीवरहित स्थान को अच्छी तरह देखकर उसका अच्छी प्रकार प्रमार्जन करके, घास का सथारा (संस्तारक–बिछौना) करे। घास का बिछौना बिछाकर उस पर स्थित हो इत्वरिक अनशन ग्रहण कर ले।

वह इत्वरिक अनशन सत्य है। वह ग्रहीत (प्रतिज्ञा मे पूर्णत स्थित रहने वाला) सत्यवादी राग-द्वेषरहित, ससार-सागर को पार करने वाला, 'इंगितमरण की प्रतिज्ञा निभेगी या नही?' इस प्रकार की शकाओं से मुक्त है, जीवादि पदार्थों का सागोपांग ज्ञाता, ससार पारगामी अथवा परिस्थितियों से चिन्तित नही होने वाला है। वह इस शरीर को विनाशधर्मी मानकर, विविध प्रकार के परीषहों और उपसर्गों पर विजय प्राप्त करके, शरीर और आत्मा की पृथक्ता की भावना रखता हुआ इस घोर (भैरव) अनशन का शास्त्र-विधि के अनुसार अनुपालन करे।

तब ऐसा इंगिनीमरण स्वीकार करने पर भी उसकी वह काल-मृत्यु (सहज मृत्यु) होती है। उस मृत्यु से वह अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है।

इस प्रकार यह (मरण) मोहमुक्त भिक्षुओं का आयतन (आश्रय) हितकर, सुखकर या कालोचित निःश्रेयस्कर और भवान्तर में साथ चलने वाला होता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

SAMLEKHANA AND INGINIMARAN

225. If an ascetic realizes that now it is gradually becoming impossible for him to sustain the body for his essential (ascetic) duties, he should gradually reduce his food intake through austerities. While reducing the food intake he should also reduce his passions. After reducing passions he should acquire mental serenity Becoming thin by levelling both sides, body and passion, like a plank of wood, that ascetic should make himself stable (free of agitations of body and mind) and prepare to embrace meditational death

If that ascetic has enough energy to walk, he should go to a village, city, kraal, borough, harbour, hamlet, mine, hermitage, district, state, or capital (any populated place) and beg for hay or a stack of straw When he gets a stack of straw he should retire into seclusion outside (the village, etc.) In the secluded area he should look for a spot free of eggs of insects, creatures, seeds, greenery, dew, water, ant-holes, mildew, moss, marsh, and cobwebs He should then thoroughly clean that spot and make a bed of straw there Then he should occupy the straw-bed and observe *itvarik* fast (fasting for a predetermined period)

That *itvarik* fast is true (right activity). The ascetic who has taken that vow (and is steadfast in observing it) is truthful. He is free of attachment and aversion and is destined to cross the worldly ocean He is free of ambiguities like—Will I be able to carry out the vow of fasting unto death, or not ? He thoroughly knows all about beings, and other fundamentals He is capable of crossing the worldly ocean and is not influenced by circumstances Considering this body to be destructible, winning various types of afflictions and torments, having the

awareness of dichotomy of body and soul, he should perform this ultimate fasting in accordance with the procedure prescribed in scriptures.

(If he follows this) his death is considered as normal death, in spite of being willfully embraced. With such a death he may become the terminator of cycles of rebirth

Thus, such a death is a blissful haven for the detached ascetics It is beneficial, blissful, timely, source of beatitude, and advantageous in next incarnation.

—So I say

विवेचन–शरीर विमोक्ष के हेतु इगिनीमरण साधना–इस अध्ययन के चौथे उद्देशक मे विहायोमरण, पाँचवे मे भक्त प्रत्याख्यान और छठे मे इगिनीमरण का विधान किया गया है। सूत्र (२१९) के पूर्वार्ध मे सलेखना का विधि-विधान बताया है।

सलेखना कब और कैसे ?–सलेखना का अवसर कब आता है? इस सम्बन्ध मे चार कारण प्रस्तुत सूत्र मे बताये है–

(१) नीरस आहार लेने से या तपस्या मे शरीर अत्यन्त ग्लान हो जाने पर।

(२) रोग से पीडित हो जाने पर।

(३) आवश्यक क्रिया करने मे अक्षम/असमर्थ हो जाने पर।

(४) उठने-बैठने आदि नित्य क्रियाएँ करने मे भी अशक्त हो जाने पर।

समाधिमरण की तैयारी के लिए पहले सलेखना करे। सलेखना के मुख्य तीन अग इस सूत्र मे बताये है–

(१) आहार का क्रमश सक्षेप/सवर्तन करे। यह द्रव्य संलेखना है।

(२) कषायो का अल्पीकरण एव उपशमन करे।

(३) शरीर को समाधिस्थ, शान्त एव स्थिर रखने का अभ्यास करे।

सलेखना की विधि–यद्यपि सलेखना उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। परन्तु ग्लान की शारीरिक स्थिति उतने समय तक टिके रहने की नही होती। इसलिए अपनी शारीरिक स्थिति को देखते हुए समय निर्धारित करके क्रमश बेला, तेला, चोला, पचोला, उपवास, आयबिल आदि द्रव्य-सलेखना हेतु आहार मे क्रमश कमी (सक्षेप) करते जाना चाहिए। साथ ही भाव-सलेखना के लिए क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायो का उपशमन एव अल्पीकरण करना चाहिए। इसके साथ ही शरीर, मन, वचन की प्रवृत्तियो को स्थिर एव आत्मा मे एकाग्र होना चाहिए। इसमे साधक को काष्टफलक की तरह शरीर और कषाय–दोनो ओर से कृश बन जाना चाहिए।

'उट्ठाय भिक्खू '–तात्पर्य है–समाधिमरण के लिए उत्थित होकर । चूर्णिकार ने उत्थान तीन प्रकार का बताया है–

(१) दीक्षा के लिए उद्यत होना–सयम में उत्थान।

(२) ग्रामानुग्राम अप्रतिबद्ध विहार करना–अभ्युद्यत विहार का उत्थान।

(३) अशक्ति होने पर सलेखना करके समाधिमरण के लिए उद्यत होना–समाधिमरण का उत्थान।

'इत्तरियं कुज्जा' मे इत्वरिक शब्द इगिनीमरण या इगितमरण के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। चूर्णि एव वृत्ति मे बताया है–इत्वरिक शब्द अल्पकाल के सागार अनशन के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त नही है। किन्तु एक निश्चित क्षेत्र मे सचरण की मर्यादा रखी जाती है। इसलिए इसे 'इत्वरिक' या 'इगितमरण' कहा है।

''उव्वत्तइ परिअत्तइ काइगमाईऽवि अप्पणा कुणइ।
सव्वमिह अप्पणच्चिअण अन्नजोगेण धितिबलिओ॥''

(*आचा शीला टीका*, पत्राक २८६)

अर्थ–नियमपूर्वक गुरु के समीप चारो आहार का त्याग करता है और मर्यादित स्थान मे नियमित चेष्टा करता है। करवट बदलना, उठना या कायिक गमन (लघु नीति-बडी नीति) आदि भी स्वय करता है। धैर्य, बलयुक्त मुनि सब कार्य अपने आप करे, दूसरो की सहायता न लेवे।

इगितमरण ग्रहण की विधि–आहार और कषाय को कृश करता हुआ साधक शरीर मे जब थोडी-सी शक्ति रहे तभी निकटवर्ती ग्राम आदि से सूखा घास लेकर ग्राम आदि से बाहर किसी एकान्त निरवद्य, जीव-जन्तुरहित शुद्ध स्थान मे पहुँचे। स्थान को पहले भलीभाँति देखे, उसका भलीभॉति प्रमार्जन करे, फिर वहॉ उस घास को बिछा ले, लघु नीति-बडी नीति के लिए स्थडिल भूमि की भी देखभाल कर ले। फिर उस घास के सस्तारक (बिछौने) पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठे, दोनो अजुलियो से ललाट को स्पर्श करके वह सिद्धो को नमस्कार करे, फिर पच परमेष्ठी को नमस्कार करके 'नमोत्थुण' का पाठ दो बार पढे, और तभी इत्वरिक–इगितमरण रूप अनशन का सकल्प करे। अर्थात्–धृति–सहनन आदि बलो से युक्त तथा करवट बदलना आदि क्रियाएँ स्वय करने मे समर्थ साधक जीवन पर्यन्त के लिए नियमत चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान (त्याग) गुरु या दीक्षा ज्येष्ठ साधु के सान्निध्य मे करे, साथ ही 'इगित'–मन मे निर्धारित क्षेत्र मे सचरण करने का नियम भी कर ले। तत्पश्चात् शान्ति, समता और समाधिपूर्वक इसकी आराधना मे तल्लीन रहे। (*आचा वृत्ति*, पत्राक २८६)

वृत्तिकार ने '**छिण्णकहंकहे**' शब्द के दो अर्थ किये है–

(१) किसी भी प्रकार से होने वाली राग-द्वेषात्मक कथाएँ जिसने सर्वथा बन्द कर दी है।

(२) 'मै कैसे इस इगितमरण की प्रतिज्ञा को निभा पाऊँगा।' इस प्रकार की शकाग्रस्त कथा ही जिसने समाप्त कर दी है। चूर्णिका ने प्रथम अर्थ स्वीकार किया है।

भेरवमणुचिण्णे–यहाँ भैरव शब्द का अर्थ है जो घोर अनुष्ठान है, कायरो द्वारा जिसका चिन्तन भी दुष्कर है, ऐसे भैरव इंगितमरण को अनुचीर्ण–आचरित कर दिखाने वाला।

॥ षष्ठ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—*Ingit-maran* practice for ultimate freedom from body—The fourth lesson of this chapter discusses about *vihayomaran* (death by hanging), the fifth about *bhakta pratyakhyan* (fasting), and sixth about *inginimaran* (fasting unto death) In the first part of aphorism 219 the procedure of *samlekhana* has been defined

Samlekhana : When and how ?—What is the occasion of samlekhana ? Answering this question four reasons have been stated in this aphorism—

(1) When the body becomes extremely weak due to austerities or eating non-nutritive food

(2) In ailing condition

(3) When one becomes incapable of performing the essential duties

(4) When one becomes incapable of performing normal activities like sitting and standing

In order to prepare for meditational death first do *samlekhana* Three important parts of samlekhana are mentioned in this aphorism—

(1) Gradual reduction of food intake This is physical *samlekhana.*

(2) Reduction or pacification of passions

(3) Practicing to keep the body calm, stable and unmoving (in a posture)

The procedure of *samlekhana*—The maximum period of *Samlekhana* is twelve years But as the body of a sick ascetic is not in a state to survive that long, he should start a time bound programme of gradual reduction in his food intake based on the condition of his body and aimed at physical *samlekhana* of observing

austerities like fasting for two days, three days, four days, five days, one day, *ayambil* (eating once in a day food cooked with a single ingredient and without any salt or other condiments), etc At the same time he should pacify and reduce passions like anger, conceit, daceit, and greed in order to achieve mental *samlekhana* Besides this he should also focus his attention on soul by stabilizing the attitudes and activities related to body, speech and mind. In this process the aspirant should become slim from both ends—body and passions—like a plank of wood made smooth on both sides

Utthaya bhikkhu....—after rising for meditational death The commentator (*Churni*) has described *utthan* (rising) to be of three types—

(1) To get ready for initiation—to rise for discipline

(2) To wander freely from one village to another—to rise to accept itinerant way

(3) To perform *samlekhana* and prepare for meditational death—to rise to accept meditational death

Ittariyam kujja—in this phrase the term *itvarik* carries the meaning of *inginimaran* or *ingit-maran* It is mentioned in *Churni* and *Vritti*—Here the word *itvarik* has not been used to convey the conventional meaning of limited periodicity in fasting for some specific purpose Here it has been used to indicate limiting movement to a specific area Because of this limitation it is called *itvarik* (limited) or *ingit-maran* It is defined in *Acharanga Tika* by Shilanka leaf 286 as—

'He takes a vow of abandoning four types of food before the *guru* and according to the prescribed rules He indulges in disciplined activities within a limited area He himself (without any help) does essential activities including turning in the bed, getting up and going to relieve himself. An ascetic having patience and strength should do everything himself, he should not take any help from others.'

The procedure of accepting *ingit-maran*—Reducing food intake and passions when an ascetic is left only with a little strength, he should collect hay or straw from a nearby village and go to a solitary and faultless place that is free of any creatures He should first of all properly inspect the place and clean it After this he should make a bed of hay and also locate a proper place for relieving himself Now he should sit on the hay-bed facing east, touching both palms to his forehead he should offer salutations to the *Siddhas* Then he should offer salutations to *Panchaparameshti* (the five revered beings) and recite ***Namotthunam*** (a panegyric) twice Only after all this, he should take the vow of fasting in the form of *itvaric* or *ingit-maran* This means—An ascetic having patience and physical strength enough to perform essential activities including turning in the bed, should formally, in presence of *guru* or a senior ascetic, resolve to abandon four types of food as long as his life lasts At the same time he should also take a vow of limiting his movement to a predetermined area After this he should remain absorbed in this practice with peace, equanimity and serenity (*Acharanga Vritti*, leaf 286)

The commentator (*Vritti*) has given two meanings of ***chhinnakahamkahe***—

(1) One who has completely stopped any talks or communication involving attachment and aversion

(2) One who has stopped any doubts like—'How would I be able to fulfill this vow of *ingit-maran* ?'

The commentator (*Churni*) has accepted only the first meaning

Bheravamanuchinne—here the word *bhairav* means intense or formidable task, a practice about which cowards cannot even think Thus the meaning of the phrase is—one who performs such formidable task

● **END OF LESSON SIX** ●

सत्तमो उद्देसओ | सप्तम उद्देशक | LESSON SEVEN

अचेल-कल्प

२२६. जे भिक्खू अचेले परिवुसिते तस्स णं एवं भवति–चाएमि अहं तण-फासं अहियासित्तए, सीयफासं अहियासित्तए, तेउफास अहियासित्तए, दंस-मसगफासं अहियासित्तए, एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छादणं चहं णो संचाएमि अहियासित्तए। एवं से कप्पइ कडिबंधणं धारित्तए।

२२६ जिस भिक्षु ने अचेल-कल्प की मर्यादा स्वीकार की है, उस भिक्षु का ऐसा अभिप्राय हो कि मै घास का कठिन स्पर्श सह सकता हूँ, सर्दी का कष्ट सह सकता हूँ, गर्मी का कष्ट सह सकता हूँ, डास और मच्छरो के परीषह को सह सकता हूँ, एक प्रकार के या भिन्न-भिन्न प्रकार के, नाना प्रकार के अनुकूल या प्रतिकूल परीषहो को सहन करने मे समर्थ हूँ, किन्तु मै गुप्तागो के–प्रतिच्छादन (वस्त्र) को छोडने मे समर्थ नही हूँ। ऐसी स्थिति मे वह भिक्षु कटिबन्धन (कमर पर बॉधने का वस्त्र चोलापट्ट) धारण कर सकता है।

THE VOW OF REMAINING UNCLAD

226. If an ascetic who has accepted to abide by the discipline of remaining unclad feels—I can tolerate the abrasive touch of grass, I can tolerate discomfort of cold, I can tolerate oppression of heat, I can tolerate stings of mosquitoes and other insects, and I am capable of tolerating a variety of pleasant and unpleasant afflictions, but I am not capable of discarding the (cloth) covering of my private parts—in such case that ascetic may wear a loin-cloth

२२७. अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीतफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दस-मसगफासा फुसंति, एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासेति अचेले। लाघवियं आगममाणे। तवे से अभिसमण्णागये भवति।

जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

२२७ अथवा उस कल्प मे स्थित भिक्षु यदि लज्जा को जीत सकता है तो अचेलकता में उस अचेल भिक्षु को बार-बार घास का तीखा स्पर्श चुभता है, शीत का स्पर्श होता है,

गर्मी का स्पर्श होता है, डास और मच्छर काटते है, फिर भी वह उन एकजातीय या भिन्न-भिन्न जातीय नाना प्रकार के स्पर्शो को सहन करे। आगम अनुसार लाघवता का चिन्तन करता हुआ तप का सहज लाभ प्राप्त करता है।

भगवान ने अचेलत्व का जैसा प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप मे सम्यक् प्रकार से जानकर, सब प्रकार से, सर्वात्मना समत्व को भलीभाँति धारण करे।

227. Or, an ascetic, who is capable of winning over his shyness (feeling of embarrassment) and has accepted the said discipline, time and again suffers abrasive touch of grass, discomfort of cold, oppression of heat, stings of mosquitoes and other insects, he should still tolerate those one or many types of touch (afflictions). Thinking about the concept of lightness (having minimum possessions) as mentioned in *Agams* he gains benefits of austerities with ease

He should properly understand the conduct of remaining unclad exactly as it has been propagated by *Bhagavan* and thoroughly and immaculately follow equanimity

अभिग्रह एव वैयावृत्य का प्रकल्प

२२८. (१) जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ–अह च खलु अण्णेसिं भिक्खूण असणं वा ४ आहट्टु दलइस्सामि आहड च णो साइज्जिस्सामि।

(२) जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ–अह च खलु अण्णेसि भिक्खूण असण वा ४ आहट्टु दलइस्सामि आहड च णो साइज्जिस्सामि।

(३) जस्स ण भिक्खुस्स एवं भवइ–अह च खलु असणं वा ४ आहट्टु णो दलइस्सामि आहड च साइज्जिस्सामि।

(४) जस्स ण भिक्खुस्स एवं भवइ–अह च अण्णेसि खलु भिक्खूण असणं वा ४ आहट्टु णो दलइस्सामि आहड च णो साइज्जिस्सामि।

(५) अह च खलु तेण अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेणं अहापरिग्गहिएणं असणेण वा ४ अभिकख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडिय करणाय। अहं वा वि तेण अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिएणं असणेण वा ४ अभिकख साहम्मिएहिं कीरमाण वेयावडिय साइज्जिस्सामि।

लाघविय आगममाणे जाव सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

२२८ (१) जिस भिक्षु को ऐसा सकल्प होता है कि "मै दूसरे भिक्षुओ को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर दूँगा और उनका लाया हुआ आहार स्वीकार करूँगा।"

(२) जिस भिक्षु को ऐसा सकल्प होता है कि "मै दूसरे भिक्षुओं को अशन आदि चारो प्रकार का आहार लाकर दूँगा, लेकिन उनका लाया हुआ आहारादि स्वीकार नही करूँगा।"

(३) जिस भिक्षु को ऐसा सकल्प होता है कि "मै दूसरे भिक्षुओ को अशनादि लाकर नही दूँगा, लेकिन उनका लाया हुआ आहारादि स्वीकार करूँगा।"

(४) जिस भिक्षु को ऐसा सकल्प होता है कि "मै दूसरे भिक्षुओ को अशनादि लाकर नही दूँगा और न ही उनके द्वारा लाया हुआ आहारादि ग्रहण करूँगा।"

(५) (अभिग्रहधारी भिक्षु का सकल्प) "मै अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त (शेष) अपनी कल्प मर्यादानुसार एषणीय एव ग्रहणीय तथा अपने लिए लाये हुए अशन आदि मे से निर्जरा के उद्देश्य से, परस्पर उपकार करने की भावना से साधर्मिक मुनियो की सेवा करूँगा (या) मै भी उन साधर्मिक मुनियो द्वारा अपनी आवश्यकता से अधिक, अपनी कल्प मर्यादानुसार एषणीय-ग्रहणीय तथा स्वय के लिये लाए हुए अशन आदि मे से निर्जरा के उद्देश्य से उनके द्वारा की जाने वाली सेवा का अनुमोदन करूँगा।"

कर्मों का लाघव चाहता हुआ वह भिक्षु (वैयावृत्य और काय-क्लेश) तप के लाभ से अनायास ही लाभित होता है। भगवान ने जिस प्रकार से सेवा के कल्प का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप मे जान-समझकर सब प्रकार से सर्वात्मना समत्व का आचरण करे।

SPECIAL RESOLUTION AND SERVICE TO OTHERS

228. (1) An ascetic may have resolved—"I will bring food (etc) for other ascetics and also accept food (etc) brought by them "

(2) (or) An ascetic may have resolved—"I will bring food (etc) for other ascetics but will not accept food (etc) brought by them "

(3) (or) An ascetic may have resolved—"I will not bring food (etc) for other ascetics but will accept food (etc) brought by them."

(4) (or) An ascetic may have resolved—"Neither will I bring food (etc) for other ascetics nor will I accept food (etc) brought by them "

(5) (An ascetic who has accepted a special resolve may feel) "Inspired by a feeling of mutual co-operation and with a view to purify the self, I will serve my fellow ascetics by offering them food (etc) in excess of my need from what is desirable, acceptable, and brought by me in accordance with the code of alms-begging Also, I will approve of services rendered by my fellow ascetics, inspired by a feeling of mutual co-operation and with a view to purify the self, in the form of offering me food (etc) in excess of their need from what is desirable, acceptable, and brought by them in accordance with the code of alms-begging "

Desiring for the reduction of the load of *karmas* that ascetic gains benefits of austerities (service to others and mortification of the body) effortlessly

He should properly understand the conduct of service to others exactly as it has been propagated by *Bhagavan* and thoroughly and immaculately follow equanimity

विवेचन–इसी अध्ययन के पचम उद्देशक मे साधर्मिक साधुओ मे आहार के लेन-देन के सम्बन्ध मे चार भगो का उल्लेख हुआ है। उसमे अग्लान साधु ग्लान साधु की सेवा करने का और ग्लान साधु अग्लान साधुओ से सेवा लेने का सकल्प करता है। उसी सदर्भ में आहार के लेन-देन की चतुर्भगी बताई गई है। किन्तु यहाँ निर्जरा के उद्देश्य से तथा परस्पर उपकार की दृष्टि से आहारादि सेवा के आदान-प्रदान का विशेष उल्लेख करके इसके पाँच भग किये गये है।

आचार्य श्री आत्माराम जी म ने लिखा है–वैयावृत्य करना, कराना और वैयावृत्य करने वाले साधु की प्रशसा करना, ये तीनो सकल्प कर्म-निर्जरा, इच्छा-निरोध एवं परस्पर उपकार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस तरह, मन, वचन, काया से सेवा करने, कराने एव अनुमोदन करने वाले साधक के मन मे अपूर्व आनन्द एव स्फूर्ति की अनुभूति होती है तथा उत्साह की लहर दौड जाती है। सेवा-भावना से साधक की साधना तेजस्वी और अन्तर्मुखी बनती है।

(*आचाराग*, पृ ६१०)

सूत्र (२२८) मे साधक के द्वारा अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार की जाने वाली ६ प्रतिज्ञाओ का जो उल्लेख है वह सार रूप मे इस प्रकार है–

(१) स्वय दूसरे साधुओ को आहार लाकर दूँगा, उनके द्वारा लाया हुआ लूँगा।

(२) दूसरों को लाकर दूँगा, उनके द्वारा लाया हुआ नहीं लूँगा।

(३) स्वयं दूसरों को लाकर न दूँगा, उनके द्वारा लाया हुआ लूँगा।

(४) न स्वय दूसरों को लाकर दूँगा, न ही उनके द्वारा लाया हुआ लूँगा।

(५) आवश्यकता से अतिरिक्त कल्पानुसार यथा प्राप्त आहार में से निर्जरा एवं परस्पर उपकार की दृष्टि से साधार्मिकों की सेवा करूँगा।

(६) उन साधर्मिकों से भी इसी दृष्टि से सेवा लूँगा।

इन्हे चूर्णिकार ने प्रतिमा तथा अभिग्रह विशेष बताया है।

Elaboration—In the fifth lesson of this chapter four alternatives have been mentioned in connection with exchange of food with co-religionist ascetics There a normal ascetic resolves to serve an ailing ascetic and an ailing ascetic resolves to accept services of a normal ascetic The four alternatives have been stated in that context But here, with a special mention of the mutual exchange of service of food for the purpose of shedding of *karmas* and with the view of extending mutual co-operation, a fifth alternative has been added

Acharya Shri Atmaram ji M states—To do service to others, to accept service by others and to praise an ascetic doing service to others, these three feelings are extremely important in context of shedding of *karmas,* disciplining of desires, and mutual co-operation An aspirant who does, causes others to do, and approves others doing such service, experiences a unique bliss and exhilaration A wave of enthusiasm engulfs him With the feeling of serving others the spiritual practices of an aspirant gain intensity and introversion

(*Acharanga,* p 610)

In brief the six vows out of which a seeker chooses according to his inclination and ability, (mentioned in aphorism 228) are as follows—

(1) I will bring food for other ascetics and also accept that brought by them

(2) I will bring food for others but will not accept that brought by them

(3) I will not bring food for others but will accept that brought by them

(4). Neither will I bring food for others nor will I accept that brought by them

(5) For shedding of *karmas* and promoting mutual co-operation I will serve my co-religionist by offering them food in excess of my needs from what I brought in accordance with the code of alms-begging

(6) With the same view, I will accept their services

According to the commentator (*Churni*) these are *pratimas* (special austerities) and *abhigrahas* (special resolutions)

सलेखना-पादोपगमन अनशन

२२९ जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ 'से गिलामि च खलु अह इमम्मि समए इम सरीरगं अणुपुव्वेणं परिवहित्तए, से अणुपुव्वेणं आहार सवट्टेज्जा, अणुपुव्वेण आहारं संवट्टेत्ता कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्खू अभिणिव्वुडच्चे।

अणुपविसित्ता गामं वा जाव रायहाणिं वा तणाइं जाएज्जा, तणाइं जाएत्ता से त्तमायाए एगतमवक्कमेज्जा, एगतमवक्कमेत्ता अप्पडे जाव तणाइं सथरेज्जा, (तणाइ संथरेत्ता) एत्थ वि समए काय च जोग च इरिय च पच्चक्खाएज्जा।

तं सच्चं सच्चवादी ओए तिण्णे छिण्णकहकहे आतीतट्ठे अणातीते चेच्चाण भेउरंकायं सविहुणिय विरूवरूवे परीसहुवसग्गे अस्सि विसभणताए भेरवमणुचिण्णे। तत्थावि तस्स काल-परियाए। से तत्थ वियंतिकारए।

इच्चेय विमोहायतण हिय सुह खम णिस्सेसं आणुगामिय।

त्ति बेमि।

॥ सत्तमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२२९. जिस भिक्षु को (रोगो से आक्रान्त होने के कारण) यह सकल्प होता है कि मै इस समय इस शरीर से सयमोचित क्रियाएँ करने मे असमर्थ हो रहा हूँ। तब वह भिक्षु क्रमश आहार का सक्षेप करे। आहार को क्रमश घटाता हुआ कषायो को भी कृश करे। समाधिपूर्ण लेश्या–(शान्त अन्त करण वृत्ति) वाला, तथा शरीर और कषाय, दोनो ओर से फलक की तरह कृश बना हुआ वह भिक्षु समाधिमरण के लिए उत्थित होकर शरीर को स्थिर करे।

वह सलेखना करने वाला भिक्षु शरीर मे थोडी-सी भी शक्ति हो तो ग्राम, नगर, खेडा, कर्बट, मडंब, पत्तन, द्रोणमुख, आकर (खान), आश्रम, सन्निवेश, निगम या राजधानी में जाकर घास की याचना करे। उस घास को लेकर ग्राम आदि के बाहर एकान्त में चला जाये। ऐसे निर्दोष स्थान की प्रतिलेखना करे जहाँ कीडों के अण्डे, जीव-जन्तु, बीज, हरित, ओस, काई, उदक, चीटियो के बिल, फफूँदी, गीली मिट्टी या दलदल या मकडी के जाले न हों, उस स्थान पर प्रतिलेखना प्रमार्जन करके घास का बिछौना बिछाये। पादपोपगमन अनशन करके फिर बिछाकर इसी समय शरीर, शरीर की प्रवृत्ति और गमनागमन आदि ईर्या (चलना) का प्रत्याख्यान करे।

यह (पादपोपगमन अनशन) सत्य है। इसे सत्यवादी वीतराग, ससार-पारगामी, संशयो से मुक्त सर्वथा कृतार्थ, समस्त प्रयोजनो से अतीत, परिस्थितियों से अप्रभावित मुनि (अनशन-स्थित मुनि) विनाशशील शरीर को छोडकर, नाना प्रकार के उपसर्गों और परीषहो पर विजय प्राप्त करके (सर्वज्ञ प्ररूपित भेद-विज्ञान-) की भावना करता हुआ इस घोर अनशन का अनुपालन करे।

ऐसा करने पर उसकी यह काल-मृत्यु (स्वाभाविक मृत्यु) मानी जाती है। उस मृत्यु से वह अन्तक्रिया करने वाला भी हो सकता है।

यह पादपोपगमन अनशनयुक्त मरण मोहमुक्त भिक्षुओं का आयतन (आश्रय) हितकर, सुखकर, समयोचित, नि श्रेयस्कर और जन्मान्तर में भी साथ चलने वाला है।

-ऐसा मै कहता हूँ।

THE ULTIMATE VOW

229. If an ascetic realizes that now it is gradually becoming impossible for him to sustain the body for his ascetic duties, he should gradually reduce his food intake While reducing the food intake he should also reduce his passions After reducing passions he should acquire mental serenity Becoming thin by reducing both sides, body and passion, like a plank of wood, that ascetic should make himself stable (free of agitations of body and mind) and prepare to embrace meditational death

If that ascetic has enough energy to walk, he should go to a village, city, kraal, borough, harbour, hamlet, mine, hermitage, district, state, or capital (any populated place) and beg for hay or a stack of straw. When he gets a stack of straw he should

retire into seclusion outside (the village, etc) In the secluded area he should look for a spot free of eggs of insects, creatures, seeds, greenery, dew, water, ant-holes, mildew, moss, marsh, and cobwebs. He should then thoroughly clean that spot and make a bed of straw there Now he should occupy the straw-bed and observe *Padapopagaman* fast (fast unto death), and at the same time vow to dissociate himself from his body, its activities and movements

That *Padapopagaman* fast is true (right activity) The ascetic who has taken that vow (and is steadfast in observing it) is truthful He is free of attachment and aversion and is destined to cross the worldly ocean He is free of ambiguities and knows all about fundamentals He is free of all ambitions and is not influenced by circumstances Considering this body to be destructible, winning over various types of afflictions and torments, having the awareness of dichotomy of body and soul, he should perform this ultimate fasting in accordance with the procedure prescribed in scriptures.

(If he follows this) his death is considered as normal death, in spite of being willfully embraced With such a death he may become the terminator of cycles of rebirth.

Thus, such a death, following the *Padapopagaman* fast, is a blissful haven for the detached ascetics It is beneficial, blissful, timely, source of beatitude, and advantageous in the next incarnation

—So I say

विवेचन–सूत्र २२५ मे इंगिनीमरण की विधि बताई जा चुकी है। अब इस सूत्र मे पादपोपगमन अनशन की विधि व मर्यादा बताई है।

जिस प्रकार पादप–वृक्ष सम या विषम अवस्था में निश्चेष्ट पडा रहता है, उसी प्रकार भिक्षु सम या विषम, जिस स्थिति में स्थित होकर पड़ जाता है; उसी स्थिति में आजीवन निश्चेष्ट पड़ा रहता है। पादपोपगमन अनशन का साधक दूसरे से सेवा नहीं लेता और न ही दूसरों की सेवा करता है।

इसकी अन्य विधि तो इगिनीमरण के समान ही है, लेकिन इंगिनीमरण में पूर्व नियत क्षेत्र में हाथ-पैर आदि अवयवों का संचालन किया जाता है, जबकि पादपोपगमन में एक ही नियत स्थान पर भिक्षु निश्चेष्ट पडा रहता है। यदि बैठा हो तो बैठा रहे, सोया हो तो सोया रहे।

इस अनशन में पादपोपगमन में मुख्यत· तीन बातों का–प्रत्याख्यान अनिवार्य होता है–

(१) शरीर योगों का निरोध।

(२) शरीर योगो का आकुञ्चन, प्रसारण, उन्मेष, निमेष आदि का वर्जन।

(३) ईर्या–गमनागमन नहीं करना।

॥ सातवाँ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The procedure of *inginimaran* has been mentioned in aphorism 225 Now this aphorism describes the procedure and discipline of *Padapopagaman* fast

As a *padap* (tree) remains inactive in favourable and unfavourable condition, likewise an ascetic remains inactive or static as long as he lives in whatever state he acquires (when he takes vow of this fast) An aspirant doing *Padapopagaman* fast neither accepts nor offers any service from or to others

Its procedure is same as that of *inginimaran* but with just one difference that in *inginimaran* the movements of the body and its parts is allowed in a predetermined area but in *Padapopagaman* the ascetic lies inactive at one place If he sits he should remain sitting, and if he is lying he should remain lying

In *Padapopagaman* fast the vow of abandoning three things is essential—

(1) Stop all movements of the body

(2) Check shrinking, expanding, lifting, lowering of parts of the body

(3) Stop moving from one place to another.

● END OF LESSON SEVEN ●

अट्ठमो उद्देसओ	अष्टम उद्देशक	LESSON EIGHT

आनुपूर्वी अनशन

२३०. अणुपुव्वेण विमोहाइ जाइं धीरा समासज्ज।
वसुमंतो मतिमतो सव्व णच्चा अणेलिस॥

२३० मोह से मुक्त होने की जो अनुक्रमश विधि बताई गई है। धैर्यवान, ज्ञानी, सयमी भिक्षु उस श्रेष्ठ विधि को जानकर समाधि को प्राप्त करे।

ANUPURVI FAST

230. The gradual process of getting rid of fondness has been stated A patient, sagacious and disciplined ascetic should understand that unique process and attain *samadhi* (absolute involvement in profound meditation)

विवेचन–समाधिमरण के लिए किया जाने वाला आहार आदि का त्याग अनशन कहलाता है। अनशन दो प्रकार का होता है–क्रम-प्राप्त और आकस्मिक, अथवा सपराक्रम और अपराक्रम अथवा अव्याघात और सव्याघात। क्रम-प्राप्त अनशन को यहाँ आनुपूर्वी कहा गया है।

निर्युक्ति एव टीका मे इसका क्रम इस प्रकार बताया है–भिक्षु प्रव्रज्या ग्रहण करके शिक्षा (ज्ञान) प्राप्त करते है। सूत्र अर्थ का ग्रहण करते हैं, फिर जनपद विहार मे सलग्न रहते है। क्रमश शरीर की अवस्था आने पर, शक्ति क्षीण हो जाने पर समाधिपूर्वक शरीर का त्याग करना चाहता है। समाधिमरण के लिए वह अनशन करता है। अनशन के मुख्य तीन प्रकार है–(१) **भक्त प्रत्याख्यान**–इसका वर्णन पाँचवे उद्देशक मे है, (२) **इंगिनीमरण** (छठा उद्देशक), तथा (३) **पादपोपगमन** (प्रायोपगमन) सातवाँ उद्देशक।

तीन अनशनो मे से किसी एक का चुनाव करके (१) आहार, (२) उपधि, तथा (३) शरीर–इन तीनो से मुक्त होने का निरन्तर अभ्यास करना, अन्त मे सबसे क्षमा-याचना, आलोचना-प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धीकरण करके समाधिपूर्वक शरीर-विसर्जन करना। इसी को यहाँ आनुपूर्वी अनशन कहा है। आचार्यो के अनुसार–

"उपसर्गे, दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निष्प्रतीकारे।
धर्मार्थं तनुविमोचनमाहु संल्लेखनामार्या॥" –*रत्नकरण्डक श्रावकाचार* १२२

दुर्भिक्ष, बुढापा, दु साध्य मृत्युदायक रोग और शरीर-बल की क्रमश क्षीणता आदि होने पर सलेखना की जाती है।

समाधि मरण
1
2
3
4
5
6
7

चित्र परिचय १५

Illustration No. 15
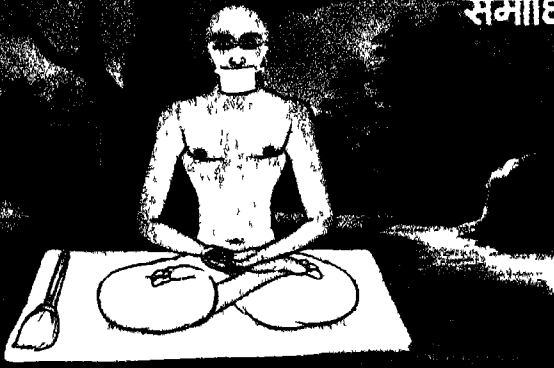
समाधिमरण के विभिन्न रूप

१-२ *आणुपुव्वेण आहार सवट्टेज्जा कसाए पयणुए किच्चा*

समाधिमरण की तैयारी–आहार का सवर्तन–जब भिक्षु को ऐसा लगे कि मै अब चलन-फिरने आदि मे अक्षम हो रहा हूँ तो वह आहार, वस्त्र आदि उपकरणो से निवृत्ति लेवे। आहार सलेखना करे, फिर कषाय सलेखना करे। क्रोध, मान, माया और लोभरूपी जो चार बेडियाँ उसको बाँधे हुए है, उनको समाधि व शुभ लेश्याओ से तोडने का प्रयास करे। —अ ८, उ ६ सूत्र २३१

३ *गाम का अदुवा रण्णे तणाइ सथरे मुणी।*

इसके पश्चात् भक्त प्रत्याख्यान अनशन की तैयारी करता हुआ निर्वद्य स्थान पर पुआल घास आदि का सथारा बिछाए। वह उस अवस्था मे सीधा या आडा दोनो प्रकार से लेट सकता है।

४ प्रायोपगमन अनशन की विधि मे घास के बिछौने पर सीधा निष्कम्प लेट जाय। इस मध्य जीवो के काटने आदि का कोई उपसर्ग हो तो भी वह उसे धीरज के साथ सहन करे।

५ यह प्रायोपगमन तीन मुद्राओ मे किया जा सकता है- निपन्न–सोये हुए। निषण्ण–बैठे तथा ऊर्ध्व स्थान–खडे रहकर। अन्त मे श्मशान प्रतिमा स्वीकार कर उस स्थिति मे पशु पक्षी देव व मनुष्य सम्बन्धी कोई भी उपसर्ग हो तो उसे अत्यन्त धीरतापूर्वक अविचल भाव के साथ सहन करे।

अ ८ उ ८ सू २३१ २५४

DIFFERENT WAYS OF MEDITATIONAL DEATH

1-2 When an ascetic realizes that he has become so weak that he is unable to move around and do other things, he should abandon food as well as equipment After this he should try to shatter the four shackles of anger, conceit, deceit and greed, with the help of meditation and pious attitude —8/6/231

3 After this he should prepare for the *Bhakta pratyakhyan* fasting and make a bed of hay at a faultless place He can lay down on this bed on his back or sides

4 While doing *prayopagaman anshan* he should lie straight on the hay-bed During the practice he should patiently tolerate any inflictions such as stinging by insects

5 This *Prayopagaman anshan* can be done in three postures—reclining, sitting or standing At last he should accept the *Smashan Pratima* and while doing that he should tolerate any afflictions caused by animals, birds, god, or humans, with extreme patience and serenity —8/8/231/254

सहसा उपसर्ग उपस्थित होने पर या अकस्मात् जघा-बल आदि क्षीण हो जाने पर, शरीर शून्य या बेहोश हो जाने पर, हठात् बीमारी का प्राणान्तक आक्रमण हो जाने पर तथा स्वय में उठने-बैठने आदि की बिलकुल शक्ति न होने पर आकस्मिक अनशन किया जाता है।

पूर्व उद्देशको मे आकस्मिक अनशनो का वर्णन था, इस उद्देशक मे क्रम-प्राप्त अनशन का वर्णन है। इसे आनुपूर्वी अनशन, अव्याघात, सपराक्रम और सविचार अनशन भी कहा जाता है। (*निर्युक्ति* २६३)

समाधिमरण के लिए (१) सयम, (२) ज्ञान, (३) धैर्य, और (४) निर्मोह भाव। चार बाते आवश्यक है, इन चारो का संकेत इस सूत्र मे दिया गया है।

Elaboration—To abandon food (etc) with the intent of meditational death is called *anashan* or fasting This is of two types—progressive and sudden, or intentional and coincidental, or uninterrupted and interrupted The gradual fasting is here called *anupurvi*

In commentaries (*Niryukti* and *Tika*) the progression is stated as—After getting initiated an ascetic undergoes education (acquire knowledge) He understands the meaning of the canonical texts and then leads an itinerant life In due course when he becomes old and emaciated he wishes to embrace a meditational death He starts fasting for meditational death (*anashan*) These fasts are mainly of three types—(1) *Bhaktapratyakhyan* (mentioned in fifth lesson), (2) *Inginimaran* (mentioned in sixth lesson), and (3) *Padapopagaman* (mentioned in seventh lesson)

To select any one of these three, indulge in regular practice of getting detached from (1) *ahar* (food), (2) *upadhi* (imposture), and (3) *sharir* (body), and in the end to embrace meditational death after begging forgiveness from all and purifying the self through critical review and atonement This process is called *Anupurvi* (gradual or progressive) *Anashan* here According to *acharyas*—

Sanlekhana (ultimate vow) is done in circumstances like drought, old age, incurable fatal disease, and gradual depletion of the strength of the body (*Ratankarandak Shravakachar* 122)

Coincidental or sudden fasting is done when confronted with unexpected affliction, suddenly the strength of movement is lost, the body becomes numb or unconscious, there is a sudden attack of fatal disease, or the body becomes so weak that one is unable even to sit or get up

In the preceding lessons coincidental *anashans* were described and this chapter describes gradual or progressive *anashan* This is also called *anupurvi anashan, avyaghat* (uninterrupted) *anashan, saparakram* (with courage) *anashan* or *savichar* (with intention) *anashan* (*Niryukti* 263)

The four essentials of meditational death are mentioned in this verse, they are—(1) discipline, (2) knowledge, (3) patience, and (4) feeling of detachment

सलेखना विधि

२३१. दुविहं पि विदित्ता णं बुद्धा धम्मस्स पारगा।
अणुपुव्वीए संखाए आरभाओ तिउट्टति॥

२३१. बाह्य पदार्थो तथा रागादि आन्तरिक विकारो की हेयता को जानकर प्रबुद्ध भिक्षु जो धर्म के पारगामी हैं, दोनो प्रकार से अथवा बाह्य-आभ्यन्तर तप को धारण करके क्रम से शरीर-त्याग का अवसर जानकर आरम्भ (बाह्य प्रवृत्ति) से सम्बन्ध तोड लेते हैं।

PROCEDURE OF SAMLEKHANA

231. Aware of the vile nature of external things and inner vices, an enlightened ascetic, who is an expert of religion, stops all external (sinful) activity when he realizes that it is time to commence the progressive austerities, inner and outer, leading to abandonment of the body

२३२. कसाए पयणुए किच्चा अप्पाहारो तितिक्खए।
अह भिक्खू गिलाएज्जा आहारस्सेव अंतियं॥

२३२ भिक्षु पहले कषायो को कृश करे फिर अल्पाहारी बनकर परीषहो एव दुर्वचनो को सहन करता है। (आहार की अल्पता के कारण) यदि भिक्षु ग्लानि को प्राप्त होता है, तो आहार का सेवन करे। अन्यथा आहार का सर्वथा त्याग करके अनशन धारण करे।

232. The ascetic should first reduce passions and then reducing his food intake, he should tolerate afflictions and abuses If he becomes sick he should accept food; otherwise he should do *anashan* by completely abandoning food.

२३३. जीवियं णाभिकंखेज्जा मरणं णो वि पत्थए।
दुहतो वि ण सज्जेज्जा जीविए मरणे तहा॥

२३३. सलेखना तथा अनशन-साधना मे स्थित श्रमण न तो जीने की अभिलाषा करे, न मरने की प्रार्थना करे। जीवन और मरण दोनों मे भी आसक्तिरहित रहे।

233. An ascetic, who is practicing *samlekhana* or *anashan,* should neither desire to live nor pray for death He should remain detached both from life and death

२३४. मज्झत्थो णिज्जरापेही समाहिमणुपालए।
अंतो बहिं विउसिज्ज अज्झत्थं सुद्धमेसए॥

२३४ मध्यस्थ भाव मे स्थित (सुख, दु ख मे सम) निर्जरा का इच्छुक श्रमण समाधि का अनुपालन करे। आन्तरिक (राग, द्वेष आदि) तथा शरीर, उपकरण आदि बाह्य पदार्थों का विसर्जन करके अन्त करण की शुद्धि करे।

234. An equipoised ascetic (equanimous in happiness and misery) desirous of shedding *karmas* should observe ascetic-serenity He should discard all encumbrances, inner (attachment, aversion, etc.) and outer (body, equipment, etc), and purify his inner self or soul.

२३५. ज किंचुवक्कमं जाणे आउखेमस्स अप्पणो।
तस्सेव अन्तरद्धाए खिप्पं सिक्खेज्ज पंडिए॥

२३५. संलेखना काल मे भिक्षु को यदि जीवन-यापन मे आकस्मिक बाधा जान पड़े तो उस संलेखना काल के मध्य मे ही पण्डित भिक्षु शीघ्र पण्डितमरण को ग्रहण कर ले। आलोचना, प्रतिक्रमण तथा व्रत आरोपण कर आहार का त्याग कर दे।

235. If during the practice of *samlekhana* he encounters some unforeseen contingency, the ascetic should at once jump to the stage of meditational death. He should perform critical review, accept vows, and stop food intake

२३६. गामे अदुवा रण्णे थंडिलं पडिलेहिया।
अप्पपाणं तु विण्णाय तणाइं संथरे मुणी॥

२३६. ग्राम या वन मे जाकर जीव-जन्तुरहित स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन करे, उसे निर्दोष स्थान जानकर मुनि (वहाँ) घास बिछा ले।

PROCEDURE OF BHAKTA PRATYAKHYAN

236. The ascetic should go into a village or a jungle, select a place free of living beings and thoroughly inspect it Confirming that it is a faultless spot, he should make a bed of straw there

२३७. अणाहारो तुअट्टेज्जा पुट्ठो तत्थ हियासए।
णातिवेलं उवचरे माणुस्सेहिं वि पुट्ठवं॥

२३७ आहार का प्रत्याख्यान कर भिक्षु उस घास के बिछौने पर शान्तभाव से लेट जाये। उस समय क्षुधा-पिपासा आदि परीषहो और उपसर्गो से आक्रान्त होने पर सहन करे तथा मनुष्यकृत (अनुकूल-प्रतिकूल) उपसर्गो मे आक्रान्त होने पर भी मर्यादा का उल्लघन न करे।

237. After resolving to give up food, the ascetic should peacefully lie down on that straw-bed When tormented by afflictions like hunger and thirst he should tolerate them Also, if tormented by (pleasant and unpleasant) afflictions caused by human beings, he should not violate the sanctity of his vow

२३८. संसप्पगा य जे पाणा जे य उड्ढमहेचरा।
भुंजते मससोणिय ण छणे ण पमज्जए॥

२३८. कदाचित् चीटी आदि प्राणी अथवा आकाश मे उड़ने वाले गिद्ध आदि या सर्प आदि जो नीचे बिलो मे रहते हैं, वे अनशनधारी मुनि के शरीर का मॉस नोचे और रक्त पीएँ तो मुनि न तो उनकी घात करे और न ही रजोहरणादि से प्रमार्जन करे।

238. If insects, like ants, or birds, like vulture, or creatures dwelling in underground holes, like snakes, bite the flesh or suck the blood of the fasting ascetic, he should neither kill them nor ward them off with his ascetic-broom

२३९. पाणा देहं विहिंसंति ठाणाओ ण विउब्भमे।
आसवेहिं विवित्तेहिं तिप्पमाणोऽहियासए॥

२३९ (उस स्थिति मे मुनि ऐसा चिन्तन करे) ये प्राणी मेरे शरीर का विघात कर रहे है, (किन्तु ज्ञानादि आत्म-गुणो का नही) ऐसा विचार कर उन्हें न हटाए और न ही उस स्थान से उठकर अन्यत्र जाये। आस्रवो (हिंसादि) से पृथक् हो जाने के कारण (अमृत से सिंचित की तरह) वह तृप्ति अनुभव करता हुआ उपसर्गों को सहन करे।

239. (In that condition the ascetic should contemplate thus—) these creatures are hurting my body (and not the virtues of my soul, such as knowledge) With these thoughts he should neither remove them nor shift himself elsewhere (This way) distancing himself from influx of *karmas* (violence, etc) and feeling satiated (as if with ambrosia) he should tolerate afflictions

विवेचन–सूत्र २३१ से २३५ तक भक्त प्रत्याख्यान की पृष्ठभूमि रूप मे सलेखना की विधि बतायी है तथा आगे के सूत्रो मे भक्त प्रत्याख्यान की विधि है।

सलेखना–सम्यक् रूप से काय और कषाय का–लेखन (कृश) करना–संलेखना है। सलेखना दो प्रकार की होती है–बाह्य और आभ्यन्तर। आहार आदि का त्याग करना बाह्य सलेखना है तथा कषायो एव कर्म आवरणो को क्षीण करना आभ्यन्तर संलेखना है।

काल की अपेक्षा से सलेखना तीन प्रकार की होती है–जघन्या, मध्यमा और उत्कृष्टा। जघन्या सलेखना १२ पक्ष की, मध्यमा १२ मास की और उत्कृष्टा १२ वर्ष की होती है।

बारह वर्षीय सलेखना की विधि–प्रथम चार वर्ष तक उपवास, बेला, तेला, चोला या पचोला इस प्रकार विचित्र तप करे, पारणे के दिन उद्गमादि दोषो से रहित शुद्ध आहार ग्रहण करे। तत्पश्चात् फिर चार वर्ष तक उसी तरह विचित्र तप करे। पारणा के दिन विगयरहित (रसरहित) आहार ले। उसके बाद दो वर्ष तक एकान्तर तप करे, पारणा के दिन आयंबिल तप करे। ग्यारहवे वर्ष के प्रथम ६ मास तक उपवास या बेला, द्वितीय ६ मास मे विकृष्ट तप–तेला-चोला आदि। पारणे मे कुछ ऊनोदरीयुक्त आयंबिल किया जाता है। उसके पश्चात् १२वे वर्ष मे कोटी-सहित लगातार आयबिल करना होता है। पारणा के दिन आयबिल किया जाता है। बारहवे वर्ष मे साधक भोजन मे प्रतिदिन एक-एक ग्रास को कम करते-करते एक सिक्थ भोजन पर आ जाता है।

बारहवे वर्ष के अन्त मे वह अर्द्ध-मासिक या मासिक अनशन या भक्त प्रत्याख्यान आदि कर लेता है। दिगम्बर परम्परा में भी आहार को क्रमश· कम करने के लिए उपवास, आयबिल,

वृत्ति-सक्षेप, फिर रसवर्जित आदि विविध तप करके शरीर-सलेखना करने का विधान है। यदि आयु और शरीर-शक्ति पर्याप्त हो तो साधक बारह भिक्षु प्रतिमाएँ स्वीकार करके शरीर को कृश करता है। (*भगवती आराधना*, मूल २४६ से २४९, २५७ से २५९, *सागारधर्मामृत* ८/२३)

'**आरम्भाओ तिउट्टइ**'–मे आरम्भ शब्द हिसा के अर्थ मे नही किन्तु शरीर धारण करने की प्रवृत्तियॉ आरम्भ शब्द से सूचित की है। साधक उनसे सम्बन्ध तोड देता है, यानी अलग रहता है। यहॉ चूर्णिकार '**कम्मुणाओ तिउट्टइ**' ऐसा पाठान्तर मानकर अर्थ करते है–अष्टविध कर्मो को तोडता है।

वृत्तिकार ने '**अह भिक्खु गिलाएज्जा** ' इस पक्ति के दो विशेष अर्थ किये हैं– (१) सलेखना-साधना मे स्थित भिक्षु को आहार मे कमी कर देने से कदाचित् आहार के बिना मूर्च्छा-चक्कर आदि ग्लानि होने लगे तो सलेखना-क्रम को छोडकर विकृष्ट तप न करके आहार सेवन करना चाहिए। (२) अथवा आहार करने से अगर ग्लानि–अरुचि होती हो तो भिक्षु को आहार का त्याग कर देना चाहिए।

सलेखना काल के बीच मे ही यदि आयुष्य के पुद्गल सहसा क्षीण होते मालूम दे तो विचक्षण साधक को उसी समय बीच मे ही सलेखना क्रम छोडकर भक्त प्रत्याख्यान आदि अनशन स्वीकार कर लेना चाहिए। '**कि चुवक्कम जाणे** ' पद से यह सूचना दी है।

भक्त प्रत्याख्यान अनशन की विधि इस प्रकार है–सर्वप्रथम स्थान-विशुद्धि करे–ग्राम अरण्य आदि मे निर्दोष स्थान का चुनाव करे। फिर सेवा करने वाले प्रातिचारिक भिक्षुओ के साथ वहॉ जाये, फिर स्थण्डिल भूमि की प्रतिलेखना करे। स्थण्डिल का अर्थ है जिस स्थान पर मृत शरीर का परिष्ठापन किया जायेगा। उस स्थान की प्रतिलेखना स्वय करे या प्रतिचारक गीतार्थ हो तो वे करे। तथा अनशन काल मे आने वाले परीषहो, उपसर्गो को समभावपूर्वक सहन करता हुआ काल का पारगामी बने।

सूत्र २३४ मे **अज्झत्थ सुद्धमेसए**–शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जाती है–साधक अपने भीतर झॉके, जहॉ तक राग-द्वेष की ग्रन्थियॉ है–वहॉ तक शुद्ध अध्यात्म नही दीख पडता। इन ग्रन्थियो को खोलकर भीतर गहराई मे उतरे, वहॉ आत्मा के शुद्ध स्वरूप का दर्शन हो सकता है। (*आचाराग भाष्य*, पृ ३९६-३९७)

Elaboration—Proper (*samyak*) depletion (*lekhan*) of body and passions is called *samlekhana* It is of two types—external and internal To give up food (etc) is external *samlekhana* and to deplete passions and veils of *karmas* is internal *samlekhana*

With reference to time, *samlekhana* is of three types—minimum, medium and maximum Minimum is of 12 fortnight duration,

medium is of 12 month duration, and maximum is of 12 year duration.

Procedure of the twelve year *samlekhana*—For the first four years the ascetic should indulge in unusual austerities of observing one day, two day, three day, four day, or five day fasts, on the days of eating he should eat food that is pure and free of any faults including the fault of origin The next four years should also be spent doing the same unusual austerities but now on the days of eating he should eat bland and fat free food For next two years he should observe fast on every alternate day; on the day of eating he should do *ayambil-tap* (eating once in a day food cooked with a single ingredient and without any salt or other condiments) During the first six months of the eleventh year he should do one or two day fasts and during the next six months follow a more rigorous routine of three, four or five day fasts On the eating days he should do *ayambil,* eating less than his appetite During the twelfth year he should continuously do *ayambil-tap* During the twelfth year the seeker reduces one morsel everyday till he eats just one morsel

At the end of the twelfth year he does fortnight long or month long fasts Digambar tradition also follows this procedure of observing *samlekhana* after gradually reducing food intake with the help of various austerities including fasting, *ayambil,* limiting desires, and avoiding rich food If an aspirant has no constraints of age and strength he emaciates the body by observing the twelve *Bhikshu-pratimas* (special austerities prescribed for ascetics)

(*Bhagavati Aradhana,* M p 246-249 and 257-259, *Sagaradharmamrita* 8/23)

Arambhao tiuttai*—**In this phrase the term *arambh* does not mean violence or sinful activity Here it means the attitude or desire to assume physical form (body) An aspirant breaks away from or avoids such desires The commentator (*Churni*) accepts an alternative text—kammunao tiuttai***—and interprets as—sheds eight types of *karma.*

The commentator (*Vritti*) has given two special interpretations of the phrase ***aha bhikkhu gilaejja....***—(1) If an ascetic observing *samlekhana* practices gets sick, unconscious, or dizzy due to lack of food and nutrition, he should stop rigorous austerities, terminate the *samlekhana* process and accept food (2) If he develops an aversion for food or has lack of appetite, he should give up food.

Kim chuvakkamam jane...—This phrase conveys that during the *samlekhana* practices if an accomplished seeker realizes that his life-span is coming to an end, he should terminate the *samlekhana* process and shift to *bhakta pratyakhyan* or other types of ultimate fasting.

The procedure of *bhakta pratyakhyan* fast—The first step is selecting a suitable place in a village or jungle and cleaning it After this he should go there along with the attendant ascetics and inspect the *sthandil* spot *Sthandil* spot means the spot where the dead body will be placed The spot should be inspected by himself or a scholarly ascetic who is conversant with the procedure. Occupying the place, he should tolerate the afflictions and torments with equanimity during the fasting period and see the end of his life

Ajjhattham suddhamesae (aphorism 234)—this is interpreted as—an aspirant should indulge in introspection As long as the knots of attachment and aversion exist it is not possible to see the sublime inner self or soul He should undo these knots and go deeper where it becomes possible to behold the pure and sublime form of soul

(*Acharanga Bhashya,* p 396-397)

इगिनीमरण अनशन की विधि

२४०. गंथेहिं विवित्तेहिं आउकालस्स पारए।
पग्गहियतरगं चेयं दवियस्स वियाणओ॥

२४०. उस सलेखना-रत भिक्षु की (शरीर उपकरणादि की बाह्य और रागादि की अन्तरग) गॉठे (ग्रन्थियाँ) खुल जाती है, तब वह मुनि आयुष्य के काल का पारगामी हो जाता है।

यह इंगितमरण भक्त प्रत्याख्यान से विशिष्टतर है, अतिशय ज्ञानी और संयमी भिक्षु ही इसे प्राप्त करते हैं।

PROCEDURE OF INGINIMARAN

240. When the knots (external, like those of body and equipment, and internal, like attachment) of an ascetic doing *samlekhana* are undone, he becomes aware of his life-span (exact time of impending death).

This *ingit-maran* is of a higher level than that of *bhakta pratyakhyan*. Only highly sagacious and disciplined ascetics reach this level.

२४१. अयं से अवरे धम्मे णायपुत्तेण साहिए।
आयवज्जं पडीयारं विजहिज्जा तिहा तिहा॥

२४१ ज्ञात-पुत्र भगवान महावीर ने भक्त प्रत्याख्यान से भिन्न इंगिनीमरण अनशन का यह आचार-धर्म बताया है। इस अनशन मे भिक्षु शारीरिक क्रियाओं के लिए अपने सिवाय किसी दूसरे के सहारे (परिचर्या) का (तीन करण, तीन योग से) त्याग करे।

241. Jnataputra Bhagavan Mahavir has defined this code of conduct related to *inginimaran* fasting as separate from *bhakta pratyakhyan*. During this fasting, the ascetic should reject any help (service in three ways and by three means) related to the movements and activities of the body, from anyone other than himself.

२४२. हरिएसु ण णिवज्जेज्जा थंडिलं मुणिआ सए।
विउसिज्ज अणाहारो पुट्ठो तत्थऽहियासए॥

२४२. वह हरियाली पर शयन न करे, स्थण्डिल (निर्दोष स्थल) को देखकर वहाँ सोए। वह आहार-परित्यागी भिक्षु बाह्य एव आभ्यन्तर उपधि का व्युत्सर्ग करके भूख-प्यास आदि परीषहों तथा उपसर्गों के आने पर सहन करे।

242. He should not lie down on grass (or other vegetation) but look for a clean spot (free of vegetation and beings). That fasting ascetic should abandon external and internal imposture and endure all afflictions including hunger and thirst when tormented by them.

२४३. इंदिएहिं गिलायंते समियं साहरे मुणी।
तहावि से अगरिहे अचले जे समाहिए॥

२४३. वह मुनि इन्द्रियो से ग्लान (थक जाने पर) समित अर्थात् यतना सहित, परिमित, एवं मात्रा सहित हाथ-पैर आदि पसारे। अपनी प्रतिज्ञा पर अचल तथा समाहित (शुक्लध्यान एवं धर्मध्यान मे मन को लगाने वाला) (परिमित भूमि में शरीर चेष्टा करता हुआ भी) निन्दा का पात्र नही होता।

243. When he suffers from fatıgue of sense organs he should make only lımited, careful and essential movements. One who ıs unwavering ın hıs resolution and absorbed (in pure and pious medıtation) does not become an obȷect of censure (even when he indulges ın lımıted movement).

२४४. अभिक्कमे पडिक्कमे संकुचए पसारए।
काय-साहारणट्ठाए एत्थं वा वि अचेयणे॥

२४४. (इस अनशन मे स्थित मुनि बैठे-बैठे या लेटे-लेटे थक जाने पर) वह शरीर-सधारण के निमित्त गमन और आगमन करे, (हाथ-पैर आदि को सिकोडे और पसारे) (यदि शरीर मे शक्ति हो तो) इस इंगिनीमरण अनशन में भी अचेतन की तरह चेष्टारहित होकर लेटा रहे।

244. (If he gets tıred of sıtting or lying in one posture while observıng thıs fast) he may move to and fro (or stretch hıs lımbs) ın order to remove numbness of hıs body (However, if hıs strength permıts) he should remaın motionless as if he ıs unconscıous even while observıng thıs *ıngınımaran* fast.

२४५. परिक्कमे परिकिलते अदुवा चिट्ठे अहायते।
ठाणेण परिकिलंते णिसीएज्ज य अतसो॥

२४५ (अनशन मे स्थित मुनि) बैठा-बैठा थक जाने पर नियत क्षेत्र में चले अथवा सीधा खडा हो जाये। यदि खडे रहने में कष्ट होता हो तो अन्त में बैठ जाये।

245. If he feels fatıgued after sittıng for a long tıme, he may move around ın a predetermıned area, or stand erect. When he gets tıred of standıng he may at last sit down

२४६. आसीणेऽणेलिसं मरणं इंदियाणि समीरए।
कोलावासं समासज्ज वितहं पाउरेसए॥

२४६. इस असाधारण मरण की साधना में लीन मुनि अपनी इन्द्रियो का सम्यक् प्रकार से प्रयोग करे। (सहारे के लिए किसी काष्ठ स्तम्भ या पट्टे की आवश्यकता होने पर) घुन, दीमक आदि रहति तथा निश्छिद्र काष्ठ स्तम्भ या पट्टे का अन्वेषण करे।

246. An ascetic absorbed in this unique fast unto death should make proper and disciplined use of his sense-organs. (When in need to lean on) he should seek a wooden plank or pillar that is free of wood worms, white ants and holes.

२४७. जओ वज्जं समुप्पज्जे ण तत्थ अवलंबए।
ततो उक्कसे अप्पाणं सव्वे फासेऽहियासए॥

२४७. जिस क्रिया से कर्म या वर्ज्य–पाप उत्पन्न हो, ऐसी वस्तु का सहारा न ले। उस स्थान से अपने आप को हटा ले और सभी दु ख-स्पर्शों को सहन करे।

247. He should not lean against anything that engenders karmic bondage He should leave that place and endure all hardships

विवेचन–भक्त प्रत्याख्यान से इगिनीमरण अनशन विशिष्टतर है। इसमे अपने सिवाय किसी दूसरे की सेवा लेने का भी निषेध है।

इगिनीमरण साधक अपना अग-सचार, उठना, बैठना, करवट बदलना, शौच, लघु शका आदि समस्त शारीरिक क्रियाएँ स्वयं करता है। तीन करण तीन योग का अर्थ है, दूसरो के द्वारा करने, कराने, व किये जाते हुए का अनुमोदन करने का भी वह मन, वचन, काया से त्याग करता है। वह अपनी निर्धारित भूमि मे ही गमनागमन आदि करता है, उससे बाहर नही। स्थण्डिल से अभिप्राय है, जीव-जन्तु, हरियाली आदि से रहित वह स्थान, जहाँ वह इच्छानुसार बैठे, लेटे या सो सके। जहाँ तक हो सके, वह अगचेष्टा कम से कम करे। हो सके तो वह पादपोपगमन की तरह अचेतनवत् सर्वथा निश्चेष्ट-नि स्पन्द होकर रहे। यदि बैठा-बैठा या लेटा-लेटा थक जाये तो जीव-जन्तुरहित काष्ठ की पट्टी आदि किसी वस्तु का सहारा ले सकता है। किन्तु किसी भी स्थिति मे आर्त्तध्यान या राग-द्वेषादि का विकल्प जरा भी मन मे न आने दे।

णिसिएज्ज की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने कहा है–पर्यंकासन–उकडू आसन आदि मे बैठा हुआ मुनि जब थक जाये तो जिस प्रकार समाधि उपजे–पार्श्व शयन, उत्तानासन या अन्य आसन से बैठकर समाधिस्थ रहे।

Elaboration—As compared to *bhakta pratyakhyan* the *inginimaran* fast is of a higher level During this fasting, assistance from any quarter is proscribed

A seeker observing *inginimaran* fast performs all movement of his body, standing, sitting, turning around, relieving himself and other activities, himself Three ways and three means indicate that he rejects with body, speech and mind, things done by others, caused to be done by others and approved of being done by others He moves about within an area predetermined by him and not outside it *Sthandil* means that spot which is free of any beings or vegetation and where he can freely sit, lie down, or sleep As far as possible he should make minimum movement of his limbs and other organs If possible he should remain motionless like when one is unconscious If he gets tired of sitting or lying down he may lean on a wooden plank or other such thing that is not infested with beings But under no circumstance should he allow himself to be swept by gloom or feelings of attachment and aversion

Nisiejja—elaborating this word the commentator (*Churni*) says—when an ascetic gets tired sitting in *paryankasan* (a specific posture) he may continue his meditation by acquiring other posture conducive to peaceful meditation Some of these are—lying on sides, *uttanasan* (a yogic posture), or other sitting or reclining postures

पादपोपगमन अनशन विधि

२४८. अय चायततरे सिया जे एव अणुपालए।
सव्व-गायणिरोधे वि ठाणाओ ण विउब्भमे॥

२४८ यह पादोपपगमन अनशन भक्त प्रत्याख्यान से और इगिनीमरण से भी विशिष्टतर है। जो यतनापूर्वक पालन करता है वह सारा शरीर अकड जाने पर भी अपने स्थान से चलित नही होता।

PROCEDURE OF *PADAPOPAGAMAN* FAST

248. The *padapopagaman* fast is even superior to *bhakta pratyakhyan* and *inginimaran* He who immaculately observes

it does not shift from his place even when his whole body becomes stiff.

२४९. अयं से उत्तमे धम्मे पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे।
अचिरं पडिलेहित्ता विहरे चिट्ठ माहणे॥

२४९. यह (पादपोपगमन अनशन) उत्तम धर्म है। यह पूर्व कथित स्थानद्वय–भक्त प्रत्याख्यान और इंगिनीमरण से विशिष्टतर आचार वाला है। पादपोपगमन अनशन स्वीकारने वाला भिक्षु जीव-जन्तुरहित स्थण्डिल स्थान की प्रतिलेखना करके वहाँ अचेतनवत् स्थिर हो जाये।

249. This (*padapopagaman* fast) is the supreme *dharma* (path of purification) It incorporates a conduct that is superior even to those associated with *bhakta pratyakhyan* and *inginimaran* An ascetic accepting this practice should inspect a suitable spot that is free of beings and commence his meditation, remaining motionless as if unconscious.

२५०. अचित्तं तु समासज्ज ठावए तत्थ अप्पगं।
वोसिरे सव्वसो कायं ण मे देहे परीसहा॥

२५०. अचित्त स्थण्डिल एवं स्तम्भ आदि मिलने पर वहाँ स्वय को स्थापित कर दे। अपने शरीर का सब प्रकार से व्युत्सर्ग कर दे। (परीषह उपस्थित होने पर) ऐसी भावना करे–"यह शरीर ही मेरा नहीं है, तब परीषह कैसे होंगे?"

250. On finding a place or a plank that is free of beings he should station himself there (on it). He should then completely dissociate himself from his body. (When confronted with afflictions) he should contemplate—"When this body does not belong to me how can its suffering effect me ?"

२५१. जावज्जीवं परीसहा उवसग्गा य संखाय।
संवुडे देहभेयाए इति पण्णेऽहियासए॥

२५१. जब तक जीवन है, तब तक ही ये परीषह और उपसर्ग (आते) हैं, यह जानकर संवृत्त आत्मा शरीर को त्यागने वाला प्राज्ञ भिक्षु उन्हें समभावपूर्वक सहन करे।

251. Knowing that afflictions and torments last only as long as one lives, the sagacious ascetic who has completely

dissociated himself from his body and is fully prepared (for its dissolution) should endure them with equipoise.

२५२. भेउरेसु ण रज्जेज्जा कामेसु बहुतरेसु वि।
इच्छा-लोभं ण सेवेज्जा धुववण्णं सपेहिया॥

२५२. शब्द आदि सभी प्रचुरतर काम क्षण-भंगुर है। भिक्षु उनमें रत न हो। ध्रुव वर्ण (शाश्वत मोक्षस्वरूप) का सम्यक् विचार करके भिक्षु इच्छा रूप लोभ (निदान) का भी सेवन न करे।

252. All the sensual pleasures, including sound, are transient. An ascetic should not indulge in them. He should think about the permanent colour (eternal character of liberation) and should not even indulge in wishful thinking which too is a form of greed.

२५३. सासएहिं णिमंतेज्जा दिव्वमायं ण सद्दहे।
तं पडिबुज्झ माहणे सव्वं नूमं विधूणिया॥

२५३ कोई देवता आयुपर्यन्त शाश्वत रहने वाले वैभवो या काम-भोगों के लिए भिक्षु को निमन्त्रित करे तो वह उस दैवी माया पर श्रद्धा न करे। वह माहन साधु उस समस्त माया को भली भॉति जानकर उसका परित्याग करे।

253. If some god entices an ascetic by offering life long grandeurs and divine pleasures, he should not be drawn by that divine chimera. That sage should see through that illusion and reject it.

२५४. सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए आउकालस्स पारए।
तितिक्खं परमं णच्चा विमोहण्णतरं हितं॥

त्ति बेमि।

॥ अट्ठमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥
॥ विमोक्खो · अट्ठम अज्झयण सम्मत्त ॥

२५४. देव सम्बन्धी तथा मनुष्य सम्बन्धी सभी प्रकार के विषयों में अनासक्त रहे। तितिक्षा को सर्वश्रेष्ठ जानकर भक्त प्रत्याख्यान, इगिनीमरण, पादपोपगमन रूप त्रिविध विमोक्ष में से किसी एक विमोक्ष का आश्रय ले।

—ऐसा मै कहता हूँ।

254. He should remain detached from all divine and human indulgences. Considering forbearance to be ideal he should resort to any of the three paths of freedom—*bhakta pratyakhyan, ınginımaran,* or *padapopagaman.*

—So I say.

विवेचन–इन गाथाओं में पादपोपगमन अनशन की महत्ता और मर्यादा का कथन है। सूत्र २२५ के विवेचन में इसका स्वरूप बताया जा चुका है। यह अनशन तीनों मुद्राओ में किया जा सकता है। जैसे–**निपन्न**–सोकर कायोत्सर्ग करना, **निषण्ण**–बैठकर कायोत्सर्ग करना और **ऊर्ध्व**–खडे होकर। जिस मुद्रा में कायोत्सर्ग स्वीकार किया जाता है अन्त तक उसी मुद्रा में रहना होता है।

भगवतीसूत्र में पादपोपगमन अनशन के दो प्रकार बताये हैं–**निर्हारिम** और **अनिर्हारिम**। यदि ग्राम आदि (बस्ती) के अन्दर अनशन किया जाता है तो निर्हारिम होता है। अर्थात् प्राण-त्याग के पश्चात् शरीर का दाह-संस्कार किया जाता है और यदि बस्ती से बाहर जगल में किया जाता है तो **अनिर्हारिम** होता है–दाह-संस्कार नहीं किया जाता। नियमत· यह अनशन अप्रतिकर्म है। इसका तात्पर्य यह है कि पादपोपगमन अनशन मे साधक पादप–वृक्ष की तरह निश्चल-नि स्पन्द रहता है। इसे ही प्रायोपगमन कहा गया है। (*भगवतीसूत्र,* श २५, उ ७)

दिगम्बर परम्परा मे प्रायोपगमन के बदले प्रायोग्यगमन एव पादपोपगमन के स्थान पर पादोपगमन शब्द मिलते है। भव का अन्त करने के योग्य संहनन और संस्थान को प्रायोग्य कहते हैं। प्रायोग्य की प्राप्ति होना–प्रायोग्यगमन है। पैरो से चलकर योग्य स्थान में जाकर जो मरण स्वीकारा जाता है, उसे पादोपगमन कहते हैं। इसमे स्व-पर–दोनो के प्रयोग (सेवा-शुश्रूषा) का निषेध है।

इस अनशन मे स्थित भिक्षु को उत्कृष्ट निर्जरा होती है। इस स्थिति मे देव भी साक्षात् प्रकट होकर भिक्षु की दृढ़ता व स्थिरता की परीक्षा लेने अथवा उसको अनशन से विचलित करने के लिए दिव्य काम-भोगो का निमन्त्रण दे सकता है। अत· दिव्य माया पर विश्वास नहीं करने का संकेत है। **इच्छा-लोभ** से एक अभिप्राय यह भी है कि इस अनशन की स्थिति में अगले जन्म में काम-भोगो की प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का निदान न करे। ध्रुव वर्ण–शब्द मोक्ष एवं संयम के लिए प्रयुक्त हुआ है–जिसकी यश, कीर्ति सदा स्थिर रहती है, वह ध्रुव वर्ण है।

॥ अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

॥ विमोक्ष : अष्टम अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—These verses reveal the ımportance and rules of *padapopagaman* fast. Its form has been dıscussed in the elaboration of aphorısm 225 Thıs fast can be done by dıssocıatıng oneself from

the body in any of the three postures—*nipanna* (lying down), *nishanna* (sitting), or *urdhva* (standing erect) One has to remain throughout in the posture in which he starts this practice.

In *Bhagavati Sutra* there is a mention of two types of *padapopagaman* fast—*nirharim* and *anirharim*. When the fast is done in a village or other inhabited area it is *nirharim*. This means that the body is cremated after death When it is done in jungle or outside an inhabited area it is *anirharim* This means that the body is not to be cremated after death As a rule this fast is absolutely irreversible Once commenced an aspirant has to be still and immobile like a tree (*padap*) This is also called *prayopagaman*.

In the Digambar tradition we find *prayogyagaman* instead of *prayopagaman* and *padopagaman* instead of *padapopagaman*. The constitution and structure of the body required to end rebirth is called *prayogya* To attain *prayogya* is *prayogyagaman*. The death accepted by walking to a suitable place is called *padopagaman* (moving on feet) In this practice any care by self or other is prohibited

An ascetic doing this practice achieves superlative cleansing (shedding *karmas*) There are chances that gods may appear and offer divine pleasures in order to test the resolve and stability of the practicing ascetic and to entice him into abandoning the practice Therefore, the advise is not to believe in divine illusions The censure of greed of desires or wishful thinking also indicates that while doing this practice one should not wish to be rewarded with mundane pleasures in the next birth The term *dhruva varna* means one whose glory and fame is everlasting, here it has been used for liberation and discipline

● END OF LESSON EIGHT ●

● VIMOKSHA : END OF EIGHTH CHAPTER ●

उवहाणसुयं : नवमं अज्झयणं
उपधान-श्रुत : नवम अध्ययन

आमुख

✦ इस नवम अध्ययन का नाम 'उपधान-श्रुत' है।

✦ उपधान का अर्थ है सम्बल, सहारा आलम्बन। शय्या पर सुख से सोने के लिए सिर के नीचे (पास मे) सहारे के लिए रखा जाने वाला साधन—तकिया आदि द्रव्य उपधान है।

✦ ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप भाव उपधान है, जिनसे चारित्र को सुरक्षित रखने के लिए सहारा मिलता है। इनसे साधक को अनन्त सुख-शान्ति एव आनन्द की अनुभूति होती है।

✦ मलिन वस्त्र को जल आदि द्रव्यो से धोकर शुद्ध किया जाता है। जल आदि पदार्थ द्रव्य-उपधान कहलाते हैं। आत्मा पर लगे हुए कर्म मैल बाह्य-आभ्यन्तर तप से धुल जाते—नष्ट हो जाते है। अत कर्म की मलिनता को दूर करने वाले तप आदि भाव उपधान है।

✦ इस उपधान श्रुत अध्ययन मे भगवान महावीर के दीर्घ तप का वर्णन है। भगवान महावीर की दीक्षा से लेकर निर्वाण तक की मुख्य जीवन-घटनाओ का भी उल्लेख है। इन्हे पढ़ते समय ऐसा लगता है कि आर्य सुधर्मा ने भगवान महावीर के साधनाकाल की प्रत्यक्ष-दृष्ट विवरणी (रिपोर्ट या डायरी) प्रस्तुत कर दी है।

✦ इस अध्ययन मे तप का वर्णन दो प्रकार से किया गया है। एक भगवान महावीर द्वारा आचरित तप तथा भगवान द्वारा प्रतिपादित तप सम्बन्धी आचार। इसके चार उद्देशक हैं।

✦ प्रथम उद्देशक मे भगवान की चर्या का, द्वितीय उद्देशक में उनकी शय्या (आसेवित स्थान और आसन) का, तृतीय उद्देशक मे भगवान द्वारा सहे गये परीषह-उपसर्गों का और चतुर्थ उद्देशक मे क्षुधा आदि से आतंकित होने पर उनकी चिकित्सा का वर्णन है।

✦ इस अध्ययन में भगवान की उत्कृष्ट ध्यान-साधना का बडा ही स्पष्ट वर्णन है। उनका अधिकतर समय ध्यान में ही बीतता और एकान्त स्थान में विविध प्रकार के आसनों में वे अनिमेष ध्यान करते। इसके साथ भगवान की अद्वितीय परीषह उपसर्ग सहिष्णुता का भी लोमहर्षक वर्णन इस अध्ययन मे है।

UVAHANASUYAM : NAVAMAM AJJHAYANAM
UPADHAN-SHRUT : NINTH CHAPTER
THE SUCCOUR

INTRODUCTION

- The name of this ninth chapter is **Upadhan-shrut.**
- *Upadhan* means support, aid, or succour To sleep comfortably in a bed we use support of a pillow under the head or at flanks This pillow and other such things are called physical support (*dravya upadhan*)
- Knowledge, perception, conduct and austerities are mental supports (*bhava upadhan*) that are helpful in protecting right conduct Because of these, an aspirant experiences infinite bliss, peace and joy
- A dirty cloth is washed with the help of water and other material things Here, water and other material things are called physical *upadhan* The dirt of *karmas* that tarnishes soul is washed or destroyed by inner and outer austerities Therefore austerities and other such practices that remove the dirt of *karmas* are called mental *upadhan*
- This chapter, titled **Upadhan Shrut,** contains description of extensive austerities performed by *Bhagavan* Mahavir Also mentioned are the important incidents of *Bhagavan* Mahavir's life-from his initiation to *nirvana* While reading these it appears as if Arya Sudharma has presented an eye-witness account or a diary of the period of spiritual practices from *Bhagavan* Mahavir's life
- In this chapter austerities have been described two ways. First are the austerities performed by *Bhagavan* Mahavir, and second

are the codes of austerities propagated by *Bhagavan*. It has four lessons.

- The first lesson contains information about his daily routine; the second about his bed (the place of stay and posture); the third about the afflictions and torments endured by him, and the fourth about the treatment he took when tormented by hunger, etc

- This chapter contains a vivid description of the superlative spiritual practices of *Bhagavan*. Most of his time was spent in meditation He meditated continuously for extended periods in numerous postures in complete solitude With all this is given the electrifying account of *Bhagavan's* unprecedented capacity to endure afflictions and torments

पढमो उद्देसओ | प्रथम उद्देशक | LESSON ONE

भगवान महावीर की विहार चर्या

२५५. अहासुयं वदिस्सामि जहा से समणे भगवं उट्ठाय।
संखाए तंसि हेमते अहुणा पव्वइए रीयत्था॥१॥

२५५. (आर्य सुधर्मा स्वामी कहते है–जम्बू !) श्रमण भगवान ने दीक्षा लेकर जिस प्रकार विहार चर्या की, उस सम्बन्ध मे जैसा मैने सुना है, वैसा मै तुम्हे बताऊँगा। भगवान ने दीक्षा का अवसर जानकर घर से अभिनिष्क्रमण किया। वे उस हेमन्त ऋतु मे दीक्षित हुए और तत्काल क्षत्रियकुण्ड से विहार कर गए।

BHAGAVAN MAHAVIR'S ROUTINE

255. (Arya Sudharma Swami said, O Jambu !—) I will tell you what I have heard about the routine *Bhagavan* Mahavir followed since he got initiated Knowing the opportune moment *Bhagavan* left his home and took the path of renunciation He got initiated during the winter and at once left *Kshatriyakund* to commence his itinerant way.

२५६. णो चेविमेण वत्थेण पिहिस्सामि तंसि हेमते।
से पारए आवकहाए एयं खु अणुधम्मियं तस्स॥२॥

२५६ (दीक्षा के समय भगवान ने कधे पर डाले हुए एक शाटक वस्त्र को निर्लिप्त भाव से धारण किया था। तब भगवान ने सकल्प किया–) "मै हेमन्त ऋतु में इस वस्त्र से शरीर को नहीं ढकूँगा।" वे इस प्रतिज्ञा का जीवन पर्यन्त पालन करते रहे और (अन्त में) ससार या परीषहो के पारगामी बन गए थे। यह उनकी अनुधर्मिता ही थी।

256. (At the time of initiation *Bhagavan* had placed just a single piece of cloth on his shoulder with a feeling of detachment He then resolved—) "I will not cover my body with this piece of cloth during the winter" He stuck to this resolve all his life and (in the end) crossed the worldly ocean (or won over the afflictions). This was his *anudharmita* (compliance of his own doctrine)

विहार चर्या
1
2
3
4
5
6
16

चित्र परिचय १६

Illustration No. 16

भगवान महावीर की विहार चर्या

१ श्रमण महावीर हेमन्त ऋतु के प्रथम पक्ष (मृगसर वदी १०) को दीक्षित हुए। उस समय उनके कधे पर मात्र एक वस्त्र था। अपने स्वजन परिजनो को छोडकर वे क्षत्रियकुण्ड से विहार कर गये।

—अ ९, उ १/१, सूत्र २५६

२ दीक्षा लेते समय भगवान के शरीर पर सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन आदि लगा था। मधुमक्खी, भ्रमर आदि अनेक क्षुद्र प्राणी उमसे आकृष्ट हो शरीर पर डक मारते, खून पीते, मॉस नोच लेते। चार मास तक इस प्रकार का यह उपसर्ग चलता रहा।

—अ ९, उ १, सूत्र २५७

३ भगवान आँखो को अपलक रखकर तिरछी भीत पर ध्यान करते। उन्हे देखकर भयभीत हुए लोग चिल्लाते, उन पर डण्डो आदि से प्रहार करते।

—अ ९, उ १ सूत्र २५९

४ भगवान को एकान्त मे खडा देखकर कुछ कामुक स्त्रियॉ उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनमे भोग प्रार्थना करती। तव प्रभु ध्यान मे गहरे प्रविष्ट हो जाते।

—अ ९, उ १ सूत्र २६०

५ भगवान को ध्यानस्थ देख कुछ लोग उनका अभिवादन करते तो कुछ डण्डो से पीटने लगते। कुछ लोग उन्हे प्रसन्न करने वीणा आदि वजाते किन्तु प्रभु सबसे निरपेक्ष रहकर अपने ध्यान मे स्थिर रहते।

अ ९ उ १ सूत्र २६२

BHAGAVAN MAHAVIR'S ROUTINE

1 Shraman Mahavir got initiated on *Margsheersh Krishna* 10th during the first fortnight of winter At that time he had just a single piece of cloth on his shoulder He at once left *Kshatriyakund* leaving behind his family and relatives

—*9/1/1/256*

2 At the time of renunciation the body of *Bhagavan* was anointed with *goshirsh-chandan* Attracted by the fragrance numerous insects like bumble-bee rested on his body and pierced his body, sucked blood and tore flesh This continued for more than four months

—*9/1/257*

3 Bhagavan gazed unblinking at a slanting wall Seeing his staring eyes, people used to get terrified and abuse him and beat him with sticks

—*9/1/259*

4 Finding *Bhagavan* staying in solitude, lusty women were attracted to him and approached to seek his favours He would then go deeper into his soul and get engrossed in meditation

—*9/1/260*

5. Seeing *Bhagavan* standing in meditation some people would greet him and others start beating him with sticks Some even played *Veena* before him but *Bhagavan* remained untouched by all this and continued his meditation.

—*9/1/262*

२५७. चत्तारि साहिए मासे बहवे पाणजाइया आगम्म।
अभिरुज्झ कायं विहरिंसु आरुसियाणं तत्थ हिंसिंसु॥३॥

२५७. (अभिनिष्क्रमण के समय भगवान का शरीर गोशीर्ष चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यो से लिप्त था उस कारण भौरे आदि) बहुत से प्राणी आकर उनके शरीर पर बैठ जाते और रसपान का प्रयत्न करते। (रस प्राप्त न होने पर) वे रुष्ट होकर भगवान के शरीर पर डंक मारते। यह क्रम चार मास से अधिक समय तक चलता रहा।

257. [At the time of renunciatıon the body of *Bhagavan* was anointed with *goshırsh-chandan* (a type of sandal-wood paste) and other aromatic pastes Attracted by the fragrance—] numerous ınsects lıke bumble-bee rested on his body and tried to suck pollen. (Faılıng to do so—) they stung his body with annoyance Thıs continued for more than four months.

२५८. संवच्छरं साहियं मासं जं ण रिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलए ततो चाई तं वोसेज्ज वत्थमणगारे॥४॥

२५८ भगवान ने तेरह महीनो तक दीक्षा के समय कधे पर रखे वस्त्र का त्याग नहीं किया। फिर अनगार और त्यागी भगवान महावीर उस वस्त्र का परित्याग करके अचेलक हो गए।

258. *Bhagavan* dıd not discard the sıngle pıece of cloth he had placed on hıs shoulder at the tıme of initıation After that the homeless and all-renouncıng *Bhagavan* Mahavir discarded that cloth and became non-clad.

विवेचन—हेमन्त ऋतु मे मृगसर कृष्णा दशमी को भगवान ने दीक्षा लेकर दिन का एक मुहूर्त्त शेष था, तभी कुण्डग्राम से विहार करके कर्मारग्राम पहुँचे। इस तत्काल विहार का कारण बताते हुए वृत्तिकार कहते हैं—अपने पूर्व परिचित सगे-सम्बन्धियो के साथ अधिक रहने से अनुराग एव मोह जागृत होने की अधिक सम्भावना है। अत भगवान ने भविष्य में आने वाले साधकों का मार्गदर्शन करने के लिए स्वयं आचरण करके बता दिया।

'एय खु अणुधम्मियं तस्स', उनका यह आचरण अनुधार्मिक था। वृत्तिकार ने इसका अर्थ किया है यह वस्त्र-धारण पूर्व तीर्थंकरो द्वारा आचरित धर्म का अनुसरण मात्र था। अथवा अपने पीछे आने वाले साधु-साध्वियो के लिए अपने आचरण के अनुरूप मार्ग को स्पष्ट करना था।

शिष्यो की रुचि, शक्ति, सहिष्णुता, देश, काल, पात्रता आदि देखकर तीर्थंकरो को भविष्य में वस्त्र-पात्रादि उपकरण सहित धर्माचरण का उपदेश देना होता है। इसी को अनुधर्मिता कहते है।

आचार्य महाप्रज्ञ जी ने अनुधर्मिता का अर्थ किया है-पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के आचार का अनुपालन करना। सभव है भगवान पार्श्वनाथ के समय से तीन शाटक, दो शाटक, एक शाटक एवं अचेलक चार परम्पराएँ प्रचलित थी। भगवान पहले एक शाटक रहे फिर अचेल हो गये यह उनकी अनुधर्मिता है।

पाली शब्द कोष मे 'अनुधम्मता' शब्द मिलता है जिसका अर्थ होता है-धर्मसम्मतता, धर्म के अनुरूप। इस दृष्टि से भी 'पूर्व तीर्थंकर आचरित धर्म के अनुरूप' अर्थ सगत लगता है।

चूर्णिकार ने बताया है-भगवान ने उस वस्त्र को एक वर्ष तक यथारूप से धारण करके रखा, हटाया नही। अर्थात् तेरहवे महीने तक उनका कन्धा उस वस्त्र से रिक्त नही हुआ। क्योंकि सभी तीर्थंकर एक वस्त्र सहित दीक्षा लेते हैं। भगवान ने तो उस वस्त्र का भाव से परित्याग कर दिया था, किन्तु स्थितिकल्प के कारण वह कन्धे पर पडा रहा। स्वर्णबालुका नदी के प्रवाह मे बहकर आये हुए कॉटो मे उलझा हुआ देख, पुन उन्होने कहा-"वोसिरामि-मैं वस्त्र का व्युत्सर्जन करता हूँ।"

निष्कर्ष यह है कि भगवान पहले एक वस्त्र सहित दीक्षित हुए, फिर निर्वस्त्र हो गये, यह परम्परा के अनुसार किया गया था।

कल्पसूत्र की सुबोधि का टीका तथा महावीर चरिय आदि मे वस्त्र-त्याग की घटना के साथ ब्राह्मण को पस्त्र देने का प्रसग है किन्तु चूर्णि मे यह उल्लेख नही है।

पाणजाइया-का अर्थ वृत्तिकार और चूर्णिकार दोनो 'भ्रमर आदि' करते हैं।

आरुसियाण-का अर्थ चूर्णिकार करते हैं-'अत्यन्त रुष्ट होकर' तथा वृत्तिकार अर्थ करते हैं-मॉस व रक्त के लिए शरीर पर चढ़कर

Elaboration—Durıng the wınter on the *Margsheersh Krıshna* (the moonless or dark fortnıght of a month) tenth, *Bhagavan* Mahavır got ınıtıated He at once left Kundagram and arrıved at Karmar vıllage when ıt was forty eight mınutes to sunset Explaınıng the reason for thıs ımmedıate departure the commentator (*Vrıttı*) says—There are ıncreased chances of enhancement of feelıngs of fondness and love ıf one remaıns wıth hıs frıends and relatives for a longer perıod Therefore by followıng the ıdeal conduct *Bhagavan* set an example for the future aspırants takıng to the spırıtual path

Eyam khu anudhammiyam tassa—Thıs conduct was in complıance wıth the doctrıne. According to the commentator (*Vritti*) this means that wearing the piece of cloth was just an emulatıon of

the ideal followed by preceding *Tirthankars* Also by acting according to the ideal conduct *Bhagavan* set an emphatic example for the future ascetics to follow

The *Tirthankars* have to preach the code of religious conduct giving due consideration to aptitude, capacity, endurance, place, time, ability and other such parameters related to the future disciples This is called *anudharmita*

Acharya Mahaprajna ji has interpreted *anudharmita* as—to follow the conduct of earlier *Tirthankars* It is possible that during the times of *Bhagavan* Parshvanath, norms of using three, two and one clothing and also remaining non-clad were prevalent *Bhagavan* Mahavir initially used one clothing and then became unclad This was his *anudharmita* (following the doctrine)

In the Pali dictionary *anudhammata* word is mentioned It means—conforming to religion, in accordance with religion This also confirms the interpretation—in compliance with the religious conduct followed by earlier *Tirthankars*

The commentator (*Churni*) says—*Bhagavan* used that piece of cloth as it was for one year, he did not discard it This means that till the beginning of the thirteenth month his shoulder did not become free of that cloth. This is because all *Tirthankars* get initiated with one clothing as their possession Although *Bhagavan* had mentally discarded that cloth, it remained on his shoulder as a sign of the traditional norm When he saw it caught in a bush drifting in the Svarnabaluka river he said—"*Vosirami* (I renounce dress or cloth)."

The inference is that *Bhagavan* got initiated with one clothe and later became non-clad This was done in compliance with the tradition

In the commentary of *Kalpasutra* and other works like *Mahavir Chariyam* the incident of discarding this cloth is connected with the

story of giving the cloth to a Brahmin This does not find mention in the commentary (*Churni*)

Paanajaiya—The commentators (*Vritti* as well as *Churni*) interpret this term as—bumble-bee, etc

Arusiyanam—The commentator (*Churni*) interprets this word as—getting extremely annoyed The commentator (*Vritti*) interprets this term as—crawling over his body for flesh and blood

अनिमेष ध्यान-साधना

२५९. अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अंतसो झाति।
अह चक्खु-भीया सहिया ते हंता हंता बहवे कंदिसु॥५॥

२५९. भगवान एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर ऑखे टिकाकर अन्तरात्मा में ध्यान करते थे। (लम्बे समय तक अपलक रखने से आँखो की पुतलियाँ ऊपर को उठ जाती) अत. उनकी विस्फारित ऑखे देखकर बच्चो की टोली भयभीत हो उठती। 'मारो-मारो' कहकर चिल्लाती, बहुत से दूसरे बच्चो को बुला लेती।

UNWAVERING MEDITATION

259. *Bhagavan* gazed unblinking at a slanting wall and meditated for one *prahar* (three hours) (The eye-balls would bulge out due to continued and unblinking hard stare) Seeing his staring eyes, children used to get terrified and call numerous other children shouting—"Beat him ! Beat him !"

२६०. सयणेहि वितिमिस्ससेहि इत्थीओ तत्थ से परिन्नाय।
सागारिय ण सेवे इति से सयं पवेसिया झाति॥६॥

२६०. (कभी ऐसा भी होता) एकान्त स्थान मे ठहरे हुए भगवान को देखकर, कामाकुल स्त्रियॉ उनके पास आकर प्रार्थना करती, किन्तु वे भोग को कर्मबन्ध का कारण जानकर सागारिक (मैथुन) सेवन नही करते थे। वे अपनी अन्तरात्मा मे गहरे प्रवेश कर ध्यान मे लीन रहते।

260. (Sometimes it so happened that—) finding *Bhagavan* staying in solitude, lusty women approached him to seek his favours. Being aware that carnal indulgences were the cause of bondage of *karmas*, he renounced all such indulgences.

Penetrating deep into his soul he remained engrossed in meditation.

२६१. जे के इमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से झाति।
पुट्ठो वि णाभिभासिंसु गच्छति णाइवत्तती अंजू॥७॥

२६१. यदि कभी गृहस्थो से युक्त स्थान प्राप्त हो जाता तो भी भगवान उनमें घुलते-मिलते नही थे। वे उनके ससर्ग (मिश्रीभाव) का त्याग करके धर्मध्यान में मग्न रहते। वे किसी के पूछने पर भी नहीं बोलते थे। कोई बाध्य करता तो वे वहाँ से चले जाते, किन्तु अपने ध्यान या मोक्षपथ का अतिक्रमण नहीं करते थे।

261. Even when he had to stay at a place crowded with householders, he never mixed with them Avoiding any affiliation with them he remained absorbed in his pious meditation. He would not speak even when spoken to If someone still insisted he moved away from that place and never allowed any transgression into his meditation or pursuit of liberation

२६२. णो सुगरमेतमेगेसिं णाभिभासे अभिवायमाणे।
हयपुव्वो तत्थ दंडेहिं लूसियपुव्वो अप्पपुण्णेहिं॥८॥

२६२. भगवान अभिवादन करने वालो को आशीर्वाद नहीं देते और डंडों से पीटने, बाल खीचने या अंग-भंग करने वाले अभागे अनार्य लोगों को वे शाप नही देते थे। भगवान की यह कठोर साधना अन्य साधकों के लिए सुगम नही थी।

262. *Bhagavan* did not bless those who greeted him; neither did he curse those aborigines who would beat him with a stick, pull his hair, or try to mutilate him Such rigorous austerities pursued by *Bhagavan* were not easy to emulate by other seekers.

२६३. फरिसाइं दुत्तितिक्खाइं अतिअच्च मुणी परक्कममाणे।
आघाय-णट्ट-गीताइं दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं॥९॥

२६३. भगवान अत्यन्त दुःसह्य, तीखे वचनो की परवाह नहीं करते हुए उन्हें सहन करने का पराक्रम करते थे। वे आख्यायिका, कुतूहलवर्द्धक कथा, कीर्तन, नृत्य, गीत, दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध आदि (कौतुकपूर्ण प्रवृत्तियो) में रुचि नही लेते थे।

263. *Bhagavan* displayed the courage of turning a deaf ear to extremely unbearable and harsh words and tolerating them. He took no interest in graphic narratives, interesting plays, devotional songs, dances, poetry recitations, mace-fights, boxing and other such entertainments

२६४. गढिए मिहो-कहासु समयम्मि णातसुए विसोगे अदक्खू।
एताइं से उरालाइं गच्छइ णायपुत्ते असरणाए॥१०॥

२६४. जो लोग कामोत्तेजक बातो या व्यर्थ की गप्पो में आसक्त रहते, उनको ज्ञातपुत्र भगवान महावीर हर्ष-शोक से रहित होकर मध्यस्थ भाव से देखते थे। वे इन दुर्दमनीय अनुकूल-प्रतिकूल परीषहोपसर्गो को महत्त्व न देते हुए विचरण करते थे।

264. *Bhagavan* showed no liking or disliking for and remained indifferent to the people who indulged in irrelevant or amorous talks. He moved around paying no heed to all these irrepressible pleasant-unpleasant afflictions and torments.

२६५. अविसाहए दुवे वासे सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते।
एगत्तिगते पिहियच्चे से अभिण्णायदंसणे संते॥११॥

२६५. भगवान माता-पिता के स्वर्गवास के बाद दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक गृहवास मे रहे किन्तु सचित्त भोजन और सचित्त जल का उपभोग नहीं किया। परिवार के साथ रहते हुए भी वे अन्त करण मे अकेले रहे। वे परम शान्तचित्त हो गये थे तथा शरीर, वाणी, मन और इन्द्रिय सभी पर सयम साध लिया। (यों गृहवास मे साधना करके) उन्होने अभिनिष्क्रमण किया।

265. After the death of his parents, *Bhagavan* remained a householder for a little more than two years But during this period he did not take any *sachit* (having living organisms, or raw and half cooked) food or *sachit* water. Although he lived with the family, mentally he was alone. He had become extremely serene and he perfected discipline over his body, speech, mind and senses (Thus pursuing spiritual practices while still living in the household) He embraced renunciation

विवेचन—सूत्र २५९ से २६४ तक भगवान महावीर की ध्यान-साधना एवं उसमें आने वाले विघ्नो का वर्णन है तथा २६५ में गृहस्थवास मे की गई साधना का उल्लेख है।

'तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज' इस पंक्ति में 'तिर्यक्भित्ति' का अर्थ है–तिरछी भीत। भगवतीसूत्र के टीकाकार अभयदेवसूरि 'तिर्यक्भित्ति' का अर्थ करते हैं–प्राकार (परकोटा) वरण्डिका (बरामदा) आदि की भित्ति अथवा पर्वतखण्ड। बौद्ध साधकों में भी भित्ति पर दृष्टि टिकाकर ध्यान करने की पद्धति रही है। इसलिए तिर्यक्भित्ति का अर्थ 'तिरछी भीत' ध्यान की परम्परा के उपयुक्त लगता है जैसा कि कहा है–

"निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्म लक्ष्यं निरीक्षयेत्।
पतन्ति यावट श्रूणि त्राटकं प्रोच्यते बुधैः॥" –घेरण्ड संहिता १/५३

किन्तु वृत्तिकार आचार्य शीलाक के कथन अनुसार आचार्य श्री आत्माराम जी म ने इस सूत्र का अर्थ इस प्रकार किया है–पीछे से पुरुष प्रमाण (आदमकद) लम्बी वीथी (गली) और आगे से बैलगाडी के धूसर की तरह फैली हुई (विस्तीर्ण) जगह पर नेत्र जमाकर यानी दत्तावधान होकर चलते थे। ध्यान करते समय उनकी दृष्टि तिरछी भीत पर तथा मन अन्तर आत्मा में स्थिर रहता। योग ग्रथों के अनुसार यह त्राटक ध्यान की पद्धति है।

भगवान की ध्यान-साधना में अनेक प्रकार के उपसर्ग एव विघ्न आते जिसका संकेत इन गाथाओं मे मिलता है। जैसे–भगवान महावीर जब पहर-पहर तक तिर्यक्भित्ति पर दृष्टि जमाकर ध्यान करते थे, तब उनकी आँखो की पुतलियाँ ऊपर उठ जाती, जिन्हें देखकर बालको की मण्डली डर जाती और बहुत से बच्चे मिलकर उन्हें 'मारो-मारो' कहकर चिल्लाते। वृत्तिकार ने 'हंता हंता बहवे कंदिसु' का अर्थ किया है–"बहुत-से बच्चे मिलकर भगवान को धूल से भरी मुट्ठियाँ फेंककर 'मार-मार' कहकर चिल्लाते, दूसरे बच्चे हल्ला मचाते कि देखो, देखो इस नंगे मुण्डित को, यह कौन है? कहाँ से आया है?

भगवान प्राय एकान्त शून्य स्थान देखकर ही ठहरते। किन्तु कुछ कामातुर स्त्रियाँ या पुरुष एकान्त की खोज में वहाँ भी आ जाते। वहाँ उनके अद्‌भुत रूप-यौवन से आकृष्ट होकर कुछ कामातुर स्त्रियाँ आकर उनसे काम-प्रार्थना करतीं, वे उनके ध्यान में अनेक प्रकार से विघ्न डालतीं।

भगवान को ध्यान के लिए एकान्त शान्त स्थान नहीं मिलता, तो धर्मशाला, पाथागार आदि ऐसे स्थानों पर ठहर जाते जहाँ गृहस्थो की भीड होती। वहाँ पर उनसे कई लोग तरह-तरह की बाते पूछकर या न पूछकर भी हल्ला-गुल्ला मचाकर ध्यान मे विघ्न डालते, मगर भगवान किसी से कुछ भी नहीं कहते।

कोई उन्हे कठोर दु सह्य वचनों से क्षुब्ध करने का प्रयत्न करता, तो कोई उन्हें आख्यायिका, नृत्य, संगीत, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध आदि कार्यक्रमों में भाग लेने को कहता, जैसे कि एक वीणावादक ने भगवान को जाते हुए रोककर कहा था–"देवार्य ! ठहरो, मेरा वीणावादन सुन जाओ।" भगवान प्रतिकूल-अनुकूल दोनों प्रकार की परिस्थिति को ध्यान में विघ्न समझकर उनसे विरत रहते थे।

चूर्णिकार ने 'पिहितच्चे' शब्द के दो अर्थ किये हैं-(१) अर्चा अर्थात् आस्रव। जिसके आस्रव द्वार बन्द हो गए हैं। (२) अथवा जिसकी राग-द्वेष रूप ऊर्जा अर्थात् अग्नि ज्वालाएँ शान्त हो गयी है। वृत्तिकार ने इससे भिन्न दो अर्थ इस प्रकार किये हैं-(१) जिसने अर्चा-क्रोध ज्वाला शान्त कर दी है। (२) अथवा अर्चा यानी शरीर को जिसने पिहित-सगोपित कर लिया है।

Elaboration—Aphorisms 259 to 264 describe *Bhagavan* Mahavir's spiritual practices and the hurdles that came across Aphorism 265 informs about his practices as a householder

Tiriyabhittim chakkhumasajja—in this phrase *tiryakbhitti* means—a slanting wall Abhayadev Suri in his commentary (*Tika*) of *Bhagavati Sutra* interprets *tiryakbhitti* as—wall of a rampart or that of a verandah or a rock Fixing one's gaze on the wall is also a meditational technique among the *Buddhists* Therefore this interpretation, slanting wall, conforms to the techniques of meditation

But Acharya Shri Atmaram ji M, in accordance with the commentary (*vritti*) by Shilankacharya, interprets this verse as—While walking he fixed his gaze in an area about six feet long (equal to the height of a man) and about four feet wide (equal to the distance between two wheels of a bullock-cart) While meditating his gaze was fixed on a slanting wall and mind on the self According to the yoga literature this technique is called *tratak*

These verses reveal that during his spiritual practices *Bhagavan* suffered numerous afflictions and torments For example—When *Bhagavan* gazed unblinking at a slanting wall and meditated for one *prahar* (three hours), his iris turned up The stony eyes looked terrifying to the throngs of children gathered around him and they shouted—"Beat him ! Beat him !" The commentator (*Vritti*) has interpreted ***hanta hanta bahave kandimsu*** as—Throngs of children threw fistfuls of sand at *Bhagavan* shouting 'Hit him, hit him' Other children called loudly, 'Look here ! see this naked and shaven man, who is he ? From where has he come ?'

Bhagavan generally selected a forlorn and lonely place for his stay But even there some lustful women would come in search of

privacy. Attracted by his astonishingly handsome and youthful personality some of these women would seek his favours and try to disturb his meditation in many ways

When he did not find a peaceful and solitary place, *Bhagavan* stayed at some hostel, caravan serai, or other such public place. These places were generally crowded and people disturbed him by asking various questions or creating noise. But *Bhagavan* never complained

Some tried to irritate him with harsh and unbearable comments, others asked him to participate in dramas, devotional songs, dances, poetry recitations, mace-fights, boxing and other such entertainments Once a *veena* (a sitar like stringed musical instrument) exponent stopped him and asked him to listen to his performance before proceeding ahead Considering all favourable and unfavourable situations to be a disturbing factor in his meditation, *Bhagavan* avoided all such activities

The commentator (*Churni*) has given two interpretations of the term *pihitachche* based on two meanings of the word *archa*—(1) *archa* means *asrava* or inflow of *karmas*, one who has blocked the sources of inflow of *karmas* (2) *archa* means flame, one who has subdued the flames of the fire of attachment and aversion The commentator (*Vritti*) has given different interpretations—(1) one who has subdued the flames of anger (2) *archa* means body; one who has hidden or disciplined his body

विवेकयुक्त चर्या

२६६. पुढविं च आउकायं च तेउकायं च वाउकायं च।
पणगाइं बीयहरियाइं तसकायं च सव्वसो णच्चा॥१२॥

२६७. एताइं संति पडिलेहे चित्तमंताइं से अभिण्णाय।
परिवज्जियाण विहरित्था इति संखाए से महावीरे॥१३॥

२६६. पृथ्वीकाय, अप्पकाय, तेजस्काय, वायुकाय पनक–निगोद-शैवाल आदि बीज और नाना प्रकार की हरी वनस्पति एव त्रसकाय–इन्हें सब प्रकार से जानकर–

२६७. तथा यह देखकर कि 'ये चेतनावान् हैं' इनका अस्तित्व है, उनके स्वरूप को भलीभाँति निर्णय करके भगवान महावीर उनके आरम्भ का परित्याग करके विहार करते थे।

DISCIPLINED ROUTINE

266. After having perfectly known earth-bodied, water-bodied, fire-bodied and air-bodied beings, mildew, seeds and different types of vegetation; and mobile beings—

267. After recognizing that they are animate and have an existence and ascertaining their forms, *Bhagavan* moved around avoiding violence to them.

२६८. अदु थावरा य तसत्ताए तसजीवा य थावरत्ताए।
अदु सव्वजोणिया सत्ता कम्मुणा कप्पिया पुढो बाला॥१४॥

२६८. स्थावर (पृथ्वीकाय आदि) जीव त्रस (द्वीन्द्रियादि) के रूप में उत्पन्न हो जाते हैं और त्रस जीव स्थावर के रूप मे उत्पन्न हो जाते हैं। संसारी जीव सभी योनियों में उत्पन्न हो सकते है। अज्ञानी जीव अपने ही कर्मानुसार पृथक्-पृथक् रूप धारण करते हैं।

268. The immobile-beings (earth-bodied, etc.) may be reborn as mobile-beings (two-sensed, etc) and vice versa The worldly beings may be born in any genus. Ignorant beings are reborn in different forms depending on their acquired *karmas.*

२६९. भगवं च एवमन्नेसिं सोवहिए हु लुप्पती बाले।
कम्मं च सव्वसो णच्चा तं पडियाइक्खे पावगं भगवं॥१५॥

२६९ भगवान ने यह भलीभाँति जान लिया था कि उपधि–परिग्रह का संचय करने वाला अज्ञानी जीव क्लेश का अनुभव करता है। अत कर्मबन्धन का सर्वांग स्वरूप जानकर भगवान ने कर्म के उत्पादन रूप पाप का प्रत्याख्यान कर दिया था।

269. *Bhagavan* had fully understood that an ignorant being, who accumulates imposture or possessions, suffers. Thus, knowing well the complete process of bondage of *karma*, *Bhagavan* had renounced (resolved to refrain from) all sinful activity which is the source of *karma.*

२७०. दुविहं समेच्च मेहावी किरियमक्खायमणेलिसिं णाणी।
आयाणसोयमतिवायसोयं जोगं ज सव्वसो णच्चा॥१६॥

२७०. परम ज्ञानी और मेधावी भगवान ने क्रियावाद और अक्रियावाद दोनों को अथवा क्रिया के दो प्रकार (ईर्याप्रत्यय क्रिया और साम्परायिक क्रिया) को भलीभाँति जानकर तथा आदान स्रोत-(दुष्प्रयुक्त इन्द्रियों) एवं अतिपाप स्रोत-(हिंसा, मृषावाद आदि) और योग (मन-वचन-काया की प्रवृत्ति) को सब प्रकार से समझकर दूसरों से विशिष्ट-विलक्षण क्रिया का प्रतिपादन किया है।

270. With the perfect knowledge of *Kriyavad* (school that preaches action) and *Akriyavad* (school that preaches inaction) or two broad categories of action (*Iryapratyaya kriya* or disciplined action that does not attract *karmic* bondage and *Samparayik kriya* or action under the influence of passions; it attracts *karmic* bondage) and full understanding of sources of inflow (ill-employed senses), sources of excessive sin (violence, falsity, etc.), and affiliation (mental, verbal and physical indulgences), *Bhagavan* has propagated a unique and unprecedented theory of action

विमुक्त चर्या

२७१. अइवातियं अणाउट्टे सयमण्णेसिं अकरणयाए।
जस्सित्थीओ परिण्णाता सव्वकम्मावहाओ से अदक्खू॥१७॥

२७१. भगवान स्वयं किसी जीव की हिंसा नहीं करते थे और दूसरों से भी नहीं करवाते थे। भगवान को स्त्रियाँ-(स्त्री सम्बन्धी काम-भोग के कटु परिणाम) परिज्ञात हैं, उन्होंने देख लिया था कि 'ये काम-भोग पाप-कर्मों के उपादानकारण है अत· स्त्री-संसर्ग का परित्याग कर दिया।

RENOUNCING ROUTINE

271. *Bhagavan* neither himself committed violence against any being nor did he made others do so. *Bhagavan* understood women (the dire consequences of carnal pleasures associated with women); he was aware of the fact that these carnal pleasures were the causal sources of evil *karmas*; therefore he renounced any affiliation with women.

आहार चर्या

२७२. अहाकडं ण से सेवे सव्वसो कम्मुणा य अदक्खू।
जं किंचि पावगं भगवं तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था॥१८॥

२७२ भगवान ने यह देखा कि आधाकर्म आदि दोषयुक्त आहार लेना सब प्रकार से कर्मबन्ध का कारण है इसलिए उस आहार का सेवन नहीं किया। भगवान आहार से सम्बन्धित कोई भी पाप नही करते थे। वे प्रासुक आहार ग्रहण करते थे।

FOOD ROUTINE

272. *Bhagavan* saw that accepting *adhakarmi* (cooked specifically for an ascetic) or faulty food was in every way a cause of *karmic* bondage, therefore he did not accept such food. He did not commit any food related sin. He only accepted *prasuk* food (pure and suitable for an ascetic).

उपकरण चर्या

२७३. णासेवइय परवत्थं परपाए वि से ण भुंजित्था।
परिवज्जियाण ओमाणं गच्छति संखडिं असरणाए॥१९॥

२७३. (भगवान स्वयं वस्त्र व पात्र नही रखते थे इसलिए) दूसरे (गृहस्थ या साधु) के वस्त्र का सेवन नहीं करते थे, दूसरे के पात्र मे भोजन नहीं करते थे। वे 'अवमान भोज' तथा जीमनवार आदि मे आहार के लिए नहीं जाते थे।

EQUIPMENT ROUTINE

273. (As *Bhagavan* did not have clothing and bowl) he did not use clothing belonging to others (ascetic or householder) and did not eat in a bowl belonging to others He would not go to a feast nor would he think about delicious food.

रस-परित्याग वृत्ति

२७४. मायण्णे असणपाणस्स णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे।
अच्छिं पि णो पमज्जिया णो वि य कंडुयए मुणी गायं॥२०॥

२७४. भगवान अशन-पान की मात्रा (परिमाण) को जानते थे, वे न तो रसों में आसक्त थे कोई सकल्प करते थे। ऑख मे रजकण आदि पड़ जाने पर भी उसका प्रमार्जन नहीं करते थे और शरीर को खुजलाते नहीं थे।

RENOUNCING TASTES

274. *Bhagavan* was aware of the required quantity of food and drinks. He neither had any cravings for tastes or flavours, neither did he think about some specific food. He did not wipe his eyes if sand particles fell into them. He also did not scratch his body on itching.

२७५. अप्पं तिरियं पेहाए अप्पं पिट्ठओ उ प्पेहाए।
अप्पं बुइए पडिभाणी पंथपेही चरे जयमाणे॥२१॥

२७५. भगवान चलते हुए (दाएँ-बाएँ) तिरछे नही देखते थे और न पीछे-पीछे देखते थे। वे चलते हुए बोलते नही थे। किसी के पूछने पर भी कम बोलते थे। वे यतनापूर्वक मार्ग को देखते हुए चलते थे।

275. While walking *Bhagavan* did not glance sideways (left or right), nor did he look back He did not speak while walking. He would seldom speak when spoken to. He walked carefully watching the path ahead.

२७६. सिसिरंसि अद्धपडिवण्णे तं वोसज्ज वत्थमणगारे।
पसारेत्तु बाहुं परक्कमे णो अवलंबियाण कधंसि॥२२॥

२७६. भगवान (१३ मास बाद) उस वस्त्र का व्युत्सर्ग कर चुके थे अत शिशिर ऋतु में दोनो बाहे फैलाकर चलते थे, हाथो को कन्धों पर रखकर खडे नही होते थे।

276. *Bhagavan* had relinquished dress (after thirteen months of his initiation), therefore during the winter months he walked with his hands outspread He did not stand folding his hands with palms on his shoulders

२७७. एस विही अणुक्कंतो माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेण भगवया एवं रीयंति॥२३॥

त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२७७. महान् मेघ की महामाहन काश्यपगोत्री महर्षि भगवान महावीर ने सकल्प-मुक्त (अप्रतिज्ञ होकर) इस विधि के अनुरूप आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

277. *Bhagavan* Mahavır, the great sage belonging to the highly noble Kashyap clan followed the aforementioned code of conduct without any expectations

—So I say

विवेचन–सूत्र २६६ से २७७ तक भगवान की अहिंसायुक्त विवेक चर्या का वर्णन है।

भगवान महावीर के समय मे कुछ विद्वान् दार्शनिक यह मानते थे कि स्त्री मरकर स्त्री योनि में ही जन्म लेती है, पुरुष मरकर पुरुष ही होता है। पृथ्वीकाय आदि स्थावर जीव पृथ्वीकायिक आदि स्थावर जीव ही बनेगे। त्रसकायिक त्रसयोनि मे ही उत्पन्न होंगे किसी अन्य योनि में उत्पन्न नहीं होंगे।

भगवतीसूत्र मे गौतम स्वामी द्वारा यह पूछे जाने पर कि

"अय ण भंते ! जीवे पुढविकाइयत्ताए जाव तस्सकाइयत्ताए उववण्णपुव्वे ?"

"हता गोयमा ! असइं अदुवा अणतखुत्तो जाव उववण्णपुव्वे।" (*भगवतीसूत्र* १२/७, सूत्र १४०)

"भगवन् ! यह जीव पृथ्वीकाय के रूप से लेकर त्रसकाय के रूप तक मे पहले भी उत्पन्न हुआ ?"

उत्तर–"हाँ, गौतम ! अनेक बार ही नही, अनन्त बार सभी योनियो में जन्म ले चुका है।"

सूत्र २७० मे बताया है भगवान ने आदान स्रोत आदि को अच्छी प्रकार का जान लिया था। वृत्तिकार ने इसका विवेचन इस प्रकार किया है–

(१) **आदान स्रोत**–कर्मो का आगमन दो प्रकार की क्रियाओं से होता है–साम्परायिक क्रिया से और ईर्याप्रत्ययिक क्रिया से। साम्परायिक कषाययुक्त प्रमत्त योग से की जाने वाली क्रिया से कर्मबन्ध तीव्र होता है, जबकि कषायरहित अप्रमत्तभाव से की जाने वाली ईर्याप्रत्यय क्रिया से कर्मों का बन्धन बहुत अल्प मात्रा में होता है। परन्तु दोनों ही आदान स्रोत है।

(२) **अतिपात स्रोत**–अतिपात शब्द हिसा ही नहीं, परिग्रह, मैथुन, चोरी, असत्य आदि का भी सूचक है ये आस्रव कर्मो के स्रोत हैं।

(३) **त्रियोग स्रोत**–मन, वचन, काया इन तीनों योगों की प्रवृत्ति शुभ-अशुभ कर्मों के लिए योग स्रोत है।

भगवान महावीर ने अपने साधनाकाल मे निम्नोक्त कर्मस्रोत अवरुद्ध कर दिये, जिनका वर्णन सूत्र २७१ से २७६ में है। जैसे–

(१) प्राणियों का आरम्भ। (सूत्र २७१)

(२) उपधि–बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह। (सूत्र २७१)

(३) हिंसा की प्रवृत्ति। (सूत्र २७१)

(४) स्त्री-प्रसंग रूप अब्रह्मचर्य। (सूत्र २७१)

(५) आधाकर्म आदि दोषयुक्त आहार। (सूत्र २७२)

(६) पर-वस्त्र और पर-पात्र का सेवन। (सूत्र २७३)

(७) आहार के लिए सम्मान और पराश्रय की प्रतीक्षा। (सूत्र २७४)

(८) अतिमात्रा मे आहार। (सूत्र २७४)

(९) रस-लोलुपता। (सूत्र २७४)

(१०) मनोज्ञ एवं सरस आहार लेने की प्रतिज्ञा। (सूत्र २७४)

(११) देहाध्यास–आँखों मे पडा रजकण निकालना, शरीर खुजलाना आदि। (सूत्र २७४)

(१२) अयत्ना एव चंचलता से गमन। (सूत्र २७५)

(१३) शीतकाल में शीत निवारण का प्रयत्न। (सूत्र २७६)

इस वर्णन मे भगवान की हिंसा निवृत्ति, कामविजय, आहार-सयम, उपकरण-सयम, रस-सयम, काय-क्लेश तप द्वारा इन्द्रिय-निग्रह, वाणी-संयम आदि की सूचना दी गई है।

आचार्य श्री आत्माराम जी म ने 'अपडिण्णे' की व्याख्या करते हुए कहा है–भगवान ने कभी सरस आहार के विषय मे प्रतिज्ञा नहीं की किन्तु नीरस आहार के विषय मे प्रतिज्ञा अवश्य की थी, जैसे १३ बोलों के प्रसंग में उडद के बाकले लेने का अभिग्रह। अत यहाँ अपडिण्णे से सरस आहार के विषय में अप्रतिज्ञ रहने का भाव छिपा है। (*आचारांग*, पृ ६७१)

यहाँ संकेत रूप मे 'स्त्री' शब्द को अब्रह्मचर्य का प्रतीक माना है। **जस्सित्थीओ परिण्णाता**–जो स्त्रियों को भलीभाँति समझकर त्याग देता है, वह कर्मों के प्रवाह को रोक देता है।

परवस्त्र और परपात्र का त्याग–चूर्णि के अनुसार भगवान ने दीक्षा के समय जो एक देवदूष्य वस्त्र धारण किया था, वह १३ महीने तक सिर्फ कंधे पर टिका रहने दिया, शीतादि निवारणार्थ उसका उपयोग नहीं किया। उन्होने १३ महीने बाद वस्त्र का व्युत्सर्ग कर दिया था, फिर उन्होंने पाडिहारिक रूप मे कोई वस्त्र धारण नहीं किया।

आचारांग चूर्णि के अनुसार–भगवान ने प्रव्रजित होने के बाद प्रथम पारणे में गृहस्थ के पात्र में भोजन किया था, तत्पश्चात् वे कर-पात्र हो गए थे। फिर उन्होंने किसी के पात्र में आहार नहीं किया। नालन्दा की तन्तुवायशाला में गोशालक ने उनके लिए आहार ला देने की अनुमति माँगी, तो 'गृहस्थ के पात्र में आहार लाएगा' इस सम्भावना के कारण भगवान ने गोशालक को मना कर दिया।

भगवान केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर हो गये तब उनके लिए लोहार्य मुनि गृहस्थों के यहाँ से आहार लाता था, जिसे वे पात्र में लेकर नहीं, हाथ में लेकर करते थे।

आचार्य श्री आत्माराम जी म के अनुसार भगवान ने कभी गृहस्थ के पात्र में भोजन नही किया। (*आचाराग*, पृ ६७०)

'सोवधिए हु लुप्पती' पद मे उपधि के तीन अर्थ होते हैं–(१) शरीर, (२) कर्म, और (३) उपकरण आदि परिग्रह। ये उपधियाँ लुम्पक–सयम जीवन की लुटेरी हैं।

'परिवज्जियाण ओमाण' पर व्याख्या करते हुए बताया है–जिस भोज मे गणना से अधिक खाने वालो की उपस्थिति होने के कारण भोजन कम पड जाता है वह अवमान भोज कहा जाता है। दशवैकालिक चूर्णि मे भी इसी से मिलता-जुलता अर्थ किया है जहाँ कुछ गिनती के लोगो के लिये भोजन बने, वहाँ से भिक्षा लेने पर अतिथियो के लिए फिर से दूसरा भोजन बनाना पडे, या फिर उन्हें भोजन के बिना ही भूखा रहना पडे इन दोषो के कारण अवमान भोज में आहार ग्रहण करना निषिद्ध है। (*दशवैकालिकसूत्र* २/६)

कुछ व्याख्याकारो ने 'ओमाण' को 'अपमान' शब्द मानकर 'मान-अपमान की परवाह किये' बिना यह अर्थ भी किया है। (*आचार्यनी आत्मा* ६६९)

अणुक्कतो–शब्द का वृत्तिकार अर्थ करते हैं–अनुचीर्ण–आचरित।

(१) अन्य तीर्थंकरो के द्वारा आचरित विधि अनुसार आचरण किया।

(२) दूसरे तीर्थंकरों के मार्ग का अतिक्रमण नहीं किया। अत यह अन्याऽतिक्रान्त विधि है।

भगवान किसी विधि-विधान मे पूर्वाग्रह से, निदान से या हठाग्रहपूर्वक बध कर नही चलते थे। वे सापेक्ष अनेकान्तवादी थे। इसकी सूचना 'अपडिण्णेण' शब्द द्वारा की गई है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Aphorisms 266 to 277 detail the *ahımsa* based dısciplıned routıne of *Bhagavan*

Some of *Bhagavan* Mahavır's contemporary phılosophers belıeved that after death a woman ıs reborn as a woman only, and a man as a man Earth-bodıed and other ımmobıle beıngs are reborn as ımmobıle beıngs only The mobıle beıngs are reborn ın no other genus but that of mobıle beıngs

As mentıoned in *Bhagavatı Sutra,* when Gautam Swami asked, "*Bhagavan,* has thıs beıng been born as other lıfe-forms (earth-bodıed to mobıle beıng) earlıer also?"

Answer—"Yes, Gautam ! Not only many times but innumerable times it has been born as all these life-forms "

In aphorism 270 it is said that *Bhagavan* had full understanding of sources of inflow The commentator (*Vritti*) has elaborated this as—

(1) *Adan srot*—The inflow of *karmas* is caused by two types of actions—*Samparayik* action and *Iryapratyayik* action. The *karmic* bondage caused by *Samparayik* action or action under the influence of passions and stupor is intense. Whereas that caused by *Iryapratyayik* action or the action without any influence of passion or stupor is very light Still both these are sources of inflow of *karmas*

(2) *Atipat srot*—The term *atipat* does not simply mean violence It also includes avarice, copulation, stealing and falsity and other vices All these are sources of inflow of *karmas*

(3) *Triyoga srot*—The indulgences through mind, speech and body (three types of yoga or affiliation) are also sources of inflow of good or bad *karmas*

As mentioned in aphorisms 271 to 276, during his period of spiritual practices *Bhagavan* Mahavir had blocked the following sources of inflow of *karmas*—

(1) Violence against beings (aphorism 271)

(2) Imposture or inner and outer possessions (aphorism 271)

(3) Attitude of violence (aphorism 271)

(4) *Abrahmacharya* (non-celibacy) in the form of affiliation with women (aphorism 271).

(5) Faulty food including *adhakarmi* (cooked specifically for an ascetic) (aphorism 272)

(6) Use of dress and bowl belonging to others (aphorism 273)

(7) Expectation of invitation from or dependence on others for food (aphorism 274)

(8) Over eating (aphorism 274)

(9) Craving for delicious food (aphorism 274)

(10) Resolve to accept desirable and delicious food (aphorism 274)

(11) Care for body, such as wiping eyes, scratching body, etc (aphorism 274)

(12) Walking fast and carelessly (aphorism 275)

(13) Making effort to seek warmth during winter (aphorism 276)

This description informs about *Bhagavan's* abandoning violence, victory over libido, food discipline, equipment discipline, taste discipline, discipline over senses achieved through austerities of mortification of his body, discipline of speech, etc

Elaborating the term *apadinne* Acharya Shri Atmaram ji M says—*Bhagavan* never took any vow regarding savoury food However, he certainly did so with regard to insipid food. For example, one of his thirteen special resolves was about taking pulse bran Therefore, here *apadinne* (not desirous of) has a concealed reference to savoury food (*Acharanga*, p 671)

Avoiding food and bowl belonging to others—According to the commentary (*Churni*) *Bhagavan* put the divine cloth he got at the time of initiation on his shoulder and let it remain there for thirteen months He never used it to cover his body to protect himself from cold After thirteen months he discarded that cloth and never used any cloth to cover his body

According to the ***Acharanga Churni, Bhagavan*** ate his first meal after initiation in a bowl provided by a householder After that he only used his palms as a bowl and never ate food from a bowl. In the weaving room at Nalanda, Gaushalak sought his permission to bring food for him Looking at the possibility that the food would be brought in a bowl provided by a householder, *Bhagavan* declined

After attaining omniscience when he became a *Tirthankar,* ascetic Loharya used to bring food for him. However he accepted it in his palms and not in a bowl.

According to Acharya Shri Atmaram ji M *Bhagavan* never ate food from a householder's pot. (*Acharanga,* p 670)

Sovadhiye hu luppati—In this phrase *upadhi* has three meanings—(1) body, (2) *karma,* and (3) equipment and other possessions These *upadhis* (impostures) act as burglars for disciplined life

Parivajjiyana omanam—The feast where estimated quantity of food becomes short due to over crowding is called *avaman* feast. *Dashavaikalik Churni* also gives similar interpretation. If an ascetic collects food from a place where calculated quantity of food is prepared for a limited number of guests, the quantity becomes inadequate for the guests In such case either more food will have to be cooked or some one will go hungry As these are considered to be faults related to ascetic food, to collect food from such feast is prohibited (*Dashavaikalik Sutra* 2/6)

Some commentators have taken *omanam* as *apaman* (insult) and interpreted—"not caring for honour or insult "

Anukkanto—The commentator (*Vritti*) interprets it as the conduct which has been followed It can be understood two ways—

(1) He followed the conduct followed by other *Tirthankars*

(2) He did not transgress the path shown by other *Tirthankars* Therefore this code is undefiled

Bhagavan did not follow any code or rule with a prejudice, presumption or dogma He was a relativist and non-absolutist. This is conveyed by the term *apadinnena.*

● END OF LESSON ONE ●

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

शय्या आसन चर्या

२७८. चरियासणाइं सेज्जाओ एगतियाओ जाओ बूइयाओ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं जाइं सेवित्था से महावीरे॥२४॥

२७८ (आर्य सुधर्मा स्वामी से जम्बू स्वामी ने पूछा) "भंते ! भगवान की चर्या के प्रसग मे एक बार आपने कुछ आसन और वास-स्थान बताये थे, अत· मुझे आप उन वास-स्थानो और आसनो को बताएँ, जिनका सेवन भगवान महावीर ने किया था।"

BED AND SEAT

278. (Jambu Swamı asks Arya Sudharma Swamı—) "*Bhante* ! Whıle dıscussing the routıne of *Bhagavan* you once mentıoned about some seats and places of stay Please tell me about the seats and places of stay used by *Bhagavan* Mahavir."

२७९ आवेसण-सभा-पवासु पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पलियाट्ठाणेसु पलालपुंजेसु एगदा वासो॥२५॥

२७९. भगवान कभी सूने खण्डहरो मे, कभी सभाओ (धर्मशालाओ) मे, कभी प्याउओ मे और कभी पण्यशालाओ (दुकानो) मे निवास करते थे। अथवा कभी लुहार, सुथार, सुनार आदि के कर्म-स्थानो (कारखानो) मे और जिस पर पलाल पुँज रखा गया हो, उस मच के नीचे उनका निवास होता था।

279. *Bhagavan* stayed sometımes ın forlorn ruıns, sometımes ın guest houses (*dharmashala*), sometımes ın water-huts, and sometimes in shops He would also sometimes stay ın workshop of a blacksmıth, carpenter, goldsmıth, or other such artısans or under a platform where hay was stacked.

२८०. आगंतारे आरामागारे नगरे वि एगदा वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा रुक्खमूले वि एगदा वासो॥२६॥

२८०. भगवान कभी यात्रीगृह में, कभी आरामगृह में, अथवा गॉव या नगर में निवास करते थे। अथवा कभी श्मशान में, कभी शून्यगृह मे तो कभी वृक्ष के नीचे ही ठहर जाते थे।

280. He would sometimes stay in a hostel, rest-house, village, or a city. Or he would stop at a cremation ground, a forsaken house, or even under a tree.

२८१. एएहिं मुणी सयणेहिं समणे आसि पतेरसवासे।
राइं दिवं पि जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाति॥२७॥

२८१. मुनीश्वर इन वास-स्थानों में साधनाकाल के बारह वर्ष छह महीने पन्द्रह दिनों मे शान्त और समत्वयुक्त मन से रहे। वे रात-दिन प्रत्येक प्रवृत्ति में यतनाशील रहते थे तथा अप्रमत्त और समाहित (मानसिक स्थिरता की) अवस्था मे ध्यान करते थे।

281. The sage of sages spent twelve years six months and fifteen days of his period of spiritual practices at these places with serenity and equanimity. All day and all night he was careful in all his activities. He meditated with alertness and mental stability

विवेचन–भगवान द्वारा सेवित आवास-स्थानों की सूची इस प्रकार है–

आवेशन–शिल्पशाला या शून्यागार

सभा–गाँव की सभा ससद

प्रपा–प्याऊ

पणिय (पण्यक)–दुकान

शाला–दीवार सहित आवास को घर तथा दीवाररहित स्थान को शाला कहा जाता था

पलियट्ठाण–सुथार, लुहार आदि का कारखाना

आगन्तार–यात्री गृह (धर्मशाला)

आरामागार–आराम गृह (विश्राम गृह)

श्मशान–श्मशान के पार्श्ववर्ती क्षेत्र मे

Elaboration—The list of places of stay of *Bhagavan* is as follows—

Aveshan—studio of an artisan or forsaken house

Sabha—community hall of a village

Prapa—water-hut

Paniya (panyak)—shop

Shala—a covered area with four-walls was called house and that without four walls was called shala

Paliyatthana—workshop of carpenter, blacksmith, etc.

Agantar—guest-house (dharmashala)

Aramagar—rest-house

Smashan—cremation ground and surrounding area

निद्रा-त्याग चर्या

२८२. णिद्दं पि णो पगामाए सेवइया भगवं उट्ठाए।
जग्गावती य अप्पाणं ईसिं साईया अपडिण्णे॥२८॥

२८२ भगवान निद्रा भी अधिक नही लेते थे, (निद्रा आने लगती तो) वे खडे होकर अपने आप को जगा लेते थे। दीर्घकाल तक जागरण के बाद थोडी-सी नींद ले लेते थे। उनके मन में कभी सोने व निद्रा लेने का भाव नहीं जगता था।

AVOIDING SLEEP

282. *Bhagavan* did not sleep much, (when he felt sleepy) he would stand up and make himself alert. After remaining awake for a long time he would sleep just a little He never desired to recline or go to sleep

२८३. संबुज्झमाणे पुणरवि आसिंसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ बहिं चंकमिया मुहुत्तागं॥२९॥

२८३ भगवान क्षणभर की निद्रा के बाद फिर जागकर ध्यान मे बैठ जाते थे। कभी-कभी जब निद्रा अधिक सताने लगती तो वे मुहूर्त्त भर बाहर घूमकर (पुन. अपने स्थान पर आकर ध्यानलीन हो जाते थे)।

283. After a moment's sleep *Bhagavan* would wake up again and sit in meditation Sometimes when he felt very sleepy he would walk around for a *muhurt* (and return to his place to resume his meditation).

विवेचन–इन दो सूत्रो मे भगवान के निद्रा विजय का वर्णन है। भगवान महावीर की साधना के मुख्यत. तीन बिन्दु थे–

(१) आहार-सयम, (२) इन्द्रिय-सयम, (३) निद्रा-संयम।

आहार-संयम करके वे कठोर से कठोर दीर्घ तप की साधना करते थे और आत्म-साधना काल में आत्मा की समरसता की अनुभूति करते रहते। इन्द्रिय-संयम द्वारा वे कठोर काय-क्लेश तप एवं ब्रह्मचर्य-साधना में लीन रहकर आत्मरमण करते। ध्यान के द्वारा वे निद्रा पर सयम करते हुए अप्रमत्त विचरण करते थे।

आचारांग चूर्णि तथा वृत्ति के अनुसार भगवान ने साढ़े बारह वर्ष के साधनाकाल में केवल अन्तर्मुहूर्त्त (४८ मिनट) नींद ली। वह भी थोड़ी-थोड़ी कई बार मे। वे लेटते नहीं थे। खड़े-खडे या बैठे-बैठे पलभर के लिए झपकी ले लेते और फिर ध्यानमग्न हो जाते। अस्थिक ग्राम में यक्ष के उपसर्गों के पश्चात् कुछ क्षणो के लिए उन्होंने नींद ली जिसमें दस स्वप्न देखे। रात को जब नींद अधिक सताती तो वे बाहर टहलकर नींद उड़ाते और ध्यानलीन हो जाते।

Elaboration—These two verses describe *Bhagavan's* victory over sleep. There were three important points of discipline in *Bhagavan* Mahavir's spiritual practices.

(1) Food discipline, (2) discipline of senses, and (3) discipline of sleep

He observed prolonged and vigorous austerities by controlling his food intake (fasting) and during this period of austerities he experienced complete equipoise of soul By exercising complete control over his senses, he completely devoted himself to practices like mortification of the body and celibacy and dwelt in his soul. With the help of meditation he exercised control over sleep and moved about with alertness

According to *Acharanga Churni* and *Vritti*, during the twelve and a half year period of spiritual practices, *Bhagavan* slept only for *antarmuhurt* (less then 48 minutes). That too in parts. He did not recline, he would close his eyes for few moments, either sitting or standing, and once again resume his meditation After the afflictions caused by a *yaksha* (a type of lower gods) in Asthik village, he slept for a few moments when he saw ten dreams During the night if he felt very sleepy he would walk around for sometime to regain alertness and then resume his meditation.

विविध प्रकार के उपसर्ग

२८४. सयणेहिं तस्सुवसग्गा भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगा य जे पाणा अदुवा पक्खिणो उवचरंति॥३०॥

२८४ उन आवास-स्थानो मे भगवान को अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्ग सहने पड़ते थे। (जब वे ध्यान में स्थित होते तब) कभी साँप और नेवला आदि संसर्पक प्राणी काट खाते, कभी गिद्ध आदि पक्षी आकर माँस नोचते।

VARIOUS AFFLICTIONS

284. In the said places of stay *Bhagavan* had to suffer grave afflictions When he was absorbed in meditation sometimes snakes and other crawling creatures bit him, sometimes vultures and other birds of prey pecked him.

२८५. अदु कुचरा उवचरंति गामरक्खा य सत्तिहत्था य।
अदु गामिया उवसग्गा इत्थी एगतिया पुरिसा य॥३१॥

२८५ अथवा कभी (शून्य गृह मे ठहरते तो) उन्हे कुचर = चोर या व्यभिचारी पुरुष आकर तग करते, अथवा कभी हाथ मे शस्त्र लिए हुए ग्रामरक्षक या कोतवाल उन्हे कष्ट देते, कभी कामासक्त स्त्रियाँ और कभी पुरुषों द्वारा भी उपसर्ग किये जाते थे।

285. Also (when he stayed at some abandoned house) sometimes thieves or debauches tried to disturb him, sometimes guards or soldiers with weapons in their hands goaded him, and sometimes he was tormented by lecherous women and even men

विवेचन—साधनाकाल मे होने वाले उपसर्गों के विषय मे इन सूत्रो मे बताया है—भगवान जब शून्य गृहो मे ध्यानस्थ खडे रहते तो वहाँ कुचर अर्थात् दुराचारी लोग—जैसे चोर अथवा व्यभिचारी पुरुष आकर उन्हे अपना विघ्नकारक समझकर कष्ट व पीडा देते। कभी चोरो आदि को पकडने आये कोतवाल आदि उन्हे ढोगी समझकर पीटते। कभी कामाकुल स्त्रियाँ उन्हे सताती और फिर पुरुष लोग कष्ट देते। यहाँ ग्राम्य उपसर्ग का अर्थ करते हुए चूर्णिकार ने कहा है ग्राम्य अर्थात् इन्द्रिय-विषय। काम-सम्बन्धी उपसर्ग। भगवान का अतीव सुन्दर रमणीय रूप देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जाती तथा उनके प्रति कामाकुल हो उठतीं। रात्रि में जहाँ भगवान एकान्त ध्यान करते वहाँ आकर उन्हें विचलित करने का प्रयत्न करतीं। भगवान का ध्यान भंग नही होता तब रुष्ट रमणियाँ उन्हे गालियाँ देतीं। इस बात का पता उनके पतियो को लगता, तब वे क्रुद्ध होकर

1
2
लाढ़ प्रदेश मे
3
4
17

चित्र परिचय १७

Illustration No. 17

ध्यान-साधना में उपसर्ग

१ भगवान जब शून्य आवासो मे ध्यान करते तब कभी साँप, नेवला आदि काट लेते। कभी पक्षी–गीध, कठफोडे आदि तीखी चोच मारकर लहूलुहान कर देते। –अ १, उ २, सूत्र २८४

२ सूने घरो मे खडा देखकर अपना विघ्न समझकर चोर व व्यभिचारी पुरुष भाले, लट्ठियो आदि से उन पर प्रहार करते।

३ कभी-कभी व्यभिचारी स्त्री-पुरुष एकान्त मे उन्हे अपना बाधक समझकर दुर्व्यवहार करने लगते। वहाँ से चले जाने को कहते तो भगवान चुपचाप स्थान त्यागकर अन्यत्र चले जाते।

–अ १, उ २ सूत्र २८५

४ लाढ देश मे विहार करते समय अन्य श्रमण परिव्राजक आदि कुत्तो से बचने के लिए दण्ड (लाठी) पास मे रखते थे। परन्तु भगवान तो दण्ड त्यागी थे, कुत्ते आदि ऊपर झपट पडते। उनको काट लेते तब वे परम शान्त रहते।

इस प्रकार लाढ देश का विहार अत्यन्त दुश्चर था। अ १, उ ३, सूत्र २९७

AFFLICTIONS DURING MEDITATION

1 When he was absorbed in meditation at desolate places sometimes snakes and other crawling creatures bit him, sometimes vultures, woodpeckers and other birds of prey pecked him and blood oozed from his wounds —9/2/284

2 When he stayed at some abandoned house thieves and debauches tried to goad him with lances and sticks

3 Sometimes he was tormented by lecherous women and even men, considering him to be a disturbing factor in their privacy When they asked him to leave the place, *Bhagavan* left in silence —9/2/285

4 While moving around in the *Laadh* country other *Shramans* and *Parivrajaks* kept a staff with them as protection from wild dogs But *Bhagavan* had abandoned all violence Dogs leaped on him He remained absolutely composed even when the dogs bit him

Thus he spent a very tough time in the *Laadh* country —9/3/297

भगवान के पास आकर बोलते–"इसी भिक्षु ने हमारी रमणियों को मोहजाल में फँसाया है। हमें इसका प्रतिकार करना होगा।" वे भगवान को गालियाँ देते, ताडना-तर्जना देते। तब भी भगवान ध्यान में स्थिर रहते।

Elaboration—These verses inform about the afflictions suffered by *Bhagavan* during his period of spiritual practices. When he stood in meditation in some abandoned house, sometimes bad people, like thieves or debauches, came there and, considering him to be a disturbing presence, tortured him Sometimes guards or soldiers arrived there in search of thieves and manhandled him taking him to be a charlatan Sometimes lecherous women tried to disturb him by making advances at him and then men reacted violently Here *gramya upasarg* has been interpreted by the commentator (*Churni*) as afflictions related to carnal pleasures When women set their eyes on the handsome and attractive personality of *Bhagavan,* they were filled with sexual desires During the night they would come to the solitary place where he meditated and make advances at him On failing to disturb his meditation they would get irritated and start abusing him When their husbands came to know of this they would angrily approach *Bhagavan* and say—"This ascetic has seduced our women We should punish him" They abused him harshly and assaulted him physically also *Bhagavan* still remained firm in his meditation

स्थान-परीषह-विजय

२८६. इहलोइयाइं परलोइयाइं भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भि-दुब्भिगंधाइं सद्दाइं अणेगरूवाइं॥३२॥

२८६ भगवान ने (मनुष्य-तिर्यञ्च सम्बन्धी) इहलौकिक और (देव-सम्बन्धी) पारलौकिक अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्ग सहन किये। वे विविध प्रकार के सुगन्ध और दुर्गन्ध में तथा प्रिय और अप्रिय शब्दो मे हर्ष-शोकरहित रहे।

VICTORY OVER PLACE RELATED AFFLICTIONS

286. *Bhagavan* tolerated numerous mundane (caused by animals and human beings) and divine (caused by gods)

terrible afflictions. Various types of fragrance or stench failed to evoke feelings of pleasure and pain in him.

२८७. अहियासए सया समिए फासाइं विरूवरूवाइं।
अरइं रइं अभिभूय रीयइ माहणे अबहुवाई॥३३॥

२८७. वे सदा समिति-(सम्यक् प्रवृत्ति) युक्त होकर अनेक प्रकार के स्पर्शों को सहन करते थे। वे अरति और रति को जीत लेते थे। वे महामाहन (महावीर) बहुत ही कम बोलते थे।

287. He always tolerated various types of touch with equipoise (right attitude). He restricted non-indulgence (in right conduct) and indulgence (in mundane activities) That great sage seldom spoke.

२८८. स जणेहिं तत्थ पुच्छिंसु एगचरा वि एगदा राओ।
अव्वाहिए कसाइत्था पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे॥३४॥

२८८. (भगवान जब जन शून्य स्थानो में एकाकी खड़े होते तब) कुछ लोग आकर पूछते-"तुम कौन हो? यहाँ किसलिये खड़े हो?" कभी अकेले घूमने वाले लोग रात मे आकर पूछते-"इस सूने घर में तुम क्या कर रहे हो?" तब भगवान मौन रहते। इससे रुष्ट होकर वे उन्हें प्रताड़ित करते, फिर भी भगवान समाधि मे लीन रहते, उनके मन में उनसे प्रतिशोध लेने का विचार भी नहीं उठता।

288. (When *Bhagavan* stood at desolate solitary places) some people would approach and ask—"Who are you ? Why do you stand here ?" Sometimes night-wanderers would come and ask—"What are you doing in this abandoned house ?" *Bhagavan* replied with silence. At this they would get annoyed and assault him *Bhagavan* still remained absorbed in his meditation Any feeling of revenge never even touched him.

२८९. अयमंतरंसि को एत्थ अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे तुसिणीए सकसाइए झाति॥३५॥

२८९ किसी ने आकर पूछा-"यहाँ भीतर कौन है?" भगवान ने कहा-"मैं भिक्षु हूँ।" यह सुनकर वे संकषायित-क्रोधित होकर कहते-"शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ।" तब सहिष्णुता रूप उत्तम धर्म के आराधक भगवान वहाँ से चले जाते।

289. When someone came and asked—"Who is there inside ?" *Bhagavan* replied—"I am a mendicant." This evoked violent reaction and the intruder said—"Leave this place at once." Then *Bhagavan,* who abided by the lofty religion of tolerance, would leave the place.

विवेचन—अयमंतरंसि—इस सूत्र का विशेष स्पष्टीकरण करते हुए वृत्तिकार ने लिखा है—भगवान कभी किसी शून्य गृह के भीतर स्थित होकर ध्यान करते तब कहाँ कुछ दुराचारी लोग आते, वहाँ पर किसी अन्य पुरुष को स्थित देखकर वे पूछते—"यहाँ भीतर कौन है ?" तब भगवान मौन रहते। यदि उत्तर देना होता हो इतना ही उत्तर देते—"मै भिक्षु हूँ।" यह कहने पर यदि वे और कुछ नहीं कहते तो भगवान वहाँ ठहर जाते। अथवा अपने काम में बाधक समझकर वे क्रोधित होकर कहते—"तुम यहाँ से चले जाओ", तो भगवान वहाँ से बिना कुछ बोले अन्यत्र चले जाते। यदि भगवान वहाँ से नही जाते और वे दुराचारी लोग उन्हें कष्ट देते तब भगवान मौन रहते। यह सहनशीलता क्षमा उत्तम धर्म है यह मानकर ध्यान मे स्थिर रहते। (*वृत्ति, पत्रांक* २८०)

Elaboration—The commentator (*Vritti*) explaining this verse writes—Sometimes, when *Bhagavan* meditated in some abandoned house, lecherous persons came their When they found someone occupying the place they asked—"Who is there ?" *Bhagavan* remained silent If at all he answered he would just say—"I am a mendicant." If the intruders did not react, *Bhagavan* would stay there If they considered him a disturbing presence and retorted angrily—"You should leave this place " In such situation *Bhagavan* would leave the place without uttering a word If *Bhagavan* did not leave and the intruders caused him pain, *Bhagavan* silently endured it Considering that clemency and tolerance are part of the lofty religion, he continued his unwavering meditation. (*Vritti,* leaf 280)

शीत-परीषह-विजय

२९०. जंसिप्पेगे पवेयंति सिसिरे मारुए पवायंते।
तंसिप्पेगे अणगारा हिमवाते णिवायमेसंति॥३६॥

२९०. जब शिशिर ऋतु में ठण्डी हवा चलती तो कई (अल्प वस्त्र वाले) लोग काँपने लगते, उस ऋतु मे हिमपात होने पर कुछ अनगार भी निर्वात स्थान—हवारहित स्थानों की खोज करते।

VICTORY OVER AFFLICTION OF COLD

290. When chilling winter winds blew, many people (with scanty clothing) shivered During snowfall in that season, even some ascetics explored places protected from wind.

२९१. संघाडीओ पविसिस्सामो एहा य समादहमाण।
पिहिया वा सक्खामो 'अतिदुक्खं हिमग-संफासा'॥३७॥

२९१ (जब बर्फ गिरती या बर्फीली हवाएँ चलतीं तब) कई साधु (अनगार या अन्यतीथिक) सोचते थे कि हम कम्बलों में घुस जाएँगे या काष्ठ जलाकर, किवाड़ों को बन्द करके इस शीत को सह सकेगे।

291. (During the snowfall and when chilling winds blew) some monks (ascetics or others) thought that they could tolerate the cold by slipping under blankets, or burning fire, or closing the doors

२९२. तंसि भगवं अपडिण्णे अहे वियडे अहियासए दविए।
णिक्खम्म एगया राओ चाएइ भगवं समियाए॥३८॥

२९२ किन्तु उस शिशिर ऋतु में भी भगवान स्थान के सम्बन्ध मे अप्रतिज्ञ रहते थे (वायुरहित बन्द मकान की इच्छा नही करते) वे खुले मंडप में खडे रहकर समभावपूर्वक सर्दी को सहन करते। रात्रि मे (सर्दी प्रगाढ़ हो जाती तब) भगवान उस मंडप से बाहर चले जाते, वहाँ मुहूर्त्तभर ठहरकर फिर मंडप में आ जाते। इस प्रकार समभाव से या सम्यक् प्रकार से शीत परीषह सहन करने मे समर्थ थे।

292. But even in such cold weather *Bhagavan* had no consideration for a place (he did not desire for a closed place protected from winds) He stood in open pavilion and tolerated cold with equanimity. During the night (when the cold became intense) he would go out of the pavilion, spend sometime outside and return. He was capable of tolerating affliction of cold properly and with equanimity.

२९३. एस विही अणुक्कंतो माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एव रीयति॥३९॥

त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो॥

२९३. मतिमान् कश्यपगोत्री महर्षि महावीर ने अप्रतिबद्धविहारी रहकर बहुत बार इस विधि का आचरण किया।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

293. More often than not, the great and wise sage, Mahavir of the Kashyap clan, followed this code of conduct without any reservations.

—So I say.

विवेचन–पिछले सूत्रो में भगवान की सयम-साधना के विविध रूपो का दिग्दर्शन है। इस साधना को हम निम्न आठ अगों मे बाँट सकते हैं–

(१) शरीर-सयम, (२) अनुकूल-प्रतिकूल परीषह-उपसर्ग के समय मन:संयम, (३) आहार-संयम, (४) वासस्थान-संयम, (५) इन्द्रिय-संयम, (६) निद्रा-सयम, (७) क्रिया-संयम, तथा (८) उपकरण-सयम।

भगवान शरीर और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए (आहार, निद्रा, स्थान, आसन आदि के प्रति) पूर्णत अनाग्रही थे। '**अपडिण्णे**' अप्रतिज्ञ शब्द इसी बात को ध्वनित करता है। साधना के अनुकूल जैसा भी आचरण शक्य होता वे उसे स्वीकार लेते थे।

भगवान की निद्रा-सयम की विधि भी बहुत ही अद्‌भुत थी। वे ध्यान के द्वारा निद्रा-सयम करते थे। निद्रा पर विजय पाने के लिए वे कभी खडे हो जाते, कभी स्थान से बाहर जाकर टहलने लगते। इस प्रकार हर सम्भव उपाय से निद्रा पर विजय पाते थे।

वासस्थानो–शयनों मे विभिन्न उपसर्ग–भगवान को साधनाकाल मे वास-स्थानो में मुख्य रूप से निम्नोक्त उपसर्ग सहने पडते थे–

(१) **ससप्पगा य जे पाणा**–साँप और अन्य रेगने वाले जन्तुओ आदि द्वारा काटा जाना।

(२) **पक्खिणो**–गिद्ध आदि पक्षियो द्वारा माँस नोचना।

(३) चीटी, डाँस, मच्छर, मक्खी आदि का उपद्रव।

(४) **कुचरा**–शून्य गृह में चोर या लपट पुरुषो द्वारा सताया जाना।

(५) सशस्त्र ग्राम-रक्षकों द्वारा सताया जाना।

(६) **अदुगामिया**–कामासक्त स्त्री-पुरुषों का उपसर्ग।

(७) जनशून्य स्थानों में अकेले दुराचारी लोगों द्वारा तंग करना।

(८) उपवन के अन्दर की कोठरी आदि में घुसकर ध्यानावस्था में उत्पीडन आदि।

भगवान ध्यान के लिए जहाँ ठहरते थे उनमें-(१) दुर्गन्धित स्थान, (२) ऊबड-खाबड विषम या भयंकर स्थान, (३) सर्दी का प्रकोप, (४) चारो ओर खुले स्थान आदि मुख्य हैं। साधनाकाल में भगवान साढ़े बारह वर्ष तक ऐसे स्थानों में यतनाशील अप्रमत्त और समाहित होकर ध्यानमग्न रहते थे।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The preceding verses give vivid details of *Bhagavan's* practices of discipline These can be divided into eight categories—

(1) Discipline of body, (2) Discipline of mind in face of pleasant and unpleasant afflictions, (3) Discipline of food, (4) Discipline of place of stay, (5) Discipline of senses, (6) Discipline of sleep, (7) Discipline of action, and (8) Discipline of equipment

With regard to his necessities (food, sleep, place of stay, etc) *Bhagavan* had absolutely no preferences The word *apadinne* points at this fact only He accepted whatever was available and best suited for his spiritual practices

The way he perfected the discipline of sleep was unique He exercised control over sleep through meditation To win over sleep he would sometimes remain standing and at others go out to walk Thus he employed every possible method to win over sleep

Various afflictions at places of stay—During the period of spiritual practices, *Bhagavan* had to mainly suffer following afflictions—

(1) ***Samsappagaya je pana***—bites of snakes and other crawling creatures

(2) ***Pakkhino***—pecking by vultures and other birds

(3) Discomfort caused by ants, wasps, mosquitoes, flies and other insects

(4) ***Kuchara***—torments by bad elements of society like thieves and lecherous persons at desolate places

(5) Tortures given by armed guards.

(6) ***Adugamia***—afflictions by lecherous women and men.

(7) Disturbances by vile individuals at remote and forlorn places.

(8) Torturing by intruders while meditating in rooms or cabins located in gardens

Prominent among the places where *Bhagavan* stopped for meditation were—(1) stinking places, (2) uneven and difficult and haunted places, (3) cold places, (4) places open from all sides, etc During his period of practices *Bhagavan* meditated with all care, alertness and devotion for twelve and a half years

● **END OF LESSON TWO** ●

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

उत्तम तितिक्षा साधना

२९४. तणफासे सीयफासे य तेउफासे य दंस-मसगे य।
अहियासए सया समिए फासाइं विरूवरूवाइं॥४०॥

२९४. (लाढ देश मे विहार करते समय भगवान को निम्न प्रकार के उपसर्ग हुए) घास-कटकादि का कठोर चुभता स्पर्श, अत्यन्त शीत स्पर्श, भयकर गर्मी का स्पर्श, डास और मच्छरों का दश, इन नाना प्रकार के दुःखदायी स्पर्शो को सतत सहन करते थे।

LOFTY PRACTICE OF TOLERANCE

294. (While wandering in the Laadh country *Bhagavan* suffered following afflictions) piercing and harsh touch of grass and thorns, extremely cold touch, extremely hot touch, stinging touch of wasps and mosquitoes He continuously tolerated varieties of such agonizing touch

२९५. अह दुच्चरलाढमचारी वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च।
पंतं सेज्जं सेविसु आसणगाइं चेव पंताइ॥४१॥

२९५. लाढ देश के वज्र भूमि और शुभ्र भूमि नामक दुर्गम प्रदेश मे भगवान ने विचरण किया था। वहाँ उन्होने बहुत ही तुच्छ (कष्टप्रद) वास-स्थानो और कठिन आसनो का सेवन किया था।

295. *Bhagavan* wandered in the difficult terrain of Vajra area and Laadh area There he used extremely miserable and difficult places of stay and seats

२९६. लाढेहि तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लूसिसु।
अह लूहदेसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु णिवतिंसु॥४२॥

२९६ लाढ़ देश के क्षेत्र मे भगवान ने अनेक उपसर्ग सहे। वहाँ के बहुत से अनार्य लोग भगवान पर डण्डों आदि से प्रहार करते थे, (उस देश के लोग ही रूखे थे, अत·) भोजन भी प्रायः रूखा-रूखा ही मिलता था। वहाँ के शिकारी कुत्ते उन पर टूट पड़ते और काट खाते थे।

296. In the Laadh area *Bhagavan* suffered numerous afflictions. Many aborigines of that area hit *Bhagavan* with sticks and other things. (The people of that country were rustics, so—) he generally got dry and insipid food. Hunting dogs in that area attacked and bit him

२९७. अप्पे जणे णिवारेइ लूसणए सुणए डसमाणे।
छुच्छुकारेंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति॥४३॥

२९७. शिकारी कुत्ते जब भगवान को काटने लगते या भौंकते तो कोई-कोई लोग उन काटते हुए कुत्तो को रोकते, (अधिकाश लोग तो) इस श्रमण को कुत्ते काटें, इस नीयत से कुत्तो को बुलाते और छुछकारकर उनके पीछे लगा देते थे।

297. When hunting dogs attacked *Bhagavan,* a few people prevented the dogs from biting him, and others (most of them) ushered the dogs and shooed them to attack *Bhagavan* with the intention that the dogs bite this *Shraman.*

२९८. एलिक्खए जणे भुज्जो बहवे वज्जभूमि फरूसासी।
लट्ठिं गहाय णालीयं समणा तत्थ एव विहरिंसु॥४४॥

२९८. उस वज्र भूमि मे कठोर स्वभाव वाले रूक्षभोजी बहुत से लोग थे, भगवान ने (छ मास तक) वहाँ पर पुन -पुनः विचरण किया। उस जनपद मे दूसरे अन्य श्रमण अपने (शरीर-प्रमाण) लाठी और (शरीर से चार अंगुल लम्बी) नालिका पास में रखकर विहार करते थे।

298. That Vajra area abounded in cruel people who ate insipid food *Bhagavan* continued to wander in that area (for six long months). Other *Shramans* would dare to wander in that state only with a stick or a pipe (equal to their height).

२९९. एवं पि तत्थ विहरंता पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं।
संलुंचमाणा सुणएहिं दुच्चरगाणि तत्थ लाढेहिं॥४५॥

२९९. इस प्रकार वहाँ विचरण करने वाले श्रमणो को भी कुत्ते (टाँग आदि से) पकड़ लेते और इधर-उधर काट खाते या नोंच डालते। सचमुच उस लाढ़ देश में विचरण करना बहुत ही दुष्कर था।

299. Even those *Shramans* were caught (by their legs), bitten, or clawed by dogs. Indeed, it was a tough task to move about in that Laadh country.

३००. णिहाय डंडं पाणेहिं तं कायं वोसज्ज मणगारे।
अह गामकंटए भगवं ते अहियासए अभिसमेच्चा॥४६॥

३००. अनगार भगवान महावीर प्राणियों के प्रति मन-वचन-काया से होने वाले दण्ड का परित्याग कर तथा अपने शरीर के प्रति ममत्व भावरहित होकर (विचरण करते थे) उन ग्राम्यजनों के कॉंटो के समान तीक्ष्ण वचनों को सहन करते थे।

300. Homeless Bhagavan Mahavır (moved about and) tolerated the thorn-like stınging words of those villagers abandonıng all feelings of retaliation wıth mind, speech and body, and beıng devoıd of any fondness for his own body.

३०१. णागो संगामसीसे वा पारए तत्थ से महावीरे।
एवं पि तत्थ लाढेहिं अलद्धपुव्वो वि एगया गामो॥४७॥

३०१ जैसे युद्ध के मोर्चे पर हाथी (शस्त्र से घायल होने पर भी) पीछे नहीं हटता, वैरी को जीतकर युद्ध का पार पा जाता है, वैसे ही भगवान महावीर उस देश में परीषह सेना को जीतकर पारगामी हुए। कभी-कभी उन्हें (गाँव मे स्थान नहीं मिलने पर) अरण्य मे रहना पडा।

301. Just as an elephant does not retreat from a battle (ın spıte of beıng wounded by weapons) and embraces victory, *Bhagavan* Mahavır also achieved victory over the army of afflıctions in that country. Sometimes he had to live in ȷungle also (when he dıd not find any place ın a village).

३०२. उवसंकमंतमपडिण्णं गामंतियं पि अपत्तं।
पडिणिक्खमित्तु लूसिंसु एत्तातो परं पलेहि त्ति॥४८॥

३०२ भगवान किसी खास प्रकार के वास-स्थान या आहार के विषय में संकल्प नहीं करते थे। किन्तु आवश्यक होने पर निवास या आहार के लिए वे ग्राम में जाते थे। वे ग्राम के निकट पहुँचते, न पहुँचते तब तक तो कुछ लोग उस गाँव से निकलकर भगवान को रोक लेते, उन पर प्रहार करते और कहते–"यहाँ से आगे कहीं दूसरा स्थान देखो।

302. *Bhagavan* did not have any preference for any special place of stay or food Only when needed he would enter a village for food or stay. Even before he came near a village, the villagers would come out of the village, stop him, assault him and say—"Go away and look for some other place."

३०३. हयपुव्वो तत्थ डंडेणं अदुवा मुट्ठिणा अदु कुंताइ फलेणं।
अदु लेलुणा कवालेणं हंता हंता बहवे कंदिंसु॥४९॥

३०३ भगवान को बहुत से लोग डण्डे से या मुक्के से अथवा भाले आदि शस्त्र से या फिर मिट्टी के ढेले या खप्पर (ठीकरे) से मारते, फिर 'मारो-मारो' कहकर चिल्लाते।

303. Many people would assault *Bhagavan* with sticks, fists, weapons like lances, or even lumps of sand or pieces of earthen pots, and scream—'Beat him, hit him.'

३०४. मंसाणि छिन्नपुव्वाइं उट्ठभति एगयाइं कायं।
परिस्सहाइं लुंचिसु अदुवा पसुणा अवकरिंसु॥५०॥

३०४ कुछ अनार्य लोगो ने पहले एक बार ध्यानस्थ खडे भगवान के शरीर को पकडकर मॉस काट लिया था। वे कभी शरीर पर थूक देते। परीषहो से पीडित करते थे कभी उन पर धूल फेकते थे।

304. Some aborigines would hold him while he meditated and cut out his flesh. They would sometimes spit over him, torment him many ways and throw dirt on him

३०५. उच्चालइयं णिहणिंसु अदुवा आसणाओ खलइंसु।
वोसट्ठकाए पणयासी दुक्खसहे भगवं अपडिन्ने॥५१॥

३०५. कुछ लोग भगवान को ध्यानस्थ देखकर ऊँचा उठाकर नीचे पटक देते थे, कुछ लोग आसन से (धक्का मारकर) दूर धकेल देते थे, किन्तु भगवान शरीर का व्युत्सर्ग किए हुए, परीषह सहन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध, कष्ट-सहिष्णु-दुःख सहन करने की प्रतिज्ञा से युक्त थे। अतएव वे इन परीषहों-उपसर्गों से विचलित नहीं होते थे।

305. Some people would lift him up, while he meditated, and toss him on the ground. Some would push and topple him from the posture he had acquired. But *Bhagavan* had dissociated himself from his body and resolved to endure afflictions and

torments. Therefore he was not moved by these afflictions and torments.

३०६. सूरो संगामसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणो फरूसाइं अचले भगवं रीइत्था॥५२॥

३०६ युद्ध के मोर्चे पर जैसे कवच पहना हुआ योद्धा शस्त्रो से विद्ध होने पर भी विचलित नही होता, वैसे ही भगवान महावीर संवर का कवच पहने हुए कठोरतम कष्टों को जीतकर ध्यान में निश्चल रहकर मोक्षपथ मे पराक्रम करते थे।

306. On a battle front an armoured warrior remains undisturbed even when hit by weapons In the same way Bhagavan Mahavir, wearing the armour of *samvar* (blocking of inflow of *karmas*), conquered extreme torments, remained firm in his meditation and pursued the path of liberation.

३०७. एस विही अणुक्कंतो माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयंति॥५३॥

त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

३०७. मतिमान महर्षि भगवान महावीर ने सब प्रकार की प्रतिज्ञा से मुक्त रहकर इस (पूर्वोक्त) विधि का बार-बार आचरण किया (उनके द्वारा आचरित एव उपदिष्ट विधि का अन्य साधक भी इसी प्रकार आचरण करते हैं)।

–ऐसा मै कहता हूँ।

307. More often than not, the great and wise sage, Mahavir of the Kashyap clan, followed this code of conduct without any reservations (Other aspirants also follow this code followed and preached by him).

—So I say.

विवेचन–लाढ़ देश में विहार का उद्देश्य–भगवान ने मृगसर वदि १० के दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन उन्होंने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की। "तओ णं समणे भगव महावीरे .... एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति बारसवासाइ वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ उवसग्गा समुप्पज्जंति, तं जहा ... अहियासइस्सामि।" मुझे जो साधनाकाल में जो कोई देव-मनुष्य-तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उत्पन्न

होंगे। मैं उनका देह पर ममत्व नहीं रखते हुए सम्यक् प्रकार से सहन करूँगा। भगवान ने दीक्षा लेते ही अपने शरीर का व्युत्सर्ग कर दिया था। व्युत्सर्जन की कसौटी पर अपने शरीर को कसने के लिए लाढ़ देश जैसे दुर्गम और दुश्चर क्षेत्र में विचरण किया। आवश्यक चूर्णि (पूर्व भाग, पृ. २९०) में बताया गया है कि भगवान यह चिन्तन करते हैं कि 'अभी मुझे बहुत से कर्मों की निर्जरा करनी है, इसलिए लाढ़ देश में जाऊँ। वहाँ अनार्य लोग हैं, वहाँ कर्मनिर्जरा के अवसर अधिक उपलब्ध होंगे।' मन में इस प्रकार का विचार करके भगवान लाढ़ देश के लिए चल पडे।

इतिहास एवं भूगोल के अनुसार पता चलता है कि वर्तमान में वीरभूम, सिंहभूम एवं मानभूम (धनबाद आदि) जिले तथा पश्चिम बंगाल के तमलूक, मिदनापुर, हुगली तथा बर्दवान जिले का हिस्सा लाढ़ देश माना जाता था।

आचाराग चूर्णि मे बताया है–'लाढ़ देश पर्वतों, झाडियों और घने जंगलों के कारण बहुत दुर्गम था, उस प्रदेश में नुकीली घास बहुत होती थी। चारों ओर पर्वतों से घिरा होने के कारण वहाँ सर्दी और गर्मी दोनो ही अधिक पड़ती थीं। इसके अतिरिक्त वर्षा ऋतु में वर्षा अधिक होने से वहाँ दलदल हो जाती जिससे डांस, मच्छर, जलौका आदि अनेक जीव-जन्तु पैदा हो जाते थे। लाढ़ देश के वज्रभूमि और सुम्हभूमि नामक जनपदों मे नगर बहुत कम थे। गाँव मे बस्ती भी बहुत कम होती थी।

वहाँ प्राय अनार्य और आदिवासी लोग रहते थे। लाढ़ देश के लोग साधुओं से परिचित न होने के कारण वे देखते ही उनसे उपद्रव करते थे। कई कुतूहलवश एवं जिज्ञासावश प्रश्न करते, परन्तु भगवान मौन रहते, तो वे उत्तेजित होकर या शंकाशील होकर उन्हें पीटने लग जाते। भगवान को नग्न देखकर कई बार तो वे गाँव मे प्रवेश नही करने देते थे।

लाढ देश में तिल नही होते थे, गाएँ भी बहुत कम थीं, इसलिए वहाँ घी-तेल सुलभ नहीं था, वहाँ के लोग रूखा-सूखा भोजन करते थे, इसलिए स्वभाव से भी रूखे थे। बात-बात में उत्तेजित होना, गाली देना या झगडा करना, उनका स्वभाव था। घास से या वृक्ष छाल से शरीर ढँके रहते थे। भगवान को भी प्राय रूखा-सूखा आहार मिलता था। भगवान मध्याह्न में भोजन लेने जाते वहाँ उन्हें ठंडे चावल पानी में भिगोकर रखे हए और उड़द की थेडी दाल मिलती, अम्ल रस (इमली) मिलती। नमक नही मिलता।

वहाँ कुत्तो का बहुत अधिक उपद्रव था। वहाँ के कुत्ते बडे खूँख्वार थे। वहाँ के निवासी या उस प्रदेश में विचरण करने वाले अन्यतीर्थिक भिक्षु कुत्तों से बचाव के लिए लाठी और डण्डा रखते थे, लेकिन भगवान तो परम अहिंसक थे, उनके पास न लाठी थी, न डण्डा। इसलिए कुत्ते निःशंक होकर उन पर हमला कर देते थे। कई अनार्य लोग छू-छू करके कुत्तों को बुलाते और भगवान को काटने के लिए उकसाते थे।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The purpose of wanderings in the Laadh country—At the time of getting initiated on *Margsheersh Krishna* (dark half of the month) tenth, *Bhagavan* took this vow—'During the period of my spiritual practices I will sincerely endure all afflictions caused by gods, humans and animals, without having any fondness for my body' The moment he got initiated, *Bhagavan* dissociated himself from his body In order to test this dissociation of the self from the body he spent sometime wandering in a difficult and impassable terrain like Laadh country It is mentioned in *Avashyak Churni* (Part one, p 290)—*Bhagavan* thinks—'I have yet to shed many *karmas* Therefore, I will go to the Laadh country. That area is inhabited by aborigines and I will get more opportunities to shed *karmas* ' With these thoughts *Bhagavan* left for Laadh country

Historical and geographical information reveals that the Laadh country of antiquity was formed by the areas now known as Virbhum, Simhabhum and Manbhum (Dhanbad, etc) districts and parts of Tamluk, Midnapur, Hoogly and Burdwan districts of West Bengal

Acharanga Churni states—'Laadh country was a very difficult terrain due to hills, thickets and jungles That area was infested with sharp edged and thorn-like grass As it was surrounded by hills, this area had extremes of cold and heat Besides this, the area became marshy due to excessive rain during monsoon season. And this made it infested with insects like wasps, mosquitos, leeches, etc Vajrabhumi and Sumhabhui areas of Laadh country had very few cities Even the villages were sparsely populated

The area was mostly inhabited by aborigines and rustics As the inhabitants of this area were ignorant about monks and ascetics, they reacted violently when they saw any mendicant Driven by curiosity, some of them asked questions but when *Bhagavan* did not respond they got agitated and apprehensive and would start beating him Due to his unclad state they often did not allow him to enter their villages

Laadh area had no crops of sesame or other oil-seeds It had very few cattle. Therefore, oil or butter was not available for cooking The inhabitants ate dry and insipid food and therefore there attitude was also dry and rough. To get agitated for no reason, start abusing, and quarrelling were commonplace They covered their bodies with grass or bark. *Bhagavan* generally got dry and insipid food When he went to seek alms in the afternoon, *Bhagavan* would get soaked and stale rice, half-cooked pulse and tamarind juice He even did not get salt

That area was filled with ferocious wild dogs The inhabitants of that area and the mendicants who frequented, always carried a long stick to protect themselves from these dogs But *Bhagavan* was extremely non-violent and did not carry any stick. Therefore dogs would attack him without any fear Some aborigines also ushered these dogs and provoked them to bite *Bhagavan*

● **END OF LESSON THREE** ●

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

(भगवान महावीर का उग्र तपश्चरण)
(Extreme austerities of Bhagavan Mahavir)

चितित्सा परिहार

३०८. ओमोदरियं चाएति अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं।
पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा णो से सातिज्जती तेइच्छं॥५४॥

३०८. भगवान किसी भी रोग से आक्रान्त नही थे, फिर भी अनोखी (अल्पाहार) तप करते थे। वे रोग से आक्रात हो या न हों कभी चिकित्सा का अनुमोदन करते थे।

ABANDONING CURE

308. Although untouched by any aılment *Bhagavan* stıll indulged in the *unodarı*—austerıty (restrıcted or curtailed diet). He never approved of any medıcatıon ırrespectıve of beıng sıck or not

३०९. संसोहणं च वमणं च गायब्भंगणं सिणाण च।
संबाहणं न से कप्पे दतपक्खालण परिण्णाए॥५५॥

३०९. वे शरीर का परिकर्म, जैसे–विरेचन, वमन, तैलमर्दन, स्नान और मर्दन (पगचपी) आदि नहीं करते थे, तथा दन्तप्रक्षालन भी नही करते थे।

309. He never ındulged in any process of physıcal cleansing, such as—use of purgatıves and emetıcs, oil massage, bathing, pedicure, or even cleanıng hıs teeth

३१०. विरते य गामधम्मेहि रीयति माहणे अबहुवादी।
सिसिरंपि एगदा भगवं छायाए झाइ आसी य॥५६॥

३१०. महामाहन भगवान ग्राम धर्म-शब्द आदि इन्द्रिय-विषयो से विरत होकर विचरण करते थे। वे बहुत नही बोलते थे। कभी-कभी भगवान शिशिर ऋतु में छाया में स्थित होकर ध्यान करते थे।

310. Great sage (*Bhagavan* Mahavir) moved about without having any concern wıth worldly actıvities He did not speak

much. Once in a while he would meditate in shade (without the warmth of sun) even during winter.

विवेचन–साधारणतया मनुष्य तभी अल्पाहार करता है, जब वह रोग से घिर जाता है। परन्तु भगवान को वातादि जनित कोई रोग नहीं था। फिर भी साधना की दृष्टि से वे सदा अल्पाहार करते थे।

रोग दो प्रकार के होते हैं–वातादि के क्षुब्ध होने से उत्पन्न तथा आगन्तुक। साधारण मनुष्यों की तरह भगवान के शरीर मे वातादि से उत्पन्न खाँसी, दमा, पेट-दर्द आदि कोई रोग नहीं होते, शस्त्र-प्रहारादि से जनित आगन्तुक रोग हो सकते हैं परन्तु वे दोनों ही प्रकार के रोगों की चिकित्सा के प्रति उदासीन थे। (*आचाराग चूर्णि*, पृ ३२१)

भगवान शरीर के प्रति सर्वथा मोहरहित थे। चूर्णिकार ने बताया है–शिशिर ऋतु में ध्यान करते-करते जब वहाँ छाया आ जाती तो वे उठकर घूमने नहीं जाते थे। **छायाए ण आतव गच्छति तथा उण्हे रुक्खे य वायते।** अर्थात् ग्रीष्म ऋतु मे उकड़ू आसन से बैठकर भगवान गर्म लू या रूखी जैसी भी हवा होती, उसके अभिमुख होकर आतापना लेते थे।

Elaboration—Generally people go on restricted diet only when they are sick *Bhagavan* suffered from no ailment or disturbance of the three humours However, he always took restricted or curtailed diet, it was for the sake of his spiritual practices

Ailments are of two types—caused by disturbance of humours of the body, and caused by infection and injury *Bhagavan* could not suffer from any ailment caused by disturbance of humours, such as coughing, asthma, stomach ache, etc He could certainly get injured or infected But he was apathetic to any treatment for both these types of ailments (*Acharanga Churni*, p 321)

Bhagavan was absolutely devoid of fondness for his body The commentator (*Vritti*) informs—During winter while meditating in sun he would not shift to avoid shade. And in summer he would squat facing the wind and endure heat.

तप एव आहार चर्या

३११. आयावई य गिम्हाणं अच्छइ उक्कुडए अभिवाते।
अदु जावइत्थं लूहेणं ओयण-मंथु-कुम्मासेणं ॥५७॥

३११. ग्रीष्म ऋतु में भगवान आतापना लेते थे तथा उकडू आसन से सूर्य के सामने अथवा गर्म हवाओं के अभिमुख होकर बैठते थे। प्रायः रूखे आहार को दो, सत्तू तथा उड़द से शरीर-निर्वाह करते थे।

AUSTERITIES AND FOOD

311. In the summer season *Bhagavan* endured heat deliberately. He would squat facing the sun or searing winds He subsisted on course rice, grain-flour and pulses.

३१२. एयाणि तिण्णि पडिसेवे अट्ठ मासे अ जावए भगवं।
अपिइत्थ एगया भगवं अद्धमासं अदुवा मासं पि॥५८॥

३१२. भगवान ने उक्त तीनों प्रकार के आहार का सेवन करके आठ मास तक समय यापन किया। कभी-कभी भगवान ने अर्ध मास (पक्ष) या एक मास तक पानी नहीं पीया।

312. *Bhagavan* lived on these three types of food for eight months Sometimes he went without water for a fortnight or a month

३१३. अवि साहिए दुवे मासे छप्पि मासे अदुवा अपिवित्ता।
रायोवरायं अपडिण्णे अण्णगिलायमेगया भुंजे॥५९॥

३१३. भगवान ने कभी-कभी दो महीने से अधिक तथा छह महीने तक भी पानी नही पीया। वे रातभर जागृत रहते, किन्तु मन में नींद लेने का सकल्प नहीं होता। कभी-कभी वे बासी भोजन भी करते थे।

313. Sometimes *Bhagavan* did not drink water for over two months and even as long as six months He would remain awake throughout the night and would not even think of sleeping. Sometimes he would take even stale food.

३१४. छट्ठेणं एगया भुंजे अदुवा अट्ठमेण दसमेणं।
दुवालसमेण एगया भुंजे पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे॥६०॥

३१४. भगवान कभी छट्ठ (दो दिन के उपवास) के अनन्तर, कभी अट्ठम तेले, कभी चोले (दशम) और कभी पंचोले (द्वादश) के अनन्तर भोजन करते थे। भोजन के प्रति संकल्परहित होकर वे तप समाधि का प्रेक्षण (पर्यालोचन) करते रहते थे।

314. Sometimes *Bhagavan* would accept food after fasting for two, three, four or five days. Without any thought of food he diverted all his attention to his austerities and meditation.

३१५. णच्चाणं से महावीरे णो वि य पावगं सयमकासी।
अण्णेहिं वि ण कारियत्था कीरंतं पि णाणुजाणित्था॥६१॥

३१५. भगवान महावीर (आहार सम्बन्धी दोषों को जानकर) स्वयं पाप–आरम्भ-समारंभ नहीं करते थे, दूसरों से भी नहीं करवाते थे और पाप करने का अनुमोदन भी नहीं करते थे।

315. (Being aware of faults related to food) *Bhagavan* Mahavır never indulged ın violence (sınful activities), nor did he cause others to do so, nor approved of others doing so.

३१६. गामं पविस्स णगरं वा घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं आयतजोगयाए सेवित्था॥६२॥

३१६. भगवान ग्राम या नगर में प्रवेश करके दूसरे (गृहस्थों) के लिए बने हुए भोजन की एषणा करते थे। सुविशुद्ध (सर्वथा शुद्ध) आहार ग्रहण करके भगवान आयतयोग (सयत-विधि) से उसका सेवन करते थे।

316. Enterıng a village or a town, *Bhagavan* sought food that was prepared for others (householders). Collecting pure (faultless) food he would eat wıth absolute discipline.

३१७. अदु वायसा दिगिंछत्ता जे अण्णे रसेसिणो सत्ता।
घासेसणाए चिट्ठंते सययं णिवतिते य पेहाए॥६३॥

३१८. अदु माहणं व समणं वा गामपिंडोलगं च अतिहिं वा।
सोवागं मूसियारं वा कुक्कुरं वा वि विहं ठियं पुरतो॥६४॥

३१९. वित्तिच्छेदं वज्जंतो तेसऽप्पत्तियं परिहरंतो।
मंदं परक्कमे भगवं अहिंसमाणो घासमेसित्था॥६५॥

३१७-३१८-३१९. भिक्षाटन के लिए जाते समय, वहाँ रास्ते में क्षुधा से पीड़ित कौओं तथा पानी पीने के लिए आतुर अन्य प्राणियों को बैठे हुए देखकर अथवा ब्राह्मण, श्रमण, गाँव के भिखारी या अतिथि, चाण्डाल, बिल्ली या कुत्ते को आगे मार्ग मे बैठा देखकर उनकी आजीविका का विच्छेद न हो, तथा उनके मन मे अप्रीति (द्वेष) या अप्रतीति (भय) उत्पन्न न हो, इसे ध्यान में रखकर धीरे-धीरे चलते थे। किसी को जरा-सा भी त्रास न हो, इसलिए हिंसा न करते हुए आहार की गवेषणा करते थे।

317-318-319. While moving about to seek alms, when he came across a flock of birds, such as hungry crows, or other thirsty creatures, or a Brahmin, *Shraman,* beggar, guest, *chandal* (keeper of a cremation ground), cat or dog sitting (or standing) on the path ahead, *Bhagavan* would walk slowly and softly. This was done with the awareness that they should not be deprived of their livelihood and should not be filled with hatred and fear In order not to cause any apprehension or disturbance to others, he searched for food avoiding any violence

३२०. अवि सूइयं व सुक्कं वा सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बक्कसं पुलागं वा लद्धे पिंडे अलद्धए दविए॥६६॥

३२०. चाहे भोजन व्यजन सहित हो या व्यजनरहित सूखा हो, अथवा ठंडा भात हो या बासी। उडद हो, पुराने धान का ओदन हो या पुराना सत्तू हो, या जौ से बना हुआ आहार हो, पर्याप्त एवं अच्छे आहार के मिलने या न मिलने पर इन सब स्थितियो में संयमनिष्ठ भगवान राग-द्वेष नहीं करते थे।

320. Be it savoury or insipid, cold rice or stale rice, pulse or soup of decayed grain, musty flour or cooked barley, enough or not and whether he got it or not, in all these conditions *Bhagavan,* who was devoted to discipline, remained free of attachment and aversion.

ध्यान-साधना

३२१. अवि झाति से महावीरे आसणत्थे अकुक्कुए झाणं।
उड्ढं अहे य तिरियं च पेहमाणे समाहिमपडिण्णे॥६७॥

३२१. भगवान महावीर ध्यान करते समय उकडू (गोदोहिका) आदि यथोचित आसनों मे स्थित और स्थिर रहते थे। वे ऊँचे, नीचे और तिरछे लोक में स्थित जीवादि पदार्थों को ध्यान का विषय बनाते थे। किसी भी अन्य प्रकार के संकल्प से मुक्त रहकर आत्म-समाधि में ही स्थित रहते थे।

MEDITATION

321. *Bhagavan* Mahavir meditated becoming firm and still in *Godohik* (squatting as while milking a cow) and other suitable postures. He made beings and other substances existing in upper, lower and transverse world (three

चित्र परिचय १८	Illustration No. 18
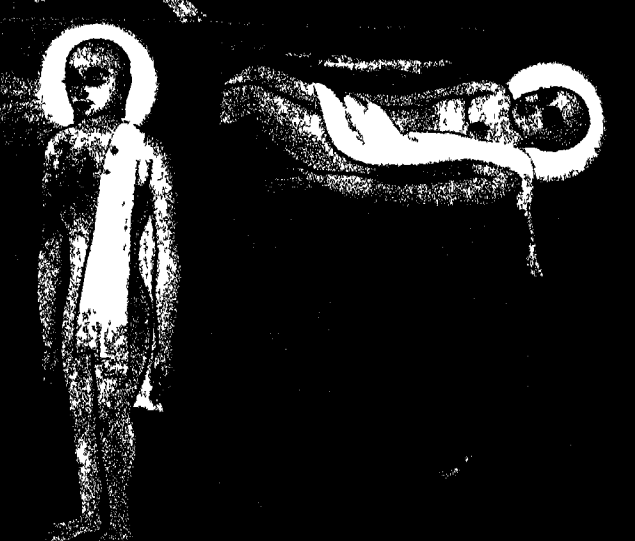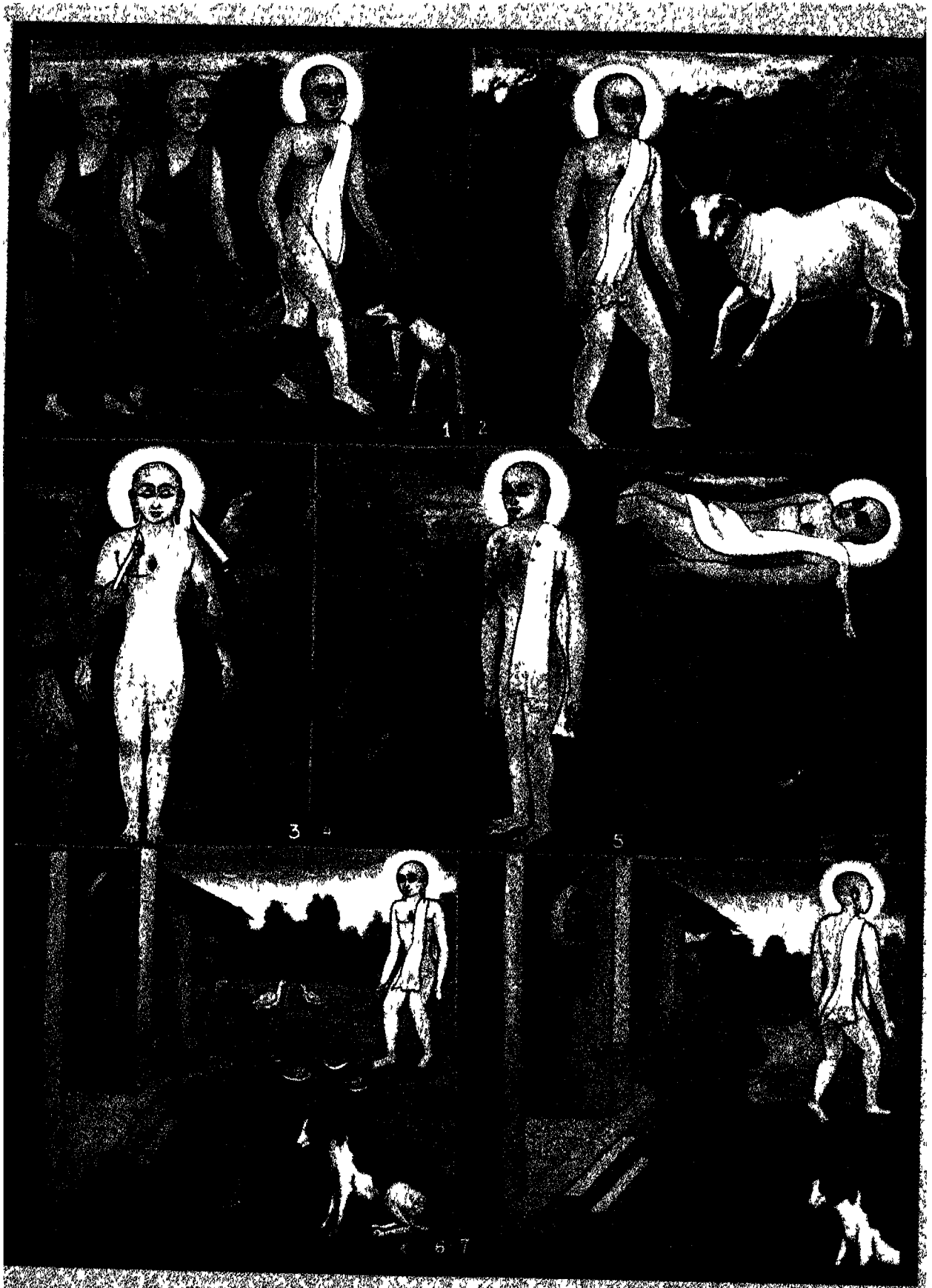
अनार्य भूमि में विहार

भगवान लाढ देश की वज्र भूमि तथा शुभ्र भूमि मे विहार करते तब वहाँ शिकारी कुत्ते भौकते और काटने आते। तब कोई-कोई उन्हे रोकता, परन्तु अधिकतर लोक रूक्ष प्रकृति के अत्यन्त उग्र स्वभाव के होते थे। वे छू-छू कर उन कुत्तो को बुलाते और भगवान के पीछे लगा देत। कुछ परिव्राजक तथा बौद्ध भिक्षु उन कुत्तो से बचने के लिए लम्बे दण्ड व नलिका हाथ मे लेकर चलते परन्तु भगवान तो अपने शरीर के प्रति निर्ममत्व थे। हिंसक पशु व क्रुद्ध गाय आदि भी उन पर प्रहार करते तब लोग दूर खडे तमाशबीन बने नाचते देखते रहते। *—अ ९, उ ३, सूत्र २९८*

कुछ लोग दण्ड, मुष्टि, भाला आदि शस्त्रो से उनका मॉस काट लेते उनके कपाल पर प्रहार करते, मिट्टी ढेले आदि फेकते परन्तु भगवान अपने ध्यान से विचलित नही होते। *—अ ९ उ ३, सूत्र ३०४*

कुछ लोग ध्यान मे स्थित भगवान को ऊँचा उठाकर नीचे पटक देते। कुछ आसन से विचलित कर देते। परन्तु कष्ट सहिष्णु प्रभु अविचल रहते। *—अ ९, उ ३, सूत्र ३०५*

भगवान भिक्षा के लिए जाते तब मार्ग मे भूख प्यास से पीडित कोए, चिडियाँ कुत्ते बिल्ली आदि को बैठा देखकर तथा श्रमण भिक्षु आदि को द्वार पर खडा देखकर उनकी वृत्ति-विच्छेद न हो, इसका ध्यान रखकर धीमे-धीमे चलते, अथवा लौट आते। *-अ ९, उ ४ सूत्र ३१७-३१९*

MOVEMENT IN ANARYA COUNTRY

When *Bhagavan* moved about in *Vajra Bhumi* and *Shubhra Bhumi* of the *Laadh* country, ferocious wild dogs barked and attacked him Some people tried to prevent this but most of the inhabitants of that area were dry and violent in nature They ushered these dogs and provoked them to bite *Bhagavan* Some mendicants and *Buddhist* monks always carried a long stick or pipe to protect themselves from these dogs But *Bhagavan* had no attachment for his body When violent animals or angry cattle attacked him, those people watched from a distance and even danced with joy *—9/3/298*

Many people would assault *Bhagavan* with sticks, fists, weapons like lances, cut out his flesh or even throw lumps of sand or pieces of earthen pots on him But *Bhagavan's* meditation was never disturbed *—9/3/304*

Some people would lift him up, while he was meditating and toss him on the ground Some would push and topple him from the posture he had acquired But *Bhagavan* was not moved by these afflictions and torments *—9/3/305*

While moving about to seek alms, when he came across hungry and thirsty creatures, like a flock of birds, crows, cat or dog blocking the path or a *Brahmin, Shraman* or beggar, standing on the gate, *Bhagavan* would walk slowly and softly or retrace his steps This was done with the view of not depriving them of their livelihood *—9/4/317-319*

dimensions) the subjects of his meditation. Free of all other thoughts he remained absorbed in his meditation.

३२२. अकसायी विगयगेही य सद्द-रूवेसुऽमुच्छिए झाति।
छउमत्थे वि परक्कममाणे ण पमायं सइं पि कुव्वित्था॥६८॥

३२२ भगवान क्रोधादि कषायों को शान्त करके गृद्धि–आसक्ति को त्यागकर, शब्द और रूप आदि के प्रति अमूर्च्छित रहकर ध्यान करते थे। छद्मस्थ अवस्था मे पराक्रम करते हुए उन्होंने एक बार भी प्रमाद नहीं किया।

322. Pacifying anger and other passions, abandoning all attachment and avoiding any involvement with sound, form (and other subjects of senses), *Bhagavan* meditated. Pursuing his path in his *chhadmasth* state (state of finite cognition and not omniscience) never once was he overwhelmed by stupor

३२३. सयमेव अभिसमागम्म आयतजोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले आवकहं भगवं समिआसी॥६९॥

३२३ भगवान ने स्वयमेव आत्म-शुद्धि के द्वारा आयतयोग (मन-वचन-काया की संयत प्रवृत्ति) को प्राप्त कर लिया तथा उनके कषाय उपशान्त हो गये। उन्होंने जीवन-पर्यन्त माया से रहित तथा समिति-गुप्ति से युक्त होकर साधना की।

323. *Bhagavan* achieved the ideal combination (the discipline of mind, speech and body) through purification of soul on his own and his passions were pacified Being free of illusion and deceit and endowed with self-regulation and self-restraint he continued his spiritual practices all his life

३२४. एस विही अणुक्कंतो माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयंति॥७०॥

त्ति बेमि।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥
॥ उवहाणसुय : नवमं अज्झयण सम्मत्तं ॥

३२४. ज्ञानी महामाहन भगवान ने किसी प्रतिज्ञा (आग्रह-बुद्धि या संकल्प) से रहित विधि का आचरण किया। उनके द्वारा आचरित एवं उपदिष्ट विधि का अन्य साधक भी अपने आत्म-विकास के लिए इसी प्रकार आचरण करते हैं।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

324. Wise and great sage *Bhagavan* Mahavir followed a code that was devoid of any bias or dogma. Other pursuers of the spiritual path follow the same conduct as preached and followed by him

—So I say.

विवेचन–भगवान की तप.साधना के साथ जागृति के सूचक दो विशेषण बार–बार आते है–(१) समाधि-प्रेक्षा, और (२) अप्रतिज्ञा। अर्थात् भगवान चाहे जितना कठोर उग्र तप करते, किन्तु साथ मे आत्म-समाधि का सतत प्रेक्षण करते रहते। दूसरी बात किसी प्रकार के पूर्वाग्रह या हठाग्रह से युक्त नही थे।

वृत्तिकार ने आयत योग का अर्थ मन-वचन-काया का संयत योग (सम्यक् प्रवृत्ति) किया है। परन्तु आयत योग को तन्मयता योग कह सकते है। भगवान जो भी क्रिया करते, उसमे तन्मय हो जाते थे। अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना से मुक्त रहकर केवल वर्तमान मे रहने की क्रिया मे पूर्णतया तन्मय होना ही आयत योग है। वे चलते समय केवल चलते थे। चलते समय न तो इधर-उधर झाँकते, न बाते या स्वाध्याय करते, और न ही चिन्तन करते थे।

'अण्णगिलाय'–शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने पर्युषित बासी भोजन किया है। भगवतीसूत्र की टीका में 'अन्नग्लायक' शब्द की व्याख्या की गई है–जो अन्न के बिना ग्लान हो जाता है, वह अन्नग्लायक कहलाता है। क्षुधातुर होने के कारण वह प्रात होते ही जैसा भी, जो कुछ बासी, ठडा भोजन मिलता है, उसे खा लेता है। यद्यपि भगवान क्षुधातुर स्थिति मे नही होते थे, किन्तु ध्यान आदि मे विघ्न न आये तथा समभाव साधना की दृष्टि से समय पर जैसा भी बासी-ठण्डा भोजन मिल जाता, बिना स्वाद लिए उसका सेवन कर लेते थे।

चूर्णिकार ने अन्नग्लान शब्द का अर्थ किया है–सत्वहीन, रसहीन नीरस अन्न।

'सूइय' शब्द का अर्थ है–दही आदि से गीले किए हुए भात अथवा दही के साथ भात मिलाकर करवा बनाया हुआ। **सुक्क** = सूखा, **सीय पिण्डं** = ठण्डा भोजन, **पुराण कुम्मासं** = बहुत दिनो से सिजोया हुआ उडद, **बुक्कसं** = पुराने धान का चावल, पुराना सत्तुपिण्ड, अथवा बहुत दिनो का पड़ा हुआ गोरस या गेहूँ का माड, **पुलाग** = जौ का दलिया।

णो पमाय सइं वि कुव्वित्था–छद्मस्थ अवस्था में एक बार भी प्रमाद नहीं किया। प्रमाद के पाँच भेद मुख्य हैं–मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। वृत्तिकार इस पंक्ति का अर्थ करते हैं–भगवान ने कषायादि प्रमादो का सेवन नहीं किया। चूर्णिकार का कथन है–भगवान ने छद्मस्थ दशा में अस्थिक ग्राम में एक बार अन्तर्मुहूर्त्त को छोड़कर निद्रा प्रमाद का सेवन नहीं किया। तात्पर्य यह है कि भगवान अपनी साधना में प्रतिपल अप्रमत्त रहते थे।

भगवान की साधना के तीन मुख्य अंग थे-(१) अबहुवाई-वाणी का संयम, (२) काय-क्लेश तप आसन एवं शीत आदि सहन, (३) रस-परित्याग तप-रूक्ष नीरस भोजन।

इस प्रकार की आदर्श एवं संकल्प-मुक्त चर्या श्री भगवान महावीर ने की।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

॥ उपधान-श्रुत · नवम अध्ययनं समाप्त ॥

॥ आचारांग सूत्र-प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त ॥

Elaboration—With the description of the spiritual practices and austerities of *Bhagavan* two adjectives are often repeated—(1) *Samadhi-preksha* (focusing all thoughts on the self while meditating), and (2) *apratijna* (remaining unprejudiced and undogmatic) No matter how rigorous his austerities were he always meditated and focussed his thoughts on the self He was absolutely free of any prejudices or dogmas

The commentator (*Vritti*) has interpreted *ayat-yoga* as discipline of mind, speech and body However, it can also be interpreted as absolute unison with an activity. Whatever activity *Bhagavan* indulged in, he was in perfect unison with it To be fully absorbed in the present without any distractions of memories of the past or anticipations about the future is called *ayat-yoga* When he walked, he only walked While walking he neither looked here or there, nor did he talk, study or ruminate

Annagilayam—The commentator (*Vritti*) has interpreted it as leftover and stale food In the commentary (*Tika*) of *Bhagavati Sutra* this word has been defined—He who gets desperate (*glana*) in absence of food (*anna* or grain) is called *annaglayak* Made desperate by hunger, immediately on getting up in the morning, he eats whatever leftover, cold and stale food is available to him. Although *Bhagavan* was never made desperate by hunger, he accepted stale or cold food offered to him and ate it without enjoying taste in order to avoid distraction in his meditation and also to perfect equanimity.

The commentator (*Churnı*) has ınterpreted *annaglan* as—non-nutrıtious, tasteless, insipid food.

Suiyam—cooked rıce mixed wıth curd etc *Sukka*—dry. *Sıyam pındam*—cold food *Purana kummasam*—pulse cooked many days earlıer *Bukkasam*—old rice, musty flour balls, or stale and fetıd mılk or wheat soup *Pulagam*—barley porrıdge

No pamayam saim vi kuvittha—He was not overwhelmed by stupor even once durıng hıs *chhadmasth* state There are five maın categorıes of *pramad* (stupor)—ıntoxıcatıon, mundane pleasures, passıons, sleep and opprobrıum The commentator (*Vrıttı*) ınterprets thıs sentence as—*Bhagavan* was not effected by passıons and other types of stupor The commentator (*Churnı*) says—*Bhagavan* slept once for one *antarmuhurt* (less than 48 mınutes) in Asthik village, besides thıs he was never under the effect of the stupor of sleep throughout hıs *chhadmasth* state. In other words, every moment of hıs spirıtual practıces, *Bhagavan* remaıned ever alert

The three ımportant components of *Bhagavan's* spırıtual practıces were—(1) *Abahuvaı*—dıscıplıne of speech, (2) Austerıtıes ıncludıng mortıficatıon of body, dıfficult postures and toleratıng cold and heat, and (3) Austerıtıes of taste buds or eatıng dry and ınsıpıd food

Shrı Bhagavan Mahavır followed such ıdeal routıne of conduct free of any reservatıons

● END OF LESSON FOUR ●

● UPADHAN-SHRUT : END OF NINTH CHAPTER ●

● END OF ACHARANGA SUTRA : PART ONE ●